੧ੴ

श्री वाहेगुरु जी की फत्तह ॥

श्री गुरू नानक चमत्कार

(तृतीय भाग)

भाई साहिब भाई वीर सिंह

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू नानक चमत्कार

(तृतीय भाग)

अर्थात्

जीवन चरित्र

साहिब श्री गुरू नानक देव जी

जैसा कि

उनके चरणों को प्राप्त पुरुषों के प्रसंगों द्वारा विदित हुआ

लेखक

भाई साहिब डा० वीर सिंह

'सुन्दरी', 'राणा सूरत सिंह' इत्यादि ग्रन्थों के प्रणेता

२००१

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू नानक चमत्कार (तृतीय भाग)
भाई साहिब भाई वीर सिंह

हिन्दी में प्रथम संस्करण : १९६७
द्वितीय संस्करण : २००१

प्रकाशक :
भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मुद्रक :
भाई वीर सिंह प्रैस,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मूल्य : ९०/-

प्रकाशकीय

(तृतीय भाग)

संत कवि भाई साहिब डा: वीर सिंह जी की इस रचना 'श्री गुरू नानक चमत्कार' को हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अति हर्ष हो रहा है। 'श्री गुरू नानक चमत्कार' के हिन्दी रूपान्तर का यह तृतीय भाग है। पहले दो भाग १९६२ और १९६४ तथा इस भाग का १९६७ में प्रथम प्रकाशन हुआ था। मूल रूप में 'श्री गुरू नानक चमत्कार' पंजाबी भाषा में दो भागों में प्रकाशित है। हिन्दी में इसी रचना के चार भाग बना दिये गये हैं।

भाई साहिब डा: वीर सिंह जी पंजाबी साहित्य के एक सर्वतोमुखी मूर्धन्य साहित्यकार हैं, जिन्होंने पंजाबी काव्य एवं भाषा को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। 'श्री गुरू नानक चमत्कार' भाई साहिब जी की गद्य-रचना है। इसमें श्री गुरू नानक देव जी का जीवन-वृत्तान्त है। भाई साहिब की इच्छा थी कि समानता के उपदेशक, ईश्वर प्रेमी, जगततारक गुरू नानक देव जी की जीवन-लीलाओं एवं उपदेशों को पंजाबी भाषा से अपरिचित अन्य भारतवासियों तक भी पहुँचाया जाए। इस दृष्टि से भाई वीर सिंह साहित्य सदन की ओर से यह प्रयास किया गया है।

अनुवाद मूल रचना की अपेक्षा एक कठिन कार्य है। पर इसको सफल बनाने के लिए भरसक यत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा और शैली अत्यन्त सरल रखी गई है, जिससे साधारण पाठक भी पूरा लाभ उठा सकें। बहुत सीमा तक मूल लेखक की ही भाषा ले ली गई है। मूल रचना में आए प्रचलित फारसी और अरबी के कुछ शब्द भी ले लिए गये हैं। गुरुवाणी की प्रामाणिकता बनाए रखने की दृष्टि से उन्हें गुरुमुखी से ज्यों का त्यों देवनागरी लिपी में दे दिया गया है।

हमारा विश्वास है कि भाई साहिब भाई वीर सिंह जी की मूल रचना का यह अनुवाद हिन्दी पाठकों को भी उसी तरह उत्प्रेरित करेगा, जैसे कि यह पंजाबी पाठकों को करता आया है।

भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
नई दिल्ली।

डा: जसवंत सिंह नेकी
आनरेरी जनरल सैक्रेटरी

विषय – सूची

४५ अदेशी परोपकारी[१]

: १ :

दर्द भरी दुनिया में आया आज समीरण चल के,
छोड़ मन्य दुर्गन्ध ओर क्यों आया हल्के हल्के?
मेरे ऊजड़ डेरे में है एक कीकर की छाया,
बुलबुल! गुल को छोड़ यहां क्यों डेरा आज लगाया?
जहां कभी कौआ भी आने को मन में था डरता,
यहां आज है मोर नाचता थिरता मन में भरता।।
कीकर के पीले फूलों से आज सुगन्धि बिखरती,
क्या जाने क्यों आज प्रकृति की सुषमा स्वयं बरसती?
दर्द भरा क्रन्दन सुनकर सब दूर भाग हैं जाते,
पर यह आज स्वयं सुन्दर क्यों खिंचे यहां पर आते?
घास पात की भग्न कुटी में किसका आना भाई?
किसी रंगीले के स्वप्न में प्रकृति यहां मुस्काई।
सुन्दरता के रम्य राज्य का क्या छैला आवेगा।
आशा और निराशा में मन भावुक क्या पावेगा?
किसे यहां आना जाना है दुखी हृदय के अन्दर।
ये मेरे मन के सपने हैं, सपने हैं अति सुन्दर।

१. उदासी

हां, उदासी भी कभी-कभी आ जाती है और दिन के ऊपर छा जाती है। पर उदासी कई तरह की होती है। मन यदि अधिक की इच्छा करे और मिले थोड़ा, एक उदासी यह है। अगर बहुत मिले तो तृप्ति होकर भी एक उपरामता आ जाती है। हां, भोगों के अंत पर भी आपा खाली होकर कभी-कभी उदासी में चला जाता है। यह भी एक उदासी है। पर एक उदासी और है, जो परमेश्वर के प्यारों को आती है। वह होती है एकान्त की इच्छा। भक्त का भला करते हुए जब कभी आपा किसी ऊँचाई से थोड़ा नीचे हो जाता है, तब फिर वह चाहता है उस भीतर के की ऊँचाई और उसके लिए होता है उदास और मांगता है एकान्त। एकान्त, जहां पर मन प्रकृति के साथ वार्तालाप करे, प्रकृति के रंग के और प्रकति के साथ एक स्वर होकर मिले। हां, नदियों नालों, छोटी-छोटी कूलों का करुण नाद कानों में गूंजे। चन्द्र, तारे और आकाश विशालता तथा आश्चर्य का रंग दें। पेड़, पौधे, घास, फूल आंखों में ताजगी भर

---

१. यहाँ पर गीत का अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

दें और आंखें इस ताजगी को दिल में भेज दें। ऊँचाईयों, नीचाईयों, खड्डों और शिखरों के दृश्य, दृष्टि को अपने-आप के भीतर झांकने वाली बना दें और अपने अन्तरमय की ऊँचाईयों, नीचाईयों, गड्डे और टीले दिखाई पड़ने वाले लगें जिससे फिर भीतर एक रसभरी समता हो जाये। प्रकृति का यह रंग लगाकर भीतर कोई और कला उत्पन्न कर दें, जो इस दृष्टमान के पीछे एक अदृष्ट का निवास भी देखे, जिसके रचे हुए ये सब रंग हैं। हां, अंतस, इस प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से उस अदृष्ट-सुन्दर को समझे, जो कभी-कभी मन को अपने सौन्दर्य से छूकर और नया जीवन भरकर अपने साथ एक स्वर कर देता है। इस एकान्त तथा एकाकीपन में आपा, 'डावांडोल एकाकीपन', में नहीं जा पड़ता, बल्कि यह अनुभव करता है कि मेरा आपा जो अब निखरा है, एकाकी नहीं है, वरन इसके पीछे कोई है जिससे यह जा लगा है और जिसका सौन्दर्य प्रकृति में सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार आपा नया, निरोग, बलवान, ऊँचा और सुख-रूप जैसा हो जाता है, उस उदासी के फलस्वरूप, जो उदासी नाम रसिक गुरुमुखों को होती है और कभी-कभी एकान्त में ले जाती है। हां, एकान्त में रसमय करके उपकारी बादल की भांति, फिर कोई अगम्मी वेग ले आता है जगत में - पीड़ा के देश में - पीड़ा हरने के लिये, जितनी कि हो सके - अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार।

यह बात नहीं समझनी चाहिये कि गुरुमुख कभी प्रेम से खाली हो जाते हैं, अथवा नाम से रहित या ज्ञान से वंचित हो जाते हैं। यह एक रसित तथा परोपकारी जीवन का पहलू होता है, जो शरीरधारी होने के कारण कभी-कभी एकान्त मांगता है। यह एक उदासी नहीं जो संसार के दुखों से नफरत के घर ले जाकर वनों तथा बर्फों के बीच गला देती है। पर यह वह उत्तर उदासी है, जो संत-हृदय में सदा व्याप्त रहती है, जो इसे अहं से धोकर किसी आपे के सुख में रखती है और इसे सुखदाता बना देती है। सुखदाता होने के समय अथवा सुख देने के समय,'अहं' जो प्रबल है, जगत के कटु अनुभवों से कभी-कभी कुछ शिथिलता ले आता है, या यों समझिए कि जगत को अपने सुखदाताओं से व्यवहार संत हृदय की सहनशक्ति को चोट मार-मार कर कुछ थकान या शिथिलता या उपरामता ला देता है। इसे दूर करके मन को सावधान करने के लिये उपकारी संत कभी-कभी एकान्तवासी हो जाता है।

"प्रभ की उसतति करहु संत मीत ।।
सावधान एकागर चीत ।।" (सुखमनी)

जगत क्यों दु:खी है? उसे सुखी करने के लिए अनेकों तजुर्बे हुए और हो रहे हैं। कई समस्यायें और कई व्यवहार हुए और हो रहे थे पर सारे जगत को पूरा सुखी करने में तथा सदा सुखी रखने में सफल नहीं होते। क्यों? मनुष्य का 'अहंकार' बीच में आ जाता है। योजनाओं तथा समस्याओं का इतना दोष नहीं। जो कुछ अपने अंदर मनुष्य की आप की पकड़ है और दूसरों के साथ परायापन है, यह अहंकार है, यह उस योजना में बाधा डाल देता है, जो जगत को सुखी करने के लिए बुद्धिमान पुरुष सोचते तथा जारी करते रहे हैं। इसलिये गुरू बाबा ने आज्ञा दी थी कि इस 'पकड़' को छोड़ो। यह अन्दर 'मैं' के नाम से विराजमान है, बाहर 'मेरी' करके बोलती है और व्यवहार में द्वैत का रूप धारण करती है। अंदर तो ईश्वर से अलग करती है और बाहर जगत से भेदभाव करवा देती है। जिसके अंदर यह नहीं वह सुखी और सुखदाता

हो जाता है। यदि सभी लोग इस प्रकार के बन जायें तो जगत में सुख बढ़ जाये। जब कभी भी जगत में सुख आया है ऐसे लोगों द्वारा ही आया है, जिन्होंने सुख लेने की अपेक्षा सुख देना अच्छा समझा है। चाहे वह धार्मिक दृष्टिकोण से उत्पन्न हो, चाहे परोपकार के दृष्टिकोण से, चाहे नीति तथा चाहे विचार के दृष्टिकोण से उठे। पर सबसे अधिक ऐसे पुरुषों का जीवन धन्य है, जो पहले अंदर से आप ऊँचे हुए हैं, जिनकी अहं की जंजीरें टूटी हैं और उनका आपा स्वतन्त्र होकर सब के आपे में मिलकर उसका आधार हो गया है। फिर उन्हें दृष्टमान जगत में द्वैत नहीं रहा। वे आप अंदर से सुखी हुए हैं और उनसे जगत को सुख प्राप्त हुआ है। गुरू नानक ने इस प्रकार के गुरुमुख पैदा किये थे।

श्री गुरू जी के पैदा किये हुए गुरुमुख नाम-रसिया होते थे, उनके अंतस में एकाग्रता तथा रस होता था, साईं मिलाप का प्रकाश तथा तेज, उनके माथे पर चमकता था। वे एकान्त के भी प्रेमी होते थे, पर जगत के बीच सुख बढ़ाने का उनका स्वभाव स्वाभाविक ही था। संगतों में विचरते, गुरुवाणी के साथ प्रेम करवाते, गुरू जी के साथ स्नेह लगवाते और नाम जपने में सहायता करते पर आप रहते निर्वास तथा अपने-आपको न्योछावर करने के रंग में[१] अंदर से निर्लिप्तता वाली उदासी तो थी, पर यदि कभी परोपकार करते हुए उपरोक्त उदासी? में आते तो फिर एकान्त में चले जाते, एकान्त से फिर संगत में आ विचरते[२] पर "मैं" की पकड़ तथा भेदभाव से मुक्त रहते।

हाँ, यह शरीर चर्म का थैला होने के लिए नहीं रचा गया था, यह तो हरि मन्दिर है, पर तब जब इसमें ईश्वर के नाम का निवास हो। नाम के निवास से अहं दूर होता है और हरि इसमें प्रत्यक्ष होता है। यदि अहं न रहा तो फिर द्वैत कैसा, सभी अपने हैं। आप कहेंगे कि फिर इन गुरुमुखों को एकान्त की क्या आवश्यकता होती थी? भाई! देह तत्वों की रचना है। मन का प्रभाव देह पर ओर देह का प्रभाव मन पर पड़ता है। प्रवृत्ति में[३] इस मन के ऊपर कुछ-न-कुछ सीधा अथवा शरीर की थकान द्वारा कुछ इस प्रकार का प्रभाव पड़ता है, जिसे दूर करना पड़ता है। सो कभी-कभी इस अहं के बही-खाते की पड़ताल करने के लिए एकान्त की आवश्यकता होती है कि कहीं इसने फिर से कोई रकम इकट्ठी तो नहीं कर ली और चित तो यही चाहता है कि जगत जल रहा है, दु:खी है, यदि बन पड़े तो इस पर पानी का छींटा मारा जाय, चाहे हमारे इस छींटे से कुछ बने या न बने। 'हम छींटा मारें' यह भी 'अहं' ही कहा जा सकता है। पर आज्ञा यही है, 'आप जपहु अवरा नामु जपावहु।। सुनत कहत रहत गति पावहु'।। आज्ञा में चलना अहं नहीं है। जगत में दु:ख बहुत है, उसको दूर करने का साहस यदि आज्ञा में हो तो लेश नहीं लगता। पर दु:ख की बात यह है कि जो

---

१. जिहि माइआ ममता तजी सभते भइओ उदास ।।
कहु नानक सुन रे मना तिह घटि ब्रह्म निवासु ।। (सलोक महला ९)

२. रहहि इकांति एको मनि वसिआ आसा माहि निरासो ।। (सिद्ध गेसटि)
अर्थात् — एकान्त में रहे तो एक को मन में बसा कर, यदि ईश्वर की आज्ञा में आशामय जगत में आये, तो निराश होकर विचरे ।
हरि सिमरनु बहु माहि इकेला ।। (भैरऊ महला ५)

३. परविरति मारगु जेता किछु होईऔ तेता लोग पचारा ।। (सारंग महला ५)

परोपकार अहं में किया जाता है, वह अपने लिए बहुत सुखदायक नहीं होता, पर यदि अहं को नाम द्वारा सम्हाला जाये तो स्वाभाविक रीति से जो कुछ हो जाय वह ठीक है, फिर उसमें अहं का बल नहीं पड़ता। अहं बुरी बला है। एक तो इसने ईश्वर से दूरी डाल दी है, दूसरा जगत के साथ भेदभाव को बढ़ाता है। पर अहंकार भी आज्ञा ही से हुआ है,[१] और नाम द्वारा दूर होता है[२]। यदि कोई कृपापात्र नाम को दूसरों में बाँटे और भलाई करे तो यह दूर रहता है, पर यह सब कुछ तब होता है, जब वह आज्ञा में रहे[३]। जगत में नयन पसारकर देखो, उसी अंदर के भेदभाव वाले अहं ने राजाओं के वैर, देश-देश का युद्ध, घर-घर का विरोध और जीव-जीव में शत्रुता डाल रखी है।[४] कोई भी विचार नहीं करता कि सभी मनुष्य सुखी हों, जगत सुखी हो। किसके लिये तोपों, बन्दूकों, जहाजों तथा बारूदों-गोलों को बनाते हैं? मनुष्य, मनुष्य का वध करने के लिये। क्या इसी का नाम उन्नति तथा सभ्यता है? फिर जब एक मनुष्य अत्याचारी हो जाता है, तो दूसरे को अपनी रक्षा करनी पड़ती है कि कहीं दूसरा उसे मार न डाले। यों सभी हत्या की सामग्री में सभ्य हो गये हैं। यदि एक छोड़ दे तो दूसरे से डरता है। यों इस भेदभाव के संस्कार ने विद्या के प्रकाश में भी जगत को दुखी कर रखा है। गुरू बाबा ने दशम शरीर धारण करके (गुरू गोबिंद सिंघ) अत्याचारियों ने दलितों को, अपना सर्वस्व न्योछावर करके बचाया था। फिर गुरू जी ने अपना न्योछावर करने वाला 'खालसा' अपनी भांति उपकारी अपने रूप पर ही बन करके हमेशा के लिए स्थापित किया था, पर शिक्षा क्या थी कि सभी हृदयों में नामक की ज्योति जगा दो और यदि अत्याचार देखो तो उसे दूर करो, इस लिए कि जगत में प्यार का विस्तार हो और विरोध का नाश हो। तुम प्यार करो, दुःख सहन करो और सुख प्रदान करो, तुम्हें देखकर दूसरे उन्हीं पदचिन्हों पर चलें। सो यह जो अंदर 'अंह' है और जो आपे के साथ मोह रूप धारण करके अंदर अपने-आपको दिखाई देता है और बाहर यह 'मेरी' का रूप धारण करके मोह का विस्तार करता है और यही मोह दूसरों के साथ भेदभाव सिखाता है, इसे मनुष्य के हृदय में से कम करने का सुमति में लगा देना चाहिये। इस भेदभाव, इस पकड़, इस माया से, जो साईं से भी दूर करती है और जगत में भी उपद्रव कराती है, बचना सभी का धर्म है। साधु का मुख्य धर्म है नाम जपना और जपाना, इससे उतरकर दूसरा मुख्य क्रर्म यही है- भेदभाव को दूर करना। गुरू अमरदास जी ने कहा था-

"इेह माइआ जितु हरि बिसरै, मोह ऊपजै भाऊ दूजा लाइआ"॥ (अनंद)
जिसके साथ वाहिगुरू बिसरे, मोह उत्पन्न हो और भेदभाव उत्पन्न हो, वही माया है।

यह माया प्रबल है, इसकी सूझ रखना धर्म है, इससे बचना शुभ है। इसके दाव घाव देखने तथा आपा पहचानने के लिये गुरुमुखों को कभी-कभी एकान्त की आवश्यकता आ पड़ती है।

---

१. हऊमै एहो हुकमु है पइऔ किरति फिराहि ॥ (आसा दी वार)
२. नामे राते हऊमै जाइ ॥ (सिद्ध गोसटि)
३. ता मैं कहिआ कहणु जा तुझै कहाइआ ॥ (व: महला १ छंत)
४. दूजे भाइ बहुतु घर गाले ॥ (भैरऊ कबीर जी)

२. उपकार

एक साधु ने एक दिन कहीं संगत में स्वाभाविक रूप से दान देने की बात चलाई और कहने लगा कि दान पात्र का अधिकार पहचानना चाहिये। यों ही दिये हुए दान का फल इहलोक में तथा परलोक में दु:ख ही है। फिर वह कहने लगा कि मैं तो समझता हूँ कि केवल आपको ब्रह्म जान लेना ही काफी है, नाम-दान आदि की आवश्यकता नहीं।

विचार- अधिकार पहचानना तो ठीक बात है, यदि आप लखपती को दस रुपये देंगे तो क्या फायदा? यदि आप जुआरी को एक सौ रुपये देंगे तो वह उन्हें जुए में ही नष्ट कर देगा।

फिर दान करने में भी बड़ी कठिनाइयाँ आती हैं। जो दूसरों का भला करेगा? दु:खों के मुँह में पड़ेगा। जो पराया भला करेगा उसके इर्द-गिर्द किसी-न-किसी रूप में दु:ख आयेगा। आप परोपकार के काम करके देखें कि जिनके साथ आप नेकी तथा उपकार करेंगे, प्राय: वे ही शत्रु हो जाते हैं। कई बार उनके हितू वैरी हो जाते हैं। प्राय: जाने या अनजाने में जगत नेकी करने वाले को घेर-घेरकर दु:खों के मुँह में फँसा देता है। परोपकारियों की निन्दा करना, अपने मनोरथों की पूर्ति के लिये आरोप लगाना तो जगत के बाएँ हाथ का खेल है। इससे बढ़कर लोग अनेक प्रकार के महान कष्ट भी खड़े कर देते हैं, प्राण तक ले लेते हैं। श्री गुरू अर्जुन देव जी परमेश्वर स्वरूप थे। आपका हृदय तथा शरीर इतना कोमल था, जिसमें से अदेशी वाणी निकलती थी। आपके उपकारों का कोई अन्त नहीं। यदि उनके श्री गुरू ग्रन्थ साहब वाले रुहानी तथा कोमल कला के साहित्यिक उपकार को आँखों के सामने लायें और दूसरी ओर उस सक्षम तथा कोमल व्यक्ति को गर्म तवे पर बैठे हुए और ऊपर से गर्म रेत पड़ती देखें तो प्राण काँप उठते हैं। यह देखिये जगत का 'सिरोमणि परोपकारी' के साथ व्यवहार।

बाहरी दु:खों को छोड़ के यदि उपकारी अपने-आपको देखें तो आप अपना धन, अपना समय और यदि भक्ति वाला है तो वह अपना मानसिक बल उपकार में कितना व्यय करता है। यों अपना बिगाड़ेगा तब ही कहीं जाकर दूसरे का कुछ सँवारेगा।[१]

हाँ, सेवा अथवा उपकार, नेकी अथवा दान, बड़े कठिन काम हैं, इनके करने वालों को जगत वह कुछ फल देता है कि कोई क्या कहे। दशम पातशाह, गुरू गोबिन्द सिंघ जी के उपकारों को याद कीजिये और उनके कष्टों का विचार कीजिये। वे भगवन्त रूप थे, आप भगवन्त थे, पर देख लीजिये, जो कुछ जगत ने उनके साथ व्यवहार किया। वे ही थे, जो सदैव डटे रहे, कभी भी न डोले। वे भगवन्त रूप थे[२], वे अद्वितीय हैं। हम और आप तो जीव हैं, भूलने वाले हैं, थोड़ी वित्त वाले हैं, हमें सत्संग की, सदैव नाम में रहने की, कीर्तन की आवश्यकता है जिससे नेकी करते समय जो कठिनाईयाँ आती हैं और व्यवहार होता है, वे कटु अनुभव कहीं हमें नाम तथा नेकी से हरा न दें। श्री गुरू जी का कथन है :-

जे कोऊ अपुनी ओट समारै।।
जैसा बितु तैसा होइ वरतै अपना बलु नहीं हारै।। (धनासरी महला ५)

---

१. अपना बिगारि बिराना सांढै ।। (गोंड रविदास)
२. वह प्रगटिओ पुरख भगवंत रूप ।। (भाई गुरुदास द्वितीय)

यदि कोई ऐसा साधन करना है जिसके साथ वह अपने अन्दर अपने आपा के अवलंब पर टिकता है तो वह अपनी क्षमता के अनुसार अपने बल का प्रयोग करे, इतना भी प्रयोग न करे कि उसका बल ही हार जाये। हारना और मरना एक समान हैं। अत: सदैव अपनी क्षमता को पहचानकर काम करे, जब तक कि अहं की सारी पंक्ति टूट न जाये।

सिद्धान्त की एक बात है कि जो अन्दर में अहं वाले पुरुष हैं, जिसके मन का मैल, किसी एकाग्रता और किसी साधन द्वारा शुद्ध होकर आपे को आपे से जोड़ा नहीं गया और जिन्हें अहं और अहं की जननी-भेदभाव से मुक्ति प्राप्त नहीं हुई उनका परोपकार केवल ऊपरी दया के भाव से उत्पन्न होता है और जब तजुर्बे में कटुता आती है तो उनके स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है। पश्चिम की एक बोली में एक कहावत है, 'उपकार का अन्त उपकार' है। कारण यह है किसी साधन सम्पत्ति से जब अन्दर का अहं दूर नहीं होता और उससे उत्पन्न हुआ भेदभाव दूर नहीं हुआ, तब उस वस्तु मी जड़ नहीं काटी गई जो भेदभाव का मूल है। यों नेकी करने में जो चोट लगती है, वें पहले चाव का मुँह मोड़ देती है, फिर वही अहं अंतस को पत्थर बना देता है। एक परोपकारी सिक्ख था, वह सचमुच ग़रीबों का भला करता तथा समय देता था और धन भी व्यय करता था। सब लोगों के काम को सँभालता था, दु:ख-सुख के समय काम भी आता था, पर निन्दा तथा नुक्ता-चीनी में खेलता था। सत्संग में भी जाता था, पर प्रभाव में किसी के भी नहीं था। 'अहं तथा भेदभाव' रूप बदलकर इसके अंतस को जलाया करते थे। आम लोग इससे प्रसन्न दिखाई पड़ते थे पर इसके अंतस के उबाल कईयों को छाले डाल देते थे। इस प्रकार के पुरुष के लिये आवश्यक है कि पहले अपने-आपका उपकार करे। अंतस को नाम तथा वाणी द्वारा पवित्र करे। जहाँ पर भेदभाव तथा आपा पसंदी का मैल है, वहाँ से वह दूर हो, फिर उपकार करे। सबसे पहली दया 'आत्म कृपा' है। अपने-आपको स्वच्छ करने की अपने-आप पर दया करने की। एक और उपकारी था जो बड़ी आयु में जाकर दया को कसाइन कहा करता था। उसे अपने उपकारों के बदले में कष्ट मिले थे। जिनके साथ नेकी की थी उन्होंने ही दु:ख दिये थे। निराशा की चोटों से जो नेकी के बदले में बुराई मिलने से लगती हैं, उन्हें सहन कर-करके वह सिंघ पत्थर हो गया था। कहता यह था कि अब मुझे पता चला है, मैं मूर्ख था, अब बुद्धिमान हुआ हूँ। पर वास्तव में वह बुद्धिमान नहीं था, उसका अंतस कठोर हो गया था। यदि वह नियम बनाता कि प्रतिदिन वाणी का पाठ करूँगा और विचार करूँगा, यह भी नियम बनाता कि अमृत वेला में उठकर नाम जपूँगा, अवश्य ही कीर्तन सुना करूँगा, फिर कहीं जाकर उसके मन का मैल उतरता, मन एकाग्र होता और उसमें आनन्द का प्रभाव पड़ता फिर पता चलता कि सार उपकार यह है। 'आपे' के साथ आप उपकार करना, पहले यह उपकार है।[२] रोगी भी कभी रोगी की चिकित्सा कर सकता है? हे जी! पहले स्वस्थ हो, अहं के दाव-पेच देख, माया को समझ, मन को विनीत कर, बुद्धि को उज्ज्वल तथा ऊँचा कर और इनके सिर पर नाम का पहरा रख। फिर यदि हो सके तो भला कर। फिर यदि तू भला करेगा तो कभी भी कटु अनुभवों के कारण भलाई की ओर से मुँह

१. Philanthropy ends in misanthropy.

२. आज्ञा है — नरक निवारि उधारहु जीऊ ।। (सुखमनी २४-२)

नहीं मोड़ेगा, देख, दशम गुरू ने जब खालसा के सिर पर जगत का अत्याचार दूर करने का तथा उपकार करने का काम रखा तो पहले यह मति प्रदान की- ''जागत जोत जपै निसबासर एक बिना मन नैक न आनै।।'' क्योंकि हे उपकारी! तुझे दु:ख देने से तो जगत नहीं टलेगा, पर यदि अंदर में तेरी टेक बँध गई होगी, जागृत ज्योति भगवन्त के ऊपर, तो तेरा परोपकार स्वाभाविक ही होगा, तेरा परोपकार माँगा हुआ तथा 'परिश्रम भरा प्रयत्न वाला' परोपकार नहीं होगा। हे नाम का आश्रय लेकर उपकार की इच्छा करने वाले! जब तुझे नेकी के बदले में बदी मिलेगी तो तेरा मन ठोकर नहीं खायेगा, यदि खायेगा तो शीघ्र ही ठीक हो जायेगा। विचार उसकी सहायता करेगा और उसे कहेगा कि तुझे अपने ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है, तुझे लोगों के व्यवहार की ओर नहीं देखना। लोग दु:खी हैं, दुखी से दुख की आशा हो सकती है। यह दुखी लोग भी अहं से बँधे हुए हैं, इनमें भी भेदभाव है, यह कब प्यार तथा धन्यवाद कर सकते हैं। फिर यदि आप एक से अधिक लोगों के साथ नेकी कर रहे हैं और अपने सामर्थ्य के अनुसार सबको थोड़ा-थोड़ा सहारा दे रहे हैं तो क्या देखेंगे कि प्रत्येक के जी की यही इच्छा होगी कि यह अपनी सारी क्षमता मुझे ही क्यों व्यय नहीं करता, दूसरे को क्यों कुछ देता है। इस बात पर लगभग सभी अन्दर से तुम पर रुष्ट रहेंगे और अनजाने ही तुम्हारे विरोधी हो जायेंगे। उस समय आपका विचारशील मन कहेगा कि आप भला किये चलें और इनकी ओर न देखें। फिर यदि किसी को एक सेर की आवश्यकता है और आपकी क्षमता पाव-भर की है तो लेने वाला पाव लेकर पाव के लिये शुक्रगुजार नहीं होगा पर तीन पाव न मिल सकने के लिये ना शुक्रगुजार होगा। आप चकित होंगे कि एक तो आप नेकी करते हैं और दूसरे आपको नाराज़गी सहनी पड़ती है। पर भैया जी! जो आपने नाम का आँचल पकड़ा है तो आपका अहं से उज्जल हो रहा मन कहेगा कि जितनी क्षमता हो भला करो, क्योंकि यह गुरू बाबा की आज्ञा है :- 'गुरुमुखि नामु दानु इसनानु।' पर इस दान पर भरोसा मत रखो और न ही इसका बदला चाहो ओर कोई आशा रखो। आप नाम जपें, नाम से ही आपका कल्याण होगा। यही आपके जीव का आधार है, यही आपका इहलोक तथा परलोक में अविलम्ब है-

एक ओट एको आधारु।।
नानक मागै नामु प्रभु सारु।।१।। (सुखमनी महला ५)

गुरूमुख की टेक नाम पर है, गुरुमुख का दान खिले हुए गुलाब के फूल की सुगन्धि है जो स्वाभाविक रूप से दान हो रहा, गुरुमुख का स्नान शरीर, मन तथा आत्मा की शुद्धि है। गुरुमुख के नाम जपने का वाहिगुरू के साथ सम्बन्ध है, गुरुमुख का दान करने का जगत के साथ सम्बन्ध है। गुरुमुख के स्नान करने का आपे के साथ सम्बन्ध है। तीनों के साथ वह जीवित ही मुक्त रूप है। इस आदर्श से वंचित होकर यदि आपने सोचा कि नेकी के बदले में बदी क्यों आ गई है और फिर मैं नहीं करूँगा तो इस बुद्धि से तेरा मन कठोर हो जायेगा, दया से रिक्त और क्षमा-रहित हो जायेगा। श्री गुरू ग्रंथ साहब में तो बल्कि यह आज्ञा लिखी है :-''फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढ़ाइ।। देही रोग न लगई पलै सभ किछु पाइ।।'' फिर भी जब आप लोगों के अत्याचार से अथवा उनकी कुसंगति से अथवा अपनी क्षमता से

अधिक बल खर्चने के कारण शिथिलता अनुभव करें तो कीर्तन सुनिये, या एकान्तवासी होकर प्रकृति के रंगमंच में मन मिलाकर प्रकृति के एकाकीपन में साईं के साथ मिलकर साफ बनो, बलवान बनो, सिंघ बनो और फिर सामने आओ। कई बार बहुत से उपदेश देने वाले, बहुत से सुधारक जिन्हें सुधारते हैं उनकी कुसंगति से आप वैसे ही अहं के सेवक, माया के प्रेमी, भेदभाव के दास बन जाते हैं। विचार कीजिए :-

''इस गृिह महि कोई जागतु रहे ।।
साबतु वसतु ओहु अपनी लहै ।। (गऊड़ी गुआरेरी पहला ५)
''कबीर माइआ डोलनी पवनु वहै हिव धार''। (सलोक कबीर)
''करि किरपा मोहि सारिंगपाणि ।।
संतन धूरि सरब निधान ।।
साबतु पूँजी सतिगुर संगि ।।
नानकु जागै पारब्रम कै रंगि ।।४।।
सो जागै जिसु प्रभु किरपालु ।।
इह पूँजी साबतु धनु मालु ।।१।।'' (गऊड़ी गुआरेरी महला ५)

एकान्त में मतलब घर से भाग जाना नहीं। वास्तविक एकान्त जो गुरू बाबा ने बताई है, सो यह है-'' सो इकांती जिसु रिदा थाइि''।। वाणी के पाठ, कीर्तन तथा विचार से मन जब नाम में लगता है तो मन एकांत होता है। वह मन की इस लगे रहने की दशा की रक्षा के लिये एकान्त होता है, अर्थात् स्वच्छ तथा निर्मल वातावरण में जाने की आवश्यकता है। रात को जब सारा परिवार सो जाये, वह भी एकान्त है। कीर्तन में मन लग जाये, वह भी एकान्त है। ईश्वर की प्रकृति के दृश्यों में विस्मय का स्पर्श लेकर इसमें आ जाना भी एकान्त है।

वनों में जाकर, क्षेत्रहीन तीर्थ में बैठकर, निर्जन झाड़ियों में डेरा डालकर भजन करना कठिन है। संन्यासी होकर घरबार का त्याग करना बहुत कठिन है, पर गुरू बाबा ने जो गृहस्थ में रहकर पानी में कमल समान उदास रहने की आज्ञा दी है, उसका पालन करना उनसे भी कठिन है। वन में मन ऊबकर मनुष्य के साथ की इच्छा करता है और यदि मन को इस बात से रोक दें, तो इस रोकने में ही भारी कष्ट है, पर जल में खिले हुए कमल की भाँति यदि किसी गृहस्थी को नाम अभ्यास द्वारा निर्लिप्तता प्राप्त हो गई है तो उसके चारों ओर पड़ी ''लहर पछाड़'' बहुत बुरी वस्तु है। कुसंग के घेरे में रहकर आपा संवारना, हाँ, न केवल आप ही संवारना बल्कि बंधुओं, मित्रों के अटूट संबंधों में प्रत्येक के साथ नेकी का व्यवहार करना- और भेदभाव वालों के साथ भेदभाव त्याग करके व्यवहार करना, उन लोगों के साथ पाप-रहित ढंग से व्यवहार करना, जिन्हें झूठ, असत्य छल से कहीं रोक-थाम नहीं, कहीं लज्जा नहीं और जिनका कोई नियम नहीं-सहज कार्य नहीं है। हाँ, फिर गृहस्थी के गले में अकारण ही राजा और राजा के दूतों के झगड़े आ पड़ते हैं। गृहस्थ में रहकर ऐसा कौन है जो आप कमाने के तरद्दुद और मेहनत, बाल-बच्चे, पत्नी, माता पिता सबके प्रति अपने उत्तरदायित्व बीमारियों और वामारदारियों, मौतों और जीने वाले की दिलदारियों आदि के लहर

पछाड़ से अपने-आपको अलग रख सकता है। हाँ, इस लहर पछाड़ में निर्लिप्त रहना कैसे हो सकता है जब तक कि नाम का आधार अंदर न हो। बड़ी कठिनाई तो यह है कि लहर-पछाड़ नाम अभ्यास और सत्य का जीवन व्यतीत करने के यत्नों में भारी बाधा डालती है। यों गृहस्थ उदासी का मार्ग बहुत कठिन है। उधर वन में रहकर वनवासी साधु को किसी 'लहर-पछाड़' झेलनी है, एक अपने मन की, एक भूख प्यास तथा सर्दी की, और सबसे बड़ी मनुष्य के दर्शन से वंचित होने की, जो बहुत ही कठिन बात है। पर इन सभी कठिनाईयों की लम्बाई चौड़ाई अपने आप पर ही समाप्त हो जाती है, वहाँ पर उपकार किस पर करना है और गुस्सा किसका सहन करना है। पर गृहस्थ में जो नाम जपने वाला पुरुष बैठा है, वह परिवार में रोगी होने के समय कहाँ पर भाग कर जायेगा, घर में किसी संबंधी के विधवा तथा अनाथ होते समय आप कैसे भोजन करेगा और कैसे उन्हें भूखा देख सकेगा? इसे अवश्य ही सेवा तथा उपकार का अवसर मिलेगा। इसके मन को भेद भाव से रहित होना है, पर पीड़ा हरना इसका एक स्वभाव होगा। अहं के साथ, दिखावे के साथ, इसको कुछ भी नहीं करना। इसके ऊँचे सिद्धान्तों पर खड़े होकर आपा निवारण करके भलाई करनी है, इस भलाई ने समय, धन, बल, मन बुद्धि आदि सब पर विजय प्राप्त करनी है। नाम जपने वाले गृहस्थी की निन्दा, स्तुति झेलनी है, कठोरता, अत्याचार तथा अन्याय सहन करने हैं, अर्थात् गृहस्थी नाम के प्रेमी के आपे पर टिकना और फिर इसे लहर पछाड़ से आपे को टूटने नहीं देना। गुरू बाबा की यही आज्ञा है; यही ठीक है, यही करना है, क्योंकि इसी में रहकर तथा चलकर मन तथा सुरत को परिपक्व होना है और सभी बुरे प्रभावों के साथ युद्ध करवाकर ऊँचा उठना है। बर्तनों में डालकर पकाए गए फल मीठे नहीं होते, जितने कि वर्षा, आँधी और धूप सहन करके शाखाओं के साथ लगे रहकर पके हुए फल मीठे होते हैं। गुरू बाबा की आज्ञा सत्य और स्वच्छ है। विरक्त के मार्ग में भी डेरादार संतों के लिए तथा प्रचार करने वाले भले पुरुषों के लिए अपने ही प्रकार की लहर पछाड़ आती है, जो बहुत ही कठिन होती है।

: २ :

पश्चिम के एक लेखक ने परोपकार में अद्‌भुत प्रकार की कमी बताई है। वह यह है कि दु:खियों को सुख देकर हम कभी-कभी उनकी 'पाप करने की शक्ति' बढ़ा देते हैं, जिनको कि दुखी होने के समय उनमें दु:खों ने दबा दिया था। उस विद्वान लेखक ने इस बात को निदर्शन के रूप में यों वर्णन किया है :-

एक दिन वे उठे और शहर की ओर चल पड़े। एक बड़ा महल था उसके भीतर चले गये। वहाँ पर भोगों के तथा रजोगुणी रंग के सभी सामान थे। बड़े कमरे में जब उन्होंने प्रवेश किया तो एक आदमी लाल शराब पीकर नशे में था और एश इशरत में ग़लतान था। वह उन्हें देखकर उठा और सीस झुकाया। वे पूछने लगे, 'तू कौन है?' उसने उत्तर दिया, ''मैं वही हूँ जो कभी एक कोढ़ी भिखारी था, और आपने मुझे अपने आत्मबल द्वारा स्वस्थ कर दिया था।' उन्होंने कहा, 'फिर तू यह किस तरह का जीवन व्यतीत कर रहा है?' उसने उत्तर दिया, 'जी ! मैं और किस प्रकार का जीवन व्यतीत करता था। आपने मुझे स्वस्थ जो कर दिया था और

सौभागयशाली जो बना दिया था।' यह सुनकर वे बाज़ार में आये। वहाँ एक सुन्दर युवती देखी, जिसके पीछे एक युवक मोह में मतवाला हुआ दृष्टि जमाये आ रहा था। इससे उन्होंने पूछा, 'भाई? तू इस बुरी दृष्टि से इस युवती की ओर क्यों देखता है?' युवक ने उन्हें पहचान लिया ओर कहा, 'जी मैं अन्धा था, आपने ही तो मुझे अपनी आत्म-शक्ति द्वारा नेत्र प्रदान किये थे, फिर बताइए मैं और किसकी ओर देखता?' फिर आपने उस युवती से कहा, 'बेटी! क्या पाप की राह के बिना तेरे चलने की और कोई राह नहीं?' तब उस युवती ने उन्हें पहचानकर कहा, 'जी ! आप ही ने तो मेरे पाप क्षमा किये थे, फिर यही राह रसमयी राह है।' फिर वे शहर से बाहर निकल गये तो सड़क के किनारे एक युवक रो रहा था। आपने आगे बढ़कर पूछा, 'तू क्यों रो रहा है?' तब उसने उन्हें पहचाना और कहा, 'जी! मैं तो मर गया था, आपने ही तो मुझे मरे हुओं में से जिलाया था, तो मैं अब रोने के सिवाय और क्या करता?'

इसका भाव यह हुआ कि यदि कोढ़ी तथा अन्धे आदि स्वस्थ न होते तो वे पापों में प्रवेश न करते, अपने दुखों में फँसे पड़े रहते। पर गुरू जी की आज्ञा है, 'ब्रह्मगिआनी परउपकार उमाहा', और 'ब्रह्मगिआनी की सभ ऊपर मइआ', इसलिये, गुरुमत के अनुसार खोज करनी चाहिये कि सतगुरू ने इस मुश्किल का कैसे हल किया है कि ब्रह्मज्ञानी दया भी करे और दया प्रदान करने वाले पापों में प्रवेश भी न हो। इस पर एक वार्ता है, जो श्री गुरू नानक देव जी के जीवन में हुई, उसका विचार हमें सीधे मार्ग पर चला देगा, वह इस प्रकार है :-

कंगनपूर कसूर आदि स्थानों पर भ्रमण करते-करते श्री गुरू नानक देव जी, एक ठिकाने पर पहुँचे जिसका नाम दीपालपुर[१] था। यहाँ पर नगर में श्री जगत तारक गुरू नानक जी को किसी ने ठहरने न दिया। सभी लोगों से यह अनादर का व्यवहार किसके साथ हुआ, जो अदेश के सुखों का त्याग करके इस दु:ख-भरे संसार के जगत का उद्धार करने के लिये आया। हाँ, जिसने इहलोक तथा गृहस्थ के सुखों का भी त्याग करके देश-विदेश में भ्रमण करना और परदेश के दु:खों को सिर पर सहन करना, जगत को सुमति प्रदान करने के लिये प्रसन्नता से सीस पर उठा लिया था। देखो उस महान उपकारी को रैन-बसेरा करने के लिए स्थान नहीं मिलता। अब कहीं आ जायें गुरू नानक देव जी उसी देह में जिसमें उस समय आये थे, तो देखो हम सभी उनके चरणों पर न्योछावर हो जायें। पर हाँ उस समय भी हम ही थे, हमारे जैसे

---

१. पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि दीपालपुर के पास, से कंगणपुर में से, कसूर में से, पट्टी में से गोइन्दवाल में आकर रहने लगा, और यहीं पर यह कथा हुई बताई जाती है। पर लगता है लेखक ने भूल की है। दीपालपुर, जो पहले लिखता है कि कथा वहाँ पर घटी, क्योंकि अब तक वह स्थान वहाँ पर है। दीपालपुर के बाहर नानकसर नामक गुरुद्वारा कुएँ के पास है, अन्दर पलंग साहब है जिसे 'मंजी साहब' कहा जाता है। पलंग की शक्ल का पक्के चूने का बना हुआ है। एक बड़ा भारी पीपल का वृक्ष है और दो गुरू ग्रंथ साहब का प्रकाश है। वहाँ के लोग कोढ़ी के उद्धार की घटना यहाँ पर हुई बताते हैं। बाबा जी यहाँ पर ही बैठे थे और उस कोढ़ी फकीर का उद्धार किया था। यह भी हो सकता है कि जन्मसाखी की इबारत नकल करते समय बिगड़ गयी हो। और यह अर्थ हा कि-गोइन्दवाल, पट्टी, कगंणपुर से दीपालपुर आकर रहने लगे। यह ऐतिहासिक गुरुद्वारा है, तहसील दीपालपुर, जिला मिंटगुमरी (पश्चिमी पाकिस्तान) में है। इस इलाके में और भी बहुत से स्थान हैं ।

ही मंदबुद्धि वाले, हाँ, हम ही थे न उस समय भी। जी, हमने जगत के स्वामी को रैन बसेरा न दिया, तो देखो वह अहं विरक्त उपकारी, नगर से बाहर चल पड़ा। लिखा है :-

इक पुरि आवा बहुर अगारी।।
जाइ पहुँचे तांहि मझारी।।
रैण रहिण हित खोजति थांइ।।
जिन कीन ब्रह्मंड बनाइ ।।६१।।
तहाँ बसेरा देत न कोऊ ।।
बैठहिं जहाँ, उठावहिं सोऊ।।
मंदमती नर पिखि तहि थाएं।।
पुरि ते बहिर प्रभु पुन आए ।।६२।। (गुरू नानक प्रकाश २५)

दया के स्वामी और किसी कड़ुए तजुर्बे से दुख न मानने वाले सतगुरू जी नगर से बाहर आकर कुछ दूरी पर उजाड़ में एक झोंपड़ी को देखकर उधर गये। यहाँ पर एक कोढ़ी रहता था। कोढ़ी भी कोई धनवान कोढ़ी नहीं था, पर भिखारी कोढ़ी था। इतिहास में इसे कोढ़ी फकीर करके लिखा है। इसके द्वार पर, जहाँ पर कोई मनुष्य तो क्या, कोई जीव जानवर भी नहीं फटकता था वहाँ पर जगत का उद्धारकर्ता जा खड़ा हुआ। अतिथि की भाँति उससे कहा, 'हे फकीर ! मुझे रात को विश्राम करने दे'[१] ।

'चिड़ियां रैन बसेरा भाई । चिड़ियां रैन बसेरा।
तड़के उठकर यात्रा करनी रात रात है डेरा,
डेरा नहीं, सराय ये चलती, सबका रैन बसेरा,
पलक झलक के लिये गुज़ारा क्या मेरा क्या तेरा।'

विचार कीजिये जिसके सामने राय बुलार हाथ जोड़कर खड़ा होता था और जिसके जगत की यात्रा आरम्भ करने के समय दौलत खां लोधी[२] दिल्लीपति का भाई और सुलतानपुर का सूबेदार मिन्नते करता था कि मुझे कोई सेवा बताइए। हाँ, जिसके आगे राजा शिवनाभ रो-रोकर कहता था,

'जिस प्रकार तुम कितने कोसा, चलि आये निज देन भरोसा।
तिसी प्रकार रहनि अबि कीजै, सरब देश उपदेशहि दीजै।।'

(गुरू नानक प्रकाश)

हे सज्जनो ! वही गुरू जिसके चरणों से पवित्र होने वाले स्थानों पर आपने अगणित धन लगाकर गुरुद्वारों का निर्माण करवाया है, इस रात को सबके अनादर से नगर से बाहर आकर एक कोढ़ी फकीर से कहता है, 'अरे फकीर ! रात को विश्राम करने दे' (पुरातन जन्मसाखी)। देखा है आपने जगत का, जगत के स्वामी के साथ व्यवहार। वह कोढ़ी फकीर

---

१. पुरातन जन्मसाखी ।

२. जैसे कि लिखा है कि तब खां ने कहा -'काजी ! यह कोई अवतार उत्पन्न हुआ है। इसकी सेवा करना उचित है। तब खां ने सुनकर सीस झुकाया और कहा कि मैं तुझे खुदा का अवतार समझता हूं । (सिक्खों की भगतमाला)

कहने लगा। 'जी! मेरे पास से जानवर तक दूर भागते हैं, पर ईश्वर की कृपा हुई है। मनुष्य की सूरत दिखाई पड़ी है।'

पशुओं की टोली जब मुझसे दूर-दूर ही जाती,
भला मनुज की बोली क्यों मेरी कुटिया में आती।
आज कोई यह कहता आया चिड़िया रैन बसेरा।
मुझ कोढ़ी की कुटिया में जो करना चाहे डेरा।
सोया स्वप्न देखता हूं या पुण्य बोलता मेरा,
या कि तलाशी लेने आया कोई राज-कमेरा।
पर यह है आवाज रसीली मीठी प्यारी-प्यारी,
छैल छबीली मधुर मोहनी सूरत लगती न्यारी।
तुष्ट आज हैं ईश! मनुज की सूरत दी दिखलाई,
देवदूत से भी अति सुन्दर सूरति मन को भाई।
आओ स्वागत देव तुम्हारा करते प्राण हमारे,
जो मिट्टी में मिले हुए हैं वे ही तुम पर वारे।

तब इस तरह के स्वागत के वाक्य सुनकर गुरू बाबा वहां पर टिक गया। हां जगत पिता जी सारी रात अपने रंग में रहे। कोढ़ी रात भर हाय हाय करके विलाप करता रहा। इस कुष्ठी का कुष्ठ देखकर और विलाप सुनकर गुरू जी के मन में दया आई। जी में आया कि इसका रोग मिटा दें। जिससे वह सुखी हो जाये। तो आप दया में आकर कहने लगे, हैं फकीर! तू क्यों विलाप करता है?'

फकीर – हे मेरे घर आये दयालु ईश्वर के जीव! यदि रोऊँ न तथा विलाप न करूं तो क्या करूं? एक तो अपने दुख को देख-देकर जलता-भुनता रहता हूं, दूसरे अपने ऐश्वर्य की याद करके दुखी होता रहता हूं। वे सब चीजें कहां पर चली गईं वे दिन कहां चले गये? जब सम्बन्धियों तथा मित्रों को रोता हूं, जो उस समय मेरे चरण छूते थे, पर रोगी होने पर उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया है। रोता हूं कि अब मैं इतना बुरा हो गया हूं कि मुझे नगर में कोई सड़क पर नहीं चलने देता । विलाप करता हूं कि कभी मनुष्य, पशु तथा पक्षी भी मेरे इस स्थान पर नहीं आते। अकेलापन मुझे काट-काटकर खाता है। हे ईश्वर के संवारे हुए! तू धन्य है, जिसको मुझ पर दया आई है। एकाकीपन जगत में सबसे बड़ा दु:ख है, यही सबसे बड़ा दण्ड है; मुझसे कोई आकर पूछे, जिसके कि साथ यह घटना घट रही है कि अकेलापन सब नरकों में बड़ा नरक है या नहीं? जिन्हें कभी एकाकीपन मिला है, वही इसके दु:ख को समझ सकते है। फिर हे, स्वामी जी! वह एकाकीपन जिसे जगत ने घृणा करके किसी दु:खी को दिया हो और भी बुरा होता है। इसलिए मेरा मन बार-बार जलता है। मैं इस सब कुछ को जानता हूं और बार बार चितंन करता हूं और बार बार मन जलता है। जानता हूं कि वह जलना भुनना[२] व्यर्थ है, पर यह खीझना छूटता नहीं। जैसे रोने की पीड़ा नहीं हट जाती, पर पीड़ा से

---

१. 'जीओ तपत है बारोबार ।।'

२. 'तपि तपि खपै बहुतु बेकार ।।'

रोना ही एक आश्रय मात्र हो जाता है। उसी तरह यह बेकार जलना-भुनना मेरा स्वभाव बन गया है। फिर कभी सोचता हूं कि न जाने कभी मेरी पुकार तथा मेरा विलाप सुन लिया जायेगा और मुझे मेरा आश्रय मिल जायेगा।

श्री गुरू जी – बहुत बोलना, और सीखना तो व्यर्थ ही है क्योंकि जिसके आगे बोलना हो, वह तो बिना बोले ही सब कुछ जानता है।[१] यदि, हे दुखी अगर मन में कोई दु:ख हो और उस पर कोई गहरी प्रार्थना हो तो चुपचाप की हुई ऊँची प्रार्थना वहां पहुंचती है और वह दाता सुनता है। पर तपने से, खीजने से, बहुत व्यर्थ बोलने से तो जीव आप ही नष्ट हो जाता है। लक्ष्य बंधे बिना और मन से प्रार्थना किये बिना बहुत बोलना व्यर्थ ही जाता है, उल्टे मन की पीड़ा ही बढ़ती है।

कुष्टी – फिर हे भले पुरुष जी! मै क्या करूं? इस कुष्ठ का कष्ट कैसे दूर हो।

गुरू जी – मन में उसका लक्ष्य बांध जिसने तेरे अंक कान, नाक आदि बनाये थे और मीठा बोलने के लिए जिह्वा दी थी।

"जिनि कन कीते अखी नाकु।।
जिनि जिह्वा दिती बोले तातु।।"

जिसने इस अंकों वाला शरीर रचकर इसमें मन जैसे अद्‌भुत इन्द्रियों के सरदार को प्राप्त करके जठराग्नि में तुझे रखकर तेरी रचना की थी, और उस अग्नि ने तेरा पालन किया था पर अपने दाह-धर्म को तुझ पर नहीं लगाया था। अर्थात् रचयिता का गुण है कि दाहशक्ति वाले ठिकाने पर रखकर तेरा निर्माण किया, पर उसकी तपाने वाली शक्ति से तेरी सृजना का काम तो लिया पर दाह शक्ति से तेरी रक्षा की।[२] हां, जिस रचयिता ने जैसा शरीर तथा मन रचकर उसकी जीवन शक्ति के जारी रहने के लिये उसमें वायु बजा दी, वायु फूंक दिती।[३] जिससे तेरा श्वास चल पड़े, उन श्वासों के आसरे तैने जीवन प्राप्त कर लिया और तेरा जीवन एक जारी रहने वाली कला बन गया, तब उस रचयिता ने कहा, तू जगत में विचर, पर याद रख कि मैं सब जगह मौजूद हूं। भाव यह है कि जिसने अपने सर्वव्यापक होने का पता दे दिया और कहा कि तू विचर कर मुझे देख, पर तू पैदा होते ही माता-पिता के मोह में पड़ गया, फिर पत्नी की प्रीत में लिप्त हो गया और नाना प्रकार के इन्द्रिय-रसों में लग गया[४]; तो वह बात जो निर्माता ने तुझसे उस समय कही थी कि मैं सर्वव्यापक हूं, मुझे देखना तू भूल गया। इसलिये तू समझ ले कि उसे भूलकर तू भोगों तथा विकारों में पड़ गया। विकार कालिमा हैं कलंक लगाते है।[५] एक शारीरिक दाग आत्मा को लगता है, एक शरीर को, शरीर का दाग रोग है। सो विकारों में लगकर तू पक्का रोगी (कुष्ठी) हो गया और

१. बहुता बोलणु झखणु होइ ।। विणु बोले जाणै सभु सोइ ।।
२. जिन मन राखिआ अगनी पाइ ।।
३. वाजैं पवणु आखै सभ जाइ ।।२।।
इस तुक के अर्थ इस तरह भी किये जाते हैं :-प्रसूत की वायु चलाकर जिसने तुझे माता के पेट में से निकाला । बाहर आया देखकर सभी कहते हैं कि बालक का जन्म हुआ है।
४. जेता मोहु परीति सुआद ।।
५. सभा कालख दागा दाग ।। दो बार 'दाग' पद आया है, आत्मा तथा शरीर के कलंकित हो जाने की, भाव सूचना के लिये ।

विलाप तेरे पल्ले पड़ गया।[1] भाई, यह तेरे शरीर की दशा हुई है। अब तू अपनी आत्मा का समाचार सुन ले। अर्थात् वह शरीर के अंदर जो तेरा आपा है, अब सुन उसकी क्या दशा हुई। तेने जो मोह प्रीत में आकर कुकर्म किये थे, उनका एक प्रभाव तो यह था कि जो तेरे विकारों का लक्ष्य बने भाव जिनसे तेने भोग विलास किये थे, वे तेरी कुसंगति के कारण डूबे और तू उनकी कुसंगति के कारण डूबा। दूसरा, तेरे पर दो प्रभाव पड़े, एक तो शरीर रोगी हो गया और तुझे धिक्कारा गया और विलाप तेरे पले पड़ गया, दूसरा जो प्रभाव तुझ पर पड़ा उसे तेने अनुभव ही नहीं किया, वह यह है कि तेरे अंतस पर उन कर्मों के – उन दोषों के – दाग पड़ गये हैं। जब तू मरकर आगे जायेगा तो वे दोषों के दाग उस समय तक तेरे मुंह पर लगे हुए होंगे। जैसे तुझे यहां पर सभा, पंचायत तथा बिरादरी में कोई भी बैठने नहीं देता, उसी तरह उन दागों के कारण वहां पर, जिसे ईश्वर का दरबार कहते हैं, तुझे कोई भी बैठने नहीं देगा। यह जैसे शरीर पर कुष्ट के चिन्ह हैं वैसे ही तेरी आत्मा अथवा उस अंतस को कि जिसको शरीर के मरने के पश्चात निकलता है, उस पर किये हुए दोषों के दाग इस तरह होंगे कि जिसके कारण वहां पर भी तुझे कोई सहारा नहीं मिलेगा, ईश्वर के दरबार में भी तुझे पास नहीं बैठने देंगे।[2]

वह वाक्य सुनकर कुष्ठी कांपा। उसे अपने किये हुए कर्मों का पूरा ज्ञान हुआ, भय सा छा गया कि, मैं तो अभी के कष्टों को रोता और इस ओर तो मेरा ध्यान ही नहीं था कि मेरी आत्मा भी कलंकित हो गई है और मेरे लिए दुख 'सदैव का दुख' हो गया है। इस भय ने वैराग उत्पन्न किया और फकीर अब पश्चाताप की दशा में आकर रोने लगा और धरती पर सिर रखकर कहने लगा, 'हे इहलोक तथा परलोक का ज्ञान रखने वाले, क्या है अब मैं डूब गया? सदा के लिये डूब गया? सुन्दर दाता! क्या मेरे दस बीस वर्षों में किये हुए दोष तथा पाप को चाहे कितने ही अधिक हैं, मुझे सदैव के लिये डुबा गये? क्या गिनती के कर्मों के बदले में मैं यों डूब गया हूं, जैसे किश्ती से एक पांव के फिसल जाने से, मनुष्य सदा के लिए डूबकर मर जाता है और फिर चाहे देह तैरने लगे पर प्राण नहीं लौटते? हाय! मुझे यदि पता होता तो मैं कभी भी ऐसे कर्म न करता! गुरू जी दयालु थे और पसीजकर अपने उच्च द्वार से दया के रंग में कहने लगे–'भाई जिस मार्ग पर तू चल रहा है उसका फल तो इसी जैसा ही है। कर्म तेने स्वयं किये जिन्होंने यह रोग उत्पन्न किया है।[3] फिर जिस मार्ग पर तू अब चल रहा है, वह तेरा अपना चुना हुआ है। उसका फल तेरे स्वयं बता दिया है कि एक पांव के फिसल जाने से तो तैरना न जानने वाला डूबकर मर गया। पर समझ ले कि यह तेरा चुनाव है और तेरा अपना कुकर्म है। पर जिसे तू दोष दे रहा है, उसके घर में तो दया का निवास है। यह उसकी दया में है कि यदि कोई भूल करते डूब भी जाये तो वह उसकी संभाल करता है।[4] यह सदैव स्थिर है। हम आवागमन में पड़ते हैं, अर्थात् हम सीमाबद्ध हैं और कालाधीन

---

१. जै तनि बाणी विसरि जाइ ।। जिऊ पका रोगी विललाइ ।।१।।

२. दाग़ दोस मुहि चलिआ लाइ ।।
दरगह बैसण नाही जाइ ।।

३. खसमु विसारि कीए रस भोग ।। तां तनि उठि खलोए रोग ।। (मलार महला १)

४. जे को डूबै फिरि होवै सार ।।

हैं, पर वह अमर है और असीम है, अत: सदैव स्थिर है। उसका स्वभाव है कि वह दाता है, अर्थात् दयालु है। केवल पुण्यात्मों का दाता ही नहीं बल्कि सर्वदातार है[१] सर्व का दातार होने के नाते वह पतितों का भी दातार है।

कोढ़ी – हे अगम निगम में ज्ञाता! हे डूबे हुओं को फिर जो उठने की मंगलमय सूचना देने वाला दाता! हे मरे हुओं को जीवन की बौछार देने वाले ईश्वर के संवारे हुए। दया कर; और मझे बता कि मैं उस दयालु दाता जी से अपने दिल के दागों को धोने का सामान कैसे प्राप्त करूं? यह शरीर तो व्यर्थ हो गया। वह चीज जिससे कि मैं दिल के दाग धो सकूं और आगे कंचन की तरह होकर जाऊं। मेरे शरीर का कोढ़ मेरे मन के साथ किसी भी तरह न जाये। (रो-रोकर) हे दाता! मेरे हाल पर तरस कर। मैं अपने शेष दिन मन को धोने के काम में लगा दूं।

इस दिल की प्रार्थना सुनकर श्री सतगुरू जी एक बड़े गम्भीर में बोले-भाई यह बात किसी के वश में नहीं। हे फकीर! सुन ! 'नाम जपना' ही इसका मार्ग है। यदि तू इस मार्ग पर चलेगा तो किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंच जाएगा।[२] और कोई स्थान नहीं, जहां पर मन तथा शरीर के कोढ़ को आश्रय मिले। हां, मन तथा शरीर के कोढ़ के लिए यही एक स्थान है 'नाम जपना'। सबके लिए नीरोगों के लिए तथा रोगियों के लिए यही एक स्थान है। नाम जप, जिससे तेरे अन्दर के लगे दाग धुल जाएं। हां अगर अनुग्रह होगा तो तुम्हें यह 'नाम जपना' प्राप्त होगा। हां यदि उसका अनुग्रह होता है तो नाम जपना प्राप्त होता है। पर उसके अनुग्रह की प्राप्ति का साधन क्या है? उसका नाम जपना और नाम कैसे जपा जाता है? उसकी दया से।

फकीर – हे भगवन! नाम जपना क्या होता है? और अनुग्रह पर मैं कैसे जोर लगाऊँ कि वह मुझे प्राप्त हो? मुझे बताइए कि मैं डूबा हुआ किससे लग कर तरूँ कि कहीं मुझे भी कोई आश्रय मिले। हे अनुग्रह करने वाले! दया कर।

गुरू जी – नाम जपना यह है। सुन उस सच्चे तथा सदैव दातार का रूप, रेख तथा रंग कुछ भी नहीं है, और कोई भी कुछ नहीं कह सकता कि वह कैसा है। पर वह है, सदा है, सदा स्थिर है, यह सत्य है। यह अंतर्यामी है, ज्ञान स्वरूप है, उससे कुछ भी ओझल नहीं है। उसका मुख अथवा स्वभाव प्यार है। वह सारा आप 'प्रेम' है बस यही जान ले। साथ यह भी कि मेहरबानी प्यार का एक अंग है। हां जान लो कि प्यार स्वरूप होना, प्यार करने तथा करवाने वाला होना सदा आनन्द स्वरूप होना है। इसलिए तू समझ ले कि जो सदा है और सदा दातार है, वह मेरा है और मैं उसे क्यों भुलाऊँ। उसे तो सदैव याद रखना ही उचित है। सदा ये भाव मन में भरे रखना चाहिए कि वह है, वह आनन्द है, वह दातार है, वह अपना है, मुझ पर दयालु है अब मैं उससे पृथक नहीं होऊँगा। पृथक न होना या मिले रहना, कैसे है? उसे

---

१. नानक साचा सरब दातार ।।

२. करमि मिलै आखणु तेरा नाऊ ।।
जितु लगि तरणा होरु नही थाऊ ।।

३. गुरा इक देहि बुझाई ।। समभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई ।। (जपुजी)

सदा याद रखकर।[१] पर भाई! इस तरह की भावना में हमेशा रहना कठिन है। इसलिए जैसे हमारे चले जाने के पश्चात तू हमारे प्यार को हमारे नाम के साथ जोड़कर याद रखेगा वैसे ही उस ईश्वर के नाम के साथ उसके प्यार को जोड़कर अन्दर बसाया जाता है। इस तरह नाम के आराधन से वह अंतस में प्रकट होता है। भूल तो हमारा स्वभाव है। हम प्राय: अपने शारीरिक सुखों के लिए ही कर्म करते हैं। मानो हम इस शरीर के भीतर शरीर है। इसलिये यदि मन में दाता की याद टिकानी है तो शरीर से साधन आरम्भ किया जाता है। अर्थात् शरीर के अंग जिह्वा द्वारा उसका नाम जपा जाता है। नाम जपते रहने से प्यार का झुकाव उस और होता है और प्रेरणा मिलती रहती है। यह झुकाव उसकी याद बनकर अन्दर से निवास करता जाता है। इस प्रकार नाम जपना क्या हुआ?

१. उसका नाम रसना पर बैठाना।

२. उसका ख्याल मन में बसाना।

३. उसके अस्तित्व तथा प्यार की स्मृति में बसाना।

साधना करते हुए जब वह पवित्र दाता सदैव दिन-रात यों अन्दर बस जाता है। तब मन के सभी दाग दूर हो जाते हैं और हंस जो अन्दर हैं, वह निर्मल तथा उज्जवल हो जाता है। गुरू जी यह कहकर चुप हो गए।

'कंचन काइआ निरमल हंसु।' (महार महला १)

मरदाना, जो पास बैठा था, कहने लगा।

हे फकीर! दाता जी के वाक्यों को एक तुक में याद करके पल्ले में बांध ले। सुन :-

गुरा हिक देहि बुझाई।।

सभना जीआ का इकु दाता सो मैं बिसरि न जाई।।५।। (जपुजी)

यह सार है आपके कहे हुए समस्त वाक्यों का इसे तू चित्त में रख। हां याद रखना कि तुझे गुरू नानक मिला था और वह एक बख्शीश कर गया था और कह गया था 'सभना जीआ का इकु दाता' है वह मुझे न भूले, वह मुझे कभी भी मत भूलें, वह मुझे सदैव याद रहे।

जब फकीर ने सुना कि वह गुरू नानक[२] है जो उसके द्वार पर गया है, तो धन्यवाद तथा प्रेम में इतना मगन हुआ कि 'वाह गुरू नानक', 'वाह गुरू नानक' करता हुआ प्रेम की मस्ती तथा बेहोशी में आ गया। उसका अंतस प्रेम में उछल पड़ा और वैराग्य धुले हुए उसके मन में अब वह ज्ञान हो गया कि जगत गुरू नानक मेरे पर प्रसन्न हो रहा है और प्रेम अन्दर आ घुसा कि यह गुरू नानक मेरा है, मेरा अपना गुरू नानक है। इस समय नैन उठाकर और प्रेम से भरे नैन खोलकर उसने गुरू नानक का दर्शन किया और गुरू नानक ने अपनी दया दृष्टि डाली कोढ़ी का कष्ट दूर हो गया।[३]

---

१. मेरा प्रभु बिसरै हऊ मरऊ दुखाली (बिलावल महला १)
गुरू अर्जुन साहब के कथनानुसार -
'जिना न विसरै नामु से किनेहिआ ।। भेदु न जाणहु मूलि सांई जेहिआ ।। (आसा महला ५)

२. फकीर ने काफ़ी समय से नाम तो सुन रखा था, पर दर्शन आज हुआ ।

३. कलिपतरु रोग बिदारू ।। (सवैये महले २ के)
पुनाः- प्रथमे मिटिआ तन का दूख ।। मन सगल कऊ होआ सूखु। (आसा महला ५)

अब विचार कीजिए कि कोढ़ी का गुरू नानक का दर्शन हुआ। फिर गुरू मेहरबान हआ, उसने उसके कर्मों और कर्मों से फल की सूझ प्रदान की, जिससे उसे भय हुआ और भय से वैराग्य उत्पन्न होकर मन से भूल का मैल उतरा। फिर गुरू जी ने वाहिगुरू के अस्तित्व तथा उनके अनुग्रह की सूझ प्रदान की फिर नाम की महिमा बताई तथा ज्ञान दिया और बताया कि साईं सदा सुखी है, सदा सुखी के साथ लगे रहने से सदा सुखी कर देगा। यों समझाकर, सूझ प्रदान करके फिर नाम का दान दिया। फिर मेहरबान गुरू जी ने उसका कोढ़ भी दूर किया। कुष्ट तो ठीक किया ही पर कुष्ट दूर करके यह सोचकर कि मैंने परोपकार तथा भलाई करके ही चले नहीं गए बल्कि उसकी अज्ञान की निद्रा भी खोल दी, उसे उसके दुष्कर्मों की सूझ प्रदान करके पश्चाताप तथा वैराग्य के साथ धो दिया और सूझ प्रदान करके नाम दिया। स्वस्थ करने के साथ उसके अंतस को भी शुभ मार्ग पर चल दिया। उसे उस मार्ग पर चला दिया जहां से उसे दिखाई पड़ा कि उसे गुरू जी ने उसे रूह का कल्याण प्रदान कर दिया है।

सारा शब्द बाताता है कि परमार्थ के मार्ग पर चलकर उसकी निद्रा खोलकर गुरू जी ने उसे 'अब तुझे क्या करना है' यह सिखाया। मार्ग पर चलाकर, नेत्र खोलकर, काम बताकर और सिखाकर कोढ़ भी ठीक कर दिया। लिखा है कि गुरू जी को पहली कृपा से इस शब्द का उच्चारण हुआ था, अर्थात् यह उपदेश हुआ। फिर लिखा है : 'तब दरशन का सदका कोहड़ दूर हो गया, देही अच्छी हुई, आए पैरी पइआ, नाम धारीक होआ गुरू गुरू लगा जपणे (पुरातन जन्म साखी)। श्री गुरू नानक प्रकाश में लिखा है कि उसकी देह नीरोग हो गई, मन के शोक भी साथ ही नष्ट हो गए, बुद्धि निर्मल हो गई, मन का मैल कट गया।

: ३ :

ऊपर जो वार्तालाप आया है, वह उस शब्द का खुली टीका है जो गुरू जी का इसके सम्बन्ध में उच्चारण किया हुआ गुरू ग्रन्थ साहब में सम्मिलित है और यह सारा गुरुमत इस शब्द में है। श्री गुरू जी लोगों के साथ बातचीत तो उसी ढंग से करते थे जिस ढंग से साधारण बातचीत की जाती है पर जो उस बातचीत का तत्व सार होता था उसे वे सबके उद्धार का कारण बनाने के लिए सर्वकालीन सत्य के रूप में शब्द में रच देते थे। कभी धुर से कोई अम्बरी रौ आती थी तो शब्द को उच्चारण करते थे। कभी-कभी किसी के लिए श्री गुरू जी तत्काल शब्द उच्चारण करते थे और मरदाना को गाने की आज्ञा होती थी। उस शब्द में महाराज जो कथन करते थे वह उस समय का उपदेश होता था, पर वह सर्वकालिक तथा सर्व हितकारी होता था। सो श्री गुरू जी के मुख से उच्चारण किये गए शब्द का खला अभिप्राय, ऊपरी वार्तालाप में आ गया है। अब शब्द तथा शब्द का सारा पाठ पंक्तिबद्ध इस प्रकार है :-

---

१. 'निरमल भई मनीखा तबिही ।।
मन मलीनता नासी सभिही ।। (गुरू नानक प्रकाश)

धनासरी महला १

जीउ तपतु है बारो बार ।।
तपि तपि खपै बहुतु बेकार ।।
जै तनि बाणी विसरि जाइ ।।
जिऊ पका रोगी बिललाइ ।।१।।
बहुता बोलणु झखणु होइ ।।
विणु बोले जाणै सभु सोइ ।।१।। रहाऊ ।।
जिनि कन कीते अखी नाकु ।।
जिनि जिह्वा दिती बोले तातु ।।
जिनि मनु राखिआ अगनी पाइ ।।
वाजै पवणु आखै सभ जाइ ।।२।।
जेता मोहु परीति सुआद ।।
सभा कालख दागा दाग ।।
दाग दोस मुहि चलिआ लाइ ।।
दरगह बैसण नाही जाइ ।।३।।
करमि मिलै आखणु तेरा नाऊ ।।
जितु लगि तरणा होरु नहीं थाऊ ।।
जे को डूबै फिरि होवै सार ।।
नानक साचा सरब दातार ।।४।।३।।५।।

इस शब्द की यदि टीका मात्र ही करें तो आप स्पष्ट रूप से समझ लेंगे कि इसमें 'पक्का रोगी' और उसके विलाप, तपने, खपने और बहुत बोलने का उल्लेख है। पक्का रोग 'कुष्ठ' का नाम है। फिर परमेश्वर के बिना बोले जानने की शक्ति इस शब्द में बताई गई है। जीव को अपने रचे जाने तथा दातार की ओर से भुल पड़ जाने का इसमें उल्लेख है और भूलकर मोह प्रीत के स्वाद में पड़कर दोष कमाने और उनके दागों तथा दागों के फलों की व्याख्या है। फिर डूबे हुओं की सम्भाल भी ईश्वर करता है और वह दातार दया करता है, यह बात भी बताई है। वह दया नाम का अनुग्रह है। नाम दाग धोता है, डूबे हुओं का उद्धार करता है, इस सत्य को भी दिखाया है। उसके प्रति कहा गया यह शब्द भी पुरातन जन्मसाखी में भी लिखा है। इसमें वार्तालाप भी है और तत्व सार भी है जो सर्वकालीन तथा हरेक पर घटने वाला उपदेश है; सो भी इसमें है।

धन्य गुरू नानक है, जिसने जगत का इस सुन्दर ढंग से उद्धार किया और यदि किसी का दुख दूर किया तो उसके मन को पलटाकर जिससे मुड़कर पापों में न जाये और पुण्यात्मा हो जाये, इसलिये उसे नाम के आँचल के साथ लगा दिया।

जगत दुखी है। गुरू जी ने भी उसे दु:खी देखा था और उसकी औषधि भी बताई थी :-

''नानक दुखीआ सभु संसारु'' (रामकली की वार महला १)

'मंने नाऊ सोई जिणि जाइ ।।
अऊरी करम न लेखै लाइ ।।

(रामकली दी वार महला १)

फिर देखिए यह उसूल जो उपरोक्त प्रसंग तथा गुरू वाक्य से समझ में आता है वही उसूल पंचम गुरू जी ने हमारी मन्द बुद्धि के लिए और अधिक आसान करके स्पष्ट बताया है :-

'कवनु कवनु नहीं पतरिआ तुमरी परतीति ।।
महा मोहिनी मोहिआ नरक की रीति ।।१।।
मन खुटहर तेरा नहीं बिसासु तू महां उदमादा।।
खर का पैखरू तऊ छुटै जऊ ऊपरि लादा ।।१।। रहाऊ।।
जप तप संजम तुम खंडे जम के दुख डांड ।।
सिमरहि नाही जोनि दुख निरलजे भांड ।।२।।
हरि संगि सहाई महा मीतु तिस सिऊ तेरा भेदु ।।
बीधा पंच बटवारई उपजिओ महा खेदु ।।३।।
नानक तिन संतन सरणागती जिन मनु वसि कीना ।।
तनु धनु सरबसु आपणा प्रभि जन कऊ दीना ।।४।।

(बिलावल महला ५)

इसमें किस तरह स्पष्ट रूप से बता रहे हैं कि हे मन ! तेने किस किस को नहीं गिराया तू जप तप संयम की पेश नहीं जाने देता। पाँच ठगों के वश में पड़कर तू क्या-क्या दु:ख नहीं देता। औषधि क्या बताते हैं कि सत्संग कीजिए और उसके नाम का स्मरण कीजिए। 'रहाऊ' में फिर स्पष्ट रूप से मन को धिक्कारने वाली भाषा में उसूल बताते हैं :- यह मन गधे की भाँति है, इसके अगाई पिछाई बँधी रहे तो ठीक है यदि खोल दी जाय तो राख में लेटेगा और अपने सिर पर भी और लोगों के ऊपर भी राख डालेगा। इसलिए इसकी पिछाई को तब खोलना चाहिये जब इसके ऊपर बोझा लाद दिया जाय। शबद के विवेचन से समझ में आ जाता है कि इस मन को वाहिगुरू के नाम के साथ पिरो लीजिए तब इसे व्यापे दु:खों से छुटकारा मिल सकता है। अर्थात् दु:खों सुखों से घिरे हुए जीवों को पहले गुरुवाणी के पाठ की सूझ देकर नाम में लगाईए तब शारीरिक दु:खों से मुक्ति मिलेगी। भाव यह कि सबसे बड़ा उपकार दु:ख निवृत्ति का वह है जिससे दु:खों की जड़ काटी जाए। 'ऐसा दारू लोड़ि लहु जितु वंजै रोगा घाणि।' जीव श्रेणी के साधु उतना कुछ तो नहीं कर सकते जितना अवतार गुरू कर सकता है, पर यदि किसी संत साधु को किसी के कष्ट की निवृत्ति का चाव आये तो उस दुखी को वाणी के नाम में लगाये और बताये कि यह नाम आपका दु:ख दूर करेगा। मेरी शक्ति से यदि तुझे रोग से मुक्त होना है तो फिर दु:ख में फसेंगा और यदि वह शक्ति जो तू मुझमें समझता है, तू आप ले ले तो तू आप वैद्य बन जायगा। अत: तू वाणी और नाम में लग।

उपकार कीजिए, सेवा कीजिए, जगत दु:खी है, पर जिसकी भलाई करने का मन चाहे उसे ईश्वर के मार्ग पर लगा दीजिए। इससे उसका मन सुधरेगा, विचार बढ़ेगा, ईश्वर के साथ

स्नेह लगेगा और दु:ख अपने आप दूर हो जायेंगे। यथाशक्ति भला कीजिए। भलाई कीजिए ईश्वर की आज्ञा जानकर, अहं धारण करके मत कीजिए। आज्ञा में किए हुए काम, अहं भाव नहीं आने देते और उनका फल भी बुरा नहीं होता।

नाम जपना हमारा मुख्य धर्म है। आप नाम जपकर दूसरों को जपाना, यह गुरू की आज्ञा समझकर काम करना मुक्ति रूप है। भलाई करना सिक्ख का स्वभाव है। इसे भी आज्ञा ही समझकर करना चाहिये। जो दु:ख सुख आते हैं, इन्हें भी आज्ञा ही समझना चाहिये।

सूचना

यहाँ से कसूर पट्टी नगर में से होते हुए ऊपर की ओर नदी के किनारे जाते-जाते बिआ नदी पार होकर आप सुलतानपुर पहुँचे। दीदी याद कर रही थीं, उनसे मिलें। बहनोई जी को ईश्वर के मार्ग पर चला दिया और नवाब लोधी को दर्शन देकर निहाल किया। सुलतानपुर से पूरब की ओर होकर सतलुज को पार करके उत्तर की ओर जा पहुँचे, जहाँ आजकल कीरतपुर नगर है। इसका समाचार आगामी गीत में दिया है :-

३. शुकराना (गीत)

रहमत मिली मिली आ रहमत रहमत का शुकराना
अर्शों से खुशरवबरी आई बजता है शैदाना
अब गम कैसा? कैसा अब गम? अब दुख दूर हुआ है
खुशी खजाना दिल में आया सूख ने हृदय छुआ है
गुण गायन का पी ले प्याला पी पर होंठ हिला मत
नूर झलक आई ले सह ले निज को मगर भुला मत
फिर इक झलक नूर की आई जिसने किया बिगाना
विस्मय! विस्मय!! बेखुद! बेखुद!! भेद खुला अनजाना
"मैं" की ओट छिपा प्रीतम था उसने स्वयं कृपा की
निज स्वरूप में मुझे मिलाया ओट खोट हटवा दी
मेरा पीर धन्य गुरू नानक मन का यही तराना
मुझे पंक से पकड़ उठाया करता हूँ शुकराना
नानक-चरण-धूलि पारस है उसमें मिल मिट जाना
अर्श अंक में चढ़ी सखी सुन्दर को गले लगाना।।
शुकर शुकर गुरू नानक तेरी रहमत का शुकराना
जिसने दुख को काटा अब है सुख बिरवा लहराना।।
धन्य धन्य गुरू नानक तेरा शुकराना शुकराना
तेरो रहमत का गुरू नानक लाख लाख शुकराना।।

४६ बुड्ढण शाह[१]

१. विस्मय

आश्चर्य है!

काली रात किधर चली गई? यह श्वेत प्रकाश कहाँ से आ गया? वाह वाह!

विस्मय! है,

हैं, यह पूरब की ओर लालिमा कैसी? इस नीले सरपोश को कौन सुनहला कर गया? आह हा, क्या सुहावना तथा भव्य दृश्य है, वाह वाह!

परम अद्‌भुद! है,

कैसा गोल-गोल प्रकाश का दमकता हुआ गोला क्षितिज में से निकल रहा है ! कैसा अद्‌भुद दर्शन है, रंग है, रूप है, तेज है, मस्ती की फुहार है, सौन्दर्य का विस्फोट है, वाह वा !

परम अद्‌भुद! है,

गोले का तेज कैसे बढ़ गया? पिघले हुए सोने की दमकती टिकिया है कि प्रकाश की लहर है। आश्चर्य बढ़ गया, आश्चर्य का अनूठा चढ़ता हुआ यौवन है, दमक पर दमक, चमक पर चमक, वाह वाह!

परम अद्‌भुत ! है,

प्रकाश, तेज, सौंदर्य की दमदमाहट में से किरणें फूट निकली। आश्चर्य सीमा पार कर गया। किरणें फैलीं, जगमग करती हुई किरणें फैलीं। आकाश, धरती तथा अन्तरिक्ष सौंदर्य से भर गये। किस गम्भीरता से तथा गजगामिनि गति से, लाल-लाल दमकदार, झलकदार, आबदार, नशेदार, चाल-ढाल से टिकिया ऊँची चढ़ी आ रही है। अद्‌भुत से परम अद्‌भुत हो गया। वाह, वाह, विस्मय का आन्नद आ गया। दर्शन है कि विशुद्ध विस्मय है !

हां, भाई 'विस्मय' यदि झलकार मारता है तो यही सब कुछ कर देता है। देखो भाई गुरुदास जी को विस्मय ने अपनी झलक दिखाई तो वे मस्त हो गये, फिर उसका पता इस तरह दिया :-

'दरसन देखत ही सुध की न सुध रही,
बुध की न बुध रही मति मैं न मति है!'

---

१. इस प्रसंग के तीन भाग हैं, एक गुरू नानक देव जी के समय में घटा, जो यहाँ पर आया है, दूसरा श्री गुरू हरिगोबिन्द जी के समय और तीसरा दशम गुरू, गुरू गोबिन्द सिंघ जी के समय घटा। शेष प्रसंग कलगीधर चमत्कार में 'मेरा दूध' नामक प्रसंग पढ़िये ।

सुरति मैं न सुरति औ ध्यान मैं न ध्यान रह्यो,
गिआन मैं न ज्ञान रह्यो गति मैं न गति है।
धीरज को धीरज गरब को गरब गयो,
रति में न रति रही, पति रति पति है। अद्भुत परमअद्भुत
विसमै विसमै, असचरज अति अति है।।''

भाई गुरू दास जी का दर्शन बड़ा उच्च है। विस्मय का रूप जो आपने कथन किया है, वह पूर्ण विस्मय का है जो ईश्वरीय सुन्दरता कि जलवे से उन पर पड़ा था। सुन्दरता की एक झलक जो काट कर सकती है उसके मीठे घाव, रस भरे प्रभाव और मग्नता का यही वर्णन है।

यदि कोई पूछे कि सूर्य तो प्रतिदिन चढ़ता है, सूर्य चढ़ने पर क्या विस्मय ? ठीक है, भाई! यदि जन्म से ही तुम्हारा लालन-पालन अँधेरी कोठरी में होता, और युवावस्था में तुम्हे तड़के ही पूरब की ओर मुँह करके खड़ा कर दिया जाता तो फिर सूर्य का ही दर्शन ही तुम्हें विस्मय में बेसुध न कर देता, तो पूछते। या भाई, फिर पूछो जाकर सृष्टि के सबसे पहले मनुष्य से, कि सूर्य के प्रकाश के प्रथम दर्शन ने उसे क्या उल्लास प्रदान किया था।

अब मनुष्य बुद्धिमान हो गया है, चतुर हो गया और आत्रस्त हो गया है। खिली हुई रात के आकाश की आश्चर्यजनक नीलिमा उसके हृदय का आश्चर्य का प्रभाव नहीं डालती, छिटके हुए तारों से जड़ी हुई रात आश्चर्य में नहीं ले उड़ती, चाँदनी उससे गुणगान नहीं कराती; सुर्य का उदय होना उसे विस्मय में नहीं डालता, बिजली की चमक तथा कड़क उसे मनोहारी अद्भुत में नहीं ले जाती। आग रोज़ जलाता है, पर कभी हैरत में नहीं आया कि यह क्या है? बहते हुए पानी, गिरते हुए पानी, अचल शान्त स्थिर पानी, उबलते हुए पानी उसको आश्चर्य में नहीं डालते। क्यों? मनुष्य बुद्धिमान हो गया है, विद्वान हो गया है, खोजी हो गया है, मनुष्य प्रत्येक बात का कारण खोजता है। विस्मय उत्पन्न करने वाली अकथनीय शक्तियों के नाम रखता है और थोड़ी-सी खोज कर करके उसका ज्ञाता बनता है। इस प्रकार उसके विस्मय रस से पृथक् होकर उसका ज्ञाता बन बैठता है। हाँ जी! मनुष्य हिसाबी हो गया है, लेखे-जोखेदार हो गया है, गणना वाला हो गया है पर गणना ने ही इसे मारा है, गिनता गिनता आप गिनती ही हो गया है, उस से हीन अरसिक हो गया है, स्वाद से वंचित हो गया है, बेखुदी की लहर से खाली हो गया है, कयोंकि यह नियम है कि :-

गिनती आई रस स्वाद गये
विस्मय आया रसों के श्रोत फूटे।

भला, क्या मनुष्य सचमुच जान गया है? भाई संसार के बड़े-से-बड़े बुद्धिमान से पूछो कि आग क्यों चमकती है, क्यों जलाती है? बिजली क्या है? उसकी लहरें इस तरह क्यों पड़ती हैं? कोई भी नहीं बता सकेगा। अभी तक मनुष्य अनजान है, इसने बहुत कुछ जाना है, पर जो कुछ इसने जाना है, उसने इसे अभी अनजान ही रखा है। अभी इसे असली कारणों के कारण का पता नहीं और इस विस्मय के पीछे बैठे हुए का भी पता नहीं। इसने तो गिनती के चक्कर में पड़कर, प्रकृति के कुछ रहस्यों को निकालकर, कुछ जाना है पर लालबुझक्कड़ बनकर, विस्मय का रंग खोकर, मानो अपने बाबा आदम के बाग में से धक्का ही खाया है; बैकुण्ठ से नीचे ही गिरा है।

अब विस्मय मनुष्य को कैसे चकित करे? वह तो दिन-रात सोच में पड़ गया है। प्रकृति के चमत्कार प्रतिदिन देखे जाते हैं, पर विस्मय कभी नहीं होता, पर देखिए वह प्राणवान तथा प्राणदाता हृदय जो कभी गणना से नहीं गिरा, बल्कि गिरे हुओं को सहारा देता है, जो हृदयों का सरदार हृदय है वह इस 'विस्मय भाव' को किस प्रकार प्रकृति के हर एक चमत्कार में देखता है और हमें बताता है:-

विसमादु नाद विसमादु वेद।।
विसमादु जीअ विमादु भेद।।
विमादु रूप विसमादु रंग।।
विसमादु नागे फिरहि जंत।।
विसमादु पऊणु विसमादु पाणी।।
विसमादु अगनी खेडहि विडाणी।।
विसमादु धरती विसमादु खाणी।।
विसमादु सादि लगहि पराणी।।
विसमादु संजोगु विसमादु विजोगु।।
विसमादु भुख विसमादु भोगु।।
विसमादु सिफति विसमादु सालाह।।
विसमादु उझड़ विसमादु राह।।
विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि।।
विसमादु देखै हाज़रा हजूरि।।
वेखि विडाणु रहिआ विसमादु।।
नानक बुझणु पूरै भागि।।१।।

हाँ जी, वह स्वच्छ, उच्च तथा सच्चे नेत्रों वाला इस प्रकृति के चमत्कार को विस्मित होकर देखता है और देखकर चकित हो रहा है। हाँ जी, और इस आश्चर्य को विस्मय के साथ देखना, इस विस्मय के ऊँचे रंग को समझना हमें भाग्यभरी निशानी बताता है।

वह हृदय, जो प्रकृति के यह दृश्य देखकर चकित हो जाये चिन्ता, गिनती तथा फिक्र के भाव से मुक्त है। उसका सौभाग्य है जिसने दर्शन किये, सुन्दरता की झलक देखी और विस्मय में रह गया।

शरीर के अन्दर छिपकर बैठे हुए 'दृष्टा' का इस (दृष्टमान) चमत्कारों में छिपी हुई सुन्दरता को कोई गूढ़ संयोग है। सुन्दरता ने झलक दिखाई, दृष्टा को विस्मय का चक्कर आ गया कि आपे में मग्न। मग्नता आई कि 'दृष्टमान' से स्नेह टूट गया। दृष्टमान का स्नेह टूटा कि आपा आपे में तथा अनन्द की गोद में छलांग लगाने के लिये तैयार हो गया अथवा छलांग लगा ही दी गई।

हाँ जी, यही समाधि है, जिसके पीछे योगियों के युग व्यतीत हो गये और तपस्वियों तथा हठियों के कल्प गुजर गये। चिन्तन ने क्षनी, त्यागी, वैरागी, जपी, तपी, कई रूप धारण किये,

कई हाथ पाँव मारे, पर इसे अपने-आपमें, 'आपे' को 'आपा' करने वाला रंग न चढ़ा, पर न चढ़ा। यह तो 'रस' की वस्तु थी; चिन्तन की वस्तु नहीं थी। चिन्तन रस को तोड़कर गिनती में डालता है, फिर आवश्यकताओं से शारीरिक क्षुधाएँ, लोभ में ले चलती हैं। फिर लालच में पड़ जाने से-ले लेने की वृत्ति में-लोभ का रस आता है। अब इस दशा में यदि मन के ऊपर कभी सुन्दरता ने झलक मारी भी तो जैसे ही विस्मय का भाव उदय होने लगा, झट चिन्तन ने अन्दर से कहा, ''जिसमें से यह सुन्दरता प्रकट हुई है वह सुन्दर है, उसे पकड़ लो, ले लो, अपने अधिकार में करो, यह 'ले लेने' तृष्णा विस्मय के भाव में जाने वाली वृत्ति को स्थूल बनाती है लोभ की लहर आई, चिन्तन स्थूल हो गया, विस्मय का भाव पिघलकर फिसला और फिसलते-फिसलते माने वाष्प बनकर उड़ गया। यों जगत बुद्धिमान जगत, चिन्तनशील जगत, विस्मित नहीं होता, उसका विस्मय नहीं रह जाता; चकित होकर देखता है पर विस्मय नहीं जाता। चिन्तन इस ओर नहीं जाने देता, तृष्णा इसमें प्रवेश करते समय बाँह पकड़ लेती है।

२. सेलीवाला गुरू नानक

कैसी सुन्दर छोटी-सी पहाड़ी है। पहाड़ी है, टेकरी है कि टीला है। अभी-अभी वर्षा होकर खुली है। हरी-हरी घास मखमल की भाँति चमक रही है। उसमें नाना प्रकार के बूटे-बूटियाँ हैं। ऊपर आकाश ने ढक्कन उठा रखा है। रात ने मटमेला रंग बिखेर दिया है। पर इसमें लाखों तथा करोड़ों छोटे-छोटे झाड़-फानूस और एक बड़ा-सा फानूस लटक रहा है और शान्ति तथा शीतलता का रंग फैल रहा है। यकायक आश्चर्य ने एक और रूप धारण किया। चन्द्र तारे फीके पड़ गये। पूरब की ओर से मीठा प्रकाश आ गया। पश्चिम की ओर से ठण्डी-ठण्डी हवा रुमकने लगी। अपने आसपास से ऊँचे इस स्थान से अद्भुत दर्शन होते हैं। दूर-दूर के पहाड़ों से ऊपर सुनहरा कगूँरा फिर गया है। वह देखिए कि पूरब से अब उषा प्रकाश का प्रतापी पातशाह किस ठाटबाट के साथ, किस सौन्दर्य के साथ दमदता हुआ आ निकला है। सारी पकृत्ति इसी के दर्शनों के चाव में सुन्दर हो रही थी, पक्षी इसी के 'स्वागत' के गीत गा रहे थे।

इस समय इस चढ़ती सुहावनी किरणों वाली टिकिया को देखने वाले पशु-पक्षी ही नहीं पर एक बड़ी उम्र के मनुष्य भी हैं। जिनकी आयु बालपन और जवानी दोनों ही अवस्थाओं को देख चुकी है। अब इनका चेहरा तनिक ढीला हो रहा है। रूप तथा रंग कुछ मन्द पड़ गये हैं। देह कुछ निर्बल-सी है। भरे यौवन में रंग, रूप, यौवन के आश्रय से जो सुन्दरता चेहरे से दमकती है, वह है तो सही पर अब ज़ोरो में नहीं। हाँ देखो सुन्दरता केवल शरीर की वस्तु नहीं है, यह तो आत्मा का रंग है, अदेश की देवी है। इसी के शरीर की ओर देखिए, यौवन अब ढल चुका है, पर फिर भी सुन्दर है और यह जब आपकी ओर अपनी आँखों से आँखें भरकर देखता है, तो सुन्दरता आँखों में से दमक मारती है और चेहरा भी सुन्दर लगता है। क्यों न लगे? इसने अपनी आत्मा को मैले चींथड़ों में लपेटकर नहीं रखा। सारी उम्र इसी निर्जन पहाड़ी पर बैठा रहा है। कठिन तप करता हुआ और मन को कुकर्मों तथा मन्द वासनाओं से हटाता रहा है। इसी इच्छा से इस सुन्दर जगत से नाता तोड़कर यहाँ आ गया था कि निश्चिंत होकर तप करे, कष्ट सहन करे कि कहीं साधना पर रीझकर स्वामी से भेंट हो जाये। उदरपुर्ति के लिए बकरियाँ रख ली थीं जो सारा दिन खा-पीकर तथा चरकर सुन्दर पुरुष को दोनों समय

दूध दिया करती थीं। यह इस ईश्वर के प्यारे का भोजन था और कई बार यही जल था। जिसने अपनी उम्र तपों तथा हठों में व्यतीत की हो, जिसे प्यारे के दर्शनों की लालसा रही हो, उसके ढल रहे शरीर में से सुन्दरता कैसे जा सकती है?

आज आप उदास हैं, सूरज की चढ़ती हुई दमक ने उदासी कुछ कम की है, पर देखिए अभी भी किसी-किसी समय नैनों में से छम-छम जल बहने लगता है और लम्बा-सा श्वास लेकर कहते हैं : 'हे ईश्वर! तेरी आज्ञा।'' फिर सूर्य की ओर पीठ करके बैठ गए, क्योंकि अब सूर्य तेज़ गया है और नेत्र उसके तेज को सहन नहीं कर सकते। पीठ गर्म हो गई और आँखों में निद्रा आ गई। आप बैठे-बैठे सो गये।

इस पहाड़ी पर कभी-कभी एक पहाड़िन युवती बकरियाँ चराने आया करती थी और कभी दूर कभी निकट से बाबा को सीस झुका जाया करती थी। आज वह युवती सवेरे ही आ निकली और गाने लगी :-

नहीं भरोसा इस जीने का,
नहीं भरोसा इस जीने का,
दम आये न आये।

ईश्वर के प्यारे की आंख खुली, एक ठण्डा श्वास भरा। ठीक कहती है, इस युवती को जीवन का कोई भरोसा नहीं। तो मेरे 'नदी किनारे के वृक्ष' के जीवन का क्या भरोसा हो सकता है? पर मैं और करूँ भी क्या? सारी उमर गुनाहों से पाक रहा हूँ, रात-दिन तप करता रहा हूँ, शरीर को साधनों द्वारा कष्ट दिये हैं, किसी स्वाद रस के अधीन होकर शरीर की आज्ञानुसार नहीं चला। किसी के साथ सम्बन्ध नहीं रखा, बुरा तो किसी का करना ही क्या था, पर मैं ही हूँ कि अभी तक अपने-आपमें भरोसा नहीं रखता, कि सुखी हूँ, प्रसन्न हूँ और शांत हूँ और अभी ईश्वर के दर्शन नहीं हुए। गुरू कह गया था, ''यही मार्ग है, इसी पर चला चल।'' मैं चलता रहा हूँ, पर मुझे पता नहीं कि जो कुछ मैंने किया है ठीक है? यही करना था और इसका फल यही था कि करता ही चलूँ अथवा कुछ और करना था? लगन लगाने वाला तप तपने में लगाकर लौटकर नहीं आया और मेरी आयु व्यतीत हो रही है, किसे पूछूं कि मैं पातशाह के महलों को जाने के लिये ठीक मार्ग पर चल रहा हूँ कि नहीं?

इतने में वह युवती कुछ दूरी पर जाकर एक पत्थर पर बैठ गई और गाने लगी-

जितु दरि वसहि कवनु दरु कहीऐ दरा भीतरि दरु कवनु लहै।।
जिसु दर कारणि फिरा उदासी सो दरु कोई आइ कहै।।१।।
किनि बिधि सागरू तरीऐ।।
जीवतिआ नह मरीऐ।।१।। रहाऊ।।

ईश्वर के प्यारे जी इस मीठी तथा रस भीनी आवाज़ को सुनकर फिर उठे, धीरे-धीरे उस युवती के पास गये, आगे वह शर्मीली, पर निर्भय युवती उठी, झुकी, सीस झुकाया और कहने लगी-''बाबा जी! क्या मैं आपके वस्त्र धो लाऊँ?''

ईश्वर के प्यारे-बिटिया! जीवित रह तुझे कभी कोई कमी न रहे, ईश्वर भाग्यशाली बनावे, वस्त्र तो अच्छे भले हैं, पर तू यह बता यह गीत जो तैने गाया है, किसका है?

युवती – साईं जी! यह गीत नहीं, यह गुरू का शब्द है।

फकीर – बिटिया! कौन से गुरू का?

युवती – मेरे अपने-अपने गुरू का।

फकीर – तेरे अपने गुरू का? जो तेरे अपने हैं, वे कौन हैं?

युवती – सतगुरू, अदेश से आये सतगुरू नानक देव।

नाम सुनते ही झन्नाहट हुई, शरीर शुन्य-सा हो गया, नीर बहने लगा, काफी समय तक चुप रहकर फिर कहने लगा – "बिटिया! क्या तूने गुरू नानक को देखा है?"

युवती – हां साईं जी, काफी समय हो गया है जब हमारा सारा परिवार गंगा को गया था, तब दर्शन हुए थे और तब से ही छोटे-बड़े सभी प्रसन्न तथा सुखी रहते हैं।

फकीर – बिटिया! तुम लोग क्या करते हो?

युवती – पता नहीं, गुरू गुरू करते हैं और यों लगता है जैसे गुरू पास रहता है और स्वाद आया रहता है?

फकीर – (हौका भरकर स्वगत)-स्वाद! स्वाद न जाने क्या होता है? आयु व्यतीत हो गई, संसार बदल गया, कई पीढ़ियाँ आईं, कई गई, पर हमने स्वाद कहीं न देखा?

बिटिया! स्वाद का कोई कण हमें भी प्रदान कर?

युवती – आप तो ईश्वर के फकीर हैं। सारा दिन ईश्वर-ईश्वर कहते हैं, स्वाद आप हमें देंगे कि हम आपको।

फकीर – (झिझक कर) भला बिटिया कोई बाबा नानक की बात ही सुना।

युवती – क्या आपने दर्शन नहीं किया?

फकीर – तुझसे ही कभी-कभी नाम सुना है, यदि देखा होता तो पूछता ही क्यों?

युवती – (भोलेपन में) भला जी! यदि आपने गुरू नानक के दर्शन नहीं किये तो ईश्वर को कैसे देख लिया है? मैंने समझा, कि जो दिन-रात आप साईं-साईं कहते रहते हैं, तो आपका गुरू ने उद्धार किया है; वनों में अकेला बैठा रहता है, इसे गुरू नानक के प्रेम ने स्वाद में डुबो दिया है। मैं तो इसी प्यार के कारण, हे फकीर कि तुम गुरू नानक के हो; तुम्हें अच्छा समझती हूं।

फकीर – (हंसकर ओर हौका भरकर)-न जाने बिटिया, 'गुरू नानक का' का ही हो जाऊँ। तुम तो हो चुकी हो और मुझे अभी उसका बनना है। बिटिया! गुरू की कोई बात तो सुना?

युवती – वे बहुत अच्छे हैं। लोगों से स्वयं प्यार करते हैं। स्वयं ही कोई मज़ा डाल देते हैं जिससे मन के भीतर का प्यार निकल पड़ता है। दर्शन करते ही कुछ ऐसा हो जाता है मानो सोये हुए जाग पड़े हैं।

फकीर – बड़े प्यारे लगते हैं क्या?

युवती – बहुत।

फकीर – क्या बहुत सुन्दर हैं?

युवती – चढ़ते हुए सूर्य की टिकिया से भी अधिक सुन्दर हैं और साथ-ही-साथ बहुत ही शीतल भी हैं।

फकीर – भला मृत्यु के पश्चात् क्या होता है?

युवती – न जाने क्या होता है?

फकीर – तुम्हें मृत्यु का भय है?

युवती – जब से गुरू जी का दर्शन किया है; तब से कभी भी भय नहीं हुआ।

फकीर – क्यों?

युवती – पता नहीं।

फकीर – तुम क्या साधन करती हो?

युवती – साधन क्या होता है?

फकीर – कोई तप, हठ, योग।

युवती – मुझे तो कोई समझ नहीं, फकीर जी! मैंने तो जिस दिन से गुरू जी के दर्शन किये हैं, उसी दिन से एक चाव से मैं रहती हू, वह चाव सतगुरू जी का दान है, और न जाने कहा होता है। सतगुरू मीठा लगता है। पास वसता हुआ दीखता है। कभी आगे-आगे चलता है। कभी पीछे-पीछे आता है। कभी गाता है। कभी सुनता है। गुरू जी के दो-तीन शब्द मुझे याद हैं। वह कहता है, 'सुना'। मैं सुना देती हूं। जब मैं उदास होने लगती हूं तो गुरू शब्द सुनता है। हे फकीर! वह गुरू कोई मेरी भांति, हाड़-मांस का तो नहीं, वह तो दीवारों में से निकल कर आता है, बादलों पर जा बैठता है, सुर्य की टिकिया पर जा लेटता है, बिजली की चमक में उड़ान भरता है, नींद में आ दिखाई देता है, आँखों मूँदो तो मन में घुसा हुआ दिखाई देता है। न जाने वह क्या है? फकीर जी! वह न जाने वह हो, जिसे लोग 'वह' कहते हैं, पता नहीं, पर मेरी तेरी तरह तो नहीं। अब देखो, सतलुज के जल के ऊपर चला आ रहा है।

फकीर – अच्छा? तैरता हुआ आ रहा है?

युवती – नई साईं। तैरता हुआ नहीं, चला आ रहा है। अब देखो हवा में ऊँचा-से-ऊँचा आ रहा है। पर न जाने क्या है? वैसे तो जब देखा है आँखों के आगे ही रहता है, पर आज कुछ और ही रंग का है। देखो तो सही अब हवा में से कितनी सुगंधि आ रही-है, मानो बादलों में से चंदन की फुहार पड़ रही है। तुम्हारे रोम-रोम महक गये हैं या नहीं? मेरे अंदर से तो अपने-आप सुगंधि उठ रही है। देखो तो, सतगुरू नानक जी उस सुनहरी बादल पर हीरों के सिंहासन पर आ विराजे हैं, वह देखो तो सही, मरदाना शब्द गाता है, लीजिए फकीर जी! अब मत बोलना, शब्द सुन लेने दीजिए।

युवती तो यह कहकर सुनहरे बादल पर टकटकी बांधकर एकाग्र हो गई। आंखें झपकना भूल गई। चेहरा दमक गया और वह सुनने लगी। युवती तो दिव्य गीत के सुनने में मस्त है और फकीर उसके सौंदर्य से भरे हुए, स्थिर एकाग्र तथा मगन हुए चेहरे की ओर देख-देखकर चकित हो रहा है और कह रहा है, ''हे साईं! मेरी बुद्धि पर धिक्कार है और धन्य है इसका भोलापन, यह किस तरह भरोसे में है और गहरे रंग में है? एक दिन दर्शन करके आप स्वयं दर्शन रूप हो रही है। फिर न तो कोई मान है और न यह ही पता है कि मैं कोई फकीर हूँ या तपस्वनी हूँ अथवा कोई रसिया हूँ। हे ईश्वर! मेरी आयु की लपेटी हुई लम्बी चटाई फिर

से खोल दे। मैं नये सिरे से जीवन आरम्भ करूँ। मैं इस बालिका की भाँति भोला रहूँ। मैं अकल को, फिकर को, अँदसे को तथा आशा को दूर रखूं; भरोसे में निवास करूं, ओह! क्या कहूँ-

''जां कुआरी त चाऊ वीवाही तां मामले।।
फरीदा एहो पछोताऊ वति कुआरी न थीऐ।।''

मैंने बुद्धि के साथ क्यों विवाह किया था। किया तो झंझट पड़ गये। हाय! अब कुआरी कैसे बनूँ? अक्ल को तलाक कैसे दूँ। काश अक्ल कभी न आती। काश मेरे भोलेपन मेरे बालपन में, मेरा प्रियतम के साथ स्नेह लगता। मेरा बुद्धि के साथ विवाह न होता। मेरा प्रीतम के साथ विवाह होता। अब क्या करूँ? पश्चाताप ही पश्चाताप है। मुझे बुद्धि से तलाक का ढंग कौन सिखाये ? कैसे लूँ ? फिर कुँवारी कैसे होऊँ? फिर वह भोलापन कहाँ से आये? यही पश्चाताप पल्ले में रह गया है-''वति कुआरी न थीऐ।''

फकीर इस तरह अपनी बीती और लौटकर न आने वाली आयु पर रोता हुआ आंखे मूँदकर सो गया।

कुछ समय के पश्चात् आँखें खुलीं तो वह युवती नहीं थी पर एक अद्भुत मोहनी सूरत उसी शिला पर बैठी है, नैन बन्द हैं, पर चेहरा इस तरह दमकता है कि हज़ार चमकते हुए पर ठण्डे सुर्य भी उसे सहन न कर सकें। सुन्दरता है कि सुन्दर है, छवि है कि मानो सारा सौंदर्य अपने आप आ सुशोभित हुआ है। सामने जो दर्शन का ऐसा जोर का प्रभाव हुआ कि फकीर के अन्दर एक कसक सी उठी। आह! तपस्या में वर्षों व्यतीत करने वाले फकीर को, आज पहला दिन था कि कलेजे में आकर्षण हुआ। सामने जो दर्शन था, वह इस तरह अचंभे से भरपूर था कि पहली झलक से ही फकीर जी विस्मय में जा पड़े और दूसरी झलक में अगम का वह आकर्षण हुआ कि मानों उमंगों चावों से भरा हुआ यौवन लौट आया है, जिसमें कलेजा उल्लास से उछलता रहता है। आकर्षण हुआ, दर्शन बहुत प्यारा लगा, तपस्या और हठ योग से पके कलेजे का बंधन टूटा, प्यार की लहर ने थपेड़ा मारा, रास्ता खुला, रस हिलोर लेकर अन्दर प्रवेश कर गया। बुड्ढ़ण शाह की आँखों में अब मगनता है, मस्तिष्क में मादकता है! कभी आँखें खोलकर दर्शन करता है कभी आस्वादन के भार के नीचे पलकें झुक जाती हैं और आँखें बन्द हो जाती हैं। फिर ज़ोर लगाकर खोलता है, दर्शन करता है, नैन मुँद जाते हैं।

वाह बुड्ढ़णशाह! तेरे धन्य भाग्य! तुम्हे यह दर्शन प्राप्त हुए। तुम्हें बधाई है कि अन्त समय से पहले तुम्हें प्रियतम के रसों का निचोड़ प्राप्त हुआ है।

काफी समय इस तरह व्यतीत हो गया। तब बुड्ढ़णशाह ने फिर नेत्र खोले, चारों ओर देखा तो निकट ही एक और मूर्ति बैठी है, हाथ में रबाब है और बुड्ढणशाह की ओर देख रहा है; सहसा ही बुद्ढ़णशाह ने सीस झुकाया और संकेत से पत्थर पर बैठी सूरत का नाम पूछा, तब साथी ने कहा-

''आप श्री गुरू नानक जी हैं।''

'नानक' नाम था कि एक और जादू था जो प्यार से भरे कलेजे में 'अणीआले अणीआ राम राजे' का काम कर गया-

सुनति नामु पाइनि पर परिओ।
कह्यो कि मुहि 'निहाल अब करिओ । ....
अब मम होइ गयो कलयान।
'दरशन दीनसि दया निधान'। (गु : सूरज ग्रंथ)

कौतुकी सतगुरू नानक ने अब नैन खोले। बुड्ढणशाह की ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखा। मानों निज मुँदे हुए नेत्रों ने बुड्ढ़णशाह को बाँध लिया था, उन नेत्रों ने खुलते ही घायल भी कर दिया। नैनों के चार होते ही सारे शरीर में प्यार की ऐसी झन्नाहट छिड़ी की विह्वल होकर चरणों में गिर पड़ा और वैराग्य करने लगा। गुरू नानक ने, जगत के प्रकाश नानक ने, हाँ प्यार के पुञ्ज सतगुरू ने दया के सागर प्रियतम ने प्यार से भरा हुआ सिर उठाकर गोदी में ले लिया और यों प्यार दिया जैसे छोटे बालक को दिया जाता है। हाँ जी बुड्ढ़ा बुड्ढ़णशाह, सतगुरू जी के घर में आज ही जन्मा है, प्रेम के पालने में बालक बनकर आज ही चढ़ा है, प्रेम रस का पहला झोटा प्रीत तरंग की पहली हिलोर आज ही आयी है, आज ही ''सतगुरू कै जन्मे गवनु मिटाइआ'' वाला बुड्ढ़णशाह नये जन्म में आया है। मरने से पहले ही मरा था, हाँ उसी भोली युवती के वाक्यों से अहंकार की मृत्यु द्वारा आज ही मरा था, अब सतगुरू जी आये प्रेम में और फिर से जीवित कर लिया जैसा कि पंचम गुरू ने कहा है-

जनम-मरन दुहहू महि नाही जन परऊपकारी आए।।
जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिऊ लैनि मिलाए।।२।।

(सूही महला ५)

बुड्ढ़णशाह तपस्या करता हठयोग करता अभी तक मरा हुआ था, हाँ उसने वह जीवन नहीं लिया था. जिसके बारे में कहा है-

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ।।
नानक अवरु ना जीवै कोइ।। (वार माझ महला १)

हां जी -

उस हठी तपी जती, सत्यवादी पर 'जीव के जीवन की ओर से सोते हुए बुड्ढ़णशाह को आज प्रेम राज्य के महाराज सतगुरू नानक ने जीवन दान देकर जीवित कर लिया।

भइआ मनूरू कंचनु फिरि होवै जे गुर मिलै तिनेहा।।
एकु नामु अम्रितु ओहु देवै तऊ नानक त्रिस टसि देहा।। (मारू महला १)

बुड्ढ़णशाह को आज पता लगा कि वह जो कुछ करता था वह क्या था, जो करता था वह अभ्यास था और इसलिये बुरा नहीं था, पर उम्र भर कीं कमाई से चित्त पत्थर का पत्थर, मन अहंकारी का अहंकारी हृदय निराश का निराश ही बना रहा था। आज जो 'नानक प्रेम' की तरंग ने अंदर चक्कर लगाया है, तो वह जीवित हो उठा है। प्रसन्नता की लहर आई, हित कर वेग छूटा, प्रीत की झन्नाहट छिड़ी, साईं का स्वादिष्ट सजीव नाम रोम-रोम में फैल गया, जैसा कि पंचम गुरू जी ने कहा है-

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु, रसिक बैरागी।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम–जनम की सोई जागी।।२।।२।।११९।।

(गऊड़ी महला ५)

जिस समय युवती ने कहा था कि मुझे यों लगता है कि जैसे सोये हुए जागे हैं उस समय बुड्ढणशाह को समझ नहीं आई थी। अब जब समझ आई है, तब अपने मन पर जीवन का प्रवाह फिरा है। जब सच्चे सतगुरू जी ने 'माणस ते देवते कीए' का नया जन्म दिया, मनुष्य पने से मारकर दैवी जीवन प्रदान किया तब यों लगा मानो जन्म का सोया हुआ जाग उठा है। निराशा भाग गई, मृत्यु का भय भाग गया, आँखें चमक उठीं। शरीर फूल की भाँति हलका है, मन ठण्डा प्रसन्न तथा ऊँचा है, दृष्टि जिधर भी जाती है उधर ही सुन्दरता तथा रस की बौछार लगी हुई देखती है। वाह भाग्यशील बुड्ढणशाह! तेरी सद्‌गति हो गई–

सतगुरू नानक ने प्यार देकर उठाया, बैठाया और कहा–"सतनाम का स्मरण कर, पर देख! अब तेरे रोम–रोम में स्मरण है, जिसमें जीवन प्रवाह है और प्रेम का हिलोर है, अब तू फकीर है, मगन हो।"

यों कहना ही था कि बुड्ढणशाह ऐसे रंग में डूबे कि दो पहर इसी तरह मगन रहे। फिर सतगुरू ने जगाया, अब रंग कुछ ओर है, सतगुरू जी जाने के लिये तैयार हैं और प्रेमी के मन को वियोग बेधता है, सतगुरू जी के चरणों से लिपटकर रोता है और निःश्वास भरता है जिनका भाव कुछ यों समझ में आता है[१] –

सोये हुए को आकर जगाया और उसके हृदय में प्रीत डालकर मृतक को जीवित करके, गिरे हुए को कण्ठ से लगाकर, अपना बनाकर, हे साईं! हमें त्यागकर मत चल देना। हे गोसाई हमें मिलकर अब विरह मत दिखाना। यदि आप ने अपने चरणों के साथ लगाया और प्रेम का रस चखाया है, अपना दास बनाया है तो अब हे गोसाईं बिछड़ मत जाना।

बुड्ढणशाह का यह प्रेम देखकर जगत तारक जी ने कण्ठ से लगाया, बहुत प्यार देकर यह वरदान दिया:–

अब तुम काज गए सभि होइ।।
बैठहु मन सतिनाम पुरोइ।। (सूरज प्रकाश)

पर बुड्ढणशाह के हृदय में इतना प्रेम उमंग रहा था कि विरह को कौन सहन कर करे? और उधर धन्य गुरू सतगुरू नानक जिसने जगत का उद्धार करना है, जिन्होंने इस तरह के अगणित दीपकों का प्रकाश करना है, चलने के लिये इच्छुक हैं। अब बुड्ढणशाह ने समझा कि धन्यवाद करना और आज्ञा का सिर पर रखना भी प्रेम है। मन को पक्का किया कि आज्ञा मानी जाये, पर अब मन मुर्दा नहीं कि 'आज्ञा मान ली', कहकर पत्थर दशा को आज्ञा समझकर टल जाये। बहुत जोर लगाया, पर यह विनय मुँह से निकल ही गई:– हे दीन बन्धु! "फिर कब दर्शन प्राप्त होंगे?"

'फिर कब दर्शन प्राप्त होंगे' न जाने कितने तीव्र प्रेम के वाक्य थे कि जगत के त्राणकर्ता के नैन प्रेम सहित भर आये और आप कहने लगे –"बुड्ढणशाह! इस स्थान पर

१. यहाँ पर कवि ने गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

टिककर स्मरण कर, दर्शन होंगे, पर हम अपने छटे रूप में (गुरू हरिगोविंद) में आयेंगे। हे बुड्ढणशाह। तू यह मत सोच कि तू बूढ़ा है और इतने दिनों तक कैसे जीवित रहेगा, पर तू जीवित रहेगा, तू होगा और हम छटे शरीर में आयेंगे। तेरी आयु बहुत ही दीर्घ होगी?''

गुरू जी के साथ वाला सेवक कहने लगा, ''हे करुणामय कौतुकी जी। उस समय तेरा रंग-रूप कुछ और ही होगा, क्या उस रूप में बुड्ढन तुझे पहचान लेगा?''

सतगुरू – हाँ संज्जन! पहचान लेगा। पहले हमारा एक प्यारा- राजकुमार आकर शहर बसायेगा, फिर हम आयेंगे और बुड्ढणशाह से दूध माँगकर पीएँगे। आज दूध पी लेते, पर आज हमको नीचे डोघरे[१] में पींजू के घर में भोजन करना है। बुड्ढणशाह के साथ हमारा उधार रहेगा, फिर आयेंगे और माँगकर दूध पियेंगे।

यों कहकर, माँ से विछुड़े विलाप करते हुए बालक की भाँति, बुड्ढणशाह को छोड़कर श्री गुरू नानक देव जी उपकारी बादल की भाँति और स्थान पर बरसने के लिये चल दिये। बुड्ढणशाह, नये जन्म में आया बुड्ढणशाह, सतगुरू जी के घर में जन्मा बुड्ढणशाह, प्रेम के रंग में नवबालक बुड्ढणशाह, जीवित स्मरण में नवयौवन बुड्ढणशाह प्रियतम के प्यार में लगा हुआ आकर्षण, चाह, उल्लास, आशा, आस्वादन और रस का जीवन व्यतीत करने।

दूसरे दिन बुड्ढणशाह दोपहर को बकरियों का दूध पीकर उसी शिला के पास जाकर बैठ गया और प्यारे में ध्यान मग्न हो गया, कि वह युवती अपनी बकरियों को चराती हुई उधर आ निकली, बुड्ढणशाह को देखकर कहने लगी -

''फकीर जी! आप हमारे गुरू नानक के हैं।''

फकीर – हाँ बिटिया! मैं तुम्हारे गुरू नानक के दासों का दास हूँ मैं अपने - मैं मेरे-सतगुरू नानक के कूकरों का कूकर हूँ।

युवती पहले हँसी फिर रोने लगी। जिसने कभी रोना जाना ही नहीं था उसकी आँखों में नीर भर आया, दीर्घ विश्वास लेकर बोली:-हाँ फकीर जी! हम सतगुरू के कूकरों के कूकर हैं, पर फकीर जी! सतगुरू कितना सुन्दर है?

फकीर – कुछ मत पूछ बिटिया! दर्शन देकर मुझे तो मरे से जिला गया है। मैं। मैं मुसलमान था पर अब तो मेरा कावा मक्का, मेरा रुसूल (अवतार) मेरा धर्म सब कुछ नानक हो गया है। कल से मैंने न तो नमाज़ पढ़ी न प्रार्थना की न सजदा किया और न कुरानशरीफ का पाठ ही पढ़ा। मेरी आँखों के आगे जीवित सतगुरू, मेरे रोमों में, 'धन्य गुरू नानक' बस गया है। जिधर नैन जाते हैं सतगुरू तथा सतगुरू की छवि दीखती है। रसना उसके रसाये हुए नाम में रसमय हो रही है।

यों कहता और उसके नेत्र भर-भर आते।

युवती – धन्य सतगुरू नानक, कह धन्य सतगुरू नानक, सुना तो अपने ऊँचे प्यार वाले मन से; सुना 'धन्य गुरू नानक'! युवती ने इतने प्रेम में 'धन्य गुरू नानक' की लौ लगाई कि सारा वन सुगन्धि से भर गया और इसी प्यारी ध्वनि में तीसरा पहर हो गया।

---

१. डोघरा - दो घरा, पर्वतों में और आस-पास बहुत छोटे गाँव को, जहाँ पर दो-चार घर हों, उसे दोघरा कहते हैं।

इस समय एक गरीब पहाड़ी, उसका भाई तथा उसकी पत्नी आ पहुँचे। बुड्ढ़णशाह को इन गरीबों, मैले कपड़े वालों में से गुरू नानक की सुगन्धि आई। ये किसान थे पर छुटपने में हिन्दी के कुछ अक्षर पढ़े थे। बुड्ढ़णशाह उठकर सीस झुकाने लगा, उधर से उन्होंने सीस झुकाया, परस्पर ऐसे मिले जैसे कि जन्मों से एक-दूसरे को जानते हों। वार्तालाप के पश्चाताप पता चला कि यह इसी युवती के माता-पिता तथा चाचा जी हैं। यह गुरू के चरण परसकर 'नामधारी' हुए थे और स्मरण के रंग में निमग्न थे। कल जब श्री गुरू नानक जगत गुरू स्वामी, बुड्ढ़णशाह का उद्धार करके चले गये तो भोजन इनके घर में ही किया था। यह बुड्ढ़णशाह के ठिकाने से कुछ दूरी पर नीचे की ओर नदी की ओर एक दोघरे में रहते थे, केवल दो ही घर थे और दोनों भाई निवास करते थे। जब सतगुरू जी इनसे विदा होने लगे तो आपने कहा था कि 'ऊपर जो बुड्ढ़णशाह नामक फकीर रहता है, वह हमारा अपना है, आज उसका पुनर्जन्म हुआ है, तुम उसके साथ प्यार करना, सत्संग करना और झिझकना नहीं। वह पहले एकान्तवासी था, उसका मन रोगी था, किसी को अपने पास देखकर प्रसन्न नहीं होता था, अब स्वस्थ हुआ है, स्वच्छ सत्संग का इच्छुक होगा, संत्सग करना नाम जपना।''

बुड्ढ़णशाह ने सतगुरू जी का यह प्रेम सुनकर बहुत वैराग तथा धन्यवाद कया, फिर पींजू से कहने लगा, ''भाई सत्संगी मित्र! क्या एकान्त बुरी वस्तु है?''

पींजू – फकीर जी! गृहस्थियों को क्या पता? पर यों लगता है कि निरा एकान्त तो कोई दण्ड है।

बुड्ढ़णशाह – फिर फकीर तो एकान्त में निवास करते हैं।

पींजु – जी रोगी,... पापों के भय वाले तपी... हाँ, हठ धारण करते हैं, हठ से रहते होंगे। एकान्त में यदि मन रस तथा स्मरण में रहे तो एकान्त भी अच्छी चीज है, पर रसिक मन का स्वच्छ सत्संग में बिगाड़ क्यों होगा! जो रसिक हैं और नाम के प्रेमी हैं, वे ऊँचे सत्संग में निवास करते होंगे न ।''

बुड्ढ़णशाह – पर संसार छलिया है, स्वार्थी है, बैटियाँ, बेटे, सम्बन्धी सभी स्वार्थ द्वारा इसे फँसाते हैं और अपने प्यार में लपेटकर उठने नहीं देते। फिर जिसके साथ नेकी करो, वह बदी करता है, जिसका कुछ भला करो वही वैरी हो जाता है। संसार के साथ व्यवहार कर करके संसार का यही पता चलता है कि सभी स्वार्थी हैं, मित्र कोई नहीं। इसलिए जिस मनुष्य के अंदर वैराग का कोई अंश होता है, वह संसार से ठोकरें खा-खाकर, लोगों के छलावे देख-देखकर और स्वार्थ देख-देखकर अंत में एक ओर का जाना चाहता है और अकेले रहना पसंद करता है, जहाँ पर ''ना काहू सिऊ दोस्ती ना काहू सिऊ बैर'' और एकान्त में बैठ कर कोई जप-तप भी ईश्वर की प्राप्ति के लिये कर सकता है।

पींजू – फकीर जी! यह ठीक है, संसार में त्याग इसी तरह होता है संसार का खोट देख-देखकर जी खट्टा सा हो जाता है, वैराग बढ़ जाता है ओर मनुष्य एकान्त की खोज करता है। पर हमें सतगुरू नानक ने यह बताया है कि बुरों के खोट देखकर उनसे तो एक ओर हो जाना चाहिये पर सारे संसार का त्याग करना ठीक नही; सारे संसार का त्याग करने से तो अच्छों से भी पृथक हो जायेंगे जो बहुत कमी की बात है। चाहिये यह कि खोटों का त्याग किया जाये और अच्छों का त्याग न किया जाये? खोटों का त्याग करो और अच्छों को

रखिए या यों कहें कि कुसंगति का त्याग करना चाहिये और सत्संग को ग्रहण करना चाहिये। कच्चों से नाता तोड़कर पक्कों से जोड़ना चाहिये।

बुड्ढणशाह – धन्य सतगुरू नानक, धन्य सतगुरू नानक! मैं सारी उम्र भूल में रहा कि संसार खोटा है और त्याग ही एक मात्र मार्ग है। यह आज पता चला कि सारा संसार खोटा नहीं। यद्यपि कुछ लोग खोटे हैं, पर अच्छे भी हैं, अतः उन प्यारे लोगों की खोज करनी तथा उनकी संगति में रहना चाहिये। ठीक है, हठ योग वाले एकान्त में रहकर मेरा मन भी कठोर-सा हो गया था अब स्वाद वाला एकान्त मिला है।

पींजू – यदि हृदय एकान्तवासी हो जाये-ईश्वर के चरणों में लगे-तो वास्तविक एकान्त हो गई। साईं के रंग में रांते सज्जनों से मिलता रहे तो एकान्त बना रहे तो एकान्त बना रहेगा, एकान्तियों के मेले में तो एकान्त बना ही रहेगा क्योंकि सबको मिलकर प्यारे का ही यश गाना है।

बुड्ढणशाह -पर क्या गुरू नानक के मत के फकीर एकान्त में नहीं रहते!

पींजू-जी हां, हां, एक जौर ऊँची एकान्त है। जिन साईं के प्यारों को ऊँचा सत्संग प्राप्त हो जाये, अरूप सत्संग तक जिनकी पहुँच हो जाये, वे दिखते तो एकान्तवासी ही हैं, पर होते हैं सत्संग में। मेरे विचार में जो आत्मा ईश्वर से प्रेम करती है, उसका स्मरण करती है और शुभ सत्संग करती है, वही भली आत्मा है। ईश्वर के प्यारे हंस की भांति होते हैं, हंस, हंसों में विचरते हैं, चाहे रूपधारी हों, चाहे अरूप।

बुड्ढणशाह – सच है, कल सवेरे मैं बहुत दुःखी था। आपकी बिटिया-जिसे 'पवित्रता' तथा 'साईं प्रेम' की देवी कहना चाहिये - आई, इसने ऐसे भरोसे की दो चार बातें की कि मुझे अपनी सारी उम्र की भूलों की समझ पड़ गई। सत्य है, सत्संग का बड़ा प्रताप है, धन्य सतगुरू नानक है जिसने मेरे जैसे एकान्तवासी के लिये सत्संग का द्वार खोल दिया है। अब मैं कभी-कभी तुम्हारे दोघरे में आया करूंगा।

पींजू – फकीर जी! आपका घर है, सहर्ष आइए। हमारे सौभाग्य, पर अब आप गुरू नानक के अनुग्रहीत हैं और उसके प्यारे हैं, इसीलिये हम आया करेंगे, आपने सारी उम्र तप किया है, हम गृहस्थी हैं, 'नानक निरंकारी की दृष्टि' से निहाल हुए हैं, पर फिर भी गृहस्थी है।

बुड्ढणशाह – ऐसा मत कहिए, तुम सतगुरू जी के ज्येष्ठ पुत्र हो, मैं अभी अनजान हूं। मेरे सिर पर हाथ रखना, मुझे तुम्हारे आश्रय से चलना है। अभी मेरा बहुत समय है। मैं बैठा तो नदी के किनारे पर था पर सतगुरू जी ने मेरी उम्र का तार लंबा कर दिया है। उसके मन में दया आई कि मैं इस स्मरण तथा प्रेम का आनन्द, यह नाम का रस तथा सत्संग का उल्लास कुछ समय तक पाकर प्रेम का पाठ याद करके यहां से चलूं। अतः तुम भी मेरा ध्यान रखना।

इस तरह नम्रता तथा प्रेम की वार्तालाप करके दोनों विदा हुए। अब अक्सर इकट्ठे होते कभी पहाड़ की चोटी पर बुड्ढणशाह के स्थान में और कभी पीजूं के डोघरे में और सतलुज नदी के किनारे पर। जंगल में मंगल हो गया। गुरू नानक का सत्संग वनों में जाग उठा, गृहस्थी तथा आयु भर के संन्यासी फकीर एक स्थान पर मिलकर बैठ गये। मुसलमान के घर में उत्पन्न

हुआ बुड्ढणशाह और ब्राह्मण के घर में पला और पड़ा पींजू सगे भाईओं से भी अधिक प्यार में पिरोए गए। गुरू नानक की गोदी में सभी गुरू गृह-बालक खेलने लगे। धन्य सतगुरू नानक, जिसने कभी मनुष्य 'देवता' कर दिखाए, धन्य सतगुरू नानक, धन्य सतगुरू नानक का सत्संग।

सूचना – सतगुरू जी जगत का उद्धार करते हुए फिर सुलतानपुर लौटे और दीदी से मिलकर फिर बिआस के पार आकर वैरवाल, जलालाबाद में सतनाम का डंका बजाते हुए 'पठानों की किड़ियां' में आ निकले। यहां पर पठानों में सतनाम का छत्र झूला और सभी पठान शिष्य बने। तिलंग महला १। 'जिन कीआ तिनि देखिआ' वाले शब्द का उच्चारण यहीं पर हुआ। सरोदा बजाकर लगे प्रभु का स्मरण करने और 'हरदम नानकशाह' के गीत बनाकर गाने। सुथरों (एक साधु संप्रदाय) की तुक 'हरदम नानकशाह धर्म का बेड़ा बने लाङि जी' और हिंद के प्रसिद्ध कवि 'नजीर' की कविता 'हरदम बोलो वाहिगुरू' इसी गीत का परिवर्तित रूप है।[१]

---

१. यह गीत अभी अप्राप्य है, पर इसका कोई रूप सुथरे फकीर गाया करते हैं-'हरदम नानक शाह धर्म दा बेड़ा बंने लाइ जी।' पश्चिमी इलाके में एक और रूप प्रचलित है:

"सभ तेरी तूँ सभ विच वरतें साहिब बे-परवाह गुरू ।
इक भरमदे फिरन भरमदे मारे तुधबिन नाही जाह गुरू ।।
आगै भौजल बिखड़ा सुणीए, भावी तिवै लंघाइ गुरू ।।
सिक्ख संगत हाथ जोड़ कहो मेरे मनों न विसरे वाहिगुरू ।।"

इसी तरह का एक गीत 'मदह (स्तुति) नानक शाह गुरू' उर्दू भाषा में प्रसिद्ध कवि 'नज़ीर' ने कहा है। यथा -

"हैं कहते नानकशाह जिन्हें वुह पूरे हैं आगाह गुरू ।।
वुह कामल रहबर जग में हैं, यूँ रोशन जैसे माह गुरू ।।
मकसूद मुराद उमीद सभी वर लाते हैं दिखलाह गुरू ।।
नित लुतफो करम से करते हैं हम लोगों को ज्यादाह गुरू ।।"
इस बखशीश के इस अज़मत के हैं बाबा नानकशाह गुरू ।।
सभ सीस झुका अरदास करो और हरदम बोलो वाहिगुरू ।।
हर आन दिलों में या उनके जो ध्यान गुरू का लाते हैं ।
और सेवक होकर उनके ही हर सूरत सच्च कहाते हैं।
गुर इतनी लुतफ इनायत से सुख चैन उसे दिखलाते हैं।
खुश रखते हैं हर हाल उन्हें सब मन का काज बताते हैं।
इस बखशिश के ...
जो हरदम उनसे ध्यान लगा उम्मीद करम की धरते हैं।
वह उन पर लुतफ इनायत से हर आन तवज्जहु करते हैं।
असबाब खुशी अर खूबी के घर बीच उन्हों को भरते हैं।
आनन्द इनायत करते हैं सभस को चिंता हरते हैं।
इस बखशिश के ...
जो लुतफ इनायत उनमें हैं वह वसफ किसी से उसका हो ।
वह लुतफे करम जो करते हैं, हर चार तरफ है ज़ाहर वह ।
अलताफ जिन्हों पर हैं उनके, सो खूबी हासल है उनको ।

यहां से चलकर उपदेश देते हुए और उद्धार करते हुए, फिरते-फिरते फिर सैदपुर संडिआली अपने प्यारे भाई लालो के नगर आ पहुंचे।

सैदपुर से चलकर गुरू जी पसरूर पहुंचे। पसरूर से साहोके, और फिर सिआलकोट के बाहर एक बेर के पेड़ के नीचे जा बैठे। भाई लालो जी से विदा होने और आगे के समाचार आगामी कथा में है।

□ □

हर आन 'नज़ीर' अब या तुम भी ।
'गुरू बाबा नानकशाह' कहो ।
इस बखशिश के ...

४७ हमज़ा गौंस

: १ :

श्री गुरू नानक देव जी लालो की कोठरी के बाहर धूप में बैठे हैं और प्यार कि दृष्टि से देखकर लालो के साथ बातें कर रहे हैं :-

लालो! भाई सज्जन! सर्दी भी खूब पड़ती है और दिन भी आग तापने तथा द्वार बन्द करके बैठने के हैं, पर हमारा चित उदास हैं और हम अब विदा होंगे।

लालो - पातशाह! तेरी उदासी प्रीत वालों को खूब कसती है, पर किया क्या जाये? यदि प्रीत नहीं, तो जीवन नहीं। यदि प्रीत है तो वियोग साथ है, यदि वियोग है तो कसक भी साथ है। पर भला हो कसक का, बिछुड़ने तो नहीं देती, यदि प्रीत होगी तो मनुष्य जीवित तो रहेगा। जीवन चाहिये, चाहे पीड़ा वाला जीवन हो, मुर्दा भी कुछ नहीं और उसका आराम भी कुछ नहीं। बलिहारी तेरी प्रीत पर, पातशाह! स्वस्थ आपकी आज्ञा, हमें अपना बनाये रख, जैसे तेरी आज्ञा!

गुरू नानक - लालो! प्यारे! क्या किया जाये, कर्तार ने इसी तरह की सर्जना की है। संसार में गलानि फैल गई है। प्यार के तार टूट गये। लेखा हिसाब रह गया है। शरीर 'फूटे हुए रबाब' बन गये हैं जिनमें न तार है न तंतु।

मालिक को मरा हुआ जगत अच्छा नहीं लगता। उसने जीवित बनाया था, जीवित यह अपने लिये हुआ। कर्तार इसे फिर से जीवित करना चाहता है। बता कैसे करें? आज्ञा है प्राण फूँकने की, 'सच्च की सिंगी' बजाने की, जीवित करने की, अत: 'जिव जिव हुकम तिवै तिव कार'। हे लालो! सीओ के[१] नामक ग्राम में एक प्राणी तड़प रहा है, उसे जीवन की आवश्यकता है। आज्ञा हुई है कि जाकर मेरे नाम का अमृत पिलाओ, सो जाना है आज्ञा का पालन करना है, आज्ञा में बंधे रहना साईं के रंग में रांते रहना है-हाँ लालो!

नदीआ वाह विछुंनिआ मेला संजोगी राम।'

यह कहकर ईश्वरीय नैन मुँद गये। चेहरे पर एक जलाल चमका, लालो के नेत्र कटोरे, जो छलक-छलककर भर रहे थे, वे उच्छल पड़े, सिर झुक गया और चरणों के साथ जा लगा। एक अकथनीय रस की ईश्वरीय झन्नाहट आई, कंपन तथा मादकता एक हिलोरे दे गई। दूसरे क्षण लालो के नैन सड़क की ओर देखते खड़े हैं और ईश्वरीय ज्योति सतगुरू नानक जी की पीठ के दर्शन हो रहे हैं और देखते-देखते कलेजे को शीतल करने वाली पीठ भी ओझल हो गई।

---

१. कईओं के विचार में साहोके नामक ग्राम है।

: २ :

चलते हुए कुएँ की गद्दी पर बैठा हुआ रूपा अपने आपसे बातें कर रहा है:-

अरे रूपा! वाह वाह रूपा। छोटी आयु में पशु चराये ओर बड़े होकर खेती और परिवार। अब क्या बना, 'यह आकर्षण' कहाँ से आ गया? न देखा न परसा, न स्वप्न में और न ही जागृति में, सुन-सुनकर कलेजा लोप। लग गई! पर हाय! पर मैंने आप तो नहीं लगाई यह अपने आप ही लग गई! मुकदमा और प्रेम भी क्या कभी पूछकर लगते हैं? कि क़भी प्रेम भी ज़ोर जर्बदस्ती से या सोच-समझकर किया जाता है हो जाता है? हो जाता है तो अपने-आप ही हो जाता है। वह अब तो स्नेह हो गया। अब क्या हो सकता है। जो कुछ होना था वह हो गया। अन्य योजनायें बीच में ही रह गईं, एक ही बनत बन गई-रास्ते पर मेरे नैन लगे हैं। यदि चिड़िया भी फड़के तो चौंककर कहता हूँ 'आ गये'। यदि पदध्वनि सुनी तो चौंका कि 'आ गये' परछाईं पड़ी तो चौंका कि, 'आ गये'। आ गये, 'आ गये' के सपने, 'आ गये, आ गये' की झलक, 'आ गये' की ध्वनियाँ, 'आ गये, आ गये' कह तीव्र इच्छाएँ। यदि मुझे पता हो तो इन निकम्मे पैरों को ले चलूँ। यदि मेरे नयन खुले हुए हों तो बिना पते ही चल दूँ कि अपने-आप ले पहुँचेंगे और अंधे पैरों को भी ठिकाने पर पहुँचा देंगे। आज कहीं से भनक आती तो कल सैंकड़े कोसों पर जाकर खबर निकलती है। हे करतार! है सृजनहार ! मुझ मूर्ख की आशा भी पूरी कर, एक बार तो इन प्यासे नैनों में प्यारे के दर्शन का चक्र घुमा दे, मैं वहाँ पर तेरा रंग देखूँ और रंग में भीग जाऊँ। हे, प्रत्येक स्थान पर सुनने वाले! किसी के लिये मेरी गोद में भिक्षा डाल। कहा जाता है कि मुर्ख का अल्ला बेली होता है। हे मतिहीनों के मालिक! मेरी आशा पूरी कर।

आवाज़ आई :- सत करतार, सत करतार, सत करतार।

रूपा - (चौंककर)-आ गये, आ गये, सचमुच कि वैसे ही कोई आहट है? मेरे मन की आहट है, कि जागृति का स्वप्न है? आ गये हैं! कैसे पहचानूँगा? पहले कभी देखा नहीं। हे नैनों! पहचान लेना, हैं? आ गये।

आवाज़ आई :- 'सत करतार'।

कुआ चल रहा है, बैल धीरे-धीरे चल रहे हैं, जल पनाले में से नाली में जा रहा है, रूपा गद्दी पर नैन मुँदकर बैठा हुआ कह रहा है-'हाँ फिर हे करतार! दया कर, नित्य के भिखारी पर तुष्ट हो, तुष्ट हो न फिर तुष्ट हो; और यह कहकर बंद नैनों में से छम-छम अश्रु निकल चले।

आवाज़ आई - 'सत करतार'।

रूपा - (विह्ल होकर)-आ गये।

जब नैन खोले तो आकर्षण का एक तीव्र झटका लगा, किसी प्यार के स्त्रोत के दर्शन नैनों में घुसे, कलेजे में उतरकर अन्दर के अंतस में चले गये, बेसुध होकर गिर पड़ा और दूसरे क्षण किसी अमृत के स्त्रोत के चरणों पर जा पड़ा। सिर पर प्यार का हाथ फिर रहा है और ''सत करतार-सत करतार'' की ध्वनि फैल रही है। मानो वायु को जिह्ला लग रही है और 'सत करतार' का संगीत मूसलाधार वर्षा की भाँति खूब गूँज रहा है।

सतगुरू नानक (बहुत प्यार देकर) – रूपा! उठ, जीवित हो, हे सज्जन! उठ, उस करतार के साथ एकाग्र हो। साकट होना भला नहीं; जुड़ा रहना ही ठीक है। जुड़े रहने के लिये निर्माण हुआ था। टूट जाना अथवा साकट होना हमारी भूल है हमारी मौत है। जुड़-जुड़ना ही जी उठना होगा।

अब रूपा के रोम-रोम में वाहिगुरू की झन्नाहट आ गई : मानो टूटे हुए रबाब को किसी ने तारों से कस दिया है और वह सुरीली ध्वनि में बज उठा है, सारा शरीर संगीत का रूप हो गया है। अचल शरीर सुन्दरता के संगीत में थरर-थरर कर रहा है। समझ नहीं, वर्णन नहीं, पर रस-भरा संगीत हो रहा है। इस तरह कितना समय व्यतीत हुआ।

आवाज़ आई,''रूपा! उठ''?

हाँ जी, अब होश आया शरीरों को संगीत बनाकर और बजाकर दिखाने वाला, रोम-रोम में राग की तंत्री की भाँति खींचकर ईश्वरीय ध्वनी की गूँज देने वाला स्वामी आवाज़ लगा रहा है। रूपा किसी मस्त की भाँति उठा, आधे रस भरे नैनों, आध खुले रस भीने नैनों से देखता हुआ चल पड़ा। सतगुरू जी साथ चल पड़े।

आज आये, हाँ जी सतगुरू जी आये, हाँ तरसने वाले के गृह में आये। घर जीवित हो उठा, घर के सभी व्यक्ति जीवित हो उठे। गाँव में खबर हुई, प्यासे आये, जीवनदान की वर्षा हुई, सारा गाँव जीवित हो उठा। प्यार तथा ईश्वरीय रंग के रस बंधे को आठ दिन व्यतीत हो गये।

: ३ :

त्राणकर्ता जी ने एक दिन कहा-रूपा! अब चलना है। आवाज़ आ रही है, जाना है।

रूपा – हे आज्ञा के स्वामी! जी भरकर दर्शन दीजिए, इन प्यासे नैनों का तृप्ति नहीं हुई है, तृषित मन की प्यास नहीं बुझी है। यदि तुष्ट हुए हैं तो तुष्ट ही रहिये, वियोग सुनकर दुख काटता है। दृष्टि से ओझल होना सुनकर मरता हूँ। अंतस में धैर्य नहीं बाँधता। कैसे जीऊँगा। हे जीवित करने वाले! दर्शन देकर पीठ मत दिखाना, पीठ न दिखाइए और अपने में समा लीजिए।

उद्धारकर्ता – रूपा! बेटा! प्यारे, जाने की आज्ञा है। प्रियतम की आज्ञा किसी अन्य स्थान पर अलख की आज्ञा जगाने की है।

रूपा – दया तथा कोमलता के गुलाब जी! जंत्री को जंत्र क्या कह सकता है? न तो जाने के लिये कह सकता हूँ और न ही रोक सकता हूँ। पातशाह! मैं मूर्ख हूँ, आपसे बिछुड़ने पर मेरी मृत्यु होती है, मेरे बस में नहीं।

उद्धारक – भाग्यशील रूपा! दुख का क्रंदन ईश्वर के द्वार पर पहुँचा है। करतार के दरबार में कष्ट की पुकार पहुँची है। पहुँचने की आज्ञा हुई है। हांहाकर की आवाज ने पवन में चिन्ता व्याप्त कर दी है। हाय! हाय!! की ध्वनि ने प्रकाश को उदास कर दिया है। देख धूप भी उदासी की भाषा बोल रही है। वन उदास है और वन के पक्षी दुखी हैं। अब जाना है और आज्ञा का पालन करता है। तू करतार के रंग में निवास कर, तू जीवित हुआ है, जीवित रह, तेरा शरीर प्यारे की याद तथा संगीत में, आकर्षण में और ईश्वरीय गूँज में निवास करे। तुझे वाहिगुरू

कभी भी न भूले, तेरे मन में से न बिसरे 'सभना जीआ का इक दाता'।

रूपा – मेरे बस में नहीं, पातशाह ! मैं मरता हूँ। यह कहकर गिर पड़ा और आँखें फिर गईं। ईश्वरीय प्यार के निर्झर ने, मौज से बहते हुए प्रेम के सोते कण्ठ से लगाकर और सिर पर प्यार देकर कहा :-

रूपा! हमारा अब और ठहरना नहीं हो सकता। हमारे साथ चल और चलकर ईश्वर के रंग देख।

मरदाना! उठा रबाब, देख करतार के रंग, चल देख चरवाहे कसाई बन रहे हैं। रक्षक ही भक्षक बन रहे हैं। प्रहरी ही चोर बन रहे हैं।

'नानक दुनीआ कैसी होई।।
सालकु मितु न रहिआ कोई'।।

यह कहकर ईश्वरीय ज्योति से सदैव जगमग-जगमग करने वाले के नैन किसी गहरी दया तथा प्यार से जल-पूरित हो गये, दो-चार बूँदे रूपा के चरणों पर टिके हाथों पर पड़ी।

: ४ :

एक पुराने नष्ट होते हुए कब्रिस्तान के निकट बेर के वृक्ष की छाया में आकर प्रेमपुञ्ज जी ने कहा:-

मरदाना! इस बेर की छाया शीतल है, आ यहीं पर बैठ जाएँ।

मरदाना – पातशाह! यह तो कोई पुरानी कब्रों का स्थान लगता है, कहीं शहर में चलकर ठहरें।

सतगुरू-मरदाना! कर्तार की आज्ञा यहीं की है, नौकरी पहरा यहीं पर है। बस्ती तथा उजाड़ कर्तार से भरपूर हैं, देख तो प्यारा हर ओर दीख रहा है ; प्यारा हर ओर दमकें मार रहा है; हरी-भरी हरियाली की प्रत्येक शाख किस तरह साक्षी भर रही है कि वन तृण में प्यारे का निवास है। सब ओर बस्ती ही है; ऊजड़ कहीं भी नहीं, नैन खोल मरदाना।

सहसा मरदाने का रबाब खुल गया और अंगुलियाँ तन्तों पर फिरने लगीं। सतगुरू जी के ईश्वरीय कण्ठ से ध्वनि उठी और रामकली राग में फिर आवाज़ आई-

''सरब जोति तेरी पसरि रही।।
जह जह देखा तह नरहरी।।१।।
जीवन तलब निवारि सुआमी।।
अन्ध कूपि माइआ मनु गाडिआ किऊ करि उतरऊ पारि सुआमी।।१।।रहाऊ।।
जह भीतरि घट भीतरि बसिआ बाहरि काहे नाही।।
तिनकी सार करे नित साहिबु सदा चिंत मन माही।।२।।
आपे नेड़ै आपे दूरि।।
आपे सरब रहिआ भरपूरि।।
सतिगुरू मिलै अंधेरा जाइ।।
जह देखा तह रहिआ समाइ।।३।।

अंतरि सहसा बाहरि माइआ नैणी लागसि बाणी।।
प्रणवति नानक दासनि दासा परतापहिगा प्राणी।।४।।२।।

ईश्वरीय दृश्य, वाहिगुरू रंग का अद्‌भुत दर्शन बन रहा है। बेर की छाया में रूपा जी नैन मूँदकर बैठे हैं, चेहरे पर लाली और नैनों में से सुख के अश्रु निकल रहे हैं। मरदाना रबाब बजा रहा है, पर आप मस्त है, सतगुरू जी का पवित्र कंठ गायन कर रहा है और शेष शरीर अचल है।

फिर खामोशी छा गई, फिर सतगुरू जी कहने लगे :-

''मरदाना! भाई तैयार हो।''

मरदाना – सत्य वचन जी।

रूपा – पातशाह! कुछ जल पी लीजिये और थोड़ी पंजीरी खा लीजिये।

सतगुरू – पहले काम।

मरदाना – जी पातशाह! जैसी आज्ञा, काफी यात्रा करके आये हैं, यदि कुछ मुँह में पड़े तो अच्छा है।

सतगुरू (मुस्कराकर) मरदाना! अच्छी बात। सबने कुछ खाया और जल पिया, पर सतगुरू जी अन्तर्यामी नयन मूँदकर बैठे रहे, फिर देखा और कहने लगे :-

मरदाना! वह देख! यहाँ से एक गुँबज सा दिखाई पड़ता है वहाँ पर चला जा। जो व्यक्ति बाहर बैठे हों उनसे कहना कि वाहिगुरू का ढाढी आया है और पीर जी को याद करता है।

आज्ञा पाकर मरदाना चला गया। वहाँ पर चार पाँच पुरुष बैठे थे और गुंबज के द्वार बंद थे। मरदाना ने उन्हें चरणबंदना करके संदेश दिया, आगे से उन्होंने कहा :-

सुन भाई, हम तो चेले हैं, गुरू जी अंदर हैं, वे चिल्ला काट रहे हैं । चालीस दिनों तक वे बाहर नहीं निकलेंगे और उनकी आज्ञा है कि चाहे कुछ भी हो हमें चालीस दिन से पहले किसी बात की भी सूचना मत देना अत: हम कैसे संदेशा दें?

मरदाना – मेरा संदेश मेरा नहीं। यह पीरों के पीर, गुरूओं के गुरू का है, तुम देखते हो मैं जन्म से मुसलमान हूँ और सांसारिक दृष्टि से मेरा गुरू जन्म का क्षत्री है। मैंने कुछ देखा है, तभी तो पीछे लगा हूँ। मैं सत्य कहता हूँ कि वे ईश्वर की ओर से आये हैं। धुर से आये हैं, उन्हें अलहाम होता है और अदृष्ट में वे डुबकियाँ लगाते हैं, उनका संदेश मान लेना तुम्हें तथा तुम्हारे पीर को सुख प्रदान करेगा। वे संसार के ऐश्वर्य, पूजा, प्रतिष्ठा किसी भी वस्तु के इच्छुक नहीं। तृष्णा-रूपी नदी के उस पार निवास करते हैं। यदि तुम खबर दोगे तो तुम पर तथा तुम्हारे पीर पर साईं की कृपा होगी।

चेले – हे साईं के लोग! तू नि:संदेह सत्य कहता होगा, पर गुरू की सेवा तो एक कठिन कार्य है। हमको तो आज्ञा का पालन करना है और किसी तरह भी उन्हें खबर नहीं करनी। यदि तेरे गुरू जी करामाती हैं, उनके पास यदि कोई गैबी ताकत है, तो आप आकर खबर कर दें। हमें गुनहगार बनाने की क्या आवश्यकता है? पीर जिसे श्राप दे दें उसका भला कौन सा स्थान रह जाता है?

मरदाना और जोर लगाकर तथा निराश होकर और थककर लौट आया और सारी व्यथा

आकर 'आशा अंदेशे' के काटने वाले को आ सुनाई। सतगुरू जी सुनकर मुस्कराये और कहने लगे :-

मरदाना! एक बार फिर जाकर कह आ कि 'आज जिस समय सूर्य ठीक शिखर पर आकर चमकेगा उस समय चिल्ला टूट जायेगा। सूर्य, शिखर से नीचे की और बाद में पाँव रखेगा पर पीर का चिल्ला पहले टूट जाएगा ।'

मरदाना फिर चला गया और चेलों को यह संदेश देकर आ गया। चेलों में यह बात हलचल पैदा करने वाली थी। वे अपने पीर को बड़ा भारी करामाती समझते थे। पीर प्राणायामी भी था, श्वासों को भली-भाँति रोकता था। ऋद्धियों-सिद्धियों का शौकीन भी था, इसलिए उसका भय भी बहुत था। अत: जब चेलों ने मरदाना के इस तरह के जोरदार वाक्य सुने तो बातचीत होने लगी कि आज सवेरे ही कौन मर्द आया है जो पीर जी से कह सकता है कि आज चिल्ला टूट जायेगा और दोपहर ढलने से पहले ही टूटेगा। चेलों में से कुछ लोग शहर गये तो यह बात शहर में भी पहुँच गई और थोड़े ही समय में सब ओर फैल गई। उधर मरदाना अपना संदेश देकर सतगुरू जी के पास आ गया। महाराज जी अपने रंग में मग्न हो गये। मरदाना कीर्तन करने लगा और रूपा जी भोजन के धन्धे में लग गये कि अपने प्यारे दाता जी के लिए भोजन तैयार करके कृतार्थ हों।

: ५ :

जब सवा पहर दिन चढ़ गया तब बाबा ने नैन खोले, मरदाना ने भी कीर्तन की समाप्ति की। इस समय नगर की कुछ जनता इकट्‌ठी हो गई थी। इस बात को सुनकर कि बड़ा कोई फकीर आया है जो आज पीर हमज़गौंस का चिल्ला तोड़ देगा। वह ऊजाड़ में बेर के नीचे बैठा है। यह बात सुनकर बहुत-से लोग आये। जब बाबा ने नैन खोले तो एक ने कहा :-

फकीर जी! सुना है कि आप हमजा का चिल्ला तोड़ेंगे, हम शहर के लोग आपकी शरण आये हैं।

रक्षा करने वाले सतगुरू जी बोले-चिल्ले में बैठना या चिल्ला काटना मनुष्य का काम है, फल देना अथवा तोड़ना ईश्वर का काम है। जो उसकी आज्ञा है, वही होकर रहेगा।

लोगों में से एक ने कहा-यह पीर बड़ा करामाती है। नगर पर नाराज़ हो गया है। सारा नगर अब आपकी शरण में है, आप नगर की रक्षा कीजिये।

गुरू जी - रक्षक तो वह आप है, जिसने तुम्हारी और हमारी सर्जना की है। चिंता मत करो।

लोग - जी हमने कुछ भी बिगाड़ा नहीं था।

मरदाना - क्या बात हुई है?

लोगों में से एक ने उत्तर दिया - जी! यहाँ पर बडेहरा जाति का एक क्षत्री है, उसकी कोई संतान नहीं थी। काफी समय तक वह और उसकी पत्नी पीर जी से मिलते रहे और सेवा-पूजा करते रहे हैं और संतान की माँग रहे हैं। एक दिन पीर ने वरदान दिया कि तुम्हारे

घर में संतान होगी और पहला फल मुझे देना[१] । खत्रिय ने, जिसका नाम गीगा[२] है, यह मन्नत मान ली। ईश्वर की कुछ करनी ऐसी हुई कि उसके घर में तीन पुत्र उत्पन्न हुए। वे जब बड़े हुए तो पीर जी ने अपनी मनत की माँग की। गीगा टाल-मटोल करने लगा। टाल-मटोल करते-करते इतने दिन बीत गए। अंत में आज से कोई पच्चीस दिन पहले गीगा बिल्कुल ही मुकर गया और पीर जी से कह दिया; कि वह बेटा नहीं देगा, जो कुछ उनके मन में आये, करें।

मरदाना – भाई सज्जनो! यदि गीगा वचन दे चुका था तो वह वचन देकर क्यों पीछे हटा? यदि भूल की भी थी, तो मर्द का वचन तो उसके साथ निभाना चाहिये।

एक शहरवासी – फकीर जी! बात यह है कि यह गीगा क्षत्रीय हिंदू है और पीर जी मुसलमान हैं। क्षत्रिय अपना पुत्र मुसलमान को कैसे दे? यह क्षत्रिय मिन्नतें कर चुका है कि लड़के के बदले में धन ले लीजिये और बराबर तौलकर चाँदी दे रहा है। रीति भी यह है कि जब फकीरों सिद्धों अथवा अन्य किसी के वरदान से बालक का जन्म हो जाए और मन्नत मानी हो कि ज्येष्ठ फल आपका होगा, तो बालक को लेकर सीधा पीरों के यहां चले जाया करते हैं, और बालक के मोल की भेंट दे दी जाती है और बालक के लिए क्षमा माँग ली जाती है। यह दस्तूर युगों से चला आ रहा है। गीगा का भी यही विचार था, पर पीर जी ने क्षमा नहीं किया और यही कहा कि 'हम तो जीव ही लेगें और जीव के स्थान पर धन नहीं लेना चाहते कदाचित नहीं लेना चाहते। अत: फकीर जी! आज पच्चीस दिन हो गए हैं, न जाने उस समय गीगा का और पीर का कुछ बोल कुबोल हो गया हो हमें इस बात का कुछ पता नहीं। 'सौगन्ध तो अपने जीव की ही दी जाती है, पुत्र अथवा पुत्री की सौगन्ध कोई नहीं दे सकता।' अत: जी! पीर ने कहा अच्छा, न केवल तेरे ही बच्चे मरेंगे, पर इस सारे शहर को नष्ट भ्रष्ट कर दूँगा। बस, यह कहकर चिल्ले में बैठ गये हैं और चेलों से कह गए हैं कि हमें बुलाना मत। किसी तरह भी विघ्न मन डालना। हम अन्दर से तब निकलेंगे जब शहर को नष्ट कर देंगे। यह कह कर आप इस गुँबज के अंदर चले गये हैं और आज्ञा है कि कोई भी उन्हें न बुलाये। सारे शहर ने नाक रगड़ी है और चेलों से कहा है कि एक के स्थान पर दो और बालक ले लीजिये, हम देते हैं, पर शहर पर कहर न बरसाइये। पुराने समय की एक बात पूर्वजों से सुना करते थे कि पूरण नामक सिद्ध के ऊपर इसी स्थान पर कुछ अत्याचार हुआ था, तो शहर दो सौ वर्ष तक कष्ट में रहा था, अब न जाने इनकी बददुआ से 'क्या होगा'? हमारा कोई वश नहीं चलता। हरेक को सिद्धों तथा फकीरों से डर लगता है। हमने रतजगे किये हैं, देवी की भेंटें गाईं हैं, नाथों के रोट पकाए और चढ़ाए हैं, सैकड़ों मन्नतें मानी हैं और प्रसाद बाँटे हैं, पर कोई वश नहीं चला। गीगा से भी बहुत माथा-पच्ची की है। वह भी हठ नहीं छोड़ता। आज त्रस्त शहर में आपके आने का समाचार मिला है, अत: सभी सुख का श्वास लेकर आपके पास उपस्थित हुए हैं, दया कीजिए।

इस समय भाई रूपा ने विनय की कि-

---

१. तवारीख खालसा ।

२. उसका नाम गंगा था और उपनाम गीगा था ।

'भोजन तैयार है।'

सतगुरू – रूपा, मित्र! जिनके अतिथि आवें और वे भूखे रहें और हम भोजन करें? आज भोजन तो हम भोजन करवाकर ही करेंगे। शहर भी व्रतों तथा तपों में है और पीर भी कई दिनों से भूखा कहा जाता है, दोपहर हो लेने दो, फिर उन्हें भोजन करवाकर स्वयं करेंगे।

मरदाना – पातशाह! कहते हैं पच्चीस दिनों से भूखा है।

सतगुरू – मरदाना! यह लोग नेउली, नेती-धोती आदि कर्म करके, शरीर का मैल धोकर बैठते हैं और साथ ही बादाम रोगन आदि रख लेते हैं। जितना-जितना श्वास साधते हैं, उतना ही उतना थोड़ी-थोड़ी देर बाद बादाम रोगन का घूँट लेकर उसके आसरे वक्त काटते हैं। ध्यान को उस ओर लगा लेते है जिस बात की कार्यसिद्धि की आवश्यकता होती है।

: ६ :

सूर्य शिखर पर आ गया, दोपहर हो गई, चेले मठ के बाहर बैठकर कौतुक की प्रतीक्षा कर रहे थे कि अब क्या घटित होता है। चिल्ला टूटता है कि चिल्ला तोड़ने वाला फकीर पराजित होकर भाग जाता है। उधर लोग कलेजे मुट्ठी में लेकर प्रतीक्षा कर रहे थे कि शहर की रक्षा होती है अथवा पीर का श्राप सिर चढ़ता है। सभी कलेजे धड़क रहे थे और इकट्ठे होकर सकुड़े पड़े थे। कोई जल की घड़ी की ओर देख रहा था और कोई रेत की घड़ी की ओर टकटकी बाँधकर बैठा था, कोई घड़ियाल के घण्टे की ध्वनि सुनने के लिए हवा में कान लगाकर बैठा हुआ था। शिखर दोपहर ठीक शिखर पर आ गई। घड़ियाल ने दोपहर का पहला घण्टा बजाया। अभी घड़ियाल में से दूसरी आवाज़ निकली ही नहीं थी कि जिस गुंबज के अन्दर पीर जी चिल्ला काट रहे थे, उसमें से एक कड़क की सी भयानक आवाज़ आई, गुँबज ऊपर से फटकर चिरे हुए खरबुज़े की भाँति दो टुकड़े हो गया। बीच की ईंटें गिर पड़ीं और एक दराड़-सी पड़ गई अब सुर्य की धूप उस दराड़ में से अंदर चली गई।[१] फटने की आवाज तथा एकाएक प्रकाश के प्रवेश ने आँखें खोल दीं। चिल्ला टूट गया। पीर जी के नैन खुल गये, ध्यान श्राप से हट गया ओर गुंबज की दरार की ओर जा पड़ा। शरीर में कम्पन आया कि कहीं सारा गुंबज ही सिर पर न आ पड़े। इस भय तथा हैरानी ने अधीर कर दिया और आप किवाड़ खोलकर व्याकुल होकर बाहर निकले। वहाँ पर चेले व्याकुलता की दशा में खड़े थे और शहर के लोग दूर-दूर ऊँचे-नीचे स्थानों पर दृष्टि जमाये खड़े थे। जैसे ही कड़क-फटक की आवाज़ आई पीर जी साँस फुलाये हुए और व्याकुल होकर बाहर निकल आये, वैसे ही हज़ारों कण्ठों से आवाज आई, हां मस्ती तथा प्रसन्नता की आवाज़ आई, उल्लास तथा सफलता की शक्ति से भरी हुई और धन्यवाद की मधुरता से भरी हुई मीठी-मीठी आवाज़ आई-

१. तवारीख सरदार खज़ान सिंह, पृष्ठ ७५ ।

धन्य गुरू नानक,
धन्य गुरू नानक,
धन्य गुरू नानक,

'धन्य गुरू नानक' की आवाज गूँजी और पीर जी के कानों में पड़ी। गुरू नानक का नाम सुन रखा था, पीरों फकीरों में महिमा भी सुनी हुई थी, अपने गुरू से पता चला था, 'एक तपस्वी अवतरित हुआ है, नानक उसका नाम है।' हाँ, फकीर लोगों ने कहा था कि 'दौलत खां लोदी के धन का त्याग करके मलिक भागों के धन से लोभ-रहित होकर तथा अपने ईश्वरीय रंगों में फिर रहा है।' हो सकता है वही तपस्वी अब यहाँ पर आ गया हो जो प्रत्यक्ष शक्ति वाला है और उसे जनता की जिह्वा कह रही है-

धन्य गुरू नानक,

.....हो सकता है, शहर इसी 'धन्य गुरू नानक' की रक्षा में आ गया है। कभी-कभी सुगन्धित होता है वन, कभी-कभी सुगन्धित होता है मृग कस्तूरी जाति का ओर कभी-कभी सुगन्धि फैलाता है कोई पुरुष जिसके सिर पर ईश्वर का हाथ होता है। इसी तरह फकीर कहते हैं कि कोई प्रकट हुआ है ईश्वरीय रंगों में तपा नानक। पीर इन सोचों में खड़ा था। दुर्बलता तथा चिन्ताओं के कारण मीठा-मीठा कम्पन था कि चेलों ने सवेरे की कथा और गुरू नानक का संदेश सुनाया। सुनकर बोला, ''तुम ने भूल की थी, ईश्वरीय पुरुष का संदेश अवश्य ही देना चाहिये था। फकीर काला नाग होता है, इसके काटे हुए की औषधि नहीं; इसके फुंकार का कोई मन्त्र नहीं, अच्छा, जो कुछ होना था वह हो गया।''

चेले – साईं जी! दाता जी! हम आपकी आज्ञा के कारण डरते रहे कि कहीं आज्ञा का उलंघन पीर के श्राप का कारण न बने।

पीर – और अब आज्ञा का पालन पीर के सिर पर अभिशाप ले आया है। अच्छा, जो हुआ सो हुआ। जिस फकीर ने मठ फाड़ डाला है, वह न जाने और क्या करेगा? अब हठ और शर्म गई आखिर मैं भी तो गुरू वाला हूँ, पूरण पुरुषों के आगे झुकना कोई बुरी बात नहीं। मुझे रास्ता बताओ कि तपस्वी नानक कहाँ पर है। मुझे ले चलो, जो चलकर दर्शन करूँ।

यह सुनकर चेले उसे साथ लेकर चल पड़े। पर उससे चला न गया। बैठ गया यों बहुत धीरे-धीरे दो चेलों की ओट लेकर आप बेर के नीचे जहाँ पर सतगुरू जी बैठे थे, जा पहुँचे। दर्शन करके पीर का हृदय शान्त हुआ। क्रोध, भूख तथा तपस्या के कारण जो भीतर जलन हो रही थी, वह निकल गई। हमज़ा! 'ईश्वर के पुरुष' का यह पहला चिन्ह है। मन ने माना कि यहाँ पर ईश्वर का रंग है, आगे बढ़ा, सिर झुकाया, गुरू जी ने आदर सहित बैठाया और कहा :-

पीर जी! ईश्वर, पिता तथा सृष्टि उसकी संतान, फकीर ईश्वर का जीव, अपनी सन्तान को प्यार करे कि मारे?

पीर – साँप द्वारा काटी गई अँगुली को काट देना अच्छा होता है। मदिरा-भरे गन्ने को आग में डाल देना अच्छा होता है झूठी सृष्टि तथा ईश्वर के फकीरों के साथ मज़ाक करने वाली जनता को मारना ही अच्छा होता है।

ईश्वरीय प्यार वाले गुरू जी ने कहा :-

पीर जी! बिगड़े हुए पुत्र को संवारना भला कि मारना भला?

पीर – (देखकर, घबड़ाकर) कपूत से तो निःसंतान ही अच्छा है।

गुरू जी – संवारने से ऊब जाना भला कि संवारने से कभी न ऊबना भला?

पीर – धुर से मारे हुए कब संवरते हैं?

गुरू नानक – धुर से तो कोई भी नहीं मारा जाता है, जो कोई भी मारा जाता है वह अपने कर्मों के कारण ही मारा जाता है। हाँ, जो धुर से टूट गया उसे 'धुर का मारा' कहा जाता है। अतः टूटे हुओं को दोबारा धुर के साथ लगायें, टूटे हुओं को जोड़ें, विछुड़ों को मिलायें! माँ की गोदी से भागकर भटकने वाले बालकों को झाड़-फूँककर माँ की गोदी में डालें। बुरे बच्चों को पीटकर भी माँ का हृदय शीतल नहीं होता।

पीर – क्या कहूँ?

गुरू नानक – सत्य।

पीर – सत्य, सत्य, सत्य, सिआलकोट शहर कुफ्रों का है। जिन्होंने पूरण जती के हाथ काट दिये, उन पर क्या भरोसा?

गुरू नानक – सारा शहर ही? क्या सभी लोग?

पीर – यहाँ तो अवा का अवा ही खराब है।

गुरू नानक – ऐसा कभी नहीं हुआ। भले बुरे मिले रहते हैं। हाँ, जगत में ग्लानि की प्रधानता है, प्रेम नहीं, पर नेकी बदी तो साथ-साथ रहती हुई दिखाई पड़ती हैं।

पीर – यदि आप भी परीक्षा लें तो आपको पता चले, हम आप-बीती सुनाते हैं, तपस्वी जी।

यह कहकर नयन मुँद गये और फकीर एक गहरी चिन्ता में पड़ गया। सतगुरू ने मालिश की आज्ञा दी और फिर होश आया। फलों का रस पिलाने की आज्ञा दी, फिर होश आया फिर दो घुँट फलों का रस पिलाया। ठण्ड तथा तपिश के अन्दर से इस तरह चक्कर चलते थे जैसे एक परात में ठण्डे तथा गर्म जल की दो टूटियों का जाल पड़ता है और जल चक्कर लगाता है। फकीर कुछ गर्म होकर फिर कहने लगा-

हाँ, स्वामी जी! यदि तू वही नानक तपस्वी है जिसके बारे में सुना है कि वह कलियुग में नाम के भीतर प्रकट हुआ है और सुगन्धि आती भी है, तो शहर की परीक्षा ले।

सतगुरू – मरदाना! ले दो पैसे ले जा, शहर से एक पैसे का सच्च ओर एक पैसे का झूठ ले आ। कहना, ठीक-ठीक सौदा दे।

मरदाना गुरू नानक के कौतुकों को जानता तो था, पर यहाँ पर प्रतिदिन नया कौतुक घटता था जो मरदाने को सदा एक नये आश्चर्य में डाल देता था। सो चकित होता हुआ, आज्ञा पाकर चल दिया। प्रत्येक दुकान पर फिरा। पहले तो सभी दुकानें खुली ही नहीं थीं। लोग उधर को ही जा रहे थे जिधर से वह आया था, क्योंकि गुंबज के फटने तथा फकीर के चिल्ले के टूटने पर गुरू नानक के वाक्य के पूरे होने का समाचार शहर में पहुँच चुका था। पर मरदाना फिर भी फिरा। जिसे माँगे वही हँस पड़े। कोई मज़ाक करता, कोई टाल देता, कोई हाथ जोड़ देता। सहनशीलता के समुद्र के पास बसने के कारण मरदाने में भी सहनशीलता थी, इसलिये

घबड़ाया नहीं। अंत में एक दुकानदार ने दो कागज़ों पर कुछ लिखकर दे दिया और कहा–यह सच है और यह झूठ है। यह कागज़ लेकर मरदाना लौट आया और सतगुरू जी के चरणों में लाकर रख दिया।

: ७ :

श्री गुरू नानक देव जी ने कागज़ हमज़ागौंस के आगे रखा और कहा–लीजिए पीर जी पढ़ लीजिए। पीर ने पढ़ा:–

'मरना सच्च', 'जीना झूठ है।'

'जिस के हृदय में यह बात बस गई है, वह भुलावे में नहीं पड़ता।'

सतगुरू – बताइए पीर जी, यह लिखने वाला भी झूठा है?

पीर – नहीं जी।

गुरू जी – जिस शहर में एक भी सूझ वाला हो, उस पर कहर?

पीर – नहीं जी।

गुरू जी – जो करे सो भरे, दूजा क्यों मरे?

पीर (लज्जित होकर) ठीक है। करे गीगा और भरे भी गीगा।

गुरू जी – आपने वरदान दिया था यह मेहरबानी थी। अब आपका भला हो, जिन्होंने दया की थी, तुम्हारे भाग में क्रोध आए और मन विपत्ति की दशा में क्यों जाये? भजन, भक्ति प्यार का प्रयोग छोड़कर आप क्यों क्रोध में जायें? क्रोध में जाने से अपने मन को कष्ट होता है।

सोचो, वचन देकर कौन फिरा, इतने दिन की कैद, भूख, तप, क्रोध, यह दण्ड आपने किस पाप के बदले में प्राप्त किए? इस आपे पर, जो निअपराध था उस पर क्यों अत्याचार और अन्याय किया है? यह तो हो गया, करे गीगा और भरे बीबा।

पीर (घबड़ाकर) दरवेश की विपत्ति, उसके प्राणों की विपत्ति।

गुरू ज़ी – वह फकीर ही नहीं जो विपत्ति के हाथों बिकता है, फकीर का स्थान शीतलता का है, ठण्ड है और एकाग्रता है।

वह प्यार में किस तरह है, जो घृणा के हाथों बिक जाये? वह ईश्वर का कैसे हुआ जो सदैव दयालू नहीं? मन का मारना कठिन है, भूल से बचना भी कठिन है, पर फकीर को तो इन्द्रियों का वध करना है, उन पर आरूढ़ होना है, आप को तो इन्द्रियों की सवारी नहीं बनना। फकीर को मनोवेग के हाथों में लगाम नहीं पकड़ानी । मन की लगाम को हाथों में रखकर सदैव ऊँचे घर में खिलना है।

अब सतगुरू जी का रंग बदल गया, नैन ऊँचे हो गए, लालिमा छा गई और सारा शरीर स्वर किये हुए जंत्र के तार की भाँति खिंच गया। मरदाना रंग को समझता था, उसने रबाब छेड़ दिया। जगत को संगीत की लहरों में, अंतस की सुन्दरता में, सुख में तथा प्यार में रखने के

लिए आए दाता जी से रमकली राग में शब्द उच्चारण हुआ, ईश्वरीय ध्वनि उठी, आपने गाया :-

जितु दरि बसहि कवनु दरु कहीअै दरा भीतरि दरु कवनु लहै।।
जिसु दर कारणि फिरा उदासी सो दर कोई आइ कहै।।१।।
किन बिधि सागरू तरीअै।
जीवतिआ नह मरीअै।।१।।रहाऊ।।
दुखु दरवाजा रोहु रखवाला आसा अंदेसा दुइ पट जड़े।।
माइआ जलु खाई पाणी घरू बाधिआ सत कै आसणि पुरखु रहै।।२।।
किंतै नामा अंतु न जाणिआ तुम सरि नाही अवरू हरे।।
ऊचा नहीं कहणा मन महि रहणा आपे जाणै आपि करे।।३।।
अब आसा अंदेसा तब ही किऊ करि एकु कहै।।
आसा भीतर रहै निराशा तऊ नानक एकु मिलै।।४।।
इनि बिधि सागरू तरीअै।।
जीवतिआ इऊ मरीअै।।१।।रहाऊ दूजा।।३।।

(रामकली महला १)

इस शब्द की मीठी ध्वनि, रामकली की प्यारी-प्यारी वैराग्यमय गूँज, स्वच्छ शब्द, सच्चा अर्थ, मरदाना का जंत्र बजाना, यह सभी ऐसा चित्र बाँध गए कि शान्ति एकान्त, वैराग्य तथा सच्ची उदासी छा गई। पास बैठे हुओं के कलेजों में अपने अवगुणों की सूझ की छुरियाँ फिर गईं। पीर जी पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा और वह जो फकीरी का वास्तविक आदर्श है, अपने आप दिखाई पड़ गया। जहाँ पर फकीर फँस रहा था, वह पंक दीख पड़ा। उसके आप ने अपनी भूल देख ली।

'फकीर' ईश्वर के द्वार के दर्शन के प्रेमी[1] का नाम है। जो आप दर्शन का प्रेमी हो, औरों में दर्शन की इच्छा उत्पन्न करे, वह पीर है, सिद्ध है, अन्यथा कुछ भी नहीं।

ईश्वर के द्वार के दर्शनों की प्राप्ति के मार्ग में बाधाएँ हैं :-

दु:ख (रोग तथा क्लेश)

क्रोध (गुस्सा, ईर्ष्या, जलन, बुरे कर्म, हठ, होड़, शत्रुता)

आशा, तृष्णा।

अंदेशा (चिंता, सोचें, भय वाली सोचें)

माया (पदार्थ, संबंधियों मित्रों के मोह)

इन पर विजय प्राप्त करना, जीते जी मरना है। यह जीते जी मरना सागर पार करने के समान कठिन है।

वाहिगुरू का निवास 'सत्य' के आसान पर है। ('आशा भय' पर विजय प्राप्त करना इस आसन के मार्ग पर चलने के लिए आवश्यक है। जो कोई फकीर कहता है कि मैं ईश्वर से मिला हूँ, पर है वह आश तथा भय में, तो वह ठीक नहीं कह रहा।)

आशा में निवास करता हुआ दिखाई तो पड़े, पर सुरत उसकी निराशा में हो, तब वह

---

१. दर दरसन का प्रीतमु होवै।। (आसा महला १)

किसी हठ अथवा क्रोध में नहीं फँसेगा। गप्पें नहीं हाँकेगा कि हमने आपे पर विजय प्राप्त कर ली है। यदि अंदर रस भर जाए तो उसे अंदर ही सहन करना है और आज्ञा पर दृष्टि रखनी है कि जो कुछ हो रहा है, उसे मेरा ईश्वर ही कर रहा है। मैं उछलकर किसे सुनाऊँ। इस तरह का समदरसता का भाव मन में हो, व्यवहार, प्यार तथा आप प्रकट न करने का हो, तब जीवित मृतक होता है और संसार सागर को पार करता है।

गौंस ने अब चरणों पर सिर रख दिया और कहा :-

हे गुरू! लोग तुझे तपस्वी कहते हैं पर मैंने तुझे ईश्वरीय तेज का दीपक रूप देखा है, मेरे अंदर से आशा तथा अंदेशे (भय) की जड़ काट दे।

सतगुरू नानक जी कहा-पीर जी! इस जन्म का लक्ष्य परमेश्वर की प्राप्ति है। स्वामी ने, जो अकथनीय तथा अगोचर है, अपनी अगोचर आज्ञा से हमारा सृजन किया है। यदि हम उससे मिले हुए हैं तब तो हम हरे, लहलहाते हुए, सच्चे तथा स्वच्छ हैं, यदि हम उससे बिछुड़ गये हैं, तो फिर हम दृष्टमान के मोह में फँसकर, टूटी हुई डाली की भांति शुष्क काठ अथवा स्त्रोत से बिछुड़े हुए पानी के गड्ढे की भांति दुर्गंधि पूर्ण हो जाते हैं। फकीर को चाहिये कि वह अपने अंतस को निरंतर ईश्वर के साथ जुड़ा रखे। याद इसकी डोरी है। आशाएं तथ भय, प्रत्येक बात जो दृष्टमान में फँसा दे, वह साईं से बिछोड़ने वाली हैं, वे वर्जित हैं। भागना भी नहीं चाहिये बीच में ही रहना चाहिये और सदैव चढ़ती कला में तथा प्रभु की स्मृति में विचरना चाहिये। अब जबकि प्रयोजन यह है और यहां का और वहां का फल सुख है तो फिर ऋद्धियां सिद्धियां और अपना प्रताप बनाने का कौन-सा स्थान है। 'मान महत्त्व और दर्ब' तो फकीरों के पीछे फिरते हैं। फकीरों को इनसे अपने-आपको सुरक्षित रखना चाहिये न कि 'मान' महत्त्व और दर्ब' के पीछे फिरना चाहिये। यदि कोई साधु सिद्ध, पीर, फकीर, संत महात्मा है, वह मान तथा महत्त्व में बहता है तो वह गृहस्थी है और निम्न वर्ग का गृहस्थी है, यदि वह आय बढ़ाकर प्रसन्न होता है और लोगों को खिलाने के ढोंग से धन इकट्ठा करता है और वरदान-अभिशाप देकर रोब जमाता है, तो वह पक्का संसारी है। वह धर्म का रक्षक नहीं। इस तरह के फ़कीरों ने जगत को दुःख में डाल रखा है। फकीर वही है, जो सुखी है। पीर-फकीर साधक संत महात्मा वही है जो स्वयं ईश्वर का नाम जपता है और दूसरों से जपवाता है। जो आप आस-अंदेसे से परे है और दूसरों के भी आस-अंदेसे काटता है, पर जो वरदान तथा अभिशाप के अधीन धन इकट्ठा करने के ढंग बनाने और सम्पत्ति बढ़ाने के चक्कर में है, वह ईश्वरीय मनुष्य नहीं, वह गृहस्थी है और उजाड़ में दुकानदारी करता है। जगत भूल करता है और इसीलिये जगत में स्वच्छ बुद्धि का अभाव हो गया है, प्रेम नहीं रहा, जीवन नहीं रहा, उच्चता तथा सच्चाई नहीं रही। सच्चाई के बिना कोई भी स्वच्छ नहीं और सच्चाई जैसा कोई भी रस और सुख नहीं । शिष्यत्व जिसका भाव केवल चेले बनाना और धन की वृद्धि हो उसका त्याग कर दीजिए। निर्वास रहिये और अंदर को स्वच्छ कीजिए। अंदर के दुःख-सुख को देखिये। अंदर को 'प्रभु की लौ में लगा' अपनी बात बनाते चलिये और इस रंग से सभी संकल्पों, इच्छाओं और कर्मों को बंधन समझोगे तो तुम सूखी रहोगे। सुखी व्यक्ति संसार को सुख देता है और बंधे हुओं के बंधन तोड़ता है, उससे सदैव प्यार तथा दया की वर्षा बरसती है।

फिर सतगुरू जी ने गीगा का उद्धार किया और उसे सुमति प्रदान की :-

माइिआ मोहि सगल जगु छाइआ।।
कामणि देखि कामि लोभाइआ।।
सुत कंचन सिऊ हेतु वधाइआ।।
सभु किछु अपना इकु रामु पराइआ।।१।।
अैसा जापु जपऊ जप माली।।
दुख सुख परहरि भगति निराली।।१।।रहाऊ।।

(प्रभाती महला १)

गीगा पर सतगुरू जी का अनुग्रह हुआ तो पत्नी पुत्र आदि का मोह कच्चा लगा। जिस माँग के लिये फकीरों के पीछे भटकता रहा, वह मांग थोथी लगने लगी। जो वस्तु परमेश्वर के प्रेमियों से लेने वाली थी वह था ईश्वर का 'नाम', वह 'हरि प्रेम' था, वह उसने न लिया। अब यह भूल उसकी समझ में आकर छूट गई तो सतगुरू के चरणों पर झुककर अपना कल्याण मांगा। गुरू सच्चे पातशाह ने उसे नाम प्रदान किया और उसकी पत्नी तथा पुत्रों ने भी नाम धारण किया।

इतने में तीसरा पहर हो आया, पीर जी नाम दान तथा फकीरी के वास्तविक उपदेश को प्राप्त करके कृतार्थ हो चुके थे। पर रूपा जी अधीर हो रहे थे कि सतगुरू जी अब कुछ खायें; अत: उसने फिर विनती की। सतगुरू जी ने आज्ञा दी कि सबको खिलाओ। जो कुछ तैयार था वह सबको खिलाया गया। नगर के लोग भी प्रसाद ले लेकर आ रहे थे। गुरू जी ने सब कुछ बाँट देने की आज्ञा की। हमज़ा गौंस को आज्ञा हुई कि वह वहीं पर ही निवास करे और अपना जन्म सफल करे, नाम जपे और जीवन को जीते। हमज़ा सदैव यहाँ पर ही रहा। जब सतगुरू जी चले गये तो इस बेर के सामने अदब के साथ ध्यान लगाकर बैठा करता था।[१]

: ८ :

सिआलकोट शहर में उस रात घर-घर दीपमाला हुई। घर-घर खुशी के बाजे बजे। हमज़ा गौंस को सुमति आने पर केवल गीगा की ही रक्षा नहीं हुई बल्कि मुसलमानी मत की ओर से लोगों का उदासी का भाव बढ़ गया। लोगों के हृदयों में मुसलमान फकीरों के प्रति श्रद्धा बिल्कुल ही कम हो गई। इस समय 'सिद्ध तथा पीर' पंजाब में पंजाबियों के मनों के मालिक थे और ये दोनों सिद्धियों तथा नाटकों चेटकों में व्यस्त रहते थे। वाहिगुरू की प्रेम भक्ति, ऊँचा जीवन तथा रस-जीवन किसी के पास नहीं था, बल्कि सभी चेटकी हो रहे थे और नाना प्रकार के दिखावे के अथवा वैसे ही हठों-तपों में फंसे पड़े थे। लोगों के मन इस तरह के नेताओं के कारण और मुसलमानी शासन के दबाव के कारण दबे रहते थे। सच्चाई, स्वतंत्रता, ईश्वरीय प्यार तथा उपकार का प्रवाह बहुत कम था। सतगुरू नानक के हर कौतुक ने लोगों में जीवन का प्रवाह प्रवाहित किया, सृष्टि में सच को दृढ़ किया, प्यार बसाया, भक्ति दी और 'मर्दलोग'

---

१. बेर के नीचे जहां पर दाता जी बैठे थे, उसी समय से चबूतरा बना हुआ है, गुरुद्वारा बाद में बना, जो स्थान अब तक (पाकिस्तान बनने से पहले) स्थित है। सिआलकोट के समीप है, परे हमज़ा का स्थान भी है और गुंबज भी उसी तरह है और बीच छत में दरार भी उसी तरह है।

पैदा किये। हमज़े के सुधार का सारे शहर तथा इलाके के सुधार पर बहुत असर पड़ा। तब से ही सिक्ख मत की बुनियाद सिआलकोट के इलाके में पड़ गई।

घर-घर की खुशियों में रात व्यतीत हुई। अगले दिन और सूफी फकीर, सिद्ध आदि तथा पूरन के कुए के महंत और साधु महिमा सुनकर आये, भेंट की और वार्तालाप करके कृतकृत्य हुए। सतगुरू के 'सच' सफाई और भीतर-बांहर की एकता के प्यार से सभी प्रेम प्राप्त करके गये। इन लोगों के हृदयों में सुख तथा साहस बढ़ा।

दूसरे दिन मूला[१] सतगुरू जी के दर्शनों के लिए आया जिसने मरदाने को लिखकर दिया था कि मरना सच्च है ओर जीना झूठ है। अब उसे भी पता लग गया था कि वह व्यापारी कौन था जो दो पैसे देकर सच्च तथा झूठ खरीदता था। यह सज्जन कुछ वैरागी तथा कुछ विचारवान था। आचरण का भी अच्छा था, परन्तु जीवन-कणिका का ज्ञाता नहीं था। कीर्ति सुनकर यह सज्जन भी दर्शनों के लिए आया। सतगुरू जी ने पहचाना कि यह मृत्यु को सच्च और जीवन को झूठ जानने वाला है। इसकी मति पर पाप का परदा नहीं पड़ना चाहिये। पर नाम के बिना अहम का परदा नहीं हटता। अब इस पर नाम का रंग चढ़े तो अच्छा होगा। अत: दाता ने उसे नाम दान दिया और कहा-

'सो जीविआ जिसु मनि बसिआ सोइ।।
नानक अवरु न जीवै कोइ।। (माझ महला १)

मूला के हृदय में जब नाम का प्रकाश हुआ तो उसके मन में सुख आया। अंतस् में एक रस की लहर तथा आन्तिरिक सौंदर्य की प्रतीत की लहर दौड़ गई। आप ऊँचा और स्वच्छ हो गया। रात-दिन नाम में लीन हो गया। इस रस के आने से मूले की समझ में आया कि वैराग भला तो है पर वह माया का मैल धोने का साबुन मात्र है। वैराग्य-'प्राप्ति' नहीं है। हाँ वैराग्य भलाई है आत्म-रंग की लाग भी है, पर रंग तो 'नाम' ही है। नाम की कणिका जब जीवन कणिका के अंदर घुसती है तब आपा रस-रूप होकर जागृत हो उठता है आपे में ऊँचा होकर 'आपे से भिन्न में फंसता नहीं, रसिया तथा सुखी हो जाता है। मूले को सतगुरू के चरणों से इतना प्रेम हो गया कि वह घर से उदास हो गया। कीर्तन, सत्संग और ईश्वरीय ज्योति तथा गुरू नानक के दर्शन ने उसे मोहित कर दिया। जब सतगुरू जी सिआलकोट से चले तब मूला उनके साथ ही गया और कई बार देश-परदेस में सेवा करता रहा तथा कृतार्थ होता रहा और

---

१. 'मूला नाम के कई सिक्ख हुए हैं। १. मूला चोणा, माता सुलक्षणी जी का पिता। २. मूला किराड़ जिसे पत्नी ने छिपाया था कि कहीं गुरू जी के साथ निकल ही न जाये और उसे अंधेरी कोठरी में साँप काट गया था। ३. मूला खत्रिय जो सतगुरू जी के साथ काबुल गया था और सतगुरू के कहे हुए गुरुवाणी के कई शब्द इसने मुड़िया में लिखे थे। भाई मनी सिंघ जी ने जन्मसाखी में तीन प्रसंग मूला किराड़ के ही दिये हैं। इसी ने दो पैसों का सच्च झूठ लिखा था, यही काबुल साथ गया था और यही चौथी उदासी (गुरू जी की) के समय छिप गया था और साँप के काटने से इसकी मृत्यु हो गई थी। पर आपने अपनी पुस्तक 'भगत रत्नावलि' में कीड़ जाति के खत्रिय का प्रसंग अलग दिया है, जिसके घर में एक चोर ने सिक्ख का भेस धारण करके आभूषण चोरी किये थे, पर मूला ने उसका रहस्य छिपाया था। अन्य तीन-चार मूला नामक सिक्ख गुरू अर्जुन साहब के समय में हुए हैं।

नाम के प्रचार में सेवादार बना रहा। जब सतगुरू जी काबुल गये थे तब मूला सतगुरू जी के उच्चारण किये हुए हुए शब्द लिखा करता था।

जब गुरू बाबा ने रूपा हो हड़पा के इलाके घूम-घूमकर सच का सिंहनाद करने तथा नामदान प्रदान करने के लिए वहीं पर छोड़ दिया और आप गुरू बाबा जी मरदाना तथा मूला को साथ लेकर पंजाब के दक्षिण की ओर चल पड़े।

१. हीरा – जन्म[१]

जैसे बादल धीरे-धीरे चलता है, कहीं कहीं क्षण भर ठहरता है। ठण्डी छाया देता हुआ जाता है और प्यारी बौछार लगाता जाता है। इसी तरह सतगुरू नानक देव जी आये, जिन्होंने दया की वर्षा की। आपने जलते हुए जगत को शीतल किया और अमूल्य सुख प्रदान किया। वह गुरू नानक दयालु तुष्ट हो होकर बरसता है कृपालु बनकर घर-घर में फिरता है। 'सच्च' का सिंगी नाद बाजाता है जो मृतकों में प्राण भरता है। भटकने वालों के हृदयों को मोड़ता है और सच्चे ईश्वर के साथ जोड़ता है। वह धुन्ध-गुबार को निकाल देता है और भवसागर से पार कर देता है। आइए उसकी छाया में बैठिये और उसकी भीनी बौछार को लीजिये। रस-रंग में रांते हो जाईए और ऊँचे प्रेम में मस्त हो जाइए। इस हीरे-जन्म को सुधार लीजिये जिससे इस बार -कहीं खाली न चला जाये।

सूचना : हमज़ा गौंस वाली कथा पंजाब के सभी फकीरों तथा सिद्धों में दावाग्नि की भांति फैल गई। सतगुरू जी को भी, इन लोगों के किले कोटों, का गिन-गिनकर पता चलता था। जहां धर्म प्रचार के नाम पर कट्टरता चलती थी, या ईश्वर के नाम के नीचे घृणा का प्रचार होता था, तब आपके कोमल हृदय में मियां मिट्ठा की भनक पड़ी और उसे सुमार्ग पर चलाने के लिए तथा आत्मिक उन्नति में एक और ऊँचे पद पर चढ़ाने के लिए, आप उस ओर चल दिये।

---

१. यहाँ पर लेखक के गीत का अनुवाद प्रस्तुत है ।

४८ मियाँ मिट्ठा के साथ गोष्ठी

: १ :

हिन्दुस्तानियों को प्रजा बने और पठानों को राजा बने चाहे चार शताब्दियाँ भले ही बीत चुकी थीं पर महमूद गजनवी द्वारा खींची गई पठानी तलवार अभी म्यान में नहीं गई थी। हाँ वह तलवार जो धर्म के नाम से खींची गई थी, अभी भी उसी 'तलवार तोड़'[१] नाम से खिंची खड़ी है। एक ओर तो यह तलवार हिन्दुस्तान को मुसलमानी मत में ढकेल रही है और दूसरी ओर फकीरी जुबान-अर्थात् उपदेश की तलवार, म्यान में ही बसती और वहीं से वार करती हुई, हिन्दुस्तान की इसलामी मत में दाखिल कर रही है। शरही इसलाम ने वेदांत तथा योग का कुछ अंश अपने में लेकर और 'सूफी' अक्षरों को सिरनामा उस पर लगाकर तथा मानवीय आवश्यकताओं की दरारों को देख-देखकर अपने धार्मिक मन्तव्यों को इन दरारों में डाल-डालकर हिन्दू चट्टान के टुकड़े-टुकड़े करके तोड़ने और अपने में जज़्ब करने का नया ढंग भी शताब्दियों से जारी रखा है। धागे-तावीज़, मंतर-जंतर, झाड़-फूँक, ओझाई, भूतों को कीलना, दाँतों की पीड़ा के लिए कील गाढ़ना, शीलता के लिए भभूत देना आदि बातें भी अब मुसलमान मुल्ला तथा फकीर कर रहे हैं । माताओं के 'पुत्र प्रेम' के वलवलों को ठण्डा करने के बहाने परिवारों में घुस जाने का और आगे आ जाने का ये लोग एक साधन बन रहे हैं और जब भी दाव चल जाता है तभी लड़का या लड़की, पत्नी या पति जो भी प्रभाव में आया उसी को इसलामी मत में दाखिल कर रहे हैं। यदि आगे से कुछ शोर-शार ज़ोर-जार हुआ तो सदा से खिंची हुई इसलामी तलवार शरह के मसले और काज़ी के दिये गये फतवों[२] की दशा में-झट बिजली की तेज़ी के साथ पड़ने को तैयार है।

यद्यपि पठानों की कई घरेलू लड़ाईयाँ हो चुकी हैं, और गुलाम, खिलजी, तुगलक तथा लोधी कई वंश राज्यसिंहासन के लिए बारी-बारी से एक-दूसरे का वध करते हुए आपस में लड़ते-झगड़ते रहे हैं पर हिन्दवासियों ने इनकी गृहकलह से कोई लाभ न उठाकर अपने-आपको नही संभाला। एक बार जो गिरे सो गिरे, फिर न तो होश ही संभाला, और न पासा ही पलटा। चोटें पड़ती गईं और वे उन्हें पीड़ा की हाय-हाय तथा रोने के क्षीण स्वर के बीच सहन करते गये, न तो उनमें एकता आई और न सम्मिलित कार्य के लिए बलिदान का अंकुर ही फूटा।

हिंद की प्रजा का क्या हाल है? इनमें कोई एकता नहीं; 'हम हिंद वासी हैं' इस प्रकार की कोई भावना नहीं। मेहनत-मज़दूरी तथा व्यापार-कार्य में अपने दिन किसी तरह अच्छे

---

१. तलवार का तोड़ने वाला अर्थात जो तलवार को तोड़ दे, जो तलवार की आवश्यकता को समाप्त कर दे। वह हैं धर्म, दीन अर्थात तलवार दीन के नाम पर खींची गई थी ।

२. इसलामी धर्मानुसार किसी बात के उचित अथवा अनुचित होने के सम्बन्ध में दी जाने वाली व्यवस्था ।

व्यतीत हो जाएँ, इसी चक्कर में हरेक व्यक्ति है और यह कहकर स्वार्थ का रूप धारण करके आपसे में दरार डाल रहा है। विद्या-सर्व साधारण की विद्या-है नहीं। यदि कोई चोटी का विद्वान है तो वह शुष्क वेदांत के-हृदय तथा शरीर को शिथिल तथा उमंग-रहित कर देने वाले-प्रभाव के नीचे एक और प्रकार के ख़ुदगरजी के जीवन में जी रहा है। जानदार की भाँति नहीं पर वनस्पति की भाँति खा-पी रहा है और प्रफुल्लित हो रहा है; पर बिना साहस के और बिना जीवन प्रवाह के मर रहा है। हाँ, खोखला निरा खयाली वेदांत विद्वानों को नपुंसक तथा सहानुभूति से रहित एक 'पेड़-पौधे'-जैसा भाव-रहित जीवन दे रहा है। फकीर, गोसाई, साधु, भिक्षु और रमते उपदेशक, प्राण डालने, आचरण ऊँचे करने, उच्च जीवन का प्रवाह प्रवाहित करने के स्थान पर केवल भिखारी हो रहे हैं। भेषमात्र से या श्राप के डरावे से, आशीर्वाद तथा वरदान के लोभ से, अथवा धागे, जंतर, वीराधन के तरीकों से लोगों को पीड़ा हरने के भुलावे दे-देकर केवल पेट-पूजा की कार्यसिद्धि कर रहे हैं। किसी साधु ने आमों के देश में किसी सुन्दर सुहावने ठिकाने पर बैठकर चौमासा व्यतीत कर लिया, किसी रमणीय पहाड़ी गुफा या किसी और गर्म स्थान पर सर्दी के दिन व्यतीत कर लिये, किसी ने किसी सुहावनी नदी के किनारे अथवा पर्वतों के शिखर पर गर्मी के दिन व्यतीत कर जहाँ जैसे दाव चल गया अपना-अपना रोटी-कपड़ा पैदा कर लिया। हाँ ऐसी रुलीडुली-ढीली, गिरी हुई, नीची निराश्रित प्रजा पर पठानी तलवार शासन कर रही है[१] कोई-कोई राज्यश्रेणी में भी चमकता है, पर हाकिमों के अधीन, उनके रुख-रुझान के अनुसार और उनके व्यवहार का सहायक होकर। उसकी आज्ञा भारतीय प्रजा के साथ सहानुभूति पूर्ण नहीं होती थी, बल्कि जैसे दासों मे से दासों का ही स्थापित किया गया नेता दासों के स्वामी की अपेक्षा अपने ही वर्ग के लोगों पर अधिक अत्याचार करता है, उसी तरह ये मनसबदार अपने ही लोगों को अत्यधिक दु:ख दे रहे है। एक ओर अविद्या का अंधकार था और दूसरी ओर ज़ोर अत्याचार का धुआंधार गुबार था।

इस दशा में, इस बीमार प्रजा के बीच एक जीती-जागती जान कहीं से आ निकली। वह सुहावनी, चमकीली, रँगीली प्यार वाली जान-गुरू नानक की जान है, कोमल-कोमल, प्यारी-प्यारी, सुन्दर-सुन्दर पर ठोस-ठोस अचल-अचल, हीरे से भी अधिक कठोर तथा रेशम से भी अधिक कोमल। हाँ, यह 'कोमल' तथा 'ज़ोरदार' व्यक्ति इस मरी हुई प्रजा में ईश्वरीय ज्ञान तथा विद्या का दीया जलाकर बैठा है। वह सर्वसाधारण, हाँ आम प्रजा को उनकी अपनी भाषा में ऊँचे-ऊँचे विचार, प्राण भरने वाले भाव, आपे को सँभालकर जीवित हो जाने वाली अंदर की प्रतीति दे रहा है। अपनी भाषा में विद्वान हो जाने की बुनियाद उसने डाली। उसने अपना साहित्य प्रदान किया, साथ ही धर्मस्थानों की स्थापना की, जहाँ कि प्रारम्भिक शिक्षा मिले, जहाँ कि स्वच्छ तथा सच्चा धर्म-मानवीय सहानुभूति तथा ईश्वरीय प्यार वाला धर्म सिखाया जाये, सवेरे तथा शाम को सत्संग लगे, कीर्तन हो[२], कीर्तन द्वारा स्वभावत: मन

---

१. इतिहास बताता है कि इसी समय में पठान राज्य की दीया बुझकर मुग़लों के घर में जग पड़ा और उस तलवार ने म्यान में पक्का स्थान प्राप्त नहीं किया था, बल्कि एक के हाथ से दूसरे के हाथ में चली गई। हाँ, अकबर के समय में कुछ विश्राम किया, पर कुछ समय के पश्चात् फिर उठ खड़ी हुई थी ।

२. वहाँ गुरू की धर्मशाला है, कीर्तन होता है। संगत जुड़ती है। (भाई बन्नो वाला ग्रंथ - हकीकतराह

एकाग्र हो और कीर्तन में आने वाली वाणी के अर्थों को समझकर आपा चमके। प्रभु की ओर-जो मनुष्य का स्त्रोत, चश्मा और बुनियाद है- इस मनुष्य का झुकाव होकर कोई लगन लग जाये। उधर दोनों वेला इकट्ठे होने से परस्पर प्यार उत्पन्न हो, भ्रातृत्व की भावना उत्पन्न हो जाये, सहानुभूति की झन्नाहट, जीवित तरंग बन कर अंतर में हिलोरें खाने लगे। जब यह भाव उत्पन्न हो जाये तो अनजाने ही संगठन हो जाये। वह संगठन जो मनुष्यों के समूह को प्यार तथा सहानुभूति से जोड़ता है जिसका प्रयोजन है कि बहुत से लोगों के संगठन द्वारा एक-एक को सुख प्राप्त हो। संगठनों में स्वार्थपरता भी आ जाती है। जैसे अलग-अलग एक-एक मनुष्य एक-दूसरे को पशुओं की भाँति पीड़ा देने के लिए निःशंक और बेदर्द हो जाता है, वैसे ही कौम-कौम का संगठन, देश-देश का संगठन दूसरी कौम तथा दूसरे देश के लिये पीड़ा देने वाला तथा निर्दयी बन जाता है। यहाँ सुन्दरता के सम्राट गुरू जी ने धर्मस्थान में संगठन की बुनियाद डाली, गुरुवाणी का प्रकाश प्रदान करके हरि कीर्तन के बाणों की नोकों पर प्यार के वलवले चढ़कर हृदय-मंडल में पहुँचा दिये और कहा कि हे सज्जनो! विचार करके वाणी के भावों को समझो और उनके अनुसार चलो। वाणी आपा न्योछावर करना सिखाती है, वाणी परलोक का पता देती है और यहाँ पर ही प्यार के अभ्यास का रहस्य बताती है। वह प्यार यहाँ भी सुखी कर देता है। यह जगत पाठशाला है जहाँ आपा न्योछावर करना और प्यार करने का पाठ पढ़ना है और इहलोक तथा परलोक में सुखी होना है। यों संगठन की बुनियाद को जो गुरू बाबा ने डाली है वह उन बुनियादों पर डाली है जिन पर खुदगर्जी के रद्दे न लगें बल्कि आपा न्योछावर करने की ईटों से भवन का निर्माण हो और धर्मस्थान में से उत्पन्न हुआ संगठन, प्यार, उपकार-सेवा भाव, से जगत के लिये सुखदाई हो।

पर यह कार्य आसान नहीं था। पहले तो गुरू जी का अपना परिवार, अपने माता-मिता, संबंधी सभी इसके विरुद्ध हो गये। वे चाहते थे कि जैसे वे आप व्यवहार करते हैं, कमाई करते हैं, खाते-पीते हैं, विवाह-शादी करते हैं, पुत्र कलत्र की रचना करते हैं, संसारी बनते हैं, बड़े कहलाते हैं और अंत में यह प्रसिद्धि छोड़कर चले जाते हैं कि अमुक व्यक्ति दो लाख रुपये की संपत्ति छोड़कर गया है वैसे ही यह भी हो। हाँ, जैसे हम मरकर सजे सजाये विमान पर चढ़कर पुत्र, पौत्रों से चंवर डुलवाकर, घण्टे बजवाकर और गरी, छुआरे, इलायचीदाने, पैसे आदि की बखेर करवाकर तथा शव के साथ, हज़ार पाँच सौ स्त्री-पुरुषों को चलवाकर बेटे पोतों की बहुओं के सिन्दूर से भरे जुए सिरों का झुकवाकर संसार-यात्रा पूरी करके जाते हैं, वैसे ही यह भी बड़ा संसारी बने और फले-फूले। मानो मछलियाँ तालाब के एक कोने के ज्ञान को, उस कोने में उगी हुई सिवार को, ऊपर से गिरने वाले तिनके को, आटे की गोली को, बताशे के विचार को ही सब कुछ समझ रही हैं और इसमें ऊँचा देखने वाले को बावला कर रही हैं। पर सागर के ऊपर जहाज़ को तैराने की शक्ति रखने वाला अमर-गुरू नानक-जगत को जलता हुआ उसके उद्धार की चिंता कर रहा है।

इस तरह की अपने लोगों को रुकावट को, उनके मोह को, परंपरागत रीति-रिवाज की पुस्तकों तथा उनकी ओर से बने उत्तरदायित्व की नदी को पार करके गुरू बाबा ने दूसरी

मुकाम में से) पुनः धर्मसाल अपार दइआर ठाकुर सदा कीरतन गावहे। जह साध संत इकत्र होवहि तहा तुझहि धिआवहे ।। (गुऊड़ी छंत महला ५)

रुकावट समय के हाकिमों से और तीसरी रुकावट समय के धार्मिक नेताओं की ओर से देखी। गुरू नानक देव जी के जीवन के आगे दूसरा काम था इन दोनों को जीतना था। वह जो हृदयों पर सच्चे धर्मस्थान का निर्माण किया था उसे सभी विरोधों से बचाकर, सभी बाधाओं को जीतकर एक बार मूर्तिमान करके खड़ा कर देना, यह गुरू नानक देव जी का कमाल था। जो जीवन प्रवाह देना था, उसकी सुगंन्धि फैला देना, जो संदेश जगत को देना था वह दे देना, जो मुर्दे पड़े देखे थे उन्हें जीवित कर देना, जो अग्नि जगत में लग रह थी, उसके स्थान पर शीतलता लाकर दिखा देना, एक अदेशी कला थी जो उन्हें मूर्तिमान करके दिखानी थी।

उनके कमाल के काम में जो बाधाएँ थीं, उनमें से एक बाधा की जीत का दर्शन आज हम करेंगे।

: २ :

हमज़ा गौंस को रास्ते पर लगाकर, गुरू नानक देव जी सिआलकोट से चल पड़े। उपकारी बादल की भाँति नाम की वर्षा करते हुए आप पसरूर से होते हुए मियाँ मिट्ठा के कोटला में आ पहुँचे।[१] कोटला से कोई आध कोस की दूरी पर एक सुहावना बाग था, आप ने इसमें डेरा डाला।

एक नामी पीर मियाँ मिट्ठा यहाँ पर रहता था एक दिन यह मियाँ मिट्ठा अपने अनुयायियों की सभा में बैठा था, बातचीत हो रही थी कि किसी ने सिआलकोट के हमज़ा गौंस की बात सुनाई कि वह फकीर गुस्से में आकर शहर तबाह करने के लिए चिल्ले बैठा था, पर गुरू नानक ने उसका चिल्ला तोड़ा और उससे अपनी बात मनवाई।

मियाँ मिट्ठा(दाँत पीसकर)- हिन्दु ने मोमन (मुसलमान) पर, अपनी करामात का ज़ोर दिखाया? यह हो नहीं सकता।

अनुयायी – जनाब! आप ठीक फरमाते हैं, पर यह आपका दास वहीं से आया है। हमज़ा गौंस ने शरण ली है, अपनी भूल को स्वीकार किया है और उनकी आज्ञा को माना है। सारे संसार को पता है और पीर जी! एक की बात ही क्या है, वहाँ पर तो योगी, सिद्ध कई हार मान-मानकर कान पकड़-पकड़कर चले गए हैं। कई पीर फकीर उनके आगे झुक चुके हैं।

मिट्ठा(घबड़ाकर) – यह बता कि वह कोई मुसलमानी शरह आदि भी जानता है?

अनुयायी – वह शास्त्रों, तथा शरहों की समस्याओं पर नहीं झगड़ता! वह झगड़ा तो करता ही नहीं। किसी को बुरा तो कहता ही नहीं। किसी से झगड़ा तो करता ही नहीं। जहाँ जिस भरोसे, दीन, शरह, ईमान जिसमें भी कोई है वहीं से उसे लेकर चल पड़ता है। फिर ऐसी कोई

---

१. जहाँ पर पंजाब की नदियाँ इकट्ठी होकर कई कोसों तक बह लेती हैं, वहाँ पर एक ठिकाना मिट्ठन कोट है। अनुमान है कि इस प्रसंग की कथा वहाँ पर घटी। पर पुरातन जन्मसाखी में पसरूर से आगे मियाँ मिट्ठा का कोटला लिखा है। यह ठिकाना सिआलकोट के ज़िला में है और कथा यहाँ पर ही घटी है। मियाँ मिट्ठा नामक एक पीर इस समय भी हुआ है, जिसके नाम पर इस ठिकाने का नाम रखा गया है।

बात निकालता है कि दूसरे को अपनी कसर दीख पड़ती है और वह मान लेता है। फिर कोई कमाल है या कोई असीम ईश्वरीय बरकत है कि नैन रंगीले तथा मतवाले रहते हैं। माथा सौंदर्य से भरा है, चेहरे पर सुन्दरता है। मैं सौंगन्ध खाकर कहता हूँ, हाँ, मैं आँखों देखी बात कहता हूँ। यूसफ कही सुन्दरता के बारे में सुना है, पर इस जैसा, इस मेरे आँखों देखे जैसा नहीं होगा। क्षमा करना मैं कोई बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कह रहा। उनके देखने में कोई शक्ति है, उनके वचनों में, उनके हाथ के छींटों में कि अपने-आप मनुष्य झुक-झुककर गिर पड़ता है और प्यार की झन्नाहटों में आकृष्ट होता है।

मिट्ठा – (झुँझलाकर) कहीं गुरू-दीक्षा तो नहीं ले आया?

अनुयायी – सच तो यह है कि मैं बड़ी मुश्किल से बचा हूँ। है तो धृष्टता, पर हुजूर के सामने तो उल्टी-सीधी बात नहीं कह सकता। एक मेरी क्या वहाँ तो किड़ीयाँ पठानों के सभी पठान तथा अफ़गान मुसलमान मुरीद हो चुके हैं।

मिट्ठा – (निःश्वास भरकर) क्या नानक मूर्तिपूजक भी है?

अनुयायी – नहीं।

मिट्ठा – हिंदू होकर मूर्तिपूजक नहीं?

अनुयायी – वह है तो खत्रियों के एक उच्च घराने का हिन्दू, पर वह हिन्दू अथवा मुसलमान-किसी भी पंक्ति में छिपकर नहीं बैठता। दोनों से इन्कार कर देता है और दोनों का गुरू बनकर उपदेश देता है। मियाँ जी! मेरा मुँह छोटा और बात बड़ी है, पर वह कोई लगता है जैसे कोई होता है वह......व.....वह।

मिट्ठा – 'वह', क्या?

अनुयायी – वह, वह कहना तो कुफ़र हैं। आप रुष्ट होंगे।

मिट्ठा – नहीं, जो कुछ तेरा विचार है वह दे।

अनुयायी – मैंने कभी देखा नहीं, परन्तु सुना है, इसलिए निश्चित तो नहीं, वैसे विचार ही कहा जा सकता है।

मिट्ठा – पर जो विचार है, उसे कह तो दे, जिससे कुछ समझ में आ जाए?

अनुयायी (रुक-रुककर) – जैसे कोई होता है पैगम्बर।

मिट्ठा – कायर! तुझ को लानत है। अरे बेवकूफ वह तो अंतिम हो चुका है, और नहीं होगा.....

अनुयायी – पीर जी! बददुआ तो न दीजिए। मैं इसीलिए तो कहता नहीं था। मैं अपने हज़रत की ओर से अश्रुद्धालु नहीं हुआ, मैंने तो केवल बात ही कही है। पर देखिए मैंने आपकी बात उनके एक मुसलमान अनुयायी से पूछी थी, वह कहने लगा: हम में से बहुत से उन्हें वली मानते हैं और बहुत से पैगम्बर। मैंने कहा कि रसूल तो आखिरी आ चुका है, तुम इस बात को कैसे मानते हो? वह कहने लगा कि बात ठीक है, पर वह रसूल तो अरब देश का आखिरी पैगम्बर था। इबरानी पैगम्बरों का जो सिलसिला पश्चिम में था, मुहम्मद उनमें आखिरी था; वहाँ और कोई पैगम्बर नहीं हुआ। साथ ही अल्ला ने स्वयं कहा है कि मैं हर देश को पैगम्बर प्रदान करता हूँ। साथ ही जो मैंने कहा है कि मुझे उसने बताया था वह यह था कि हम तो कर्मों से मुसलमान नहीं रहे, इस देश में आकर बड़े अत्याचारी तथा पापी हो गए हैं, इसलिए अल्ला

ने यहाँ नया पैगम्बर भेजा है। मैं जो कह रहा हूँ, पीर जी! वह वहाँ पर मुसलमान अनुयायी कह रहे थे।

मिट्ठा (होंठ काटकर) – जैसे वे ऊत हैं वैसे ही तू बिगड़ा हुआ कपूत है।

अनुयायी – नहीं पीर जी! मुझे शाबाश दीजिए, मैं चाहे कितना ही प्रभावित हुआ, फिर भी देखिए सूखे पावों नदी लाँघ आया हूँ, मैं मुरीद नहीं बना हूँ।

मिट्ठा (मुस्कराकर) – शाबाश।

इतने में सलीम नाम का एक और व्यक्ति आ गया, और झुककर सलाम करके बैठ गया।

मिट्ठा – सकुशल तो हो भाई सलीम! हर तरह से कुशलता तो है न?

सलीम – जी हुज़ूर आप की बरकत है।

मिट्ठा – नगर की या देश की कोई बात सुना।

सलीम – नई बात, पीर जी! यह है कि यहाँ से कोई आधा कोस ऊपर की ओर बड़े बाग में कोई फकीर आ उतरा है। कहते हैं-हिन्दू है, पर उसके साथ एक मुसलमान अनुयायी भी है। फिर वह मुसलमान गाना-बजाना भी करता है, वह है बड़ा मीठे स्वर वाला, इतनी मीठी आवाज है कि क्या कहा जाए? और साथ ही बजैया भी बड़े कमाल का है, बस बहती हुई नदियों को बाँध देता है। अभी आये हुए थोड़े ही दिन हुए हैं कि काफ़ी लोग आने लगे हैं।

मिट्ठा – लोगों की भेड़चाल है, नई बात के पीछे सभी उठ दौड़ते हैं। बाढ़ों के साथ कई नए सोते भी बहने लगते हैं, पर नदियाँ पुराने मार्गों पर ही चलती रहती हैं।

सलीम – आपने ठीक ही कहा है, पर मैंने तो यह देखा है कि वहाँ आम लोग ही नहीं, खास-खास बुद्धिमान लोग भी वहाँ पर जाते हैं।

मिट्ठा – जिनमें से एक बुद्धिमान तू है?

सलीम – मैं तो आपके जूतों के समान भी नहीं। पर सच कहता हूँ कि कई प्रसिद्ध ईश्वर की राह के तलाश करने वाले वहाँ गए हैं।-काज़ी साहब को मैंने बैठे देखा है, और भी कई सयाने हिंदू मुसलमानों को वहाँ बैठे देखा है।

मिट्ठा (सोच में पड़कर) – कुछ नाम का भी पता है कि है कौन? कहाँ का है? किस घराने का फकीर है?

सलीम – घराना पूछो तो सीधा ईश्वर का बताता है, और कहता है कि अल्लाह वाहिद हू ला शरीक यानी ईश्वर एक है और अद्वितीय है और यदि जाति पूछो तो निरंकारी बताता है, और नाम-उसके चेले से मैंने पूछा था तो उसने नानक बताया है। संभवत: यह वही नानक है जिसकी धूम सारे देश में फैल रही है, जो निधड़क सच्च कह देता है, न तलवार से डरता है और न शरह से, न जाने वही है या कोई और है?

मिट्ठा सुनकर घबराया। इसलिए घबड़ाया कि जिसे दूर सुनते थे वह नज़दीक आ गया। कहाँ तो पूरब में लाहौर तलबंडी, सिआलकोट आये गए सुना गया था और कहाँ आज अपने कोटलो में ही आ चुके हैं। अब तो टक्कर होगी ही। कैसे क्या होगा?

पीर पहले तो यश सुनकर डींग मारा करता था पर आज जब द्वार पर आ गए सुना तो होश-हवाश गुम हो गए। घबड़ाहट आ गई। क्यों? कसर ही घबड़ाहट में ले जाती है। यदि

कोई त्रुटि हो तो घबड़ाहट आती है। नहीं तो केकसरे को ओर सच्चे को कैसी घबड़ाहट। सच नंगा निधड़क, सत्य को न आग का डर, न जल का भय, पर देखो मनुष्य की बुनियाद कच्ची है। बड़े-बड़े हठ, तप करके भी कचाई नहीं निकलती। मिट्टी का क्या धोना?

पीर जी पहले घबड़ाहट में ही थे कि सलीम ने कहा : पीर जी! न जाने कल आपके दरबार में ही आ जाए। सुना है कि निधड़क है, किसी से डरता काँपता नहीं।

पीर-आने दीजिए,(अपनी तगड़ाई को खाँसकर) यों निथार लेंगे, जैसे दूध के ऊपर से मलाई उतार ली जाती है।

सारे अनुयायी-अलहमदुल्लिला (ईश्वर की कृपा से) भगवान ऐसा ही करें।

सलीम - सच, पीर जी एक बात कहना तो मैं भूल ही गया।

मिट्ठा - वह भी बता दे भाई।

सलीम - जनाब के मुर्शिद साहब हज़रत अबदुल रहमान साहब[१] भी उनके दरबार में पहुँचे हैं और वार्तालाप करके बहुत प्रसन्न हुए हैं और तसल्ली पाई है कि ये सच्चे ईश्वर के सचमुच सच्चे लोग हैं।

मिट्ठा - सच्च?.....

सलीम - जी मैं आँखों देखी बात कह रहा हूँ।

मिट्ठा - (आँखें झपकाकर)-फिर तो अवश्य ही कुछ होगा। यह कहकर आँखें मूँद लीं और काफ़ी समय तक खोया रहा, मानो किसी समाधि में स्थित हो गया है। जब नैन खोले तो अनुयायियों से कहने लगा, ''चलो मित्रो! नानक का चलकर दर्शन करें।'' तब अनुयायियों ने कहा, ''आपने पहले वचन दिया था कि नानक हमसे मिलेगा, तो यों निथार लेंगे, जैसे दूध के ऊपर से मलाई निथार ली जाती है।''[२]

तब मिट्ठा ने कहा, ''कि वहाँ से आवाज़ आई है-जैसे नींबू में से रस निचोड़ लिया जाता है, उसी तरह जब मिट्ठा मिलेगा तब उसे निचोड़ लिया जायेगा। मलाई उतारने से दूध का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा पर नींबू निचोड़े जाने पर फोक रह जायेगा।''[३]

यह बातचीत हो ही रही थी कि मिट्ठा का गुरू आ गया ओर कहने लगा -अरे मिट्ठा! तेरे बाग़ में ईश्वर का एक प्यारा आया है, तू जाकर उसका दर्शन कर।[४] तब मियाँ मिट्ठा सतगुरू जी का दर्शन करने के लिये आया।

: ३ :

सूरज ने धरती की ओझलता का घूँघट अभी उठाया है। हाँ, सूरज अभी-अभी अपने हलके-हलके जलाल की कान्ति से झलकता हुआ पूरब की धुन्ध में से सिर ऊँचा कर रहा है।

---

१. जन्मसाखी भाई दित्य सिंघ जी 'पृ०३५७ ।
२. पुरातन जन्मसाखी -पृष्ठ ८३ (द्वितीय संस्करण)
३. पुरातन जन्मसाखी -पृष्ठ ८४ (द्वितीय संस्करण)
४. जन्मसाखी भाई दित्य सिंघ ।

देखें तो आँखों में समाता है, और मोहित करता है। देखिए, नेत्र मुन्दि देखिये, नैन मुन्दिए, यों करते हुए यदि तनिक से एकाग्र हो जायें तो सूर्य की सारी टिकिया बाहर आ जाने तक शरीर हल्का फूल, मानो प्रकाश में स्नान हो गया है, इस तरह का हो जाता है।

इधर सूर्य ने किरणें छोड़ीं, उधर मरदाना ने कीर्तन की समाप्ति की। गुरू नानक का प्यारा, जिस गुरू नानक के अन्दर का तार प्रभु के साथ एक स्वर होकर बजता है, हाँ दूसरी ओर जिस गुरू नानक के तार के साथ प्रकृति एक स्वर हुई रहती है, उस सदैव एकस्वर हए गुरू नानक का प्यारा मरदाना करतार तथा प्रकृति के रंग का ज्ञाता होकर एकस्वरता का ज्ञाता हो गया है। जैसे वह अपने रबाब के तारों के स्वर पहचानता है, वैसे ही वह प्रकृति के तारों को भी पहचानता है। मरदाना प्रभु के रंग में रता हुआ कीर्तन कर रहा था, उसकी अँगुलियाँ मानो साज़ के साथ साज़ का भाग होकर अपना रंगीला तथा मीठा नृत्य कर रही थीं; गला रबाब में से निकल रसभरे स्वरों के साथ एकमेक, एक जान, एकस्वर हो रहा था, नैन मुंद हुऐ थे, देह गुरू नानक की हुजूरी में हाजिर थी अंतस अदृष्ट की हुजूरी के सम्मुख कीर्तन के भाव लेकर हाज़री भर रहा था और हुजूरी का रस ले रहा था कि उसके आपे ने बाल-सूर्य रात व्यतीत होने और पौ फटने को बिना देखे ही तथा बाल-सूर्य की ठुमक-ठुमक कर आती हुई किरण, फुहार की अगवानी के दर्शन किये बिना ही यह पहचान लिया कि रात के टिकाव ओर अमृत वेला की एकाग्रता के स्थान पर अब प्रकृति ने हलचल तथा प्रवृत्ति के काम करने की ओर जाने का प्रभाव डाला है। उधर सूर्य किरणें छोड़ता है इधर जीव-वृत्तियाँ हलचल के कामों में लगती हैं। हाँ प्रकृति के स्वर का यह अज्ञात प्रभाव पहचानकर, मरदाने ने भी अन्तिम शब्द का कीर्तन किया और समाप्ति करके रंग में रोते हुए नैन खोले और प्रकृति में अपने कर्तार के प्यारे-गुरू नानक-के सुन्दर-सुन्दर दर्शन किये, सीस झुकाया और अमृत वेला की ओस से भीगे हुए गुलाब की भाँति दमकते हुए नैनों से अपने सदा चढ़े सूरज-गुरू नानक-का दर्शन किया। फिर उन नैनों में भरे ओस मोती उस अपने सदा सुहावने सूरज की भेंट किये और कहा-

''सुहान तेरी कुदरत!''

दस बीस सज्जन अमृत वेला के कीर्तन का रस लेने के लिऐ आये हुए थे। मरदाना की यह आवाज़ सुनकर सबके नैन कटोरे खुले। हाँ, दर्शन प्यासों के नैनों में दर्शन के सौन्दर्य जल ने निवास किया, सभी सीस झुक गये और आवाज़ आई-

धन्य निरंकार! धन्य निरंकार!!

फिर कुछ समय तक स्तब्धता छाई रही। फिर सुन्दर अधर खुले, एक शब्द का उच्चारण हुआ और दाता जी के मुँह से कुछ सुन्दर वाक्य निकले ओर श्रोतागण के कानों में से गुज़रकर हृदय में जा समाये। इस समय शेख मिट्ठा बाग़ में आ पहुँचा था। अब सीध बाँधकर सच्ची सभा में आ पहुँचा; देखा कि नानक हिन्दु कौन सा है जिसने मेरे गुरू के मन-मन्दिर में भी अपने प्यार की ज्योति की सौन्दर्य-भरी किरणें डाली हैं। क्या देखता है कि सचमुच इस सूर्य के उदय हो रहे प्रकाश में एक मीठे, प्यारे, उससे भी अधिक जलाल वाले सूर्य जी दमक रहे हैं। जब देखा, नैनों के पीछे जो संशय, भ्रम आदि तथा कुछ-कुछ रुष्टता के भाव से भरे हुए थे, वे घबड़ाये, जैसे सूर्योदय होते ही धुन्ध को घबड़ाहट होती है। मियाँ मिट्ठा तपस्वी था,

पर धर्म की कट्टरता की कमी का निवास उसके अन्दर भी था जो सभी दीन के भाईयों के धर्म के घुँघट में निवास करता रहता था। हिन्द में ही जन्म लेना, पलना, हिन्दुस्तानी होना, हिन्दुओं से मुसलमान बनना, फिर हिन्दुस्तानियों तथा हिन्दुओं के साथ द्वेष! हाँ, मिट्ठा ने देखा। नैनों ने उन ईश्वरीय नैनों से रंग का कुछ स्पर्श-सा ले लिया। आपस में आदर-सत्कार किया। प्रेम के अवतार और शान्ति के सुलतान गुरू नानक ने ससत्कार बैठाया, कुशलता पूछी। मिट्ठा ने अदब के साथ उत्तर दिया। फिर चारों ओर देखा। सचमुच बुद्धिमान पुरुष इकट्ठे हैं, अपने गुरू जी भी हैं उनकी ओर सीस झुकाया। फिर मिट्ठा के मन में कुछ शान्ति छा गई, पर यह बात फिर भी कसक रही थी कि इतने सुन्दर प्रभाव वाला व्यक्ति हिन्दू क्यों है? यह मुसलमान क्यों नहीं? सिद्ध भी जब गुरू जी से मिलते थे तो यही इच्छा करते थे कि किसी तरह यह बालक नानक उनकी दीक्षा ग्रहण कर ले और उनके मत को उज्ज्वल करे। इसी तरह मुसलमान फकीर देखकर, वरत कर, परख कर यही चाहते थे कि काश! यह दीन (मुसलमानी धर्म) को ग्रहण कर ले और उसे उज्ज्वल करे। हाँ, सुन्दर वस्तुओं को हर कोई अपना बनाना चाहता है। मिट्ठा के मुसलमानी भावों ने उसके अधर खुलाये, स्वाद का जो प्रभाव छा रहा था, वह चुप की ओर लिये जा रहा था, पर अन्दर जो भाव फुरे, उन्होंने बोलने की ओर ही झुकाव कर दिया ओर शेख मिट्ठा कहने लगा-

फकीर जी! प्रभु के मार्ग पर कुछ प्रकाश डालिये।

गुरू जी - प्रभु सूर्य हैं, उसका नाम, उस सूर्य की धूप तथा उसी का प्रकाश है। हाँ, नाम प्रकाश है उस सौन्दर्य-भरे मार्ग का।

मिट्ठा - नाम एक है अथाव दो?

गुरू जी - वह आप एक है, एक का नाम 'एको नाम' है।

मिट्ठा - तो आप एक के हैं, एक के उपासक हैं?

गुरू जी - हम निरंकार के हैं।

मिट्ठा - हिन्दू तो महाविद (एक के उपासक) नहीं होते?

गुरू जी - जो एक के उपासक हैं, वही मुसलमान, वही हिन्दू, वही सब कुछ, वही कुछ भी नहीं।

मिट्ठा - हैं!..... जो मुवाहिद वही मोमिन वही मुसलमान।..... (स्वगत) पर हाँ, सच एक का उपासक तो वही प्रमाण है जो रसूल में श्रद्धा रखता हो। (फिर गुरू जी से) हाँ जी, फॅकीर जी! तब आप को अल्लाह का पता तो है, पर क्या दूसरे नाम का भी ज्ञान है।

गुरू जी - साथ ही वाहिद कहते हो, और साथ ही दूसरे का पता देते हो। दूसरा कौन? इकाई के घर में दूई का कोई स्थान नहीं?

मिट्ठा - तो आपको दूसरे नाम का अभी पता नहीं चला।

गुरू जी - यदि दूजे की सूझ खो दें तो एक की सूझ होती है, एक में दूसरे की समाई नहीं, जब एक में दूसरे को मिला दें तो एकता की (एकंकार की) सूझ कैसे?

'गुरमुखि एकु विरला को लहै'

(दखणी ओअंकार)

मिट्ठा - फिर आपने तेतीस करोड़ में एक की पहचान कैसे की थी?

गुरू जी – तेतीस करोड़ या जो कह लीजिये, सब उस का खेल है, करोड़, नील, संख असंख्य सभी गणना में हैं और सब कुछ उसका किया हुआ है। वह 'एक' अगणित है और रचना का रचियता है।

मिट्ठा – आपने ठीका पहचाना हैं, पर उस एक का एक यार है, जिसकी सिफारिश से मुक्ति होती है, उसकी पहचान नहीं की है,

गुरू जी – दूसरा कौन है उस एक के साथ। दूसरा कौन है जिसका नाम 'उस' एक के नाम के साथ मिलता है? शेख जी! जब दुई आ गई, फिर दो क्या और तेतीस करोड़ क्या, गिनती ही तो है न, जहाँ तक ले गये, ले गये, किये हुए की गणना है, कर लीजिए।

मिट्ठा – अव्वल नाम खुदा खालिक पालक का है और दूसरा नाम उसके नबी रुसूल (अवतार) का है। तीसरा हरफ कलमा (मुसलमान धर्म का मूलमन्त्र) है जो उसने दिया है, यों उसके द्वार पर स्वीकार हो सकते हैं,[१] इससे आगे की गणना कुफर है, शिरक हैं।

गुरू जी – शेख मिट्ठा! उस ईश्वर के द्वार पर द्वेत का स्थान नहीं।[२] वह द्वार, वह घर, वह ठिकाना–कुछ भी कह लो? एक ही है, वहाँ पर द्वैत नहीं, वहाँ पर एक आप ही है।

मिट्ठा (कुछ लज्जित होकर)–क्या कहा है?

गुरू जी – नबी तथा रसूल (अवतार) सभी उसी के किए हुए हैं, पीर, पैगम्बर, मुनि, भक्त, अवतार सभी उस एक की 'रचना' है। वह सब को जानता है, देखता है, सब उसी की रचना है, वह कर्तार है और घट–घट का ज्ञाता है, केवल एक ही एक है। यदि दो हैं तो सिद्ध कीजिए कि कर्तार अथवा रचयिता दो कैसे हैं?

मिट्ठा घबड़ाया, क्योंकि उसका उत्तर तो बन ही नहीं सकता था। नबी को वह कर्ता अथवा कर्तार तो कह ही नहीं सकता था, अत: बात फेरकर कहने लगा–हिंदू कैसे स्वर्ग को जा सकता है? हिन्दू का शरीर जलकर राख हो गया, प्रलय के दिन जब देवता नरसिंघा बजायेगा तब मुसलमान के शरीर, जो पृथ्वी के पास अमानत में रखें हैं – क़बों में से निकल आयेंगे और स्वर्ग को जायेंगे, पर राख हुए हिन्दू शरीर, हाँ जिनकी राख भी गंगा द्वारा बहकर सागर में चली गई हैं, वह राख उन शरीरों को कैसे वापिस लाकर उनकी सर्जना कर देगी। अत: हिन्दू तो अपने–आप आग में पड़कर जलते हैं, तो सदैव ही नरक में पड़े जलते रहेंगे।[३]

गुरू जी (मुस्कराकर) – शेख जी! स्वर्ग में 'शरीरों' के पहुँचने का विचार तुमने पुरातन इबरानियों से लिया है। उनके अनुसार 'यह शरीर ही सदैव जीवित' का विचार स्वर्ग था। शरीर

---

१. मिट्ठा के इस उच्चारण को जन्मसाखी ने इस दोहे में बताया है, मिट्ठा–"अवल नाऊँ खुदाइ का दूजा नबी रसूल ।। नानक ! कलमा जे पढ़हिं ता दरगहि पवे कबूल ।।" और जो उत्तर गुरू नानक जी ने दिया है उसे दोहे में इस प्रकार दिया है– 'अवल नाऊँ खुदाइ का दरि दरवान रसूल । शेखा ! नीयति रास कर तां दरगहि पवहि कबूल ।" अर्थात् परमेश्वर का ही नाम एक नाम है; रसूल तो वहाँ पर दरबानी कर रहे हैं, यदि तू उसके दरबार में स्वीकार होने का इच्छुक है तो अपनी भावना को शुद्व कर ।

२. पुरतन जन्मसाखी पृष्ठ ८४ (द्वितीय संस्करण)

३. जन्मसाखी भाई दित्य सिंघ ।

की मृत्यु को उन्होंने मनुष्य के पाप का दण्ड समझा था। प्रलय के दिन शरीर का दोबारा जीवित हो उठना, उन्होंने परमेश्वर की दोबारा दया-दृष्टि समझा था, जिससे स्पष्ट पता चलता है कि उन्हें अभी आत्मा का पता नहीं था। आत्मा न तो मिट्टी में गाड़ देने से मिट्टी बनती है, न आग में जला देने से राख होती है। शरीर गाड़ देने से या जला देने से- दोनों ढंगों से मिट्टी में मिल जाता है यदि देवता का नरसिंघा धूल हुई देह का आकार खड़ा कर सकता है तो राख हुई देह को भी खड़ा कर लेगा और यदि देह का आग में जलना ही नरक है, तो मुसलमान की देह भी जलती है[१], आग में पड़ती और...।

मिट्ठा(हैरान होकर और बात काटकर) कैसे? किस तरह?

गुरू जी-सुनिए शेख जी! पुरानी कब्रों की मिट्ठी चिकनी होती है और कुछ समय के पश्चात कब्रों के चिन्ह मिट भी जाते हैं। कुम्भकार लोग चीकनी मिट्टी के खोजी होते हैं, वे इस तरह के पुराने कब्रिस्तानों की मिट्टी लाकर गूँधते हैं, गूँधकर चाक के ऊपर रखते हैं, उससे बर्तनों का निर्माण करते हैं। कई साँचों में डालकर ईंटे बनाते हैं। उन्हें धूप में सुखा करके फिर भट्टों भट्टीयों में रखकर जलाते हैं। फिर उस कठोर आग में मुसलमान की मिट्टी भी जलती है। यदि जलना ही पाप है तो मुसलमानों की मिट्टी भट्टों में जल रही देख लीजिये, अंगार झड़ रहे और मानों रो-रोकर कह रही है कि हाय! अंत में मैं भी जली और बुरी तरह जली। यदि ईश्वर ने दोनों का जलना ही निश्चित किया था तो देखिए हिंदू की मिट्टी भी जली और मुसलमान की भी जली, पर शेख जी! घबड़ाइए मत, क्यों अपनी बुद्धि को ईश्वर के प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने की आज्ञा देते हैं? भली-भाँति सोच लीजिए कि प्रलय के दिन सभी मुसलमानों के शरीर कैसे उठेंगे, यदि मिट्टी के आग द्वारा जल जाने से नरसिंघा का प्रभाव नष्ट हो जायेगा तो मुसलमानों की दशा भी हिन्दुओं की भाँति ही दीन हो जायेगी।

शेख जी! आप कहाँ फँस रहें हैं? जब देह में से जीव निकल गया, उसके पीछे तो मिट्टी ही रह गई। मिट्टी को अग्नि से जलाकर अथवा मिट्टी में गलाकर मिट्टी ही कर दिया, दोनों ढंग से वह मिट्टी में मिल गई। जो इस मटकी में जीवित तथा जागृत निवास करता था, वह तो दोनों का निकल गया और अपने कर्मों के अनुसार दुख तथा सुख में चला गया। जो नाम जप गया, वे नाम के प्रकाश में चलते हुए सौंदर्य के घर में पहुँच गये। आप बुद्धिमान होकर कि संकुचित विचारों की कब्र में जीते जी अपनी बुद्धि को गाढ़ रहे हैं।

मियाँ मिट्ठा का हृदय किसी बंधन में से घाट में से निकला। हैं, गुरू नानक ने बात तो सोलह आने ठीक कही है और है भी सीधी, पर इतने समय तक मुझे क्यों न सुझी? यही है

---

१. अपने इन विचारों को सतगुरू जी ने 'आसा दी वार' में इस तरह उच्चारण किया है :-

'मिट्टी मुसलमान की पेड़ै पई कुमिआर ।।
घड़ि भाँडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ।।
जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआर ।।
नानक जिनि करतै कारणु कीआ सो जाणै करतारु ।।२।।

(आसा दी वार महला १)

न आपे को आपे की कैद। हमारी बुद्धि अपने-आप ही, अपने लिए सांकल घड़ लेती है और उससे अपने आपको बाँध लेती है। मेरे गुरू ने कल सत्य ही तो कहा था कि गुरू नानक ऐसी साधारण तथा स्पष्ट बात कहता है कि सुनते ही सूझ आकर जागृति आ जाती है। सचमुच यह फकीर स्वच्छ बुद्धि तथा रक्षा वाली बुद्धि वाला है। इससे अब कुछ अपने हृदय का भ्रम दूर करना चाहिये। यों सोचकर मिट्ठे ने पूछा :-

हे नानक गुरू जी! जीव का मन लोभ के कारण मलिन है, एक सीध पर नहीं जमा रहता, लोभ की लहरों से चलायमान रहता है, यह किस तरह ईश्वर की आज्ञानुसार चले? उस मार्ग पर छल का कोई वश नहीं चलता, जोर की पेश नहीं जाती। आप कहते हैं कि उस साईं के रास्ते पर नाम-रूपी प्रकाश है, नाम का दीया किस तेल द्वारा जलता है? नाम तो 'जपा जाता' है, जपने में तेल नहीं और बिना तेल के दीया कैसे जलेगा? तब गुरू दाता जी ने जो उत्तर दिया, वह आपने अपने रचित शब्दों में बड़े सुन्दर ढंग से दिखाया है:-

सिरी राग महला १ घरु ५

अछल[1] छलाई नह छलै नह घाउ कटारा करि सकै।।
जिऊ साहिबु राखै तिऊ रहै इसु लोभी का जीऊ टलपलै।[2]।।१।।
बिनु तेल दीवा किऊ जलै।।१।।रहाऊ।।
पोथी पुराण कमाईअै[3] ।।
भऊ वटी इतु तनि पाईअै।।
सचु बूझणु आणि जलाईअै।।२।।
इहु तेल दीवा इऊ जलै।।
करि चानण साहिब तऊ मिलै।।१।।रहाऊ।।
इतु तनि लागै बाणीआ[4]।।
सुखु होवै सेव कमाणीआ।।
सभ दुनीआ आवण जाणीआ।।३।।
विचि दुनीआ सेव कमाईअै।।
ता दरगह बैसणु पाईअै।।
कहु नानक बाह लुडाईअै।।४।।३३।।

अब पीर को सुझ आई कि दाता ने निरोल शुभ गुणों का उपदेश दिया है- संसार को नश्वर समझकर पाप मत करो, परमेश्वर में श्रद्धा रखो, सत्य का व्यवहार करो, सेवा में रहो : ठीक है, पर देखिए तो प्रभु के प्यारे का क्या ढंग है? कोई हिन्दुओं वाला मार्ग बताता है अथवा मुसलमानों वाला मार्ग बताता है। तब कहने लगा :-

---

१. अच्छल - न छली जाने वाली - भाव माया ।
२. टलपलै - मन माया की ओर उछल उछलकर पड़ता है।
३. धर्म पुस्तकों के सिद्धांत की कमाई करे (यही तेल बनाये)।
४. इस शरीर को जम रूपी बनिया लगा हुआ है, अर्थात् मृत्यु आयेगी, उस (मृत्यु) से सुख तो दूसरों की सेवा करके ही प्राप्त हो सकता है ।

जी! वह कौन सा कुरान (मुसलमानों का धर्म ग्रंथ) है जिसका पाठ करके ईश्वर के द्वार स्वीकार हो और जी वह कौन सी पुस्तक है जिसके अनुसार चलने से ठीक मार्ग प्राप्त हो? और वह फकीरी कौन सी है जिससे ईश्वर के द्वार तक पहुँचने के योग्य हो? और वह रोजा (उपवास) कौन सा है जिससे हृदय अचल रहे। वह नमाज (मुसलमान मत की प्रार्थना) कौन सी है जिसके पाठ से ईश्वर की कृपा दृष्टि हो? (पुरातन जन्मसाखी)

यह सुन कर श्री गुरू जी ने मरदाना की ओर देखा और आज्ञा दी :-रबाब बजाइये। तब मरदाना ने रबाब बजाया। तब श्री गुरू ने शब्द उच्चारण किया :-

मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु।।
सरम सुंनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु।।
करणी काबा सचु पीरू कलमा करम निवाज।।
तसबी सा तिसु भावसी नानक रखै लाज।।१।।महला १।।
हकु पराइआ नानका उसु सुअर उसु गाइ।।
गुरू पीरु हामा ता भरे जा मुरदार न खाइ।।
गली भिसति न जाईऐ छुटै सचु कमाइ।।
मारण[1] पाहि हराम महि होइ हलालु न जाइ।।
नानक गली कूड़ीई कूड़ों पलै पाइ।।२।।महला १।।
पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाऊ।।
पहिला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ।।
चऊथी नीअति रासि मनु पंजवी सिफत सनाइ[2] ।।२।।
करणी कलमा आखिकै ता मुसलमाणु सदाइ।।
नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाइ।।।।३।।वार माझ महला १।।

इसे सुनकर और समझकर शेख मिट्ठा ने पूछा, ''आपने सुन्दर गुणों, सज्जनता तथा विलक्षणता से भरा हुआ उपदेश दिया है'' आप यह बताइए कि नेकियों, शुभ कर्मों तथा पुण्य से जीव ईश्वर के दरबार में जा मुक्त हो जायेगा और क्या शुद्ध नेकी हो भी सकती है? तब गुरू बाबा ने कहा-

शेख! नेकियों की शिरोमणि नेकी ईश्वर का नाम है। नाम किस टकसाल में घड़ा जाता है, वह टकसाल गुणों तथा सिफतों की है। गुण तो सभी ईश्वर प्रभु में हैं, मनुष्य अवगुणों से भरा हुआ है। हाँ गुण उसी में हैं, उसी में हैं....। यों कहतें हुए टकटकी ऊपर बँध गई और कहने लगे :-

---

१. मसाला ।

२. वाहिगुरू का यश ।

३. पुरातन जन्मसाखी में यहाँ पर "अलह अगम खुदाई बंदे" वाला शब्द दिया है, पर यह शब्द गुरू अर्जुन जी का उच्चारण किया हुआ है। किसी लेखक की भूल से यह शब्द दिया गया है अथवा कर्ता की भूल है। गुरू नानक देव का उच्चारण किया हुआ महावाक्य इसी विषय पर यही है जो ऊपर दिया है। मिट्ठा के साथ पहली वार्तालाप में भी गुरू जी ने "नीअत रास कर" कहा है और इस श्लोक में भी चतुर्थ नमाज-'नीयत रास मन' कही है, इससे भी पता चलता है कि सतगुरू जी ने यह श्लोक सुनाकर सच्चे जीवन का उपदेश दिया था।

सभि गुण तेरे मै नाही कोइ।।
सभि गुण तेरे मैं नाही कोइ।।

फिर शेख की ओर देखा, ''शेख! सभी गुण उसके हैं पर गुणों के बिना भक्ति हो ही नहीं सकती। गुण धारण करना भी कठिन है, पर नाम की घड़त गुणों की टकसाल में होती है। शुभ गुणों को रोज़ा (उपवास) नमाज़, पाठ, पूजा बनाओ। शुभ गुणों को धारण करते हुए नाम की रंगााई में आइए और निमाज़ रोज़ा आदि बहुत से झुठे लोगों ने धारण किये हुए हैं। जो शरह (धर्म) की आज्ञा मानते हुए ज़ोर, अत्याचार, धक्का, दूसरों का अधिकार मारने, छल करने आदि कामों में लगे हुए होकर भी तनिक भी लज्जित नहीं होते।''

शेख – आपने सच कहा है, नाम की धड़त में लिए शुभ गुणों की खूब आवश्यकता है। आपने कहा था, एक ही एक, ताकोताक है, दो नहीं, उसी बात को फिर से चलाता हूँ, नाम दो नहीं, क्या एक ही नाम है?

गुरू जी – शेख जी! प्रभु के नाम तो अनेकों हैं, पर हरेक नाम उसी 'एक' का द्योतक है। जो हमने कहा था कि उस उद्धारकर्ता का नाम एक ही है। उसके स्मरण में, उसके ध्यान में, उसके प्यार में उसी का नाम प्रकाश है, किसी दूसरे का नाम उसके तुल्य नहीं है।

मिट्ठा – भगवान! जीवित रहें! यही तो मेरी पीड़ा है, नबी रसूल ईश्वर का मित्र है, दोनों का नाम मेरा ईमान है, 'लाइलला इलिलाहु मुहमद रसूल अल्ला।' यह मेरा नाम है जिसको मैं जपता हूँ।

गुरू जी – जिस तरह तेरी इच्छा हुई, तूने किया, पर यह तो तुम्हारा कलमा है, एक वाक्य है, नाम तो एक अक्षर होता है। वह नाम एक ईश्वर का – अल्ला का है, तुम एक ओर तो मुवाहिद होने के घमंड में हो और दूसरों से घृणा करते हो, उन्हें काफिर कहते हो, आप ही फिर एक के साथ दूसरा मिलाते हो। दो के उपासक बनकर फिर दूसरों का बुरा क्यों कहते हो? जैसी तुमने एक में दूसरे की घुंडी डाली, वैसे ही किसी ने तीन का पेच डाल दिया, वैसी ही किसी और ने चौबीस की अथवा तैंतीस की अथवा तैंतीस करोड़ की लड़ी पिरो दी; एकेश्वरवाद तो किसी के पास न रहा। शेख जी! एक निरंकार के बनिए, एक की उपासना सीखिए, एक में श्रद्धा रखिए, केवल एक में, फिर कहिये– हम मुवाहिद हैं।

शेख – पर हम उसे अल्ला तो नहीं कहते–

गुरू जी – जिनके साथ मजाक करते हो, वे भी कह सकते हैं कि हम एक को अल्ला कहते हैं, शेष को उसकी परछाई, उसका अंश अथवा भक्त, अथवा अंक कहते हैं, जैसे एक सूर्य है, पर उससे बनने वाली अनेक ऋतुएँ है, ऋतुओं को हम सूर्य नहीं कहते, फिर.....?

मिट्ठा – (सोच में पड़कर)–फिर कहने की बात है न, हम तो मानते हैं।

गुरू जी – आप तो यह सब कुछ कहते ही हैं, करने वाला कौन है? यदि कभी एक को मानते हो तो कभी उसकी पहचान भी करो, यदि पहचान लो तो सबसे प्यार कीजिए। किसी से घृणा मत करो बेसमझ पर दया कीजिए, काफिर, मुशरिक; (एकेश्वर को न मानने वाला) मुलहिद (नास्तक) कहकर मारते हो, उन्हें रोगी समझकर दयालु बनकर औषधि दीजिए,

क्योंकि सभी उस एक के ही रचे हुए हैं। शेख जी! ईश्वर का बनना क्या और फिर घृणा क्या? यदि ईश्वर एक दायरा घेरा है तो प्रेम उसका केन्द्र है और यदि घृणा भी एक केन्द्र है तो जो दायरा उसके इर्द-गिर्द बनता है, उसका नाम दुष्ट रखेंगे शैतान। ''नानक आखै राहु इहु गला सैतानु''।।

पर शेख जी ! तुम्हारे भी वश में कुछ नहीं, जन्म से ही घुट्टी तो शरह की मिलती हैं, वह भी धार्मिक कट्टरता वालों द्वारा। निष्पक्ष होकर एक नाम का प्रेम प्राप्त नहीं होता, नाम है जो मन के सारे मैल निकाल देता है, नाम ही जो दुई के कलंक को अन्दर से धो देता है, नाम ही है जो एक वाहिद को ईश्वर की ओर ले जाता है। नाम ही है जो निरंकार के देश में पहुँचा देता है। उस एक नाम का प्रेम प्राप्त नहीं होता। उसमें मिलावट तथा शोर है। राष्ट्रीयता तथा राज्य की आवश्यकताओं के आगे उस नाम की सच्ची मित्रता की सौदागरी तथा विनिमय होता है, इसीलिए हिन्द में धर्म ग्रन्थ वाले, अल्ला वाले, कहलाने वाले राज्य करते हुए अत्याचार, घृणा, पीड़ा आदि का प्रचार कर रहे हैं। यदि तुम एक ईश्वर के नाम के प्रेमी होते, तुम्हें उस ईश्वर की पहचान होती तब तुम्हारा कर्म, दया तथा प्यार ही होता और भारत नरक न बन जाता और प्रत्येक भारतीय सत्य का पक्षपाती हो जाता। शेख जी! जोर तथा धक्के का नाम इस्लाम मत रखिए और समझिए कि दीन (धर्म) नाम ही प्यार का है और प्यार आ ही नहीं सकता जब तक कि नाम के प्रेमी न बनें।

तब शेख ने कहा – जी! आपने जो एक नाम वाले (नाम) की स्तुति की है वह एक नाम कैसा है?[१] मुझे सविस्तार सुनाइए कि केवल एक अकेला नाम 'एको नाम' ही क्यों बड़ा है?

गुरू नानक – वह एक है, उसका नाम एक है। वह हमारे से दूर है, पर निकट भी है। जैसे सूर्य दूर है पर धूप निकट है, वह सूर्य है, नाम धूप है। वह तेज है और नाम तेज प्रदान करने वाला है। वह सौंदर्य का स्त्रोत है, नाम सौंदर्य है। पर हे शेख मिट्ठा! एक नाम वाले का मूल्य किस नाम वाले का पता है[२]? एक नाम के प्रताप को उसने जाना है, जिसने नाम कमाया है। बातों में तो नाम भी लोगों ने एक बात ही समझ रखी है।

अब शेख का हृदय तबदील हो चुका था। गुरू नानक देव जी उसे बातों तथा दिमागी सूझ के मण्डल से प्रत्यक्ष के मण्डल की ओर लिये जा रहे थे और वह जा रहा था। यहाँ पर आकर हृदय की सारी हऊमै दूर हो गई और कहने लगा, ''हे दाता! दया कर, दया के घर में आकर बता तथा दिखा दे कि वह मूल्य, जो तेरे बताए हुए एक नाम का है।''

जब सतगुरू जी दयालु हुए तब शेख मिट्ठा की बाँह पकड़कर अकेले में ले गये, छाँ गोशे में ले जाकर मिट्ठा पर दया दृष्टि डाली, दया दुष्टि डालकर और दयालु होकर कहा– ''मिट्ठा ! सुन, एक नाम खुदाअिका।'' यह कहकर उस ईश्वरीय ज्योति के ईश्वरीय कण्ठ

१. पुरातन जन्मसाखी ।
२. पुरातन जन्मसाखी ।

से प्रभु के नाम का उच्चारण हुआ। दया का बादल छा गया और दया का सौंदर्य! रंग से राँते ने रंग की बौछार लगा दी; चारों ओर रंग की वर्षा होने लगी। उस बौछार में गुरू बाबा ने आवाज़ दी-''शेख! सुना है ईश्वर का नाम?'' शेख सुन रहा था और गुरू बाबा 'एक नाम' उच्चारण कर रहा था, तब शेख मिट्ठा ने कया देखा कि उसके नेत्रों के सामने 'अल्ला' तो रह गया है, पर दूसरा रसूल का नाम खो गया है। शेख चकित हो रहा था कि पहले तो एक नाम, एक जिह्वा का उच्चारण मात्र था और अब नाम एक वस्तु दीख रहा है। एक आकार है, एक सत्यता है, हाँ, शक्ति तथा सामर्थ्य है जो प्रत्यक्ष घटित होकर दिखाई पड़ रहे हैं। इस समय एक नाम एक-ही-एक दिखाई देता है, दूसरा लोप होता होता लोप हो गया। शेख चकित होकर और विस्मित होकर देखता है कि वह दूसरा नाम, जो वह कभी लिया करता था, वह एक भस्म की मुट्ठी-सी है।

मिट्ठा अभी विस्मय में ही था कि अदेश से आवाज़ आई-'अल्ला', तब मिट्ठा को सचमुच दिखाई पड़ा ईश्वर एक है ओर उसका नाम ही एक नाम है, जो है- सत्य सत्यता, वास्तविकता-शक्ति-उद्धारकर्ता है। यह देखकर उठकर खड़ा हो गया। तब उसने गुरू जी के चरणों को चूमा (पुरातन जन्मसाखी)

तब गुरू जी जो विस्मय के गूढ़ रंग में लहलहा रहे थे, कहने लगे :-शेख! हुजूरी में निवास कर, जो सदा हुजूरी में निवास करते हैं वे सदा प्रभु के द्वार पर उपस्थित रहते हैं, उन पर ही अनुगृह होती है। हुजूरी में रहने वालों पर दया का कौन सा समय है?

नाम में निवास करना ही हुजूरी में निवास करना है, उसका नाम उसका सौंदर्य है, जो सौंदर्य में है वह उसकी हुजूरी में है। अन्धकार में बैठा हुआ सूर्य से अनुपस्थित है, पर धूप में बैठा हुआ उपस्थित है, हुजूरी में है।

हुजूरी में निवास करने वाला ईमानदार है, यही ईमान मनुष्य का मित्र है, इससे जो भटक गया वह ईमानदार नहीं।

पर हे शेख! तगड़ा हो, गुणों की सुगंधि लेने वाला बन और गुणों की नाभि अपने पास रख, गुणों की सुगंधि में नाम सुगंधित होता है। अवगुणों से दूर रह, विषयों की लगाम को कसकर रख, गुमान को अपने अधीन कर, निन्दा के मार्ग पर मत चल, असत्य को जिह्वा का मित्र मत बना, कोमल हृदय रख पत्थर का हृदय मत बना। हिन्दू काफिर है, ईसाई मुशरिक है, सारे अमुसलमान कत्ल के योग्य हैं, इस तरह द्वेष की दृष्टि का त्याग कर दे। जो हुजूरी में है, वही उपस्थित है, जो उपस्थित है वह प्रभु का है, जो प्रभु का है वह वीर है, वह भाई है, अपना है। तू मुसलमान है, देश का राजा मुसलमान है, मुसलमान में ज़ोर है, ज़ोर अब अत्याचार बन रहा है। तू राजा का भाई होने के नाते ज़ोर अत्याचार का मार्ग त्यागकर न्याय का मार्ग पकड़, भाईयों को न्याय सिखा, अपने जैसों के साथ प्रेम कर और अपने से छोटे लोगों पर दया कर। किसी त्रुटि में पड़ना ही त्रुटि है, एक नाम का उपासक होना, यही त्रुटियों को निकाल देता है मनुष्य कच्चा है, भूलों का घर है, चोटें खाता है। नाम की एक ही टेक लेकर चलने से त्रुटियाँ निकलती हैं और भूल के लिए क्षमा मिलती है। नाम में लगकर जीवित हो। जो नाम से बाहर है, वह सब मुर्दा हैं। वही व्यक्ति जीता है जिसके मन में वह मालिक बसा है। हाँ, जिसके मन में वह बसा है, वह जीता है प्रभु के साथ जुड़ा है,

उसके जीवन के साथ लगा है।[१]

मिट्ठा कृतार्थ हुआ, गुरू बाबा ने उसकी कसरें निकाल दीं। फकीर तथा तपस्वी मिट्ठा, जो एक धर्म की कट्टरता की कसर के कारण हिन्दू प्रजा के लिए सुखों का कारण नहीं बन रहा था, बल्कि अपने-आपको भी मैल लगा रहा था और हठ, तय करता हुआ ज्ञान की अवस्था में नहीं आ रहा था, अब वास्तविकता को देखकर ज्ञान की अवस्था में पहुँचा। ज्ञान की अवस्था में सत्य का निवास होता है; नाम का निवास होता है; उच्च तथा स्वच्छ आचरण का निवास होता है। सत्य की अवस्था में आकर आप सुखी हो गया, जगत के लिए सुख का एक दाता बन गया और इहलोक तथा परलोक सँवर गया।

हाँ, आज हम भी

गुरू बाबा का-जिसका हम नाम लेते हैं-का भाव समझें, एक नाम की ही टेक धारण करें, हुजूरी में निवास करें, गुणों के नाफे की सुगंधि के कारण करने वाले बनें।[२] हममें भी प्रेम प्रकाश डालें और प्रेम का सौंदर्य हमारे से झरने लगे। हाँ, हम उस सुन्दर गुरू नानक के सुपुत्र बनें।

सुचना-मियाँ मिट्ठा को सुमार्ग पर चलाकर गुरू बाबा जी शहु सुहागिन नामक एक पाखंडी फकीर को सुमार्ग पर चलाने के लिए चल पड़े और फिर रावी नदी के किनारे-किनारे, मार्ग में कई स्थानों पर पड़ाव करते हुए अन्त में लाहौर में जा पहुँचे।

□ □

---

१. इस समय का उपदेश गुरू बाबा की वाणी में आया है। पर जन्मसाखी वालों ने जिन्होंने अपने शब्दों में इसे लिखा है, वह इस प्रकार है। यह इस तरह श्री गुरू ग्रंथ साहब में नहीं आये, इसलिए यह गुरुबाणी नहीं, चाहे भाव कुछ-कुछ मिलता हो :-

नसीहत नामा

हाजरा को मेहर है, बे हाजरां को वे मेहर है। ईमान दोसत है, बेईमान काफर है। तिक्कबर कहिर है, गुस्सा हराम है, नफस शैतान है, गुमान कुफर है। पसगैबत (निन्दा) का मुँह काला है। बेईमान नापाक (अपवित्र) है, मोम दिल पाक है। इलम हलीमी है, बेहिरस औलिया है। बेदिआनत ना सुरखरू है। अकृतघ्न ज़रदरू है। सच्च भिस्त है। दरोग़ होज़क है, हलीमी हलूफा है, ज़ोर जुलम है। इनसाफ मुसाफ है। सिफत वजू है। बांग बलेक है, चोरी लालच है, यारी पलीती है फकीरी सबूरी है, ना-सबूरी मकर है। राहु पीरा है, बे राहु बे पीरा है। दिआनत दोस्त है। बेदिआनत नकार है। तेग मरदां है। अदल पातशाह है। इनते टोल जो जाण जाणवै। तऊ नानक दानसवंद कहावै ।।

2. गुण का होवै वासुला कढ़ि वासु लईजै ।

४९ शहु सुहागिन

(यहाँ लेखक की पंजाबी कविता का हिन्दी गद्य में अनुवाद प्रस्तुत है)

''आज चन्द आकाश में आयेगा और मेरा पति घर पर आयेगा। एकम एक दो से एक-एक रूप हो जाएगा।'' एक फकीर इस तरह के वाक्य मुँह से कहा करता था और सारे लोग उसके द्वार पर द्वितीया के दिन इकट्ठे हुआ करते थे। वहाँ पर बड़ा भारी मेला लगा करता था और ढोल बजते थे। जो कोई भी आता था, बन्द किवाड़ों के बाहर से ही उसे सीस झुका देता था। फकीर सदा अन्दर ही घुसा रहता था और किवाड़ तक भी नहीं खोलता था। बुरका डाले अंदर ही बैठा रहता था और मुँह से कभी भी कुछ नहीं बोलता था। फूलों की सुहावनी शय्या बिछी रहती थी और वह पावों की ओर बैठा रहता था और रात-दिन बुरका डाले इसी तरह जागता रहता था। लोग समझते थे कि सचमुच ईश्वर इसके घर में आते हैं और प्रभु के आने के परदे के कारण यह किवाड़ नहीं खोलता। लोग बाहर इकट्ठे होते थे और चढ़ावा दे-देकर चले जाते थे। मन्नतें तथा अन्य भेंटें, सब कुछ आंगन में ही रखकर चले जाते थे। एक बार प्यारे सतगुरू नानक देव जी इस नगर में आए और आपने सारा समाचार सुनकर फकीर जी के डेरे पर अपने चरण रखे। आज भी चन्द्रमा के चढ़ने का दिन था और सारी जनता आकर इकट्ठी हो गई थी। सतगुरू जी ने उसके द्वार पर जाकर सतनाम की अलख जगाई और उसके चेले ने अन्दर जाकर उससे कहा कि कोई ''पूर्ण पुरुष आया है। उसकी सूरत ईश्वरीय है और आपसे मिलने के लिये आया है।'' यह सुनकर शहु सोहागिन कहने लगा ''मैं अपने प्रिय की प्रियतमा हूँ, आज मेरे कंत को आना है, इसलिए मैं आज नहीं मिलूँगी, द्वार बंद करके रखो।'' चेले ने आकर करबद्ध प्रार्थना की। मैं कहकर लौटकर आ गया हूँ, ''उन्होंने मिलने की आज्ञा नहीं दी।'' अब गुरू नानक के कौतुक देखिए, अपने-आप ही चलकर आता है। जहाँ पर उसे आदर नहीं मिलता, वहाँ भी वह पहुँच जाता है। उस पाखण्डी फकीर के भाग्य देखिए कि द्वार पर आये हुए 'शहु' को वापिस लौटा रहा है। न जाने वह किस 'शहु' के लिए अन्दर छिप रहा था और इतना कष्ट सहन कर रहा था? श्री गुरू नानक देव जी 'निरंकार' कह कर, आगे को चल पड़े। आपके चले जाने के पश्चात मेले में अंगम की ओर से शोर-सा मच गया, सारे नगर में अपयश फैल गया और सारी श्रद्धा चली गई। सारी जनता यही कहने लगी कि यह पाखण्डी है, इसके पास कोई करामात नहीं। हे लोगो! यह सुहागिन नहीं है और कंत इसके द्वार पर नहीं आयेगा।'' इसने तो बातों-बातों में पाखण्ड बना रखा है और बेकार ही पर्वत सिर पर उठा रखा है।''

---

१. शहु सुहगिन के ठिकाने का पता नहीं चलता कि यह स्थान कहाँ पर था। श्री गुरू नानक प्रकाश में श्री गुरू जी के मुलतान जाते समय आधी कथा और आधी आते समय दी है।

दूज का चन्द्रमा फिर चढ़ आया, पर मेला न लगा। सच्चे सतगुरू नानक देव जी उद्धार करने के लिए, फिर उस नगर में आए। आप क्या देखते हैं कि फकीर का परदा उठ गया अहम् खण्डित हो गया और वह दु:खी है। गुरू नानक देव जी ने उस पर दया करके अपने लक्ष्य को देखा और उस द्वार पर पड़े हुए एक रोगी भिखारी को प्यारे सतगुरू जी ने उसके सुख की बात कही। यदि तू स्वस्थ होना चाहता है तो 'शहु सुहागिन' कह देना।'' यह कहते ही उसका रोग दूर हो गया और देह स्वस्थ हो गई। वह 'शहु सुहागिन धन्य' कहता हुआ प्रसन्नता से पुकारने लगा। उसने शोर मचा-मचाकर सारे नगर को सुना दिया उसे देख देखकर लोग यह कहने लगे, कि दु:ख से व्याकुल हुआ वह अब स्वस्थ हो गया है'' शोहदे लोग मदिरा पीकर आपस में लड़ पड़े और अच्छी लाठी चली। बीच में छोटे-बड़े सभी पिसने लगे और हाहाकार मच गया। 'शहु सुहागिन' सच्चा है पर लोग उसे झूठा कह रहे थे।'' फिर से श्रद्धा, फिर से प्यार उत्पन्न हुआ ओर सम्मान लोटकर आ गया। तब फकीर ने भिखारी से सही बात पूछी। उससे ठीक समाचार सुनकर उसे समझ आ गई, कि जिसे घर में आये हुए को मैंने अकड़ बताई थी, वह तो शक्ति का मालिक है, वही अब दोबारा लौटकर आया है। अब तो उसके चरणों में गिरकर उसका सत्कार करना चाहिये। यह कुछ सोचकर ससत्कार हुआ और मन में श्रद्धा भर आई और गुरू नानक के चरणों में गिर कर और रो रोकर अपना समाचार सुनाने लगा। मैं पाखण्डी हूँ, अत्यन्त लोभी हूँ, मैंने आपका अपमान किया है। मैंने आपको द्वार पर आये को वापिस लौटा दिया था बड़ी अनीति की थी। आपने मेरी लज्जा रखी है और मेरे अवगुणों की ओर नहीं देखा। आप फिर आये हैं आपने दया की है, आपने मुझ-जैसे शुष्क को हरा कर दिया है। अब मुझे अपना दास बनाइये और अपने चरणों के साथ लगा लीजिए।'' तब सतगुरू जी ने वहाँ पर सतनाम की बौछार लगा दी। उस फकीर की फकीरी की भूल को खोलकर दिखा दिया।

''नाम जपो और सतनाम का आराधन करो और अपने प्रभु के साथ लौ लगाओ। अपने जीवन को सत्य का जीवन बनाओ, जिससे सुख की स्वास आवे। कभी पाखण्ड मत करना और न कभी भेख दिखाना। सतनाम का जाप जपो, यही मत धारण करो। जब इसका त्याग करके कुछ और करोगे तो सभी शक्ति दूर हो जाएगी।''

तब उसे पूर्ण रूप से होश आ गया और नाम जपने लगा और सुखी होने लगा, ''शहु गुरू नानक'' कह कहकर संसार को सुमार्ग दिखाने लगा। हे भाई! आप भी आज उस गुरू के प्यारे सिक्ख कहलाइए। सतनाम की लौ लगा लीजिये जिसे आपका जन्म-मरण समाप्त हो जाये।

सूचना – अब फिर लाहौर आ पहुँचे। हाँ, सतनाम की वर्षा करते हुए और जलते हुए जगत को शांत करते हुए सतगुरु जी फिर लाहौर आ गए। लाहौर का एक महान् कौतुक आगामी प्रसंग में है।

□ □

५० दुनीचंद धुप्पड़ का निस्तार

: १ :

कबूल चंद – लाला जी! कोई नई बात सुनी है, क्या आप ने?

दुनीचंद – नहीं जी! कोई दिसावर के भाव पत्ते की?

कबूल चंद – नहीं जी! वह जो सुना करते थे कि कोई तपी प्रकट हुआ है, वह लाहौर आया हुआ है।

दुनीचंद – कौन सा तपी?

संसार चंद – अच्छा; और आपने सुना ही नहीं; नाम तक नहीं सुना क्या?

दुनीचंद – कुछ पता ठिकाना तो बताइए।

कबूल चंद – लोग नाम तो – नानक चंद – कहते है। उनके अनुयायी – गुरू नानक देव जी बताते हैं।

नाम सुनकर दुनीचंद के अंदर एक झन्नाहट – सी छिड़ गई।

दुनीचंद – अच्छा...हाँ हाँ...ठीक है, वही जिन्होंने सिआलकोट नगर को हमजागौंस के श्राप से बचाया है?

कबूल चंद – हाँ; आपके बच्चे जियें, वही...

संसार चंद – भैया जी! भगवंत ने क्या कोई कला फेर दी है कि हमारे हिन्दुओं में भी कोई आया है, जो किसी की भी परवाह नहीं करता; किसी से भी डरता नहीं, जिसका लोहा मुसलमान फकीर मानते हैं और शरह वाले काजी, मुफ़्ती भी जिस पर हाथ डालते हुए डरते हैं, झिझकते हैं।

दिलबाग राय – है तो ठीक, वह तो कहा जाता है कि इब्राहीम लोदी को भी दिल्ली में निधड़क हो खरी – खरी सुना आया है। कहा जाता है कि महावतों ने प्रार्थना की थी कि हमारा हाथी मर गया है, हम बेरोज़गार हो गए हैं, हम पर कृपा करो। तब आपने कहा – (जाकर इसके मुँह पर हाथ फेरिए, वाहिगुरू कहिये (पुरातन जन्मसाखी) ऐसा करने से तत्काल मरा हुआ हाथी उठकर खड़ा हुआ। लाला जी! शक्तिवान है, कलावान है कोई कणी रखता है, इसीलिए तो क्या राजे, क्या नवाब ओर क्या काज़ी – मुल्ला, पीर तथा फकीर सभी उसका लोहा मानते हैं न?

दुनीचंद – हाथी के जीवित हो जाने पर तो सारी दिल्ली टूटकर आ गई होगी?

दिलबाग राय – और क्या? पातशाह इब्राहीम आप चलकर आया था, दर्शन करके कृतकृत्य हुआ था और कहने लगा था – 'अरे दरवेश! क्या यह हाथी तुमने जीवित किया है?'

तब बाबा ने कहा था, 'मारने वाला ईश्वर है और फकीरों की दुआ (प्रार्थना) तो ईश्वर की कृपा है[१]।' इस पर पातशाह ने कहा, यदि फकीरों की प्रार्थना पर ईश्वर दयालु होकर कहा मान जाता है तो आप कहें, यह हाथी खड़े-खड़े ही मर जाये। तब श्री गुरू जी ने कहा : 'मारने तथा जीवित करने वाला प्रभु आप है, यदि वह चाहे तो मरते भी एक क्षण नहीं लगता।[१] लीजिये लाला जी! यह कहने की देर थी कि हाथी धड़ाम करके गिर पड़ा ओर उसकी मृत्यु हो गई।

पातशाह हैरान रह गया, फिर कहने लगा, कि अब जिला दीजिये।

तब गुरू बाबा ने कहा – हजरत! लोहा आग में पड़कर लाल अंगार हो जाता है। वह लोहा पर क्षणभर भी हाथ नहीं टिका सकता, उसे छुआ नहीं, कि हाथ जला नहीं, पर यदि अंगार को शीघ्रता से उठाकर फेंक दें, तो तुमने देखा होगा कि हाथ नहीं जलता। जलती हुई आग में से यदि कोई फुर्ती से हाथ निकाल ले जाये तो हाथ उसके ताव से बच जाता है, पर लाल हुए लोहे को छूने की कोई भी फुर्ती हाथ को जलाने से रोक नहीं सकती। उसी तरह फकीर प्रभु में पड़कर उसकी लाली से लाल हुए हैं, 'तिऊ खुदाई दी सट्टी ओ उठाइ लैइनी, परिं उन्हां दी सटी बी उठणों रही'।[२]

पातशाह ने कहा – फकीर जी, ईश्वर से मिलकर ईश्वर रूप हो रहे जी! हमने आपके रहस्य को जान लिया है। प्रभु अपने प्रेमियों के प्यार के कारण, यदि वह उसकी आज्ञा में किसी उच्च तरंग में आकर हस्तक्षेप करें तो प्रभु उन्हे वर्जता नहीं, उसी प्यार के नाते अपने प्रेमियों की किसी उच्च भाव में की हुई बात को निरर्थक भी नहीं कर देता। वाह वाह, आप धन्य हैं। कुछ दया कीजिये, हमारी ओर से कुछ उपहार स्वीकार कीजिये?

तब गुरू जी ने कहा – पातशाह! हमें किसी पदार्थ की भूख नहीं, जो भूख पातशाहों तक को व्याकुल कर रही है, हम उससे बेपरवाह हैं। हाँ, एक भूख हमें भी है, वह भूख ईश्वर की है; रात-दिन उसके रंग में रांते हैं, उसी के आधार पर जीवित हैं, उसी में चलते-फिरते हैं, उसी का नाम हमारा खाना-पीना है, पर फिर भी उसकी प्यारी-प्यारी तथा मीठी भूख लगी रहती है। यह भूख, जगत की भूख से मुक्त करती है, और प्रभु के दर्शन की लालसा में रसमग्न किये रखती है[३]।

इस बेपरवाही, इस शक्ति तथा निधड़कता को देखकर पातशाह सीस झुकाकर, हाँ कट्टर पातशाह हिन्दू के आगे सीस झुकाकर चला गया।

संसार चंद – और वह बात भी सुनी है क्या?

दुनीचंद – कौन सी?

संसार चंद – पानीपत वाली।

---

१. पुरातन जन्मसाखी, पृष्ठ ३२ (द्वितीय संस्करण)

२. पुरातन जन्मसाखी ।

३. पुरातन जन्मसाखी ने इस भाव का एक साखी में वर्णन किया है :-

"नानक भुख खुदाइकी बिआ बेपरवाही ॥
असां तलब दीदार की बिआ तलब न काई ।"

पर यह श्लोक गुरुवाणी नहीं, क्योंकि श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी में नहीं है। हां वहाँ पर यह पाठ है-
"नानक भगतां भुख सालाहणु सचु नामु आधारु ॥"

दुनीचंद-नहीं, सुनाओ तो?

संसार चंद - तुम्हें पता होगा कि ख्वाजा कुतबदीन दिल्ली वाले फकीर का चेला अबू-अली कलन्दर-जिसे शाह शरफ़ भी कहते हैं- संसार में फिरता हुआ, शमस तबरेज़ तथा मौलाना जलालदीन रूमी जैसों की संगति में रह चुकने के बाद अन्त में पानीपन में आकर टिका था। आजकल उस स्थान पर उसका तीसरा उत्तराधिकारी है। है तो वह भी मुसलमान, पर कहा जाता है कि अपने पूर्वज की भाँति तपी पुरुष है और बड़ी मान-प्रतिष्ठा वाला है। उसे भी लोग शाह शरफ़ कहते हैं- तीसरा शाह शरफ़। वह पंजाबी बोली में फकीरी के गीत भी रचता है। वह मुसलमानों में एक उच्चकोटि का विद्वान तथा मान प्रतिष्ठा वाला है। उसका चेला शेख टटीहरी कहीं पानी लेने के लिये आया तो आगे आप कुए पर बैठे थे-शेख ने समझा कि कलन्दरी स्तर का सूफी फकीर है, उसने सलाम कहा तब निधड़क तथा निर्भय गुरू नानक ने उसके सलाम को उलटा दिया, तनिक-सा भय न किया कि मुसलमानों का राज्य है, यदि किसी काज़ी ने फतवा[1] दे दिया, तो प्राण सुरक्षित नहीं होंगे। हाँ हिन्दु बेचारे का भी कोई जीवन है? हिन्दू का जीवन तो चिड़िया जैसे पक्षी का-सा है। पर देखिए निर्भय हो, गुरू कहने लगा-'अलेख को सलाम'(प्रणाम ईश्वर को)।

दुनीचंद - क्या अर्थ निकला?

संसार चंद - भाई हम तुझे सलाम[2] नहीं करते, हमारा प्रणाम उस परमेश्वर को है, जो किसी लेखे में नहीं, अर्थात् रूप, रेखा, चिन्ह से पृथक ईश्वर को हमारा नमस्कार है। शेख टटीहरी तो हक्का-बक्का रह गया है। यह कौन है जो इसलाम की 'सलाम अलैकम' को तोड़-मोड़ रहा है। भागकर अपने पीर के पास गया और जाकर बताया। उसने समझा कि मुसलमान तो कोई भी धर्म की नमस्कार को मोड़-तोड़ नहीं सकता; अपने धर्म की लज्जा तथा सम्मान के कारण तथा हिन्दु भय के कारण इतना साहस कर नहीं सकता; हो न हो यह ईश्वर का ऊँचा किया हुआ कोई मनुष्य है, चलो चलकर दर्शन करें। यह सोचकर आया। आकर वार्तालाप करने लगा। लीजिए लाला जी! भगवान तुम्हारा भला करे, कहते हैं- वह कोई पहर-भर लगा रहा। बड़े-बड़े प्रश्न किये और कई प्रकार के व्यंग करने लगा, पर उत्तर पाकर उसकी तसल्ली होती जाती थी। अन्त में, भगवान तुम्हारा भला करें, चरणों पर झुका। मुझे देखने वालों ने बताया कि शाह शरफ़ ने कहा,''वाह! वाह!! ईश्वर के शुद्ध किये हुओं का क्या कहना? उनका दर्शन ही बहुत है, तब आकर (दस्तबोसी) हाथ चूमा ओर पाँव भी चूमे।''

दुनीचंद - (दस्तबोसी) हाथ चूमना क्या होता है?

संसार चंद - हाथ में हाथ लेकर दबाना फिर हाथ चूमना।

दुनीचंद - मुसलमान, उच्चकोटि का फकीर है! उसने हमारे हिन्दू फकीर के हाथ को हाथ में लेकर चूमा और फिर पांव चूमे, इससे अधिक और झुकना क्या हो सकता है? गत चार सौ वर्षों में, मुझे आशा नहीं कि कभी किसी मुसलमान ने किसी बड़े-से-बड़े हिन्दू के

---

१. इसलामी शरह के अनुसार किसी बात के उचित अथवा अनुचित होने के सम्बन्ध में दी जाने वाली व्यवस्था ।

२. अरबी भाषा में 'सलाम' का अर्थ है, ग्रीवा झुकाना ।

आगे ऐसी नम्रता दिखाई हो।

दिलबाग़ राय – यही तो बात है। यह है न शक्ति। यहीं से पता चलता है कि गुरू नानक फकीर ही नहीं, वह कोई है, कोई...।

दुनीचंद – क्या कोई?

दिलबाग़ राय – हमारे मुखिया जी! कल एक पण्डित बिगड़ रहा था ओर कोई कह रहा था अवतार आया है, इस धरती पर वह रंग जमायेगा कि म्लेच्छ सभा उठ जायेगी।

दुनीचंद – तो इतने सुन्दर के साथ बिगड़ता क्यों था?

दिलबाग़ राय – वैसे ही बुरी आदतें, चढ़े हुए चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न न होना। लाला जी! वास्तव में बात यह है कि हमारा हिन्दू धर्म है, कहते हुए लज्जा आती है, अपने मुँह से अपने-आपको बुरा कहने वाली बात है, पर है बात सच्ची कि ब्राह्मणों में तो शक्ति रही ही नहीं, केवल पोचा-पोची रह गई है, टक्का यहाँ पर रखिये, टक्का यहाँ पर रखिये। न इन लोगों में विद्या, न तप, न व्रत, न शील। यदि यह कभी धर्म वाले बने रहते तो, उधर खत्रिय धर्म वाले बने रहते तो कभी 'पठानों' का ज़ोर पड़ सकता था। शताब्दियों तक लोग विलासी होकर धर्म से दूर-ही-दूर रहे, न बल रहा, न धर्म रहा, न शक्ति रही, बस खोखले वृक्ष की भाँति आँधी के आते ही गिर पड़े फिर ऐसे गिरे कि उठे ही नहीं, और कोई गिरे हुओं को उठाये ही क्यों?[१]

दुनीचंद – सत्य है, पर बताइए वह ब्राह्मण जो बिगड़ता था, वह क्यों बिगड़ता था?

दिलबाग़ राय – वह कहता था कि साथ मुसलमान रबाबी मरदाना क्यों है? और जनेऊ क्यों नहीं पहनते और वर्णाश्रम का पालन क्यों नहीं करते? खाने-पीने की छूट क्यों कर रखी है? व्रत आदि क्यों नहीं धारण करते? लम्बे-लम्बे केश क्यो रखे हुए हैं? शिक्षा, सूत्र तथा धोती क्यों नहीं रखी हुई? कभी कोई भेस धारण करते हैं कभी कोई। कभी आधा हिन्दुओं वाला और कभी आधा मुसलमानों वाला भेस धारण करते हैं। कभी आधा फ़कीरी भेस ओर आधा गृहस्थियों वाला, यह रंग क्या हुए? दूसरा पण्डित यह कहता था कि यह अवतार आये हैं, जो पुराणों में बताया हुआ है कि कलियुग में आयेंगे, पर दूसरा ईर्ष्यालु होकर छिद्र निकालता था।

दुनीचंद – भला वे ऐसी बातें क्यों करते हैं, कुछ तुम भी तो कहो?

दिलबाग़ राय – यदि जीव हों तो मैं कुछ कहूँ भी, वे ते कारक हुए, ईश्वर की ओर से जगत का उद्धार करने के लिये आये हुए समर्थ, को कोई क्या कहे? अग्नि समर्थ है, कुछ डाल दीजिए, भस्म हो जाता है, गंगा समर्थ है, जो चाहे उसमें डाल दीजिए। मलिन नहीं होती। समर्थ सूर्य सभी अच्छे-बुरे स्थानों पर चमकता है, धूप को कभी मैल नहीं लगती। समर्थ क्या और उसके किये में दोष क्या?

दुनीचंद – यह तो सत्य है, पर अन्त उनके कौतुकों का कोई अर्थ?

दिलबाग़ राय-मैंने सुना है कि वे कहते हैं, ''जनेऊ जीअ'' का पहनिये, यदि जी को जनेऊ नहीं पहनाया तो शरीर को जनेऊ का क्या लाभ है? कहते हैं- जनेऊ पहनकर लोग बदी करते हैं, पाँचों इन्द्रियों को कोई रोक नहीं पाता। जनेऊ का अर्थ है न :-धर्म के

---

१. इतिहासकारों ने पठान राज्य की स्थापना से पहले भारत के समाचारों की दो काली शताब्दियाँ कहा है।

धारण करने वाले का चिन्ह, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीन जाति जो धर्म में भाग ले सकती थीं, उनके चिन्ह का धागा[१]। यज्ञ धर्म है, अत: धर्म का धारण करना। अब धर्म तो रहा नहीं, केवल धागा ही रह गया है। वे कहते हैं-धर्म धारण कीजिए जो धर्महीन हिन्दु हैं, उनका मज़ाक उड़ाते हैं जिससे वे धर्म में उच्च हों। शेष वे हिन्दुओं से कहते हैं कि तुम मूर्ति पूजा छोड़ दो, हीनता दोड़ दो, सुरत ऊँची करो, नाम जपकर सत्य पर आ जाओ।

दुनीचंद - हरे-हरे, ठाकुर पूजा! यदि यह चली गई तो शेष हिन्दु धर्म रह ही क्या गया?

दिलबाग़ राय - मैंने एक प्राचीन पुस्तकों के पढ़ने वाले पण्डित से सुना है कि मूर्ति पूजा का प्रचार भारत में अधिकतर बौद्धों ने किया है। वे लोग एक परमेश्वर, एक ब्रह्म को भली-भाँति समझ नहीं सके। वे परमेश्वर को नहीं मानते थे। वे अच्छे शिष्टाचार वाले तो थे, पर उन्होंने ईश्वर की ओर से आँखें मून्द ली थीं। बुद्ध जी ने स्वयं तो कोई स्पष्ट अनीश्वरवादी बात खोल कर नहीं कही, पर सम्प्रदाय ने लगभग ईश्वर को माना ही नहीं। अब बुद्ध जी की मृत्यु के पश्चात प्रेमी हृदयों को दु:ख हुआ। परमात्मा तो उनके हृदयों को आधार था ही नहीं। केवल शुभ कर्म सुरत का आश्रय बन नहीं सकते थे, अत: सुरत ने आश्रय कहाँ? बुद्ध के प्रेमियों के समक्ष तो केवल बुद्ध जी ही थे, इसलिये उन्होंने अपने सुन्दर मनुष्य आदि कर्ता श्री 'बुद्ध' जी की प्रतिमा बनाई और उसकी काल्पनिक मूर्तियों को सर्जना की, जिन्हें देख-देखकर सुरत ध्यानमग्न हो जाये। इन 'बुद्ध मूर्तियों' की पूजा चल पड़ी। फारसी का पद 'बुत' इसी बुद्ध पद से बना लगता है। अत: एक ओर तो इन मूर्तियों के निर्माण में भक्ति की भावना और दूसरी ओर कला का कमाल हुआ; पर तीसरी ओर सर्वसाधारण में, इन मूर्तियों में देव-बुद्धि होकर पूजा शुरू हो गई और अन्त में पूजा मात्र ही रह गई। जब ब्राह्मण-मत ने दोबारा शक्ति प्राप्त की और बुद्ध मत के मुकाबले में लोगों के आमोद-प्रमोद की आवश्यकता हुई, तो बुद्ध की मूर्तियों के स्थान पर उन्होंने अपने ठाकुरों की रचना की, मूर्तियों तथा मन्दिरों का निर्माण किया। उनकी कथाओं के स्थान पर अपने पुराणों की सदाचारक कथाएँ रचीं, यों उस प्रयत्न में हिन्दू एक विशुद्ध मूर्तिपूजक जाति बन गई। गुरू नानक जी कहते हैं-पत्थर ईश्वर नहीं, पत्थर में मूर्ति का निर्माण तो तुम करते हो, तुम्हारे भाव उसमें अंकित हो जाते हैं, तो जनता को क्यों वे भाव प्रदान नहीं करते और निरंकार के साथ उनके हृदयों को मिलाते और उन भावों से उन्हें हिलोर में क्यों नहीं लाते? हमारा हृदय मूर्ति नहीं, एक शक्ति है, हमारी आत्मा मूर्ति नहीं, एक शक्ति हैं, परमात्मा एक मूर्ति नहीं, वह एक महान शक्ति है, वह शक्ति आकार वाली है। वह मूर्ति नहीं, पर (अकाल मूर्ति-जिसकी मृत्यु न हो) है। वह आत्मा है, परमात्मा है, अत: तुम हृदय को एकाग्र करके आत्मा को प्यार में लगाओ और यों इसे आत्मा-रूप करो। हाँ, आत्मा को परमात्मा के प्यार में लगाओ। सीधे मार्ग पर चलो, मन-से-मन, मन से आत्मा, आत्मा से परमात्मा के साथ लगकर आठों पहर उसी रंग के हिलोर लेते रहो और गुरू की सहायता लो।

दुनीचंद - सुन्दर बात है, आपकी बात से आनन्द आ गया है।

---

१. यज्ञ -योग्य । उपवीत - धागा ।

दिलबाग़ राय – फिर सोचिये न लाला जी! यदि हम कभी मूर्ति पूजक न होते तो हमारी और मुसलमानों की शत्रुता यहाँ तक न पहुँचती जहाँ पहुंचकर हम अत्यन्त दुखी हो रहे हैं।

इसी तरह मैंने सुना है कि केशों का निरादर करना और चोटी रखना भी हमने बोद्धों से सीखा है। वेदों में तो ईश्वर को भी सुन्दर केशों वाला ओर दाढ़ी वाला बताया गया है। वेदक ऋषि केशों वाले हुए हैं। हमारे अवतार राम, कृष्ण, सभी केशों वाले हुए हैं, स्वंय बुद्ध जी की सभी मूर्तियाँ केशों तथा जूड़ों से सुशोभित हैं। बुद्ध भिक्षुओं ने जब शरीर को घृणा में डाला और सभी श्रृंगार हटा दिये तब केशों को भी श्रृंगार समझकर अपने-आपको कुरूप बनाने के लिये केशों को दूर किया और जब उनकी देखा-देखी उनके गृहस्थी सेवकों ने भी उनकी नकल की तो वही प्रथा चल पड़ी। बाद में हिन्दुओं ने पण्डितों ने, चोटी रख ली और मुंडन संस्कार की प्रथा चालू करके धर्म की मुहर लगा दी। सो वास्तव में तो पुरातन रिवाज केश रखने का है, यह मुंडन संस्कार बाद में बनाये गये हैं[१] और बाद के शास्त्रों में हैं और असली सनातन नहीं है।

इसी तरह वे सभी भेसों से मज़ाक करते रहे हैं जबकि आप आधे-आधे मिलाकर धारण करते हैं और कभी कोई, कभी कोई करते हैं। वास्तव में क्या योगी और क्या सिद्ध, क्या ब्रह्मचारी और क्या संन्यासी, सबका भेख-ही-भेख रह गया है। सोचिये लाला जी! धर्म केवल भेख के साथ तो नहीं है न! वे यही बात बता रहे हैं कि धर्म धारण करो। सो मेरे विचारानुसार तो वे ठीक ही कर रहे हैं। बाकी रहा मुसलमान रबाबी का साथ होना यह उन्होंने शताब्दियो से नीचे की ओर बहती हुई नदी को ऊँची ओर बहाकर दिखाया है। हम हिन्दू कच्चा धागा बन रहे हैं-जो व्यक्ति मुसलमानों से मिला जुला, वह समझ लीजिये गया। हम इस तरह से मुसलमानी अग्नि में स्वयं आहुति डाल रहे हैं, पर उन्होंने मुसलमानों को अनुयायी बनाकर साथ रखकर दिखा दिया है कि आप समर्थ हैं और मुसलमानों कों हिन्दू बना सकते हैं। जो धर्म वे सिखा रहे हैं, वह उच्च तथा विशाल है। वह सबको अपने में ले लेता है। मेरी राय में तो हम नाम के ही हिन्दू हैं, वास्तव में तो वे हिन्दू हैं जो कुछ वे सिखा रहे हैं, वही ठीक है।

दुनीचंद – वे हिन्दू साधुओं से किस तरह का व्यवहार करते हैं?

दिलबाग़ राय – उसी तरह उनके पाखंड को तोड़ते हैं, सत्य का सूर्य दिखाते हैं। जब गोरख मता पहुँचे तो एक पुराने सूखे वृक्ष को हरा करके उसकी छाया में बैठकर गये। फिर जब योगी चर्चा करने के लिये आये तो वे उनका लोहा मानकर गये। जिस तरह शेख शरफ ने माना था उसी तरह काशी के चतुरदास पण्डित ने भी सीस चरणों पर रखा था। हाँ, वे तो हिन्दू तीर्थों से होकर आये हैं और प्रत्येक स्थान पर निर्भयता दिखाकर आये हैं कि पाखंड को छोड़ो और धर्म को धारण करो। किसी से झिझकते नहीं, मानो सत्य का सूर्य चढ़ा है।

---

१. कुछ लोग यह भी कहते हैं कि 'नंद' राजाओं में से किसी ने ब्रह्मणों को रुहानी शक्ति हर लेने के लिये इनके केश कटवा दिये और इन से मुंडन संस्कार के श्लोक बनवाकर लोगों को भ्रम में डाला और यों हिन्दू समझने लगे कि मुंडन-संस्कार शास्त्र विहित बात है। देखिए गुरू प्रताप सूरज ग्रन्थ ऋतु ५ असु २८।

संसार चंद – परसों मैं भी गया था और भैया मनसुख जी परदेश के बड़े व्यापारी जो अपने सम्बन्धी हैं....।

दुनीचंद (बात काटकर) – हाँ, हाँ, मनसुख जी बहुत सज्जन पुरुष हैं, उनकी क्या बात है?

संसार चंद – वे तो काफी समय से आपके शिष्य बन चुके हैं, बड़ी श्रद्धा और प्यार है। वे मुझे साथ ले गये थे। दर्शन करके हृदय शीतल होता है।

दिलबाग़ राय – मैं भी गया था, रावी तट पर बैठे थे, बस देखा तो दिल बाग-बाग हो गया।

कबूलचंद – तुम हो भी तो दिलबाग़ राय।

दिलबाग़ राय – सचमुच मेरा नाम दिलबाग़ था-पर दिल बाग़-बाग़ हो गया, परसों उनके रसीले नैनों की झाँकी देखने पर।

दुनीचंद – बचन सुनकर मेरे अंदर श्रद्धा जाग गई कि किसी तरह मुझे भी दर्शन प्राप्त हों। मैं भी कुछ सेवा करूँ। मेरे पास जो धन है उसे किसी अर्थ लगाऊँ। धन सफल हो।

दिलबाग़ राय – आपके पिता जी का श्राद्ध आ रहा है, उस समय उन्हें न्योता दीजिये, घर पर आयेंगे, खुले दर्शन होंगे। महिलायें बिचारी अंदर रहती हैं, दर्शन करके कुछ लाभ प्राप्त करेंगी, बाहर तो बेचारी निकल ही नहीं सकतीं।

दुनीचंद – अच्छी बात है, पर आप आयेंगे क्या? बहुत बड़े जो हैं।

संसार चंद – संशय की बात है। सैदपुर संडियाली सुना है न, मलिक भागो जैसे के घर नहीं गये थे।

कबूलचंद – मानी तथा अभिमानी लोगों के यहाँ नहीं जाते, ग़रीबों के यहाँ चले जाते हैं, श्रद्धा रखने वाले अमीरों के यहाँ भी शायद चले जाते होंगे।

दिलबाग़ राय – सुना है कि जब सुलतानपुर, मोदी खाने का त्याग करके उजाड़ में जा बैठे थे तो दोआबा के नवाब दौलत खाँ लोदी ने कहलवा भेजा था कि ईश्वर के लिये दर्शन दीजिए, तो फिर आप आ गए थे और आपने वे सभी कौतुक तो सुने ही होंगे ?

दुनीचंद – कौन से?

संसार चंद – काज़ी कहने लगा: ''आप जो कहते हैं-कोई हिन्दू नहीं, कोई मुसलमान नहीं तो तुम्हारे लिये दोनों एक से हैं, क्योंकि आपके विचारानुसार दोनों ने धर्म से मुहँ मोड़ लिया है, आप तभी कहते हैं न कि कोई नहीं, अच्छा नमाज़ पढ़नी तो धर्म है, हमारे साथ चलकर पढ़ो।'' तब चले तो गये पर नमाज़ न पढ़ी, जब काजी ने कहा कि हमारे साथ नमाज क्यों नहीं पढ़ी। तब आपने उत्तर दिया, ''तुम तो सारा समय उठते-बैठते रहे हो ओर मन लगा रहा है घर के आँगन में बछेड़े की रक्षा में, कि कहीं कूए में न गिर जाये।'' जब बात सच्ची निकली, तो काज़ी लज्जित हुआ, फिर नवाब ने कहा, ''मेरे साथ नमाज पढ़ लेते।'' तब आपने कहा-'तू काबुल में घोड़े खरीदता रहा है। बेहुज़ूरी की नमाज़, नमाज़ नहीं, वह तो उठना-बैठना ही है।'' तब वह बात भी सच्ची निकली और नवाब श्रद्धावान बना। कहने

---

१. सुलतानपुर उस समय दोआबा की राजधानी था ।

लगा-हे नानक! यह राज्य माल, हुकम हासिल सब कुछ तेरा पर उन्होंने कहा: ईश्वर तेरा भला करे यह सब कुछ तेरा है, हम इसे त्याग चले हैं। जब आप वहाँ से चले, तब बड़े-बड़े फकीरों ने आपके पाँव चूमे।[१] लोगों ने नमस्कार की, नवाब स्वयं आपको विदा करने के लिये आया। अत: सज्जनों! जहाँ पर भावना हो वहाँ पर गुरू हमने सुना है कि अमीरी-ग़रीबी नहीं देखता, वहाँ पर आ जाता है। मलिक भागो घूस खाने वाला प्रजा का शोषण करता था, अत्यंत अंहकारी और मानी था, इसलिये आप उसके पास नहीं गये थे। मैंने सुना है कि उसके पकवान में से रक्त के बूँदे निकालकर गुरू जी ने दिखाई थीं और भरी बिरादरी में उसे लज्जित किया था कि उसका भोजन प्रजा का निचोड़ा हुआ रक्त है और ग़रीबी मजदूर खाती लालो के कोदों में से दूध की बूँदे निचोड़ कर दिखाई कि यह एक ईश्वर को प्यार करने वाले ग़रीब की धर्म की कमाई है।

दुनीचंद – तो मैं उस श्रद्धा के साथ, जो मेरे अंदर उत्पन्न हो गई है, स्वंय चलकर जाऊँ, और उनको निमंत्रण दूँ तो आशा है आप आ जायेंगे।

दिलबाग़ राय – मुझे आशा है कि आपकी श्रद्धा के कारण आ जायेंगे।

दुनीचंद – भली बात है, हृदय में श्रद्धा जाग्रत हो गई है, मैं असत्य नहीं कह रहा। मैं तो दिन-रात माया में फँसा हुआ हूँ, लाशों के बोझ के नीचे दबा हुआ, पर न जाने मेरा चित्त क्यों पिघल रहा है कि कब दर्शन करूँ और कब अपनी आँखों से देखूँ। यदि कोई कौतुक मुझ पर भी घटाकर मुझे भी कोई मार्ग बता दें, रेख में कोई मेख लगा दें तो मेरा भी भला हो जाये।

दिलबाग़ राय – उनके अनुयायियों से, जिन्हें सिख कहते हैं, यह सुना जाता है कि वे भाव पर रीझते हैं। आप भय तथा भाव ही सिखाते हैं। प्यार, सहानुभुति, सेवा सिखाते हैं और गृहस्थ में बसते हुए प्रभु के साथ जोड़ देते हैं।

दुनीचंद – आशा है, कि आपकी आशा पूरी होगी। अच्छा, अब काफी रात हो गई है, यदि कल आप सारे सज्जन आ जायें तो सारे मिलकर चलें।

दिलबाग़ राय – हम तैयार हैं, पर अच्छा तो यही है आप अकेले ही जायें। सुना तो यही है कि उनके पास आप तथा अकेले जाने से अधिक सुख प्राप्त होता है।

दुनीचंद – अच्छा, अकेले ही सही, जरा आदर के कारण शर्म लगती है।

दिलबाग़ राय – लज्जा काहे की, भले काम में लज्जा! प्रभु का आश्रय लेकर चले जाइए, उनका ही आश्रय ले लीजिए।

दुनीचंद – अच्छी बात है।

: २ :

पंजाब की ऐरावती, जिसे अब रावी कहते हैं, अपने रंगों में ठुमक-ठुमक बह रही है। अमृत वेला है, पश्चिम की ठंडी-ठंडी वायु नदी के जल से गले मिल-मिलकर प्यार ले लेकर आ रही है। इस पार ईश्वरीय ज्योती विराजमान है, समाधि लग रही है, मरदाना कीर्तन कर रहा है, उस धरती पर अदेशी शोभा छा रही है। कोई प्रेमी, जागृत व्यक्ति जिसे इस माया के शोर

१. पुरातन जन्मसाखी पृष्ठ २४, २५ ।

में बारीक आवाज़ आ रही है कि परलोक है, परलोक है, मृत्यु के पश्चात भी कोई जीवन है, यह जीवन अल्पकालीन है, वह सदैव का है, हाँ, इस सूझ वाला व्यक्ति, कोई मनुष्य, आकर सीस झुकाता है और चुपके से बैठ जाता है, इस तरह के कई सुन्दर मनुष्य प्रभु के ध्यान में मग्न होकर बैठे हुए हैं। हाँ, वे मनुष्य, जो समझ रहे हैं कि मृत्यु ही जीवन का अन्त नहीं, पर यह एक और जन्म है, यह तो कायापलट है, दशा का परिवर्तन है। हाँ, वे बैठे हैं जिन्होंने गुरू की अनुग्रह द्वारा पहचाना है कि इंहलोक एक पाठशाला है, जहाँ पर किसी अंदर की ज्योति की विशालता की शिक्षा प्राप्त करनी है। जहाँ पर रहकर, तजुर्बे कर करके, घटा घटाकर ढंग सीखना है कि 'जीअ का जीवन' क्या है हाँ, 'जीव के जीवन' का ढंग सीखकर इस माया मोह के देश में इस माया प्रकृति और जड़ता के अखाड़े में मल्लयुद्ध कर करके; गिर गिरकर, गिरा गिराकर, इस घुड़दौड़ के अखाड़े में गिर गिरकर ओर सवार हो होकर, 'सदा सवार' रहने की शाह सवारी सीखनी है। हाँ, जो सीख रहे हैं कि इस शरीर में एक तो यह शरीर है, एक जान है, पर एक अंश उजाले का भी, प्रकाश का भी है। यह रश्मि ज्योति की है, यह कण सांईं की जात की चिंगारी है। उस चिंगारी को नीचा नहीं होने देना, राख से ढकने नहीं देना उसे विशाल होने देना है उसे बढ़ाना है, उसका रूप ऊँचा, बड़ा, विस्तार वाला, देखना है; उसे प्रभु की महाज्योति के साथ मिलाना है। यह लोग समझते हैं कि यह जीवन इसलिए है कि हमारी जान उसकी सेवा में, उन्नति में अपना बल लगायें। हाँ, मनुष्य के प्राण, 'शरीर' तथा 'ज्योति' के कण के बीच में खड़ा है। ज्योति के स्पर्श से शरीर तथा ज्योति के बीच में 'प्राण' उत्पन्न हुए हैं। यह प्राण जो मनुष्य के शरीर में है, बहुत उत्तम वस्तु है यह जब शरीर की ओर देखता है तो मनुष्य पशु है। यदि ज्योति की ओर देखता है तो मनुष्य देवता है। यदि यह शरीर की ओर इतना ही देखे कि इसे स्वस्थ रखे, इसकी आवश्यकताओं को पूरा करे, इससे जो हिलोरें तथा तरंगे उठती हैं, उनके गले की झूठे वेराग्य, त्याग, तप, हठ से न दबाए। हाँ, शरीर के उल्लास तथा प्रसन्नता को न खोये, उसकी मासूम रसदाई प्रफुल्लता से रुष्ट न हो; पर उसका वास ही न हो जाए, अपितु उस हिलोर को लेकर ज्योति की ओर देखे, अपने अंदर 'जीअ' का ध्यान रखे, सारे शरीर के उल्लास, हिलोर, और प्रफुल्लता को उस 'जीअ के जीवन' को रसभरा करने पर लगाए। हाँ, वे सभी जल हों और 'जीव के जीवन' की क्यारी को सींचते जायें, वह जीवन एक सुगंधित, सुबास फेलाने वाला, खिला हुआ उपवन बन जाए। यों ज्योति के अंकुर को सुगंधित फैलाने वाला बाग बनाकर जगत से विदा हो। हाँ, जिसे मृत्यु कहा जाता है, वह आत्म जन्म है, उस नये आत्म जन्म में राजपुत्र होकर, राजकुमार होकर, युवराज हो कर उत्पन्न हो और फिर वहाँ पर शाही ठाठ में सम्मिलित हो। वहाँ पर कंगाल, गरीब, निर्धन, दिवालिया तथा हारा हुआ जुआरी होकर न पहुँचे। गुरू नानक ने, जिन्हें इस प्रकार की बुद्धि प्रदान की है, ऐसे दुलारे जाग्रत व्यक्ति, भुलावे की नींद से जागकर इस अमृत वेला में रावी के किनारे बैठ कीर्तन सुन रहे हैं और अपने अंदर ज्योति का आनन्द ले रहे हैं।

'कहु कबीर इहु राम की अंसु' ओर 'मन तूं जाति सरूप हैं, के वाक्यों के अनुसार हम इस शरीर, इस जान, इस प्राण के अलावा 'जीअ' का आत्मा का एक कण अपने भीतर रखते हैं। हमारा शरीर पश सृष्टि से मिले जुलें पदार्थ का, प्रकृति का, माया का मड़ोला है। हमारे प्राण भी पशुओं के प्राणों की ही भाँति हैं, क्योंकि उनमें पशु वृत्ति प्रधान है। पर उन प्राणों में एक

रहस्य बुद्धि का है, अक्ल का है, विचार का है। यह बुद्धि की वृत्ति पशु नहीं। यह मनुष्य की वृत्ति है। हाँ, उसमें एक 'सिधि' का संकेत है 'देव बुद्धि' या 'सुधि' का। हाँ, वह 'देव वृत्ति' हे जो कभी-कभी आवाज़ें लगा देती है- तू पशु नहीं, तू मनुष्य नहीं, 'मन तू जोती सरूप है आपणा मूलु' 'पछाणु'। हाँ, वह वृत्ति वह जो खोई-खोई रहती है, कभी-कभी बिना कारण तथा कार्य के हिसाब लगाए, चमत्कार की भांति कुछ बता देती है और वह सच्चा निकलता है। वह वृत्ति (सिद्धि अथवा सुधि[१]) की हमारी जात है, वह हमें प्रेरणा देती रहती है 'जीव के जीवन' की ओर कभी-कभी कहती है- चल 'जीवन दान देने वाले दाता' के पास और जीवन कण माँग ओर फिर दाता दान करता है और वह जीवन दान प्रदान करता है, जिस पर कहा गया है 'जीअदानु दे भगती लाइनि हरि सिऊ मिलाए।।''

पढ़ा हुआ आदमी अनपढ़ों से ऊँचा है बुद्धिमान है, पर भीतर की पशु वृत्ति के वश में है वह चाहे जितनी चतुराई करे ईश्वर को परमार्थ को, उच्च जीवन को, जीअ के जीवन को व्यंग्य करे, मजाक करे, आप अच्छा बने पर वह मूर्ख है। उसकी बुद्धि ने जैसे सुरति से उन्नति करके मति तथा बुद्धि तक उन्नति की है, अब उसकी उन्नति का अगला पड़ाव, 'सुधि' था न कि उस बुद्धि के मण्डल में- इधर ही अटककर अपनी उन्नति के मार्ग में आप बाधा डाले और कहे :-'आगे कुछ नहीं, बस यही जगत मीठा है परलोक मेरे मन के हथियारों आखों ने नहीं देखा इसलिए है ही नहीं।' इस तरह चिल्लाए और लोभ तथा अहंकार का जीवन व्यतीत करे, इस तरह के पढ़े लिखे को सतगुरू ने मूर्ख कहा है। जो बुद्धि पशु में निवास करती है कि जिसमें कारण कार्य को समझना, तर्क कर सकना नहीं होता, जिसकी बुद्धि नहीं समझती की अमुक बात 'क्यों' हुई और 'क्यों करे' खोज नहीं कर सकती वह बुद्धि यदि मनुष्य की बुद्धि बन जाये तो कितनी उन्नति की बात है? जैसे देखिए कि एक वन में शीतकाल में कुछ व्यक्तियों ने आग जलाकर और तापकर सवेरे उठकर चल दिये। दूर वृक्षों पर बैठे हुए बंदर उन्हें आग जलाते देखते रहे, लकड़ी डालते तापते ओर फूँक मारते देखते रहे, पर यह न समझ सके कि आग 'क्यों' अथवा 'कैसे' जलाई जाती है। जब मनुष्य चले गए, तब बंदर आग के पास आकर इकट्ठे होकर तापते रहे पर आग जलकर बुझ गई, लकड़ियां पास रखी रही।

---

१. 'मंनै सुरति होवै मनि बुधि ।।
मंनै सगल भवण की सुधि ।।'

पुन :

"तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि ।।
तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि ।।"
"कहि कबीर बुधि हरि लई मेरी,
बुधि बदली सिधि पाई ।"

'सुरत' हमारी वनस्पति सृष्टि के साथ मिलती-जुलती है। 'मत' तथा 'मन' जीव सृष्टि के साथ मिला हुआ है। बुधि हमारी मनुष्यता, केवल मनुष्यता, प्राप्ति की वस्तु है। सिद्धि अथवा सुधि का कण हमारे अन्दर देव सृष्टि की वस्तु है जो उच्च आत्मिक जीवन की मानो बुद्धि है जो कारण और कार्य की गणना किये बिना चमक दिखाती है। सिद्धि या सुद्धि सुरों तथा सिद्धों अर्थात् देवताओं, 'पूरण हुए मनुष्यों (महा पुरुषों) के मण्डल की वस्तु है।

बंदर आग में लकड़ी डालकर आग जारी नहीं रख सके, क्योंकि बंदर के मन में मति तो है, पर बुद्धि नहीं है। अब यदि बंदरों को बुद्धि मिल जाये तो कितनी उन्नति की बात है। वैसे ही मनुष्य को समझ लीजिए, जो बुद्धि का स्वामी है, पशुओं से ऊँचा है, पर उसकी बुद्धि भी एक सीमित वस्तु है। कारण कार्य के क्रम का विचार किये बिना, एक ही प्रकार की घटनाएँ, एक ही घटना का अवलोकन किये बिना, वह परिणामों पर नहीं पहुँच पाता। पाँच इन्द्रिय उसके हथियार हैं, इनकी शक्ति के परे की खोज नही कर सकता। उसकी बुद्धि जीवन में सुखों तथा आवश्यकताओं की प्राप्ति का यन्त्र है, पर इसके आगे 'सुधि' है, जिसका रहस्य भी मनुष्य में है। यह कभी-कभी अपनी चमक दिखाती है, पर मनुष्य इसे पकड़ता, खोजता और इसमें आपे को एकाग्र करके नहीं डालता जो यह एक जीवित महान् शक्ति बन कर अन्दर सूर्य की भाँति चमक उठे। मनुष्य की आगामी उन्नति का पड़ाव यही है। इसकी ओर से मुँह मोड़कर बुद्धि मण्डल में ही बैठकर कई मनुष्य जीवन व्यतीत कर जाते हैं, पर शोक है कि कई बुद्धि को विद्या विज्ञान की सान पर चढाकर अत्यन्त तेज़ करके फिर पशु-वृत्ति में ही दिन व्यतीत करते हैं और शारीरिक भूख, आवश्यकताओं तथा तृष्णा की पूर्ति में ही सारा बल तथा बुद्धि व्यय करते हैं, और सिद्धि की प्राप्ति -आगामी उन्नति के साथ व्यंग्य करते हैं। इस तरह के जीवन को देखकर सतगुरू जी ने कहा था:-''

''पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकार।।''

(वार माझ महला ६)

हाँ, जी ! वे सज्जन, जो सतगुरू की दया से इस अगली उच्च 'स्वत: बुद्धि' की खोज में जागृत हो गए हैं, वे मरदाना का कीर्तन सुन रहे हैं। इस कीर्तन मण्डली में दुनीचंद जी भी आ गए, जहाँ पर मन की पाँचों इन्द्रियों के विषयों के स्पर्श का आन्नद नहीं खिल रहा, जहाँ पर वुत्ति शारिरिक भोगों का रस नहीं ले रही, पर जहाँ पर मन अथवा वृत्ति एकाग्र हो रहे हैं, जहाँ पर इनकी एकाग्रता के कारण बुद्धि कोई क्रिया नहीं कर रही और आपा अथवा अंतस की सुरत मुक्त होकर आपे को किसी चेतनता को स्त्रोत की ओर लिए जा रही है; जहाँ पर आपा अपने मूल कारण से स्पर्श कर रहा है जो उससे ताज़गी देने वाले, जीवन प्रदान करने वाले हिलोरें आ आकर आपे को खिला रहे हैं, रस भर रहे हैं और आनन्द की झन्नाहट उत्पन्न कर रहे हैं।

दुनीचंद लाहौर का निवासी और धुप्पड़ जाति का खत्रिय है, बड़े धनी व्यापारी का पुत्र हैं, जिसे पिता बहुत-सा रुपया दे गया है। किसी ने यह भी लिखा है कि लाहौर के परगने का अजारा भी सरकार की ओर से दुनीचंद को दिया गया था। दुनीचंद के घर में सात ध्वजाएँ फहराती थीं, अर्थात सात झण्डे झूलते थे। एक-एक झण्डा एक-एक लाख रुपये की निशानी था। उस समय में सात लाख रुपए का स्वामी होना बड़ी भारी अमीरी थी। बेहद धनी तथा माना जाना व्यक्ति 'माया से निर्लिप्त स्वामी' के दरबार में आया है जो दरबार की नदी के किनारे, आकाश के शामियाने के नीचे घास के फर्श पर सुशोभित हो रहा था। दुनीचंद ने आते ही दर्शन किया। नैनों के कटोरे बनाकर दर्शन का शरबत पिया तृप्त होकर। जो स्वाद इन दर्शन से आया वह कभी किसी भी धनी राजा, पातशाह, साधु, ब्राह्मण, पीर, फकीर किसी के भी दर्शन से आज

तक नहीं आया था। काफी समय तक देखता रहा अन्य व्यक्ति माथा नवाकर बैठते थे, पर ये काफी देर तक देखता रहा। फिर सीस झुकाया तो किसी आनन्द में झुका ही रह गया, फिर जब बैठा तो शब्द के स्वाद में मग्न हो गया।

दुनीचंद पहले से भी धनी है ओर स्वयं भी कमाऊ है, पर कृपण नहीं और न ही दूसरे का रक्त निचोड़कर धन इकट्ठा करता है। व्यवहारिक बुद्धि स्वाभाविक ही अच्छी चलती है और उलटे पुलटे सभी व्यापार सिद्ध होते हैं। निंदक भी नहीं, कोई ऐब भी नहीं, भला गृहस्थी तथा व्यापारी है, पर वृत्ति रात दिन व्यापार में है, किसी समय भी वृत्ति को अवकाश नहीं मिलता। इसके मन में कल की बातचीत से कोई भाव उत्पन्न हो आया है, जिसके कारण आज खिंचा हुआ आया है। उसके मित्र तथा दलाल आदि सभी सज्जन आकर बैठे हुए हैं, जो कल वार्तालाप कर रहे थे।

जब कीर्तन की समाप्ति हुई और सज्जन पुरुष सीस झुकाकर विदा होने लगे, तब दुनीचंद ने आगे बढ़कर सीस झुकाया। सतगुरू जी ने सिर पर हाथ रखा, समर्थ गुरू ने सिर पर हाथ रखा और कहा, 'आ भाई! करतार तेरा भला करे'।

दुनीचंद – हे गुरू जी! दाता जी! दया कीजिए : दास के घर पधारिये। दास के पिता का श्राद्ध है, दास के कल ब्रह्मभोज है, आप भाग्यवश इस नगर को पवित्र कर रहे हैं, कृपया दास के घर को भी पवित्र कीजिए।

गुरू जी- भाई! तू कौन है?

दुनीचंद-सच्चे गुरू जी! मैं आपका ही बनाया हुआ आपका दास हूँ, इस नगर में निवास करने वाला एक मायाधारी हूँ । मायाधारी मूर्ख होता है-एक ही प्रवाह में बहने वाला बावला पर आपका यश सुनकर आया हूँ, हृदय उल्लसित हुआ है कि तृप्त होकर आपके दर्शन करूँ, मेरा घर भी पवित्र हो जाय।

गुरू जी-फकीरों का अमीरों से क्या सम्बन्ध? वनों में फिरने वालों को घरों मन्दिरों से क्या वास्ता?

दुनीचंद चुप हो गया, अंदर वैराग में भर गया कि धन कितनी बुरी वस्तु है, जिसे मैं सभी सुखों का देने वाला और सबसे बड़ा समझता था, वह इस ज्योतिस्वरूप को मरे हुए साँप की भाँति फेंक देने वाली वस्तु दिखाई देती है। अब मैं क्या करूँ? कह दूँ, मैंने धन का त्याग किया, हैं पर अभी प्यारा लगता है।·हैं····पर अब तो यह मूर्ति भी प्यारी लगती है कैसे करूँ? अच्छा! एक बार फिर कह दूँ!

दुनीचंद-आप बहुत उच्च तथा स्वच्छ हैं, हाँ जी, उच्च (अधर थरकने लगे) और मैं ····मैं····हां····जी, नीच, धन के ऊपर बैठा हुआ, कहते हैं, ····जैसे····होता है कोई नाग, कोई विषैला सर्प पर जी····आप···· ।

अब सतगुरू जी ने सिर पर हाथ रखा और कहा-अच्छा दुनीचंद! हम स्वयं तेरे घर में आयेंगे, चिन्ता मत कर और हमें लिवा लाने के लिये किसी को मत भेजना, हम अपने आप आ जोयेंगे।

दुनीचंद प्रसन्न हो गया, मानो उसने आठवीं ध्वजा खड़ी की है। नमस्कार की और घर को आ गया।

: ३ :

सो गुरू बाबा खुद दुनीचंद की घर आ गये। आगे बड़ी तैयारियाँ हो रही थीं। नगर के ब्राह्मण आये हुए थे। पुरोहित विधि संयुक्त श्राद्ध करा रहा था। ब्राह्मणों के अलावा नगर में रहने वाले साधु, योगी, संन्यासी और बाहर से आकर ठहरे हुए अतिथि, अभ्यागत सभी जमा थे, इनके अतिरिक्त परवार, सम्बन्धी, मित्र, सज्जन, व्यापार के नाते वालों का एक भारी जमघट था। सबको हैरान कर देने वाली बात यह थी कि भीड़ों, समारोहों, उत्सवों तथा दिखावे के समागमों से दूर रहने वाला चोटी का पुरुष जिसे अभी तक, समय के सभी फकीर कलियुग में 'प्रकट हुआ तपा' कहते थे और मुसलमान 'वली' (अवतार) और 'कामल बा कमाल' कहते थे, वह इस दिखावे की रस्म के समय 'पूँजीपति दुनीचंद' के घर आया है, इस दिखावे के आडंबर पर, और फिर श्राद्ध के समय पर। किसी को क्या पता है कि बाकी सबको तो दुनीचंद के धन से कुछ-न-कुछ लाभ लेकर जाना है, इसलिये वे सभी, चाहे वे कोई भी क्यों न हों, एक प्रकार की भिक्ष-बुद्धि वाले हैं और इस 'प्रकट हुए तपा' ने, हाँ ईश्वरीय सुगंधि सुगंधित हो रहे अदेशी कस्तूरी के सजीव नाफे को दुनीचंद के धन से लाभ नहीं उठाना, अपितु उसे इस धन के लोभ से छुड़ाकर किसी उच्च धन का स्वामी बना जाना है- उसे कुछ देना है। जो दुनीचंद दे सकता है, वही नहीं लेना पर जिसमें दुनीचंद कंगाल है, वह धन उसे देना है अत: वह दाता है। चाहे अमीर के घर में आया है, पर वह बरसने वाला बादल कुछ स्वर्गीय वर्षा बरसाने के लिये, कुछ दान देने के लिये आया है। लेने की तो गुरू नानक की वृत्ति ही नहीं है। वह तो सदैव दाता ही है। अमीर के घर आया है, उसकी भावना श्रद्धा तथा प्रेम के कारण[1] यही तो गुरू नानक की समदृष्टि है। जो रूह प्रेम के घर आई, चाहे वह अमीर है चाहे गरीब, चाहे कंगाल है, चाहे राज, चाहे मजदूर है, चाहे व्यापारी, उस पर अनुग्रह कर दिया है, अर्थात् जो मन याचक हुआ, उसे ईश्वर के नाम का दान दे दिया है। नीचों से घृणा नहीं, ऊँचों के प्रति आकर्षण नहीं, पतनोन्मुखी ऊँचों से गर्ज नहीं, अहंकारी तथा मूर्ख नीच लोगों के लिये आकर्षण नहीं। जहाँ भाव है, वहाँ गुरू नानक है, जहाँ गुरू नानक है वहाँ आत्म जाग्रति है, ईश्वर के साथ स्नेह है, नाम में लगन है, जी का जीवन है, जीवन दान की लगान है।

अब श्राद्ध की सामग्री तैयार थी। ब्राह्मण भोजन करने बैठे, भोजन किया, दक्षिणा मिली, एक एक करके सभी विदा हुए, साधु अभ्यागत सभी खा-पीकर, रुपये लेकर चल दिये। अवकाश पाकर दुनीचंद सतगुरू जी के पास आया। आपको एक सुन्दर कमरे में बैठाया हुआ था, जहाँ आप अपने रंग में रम रहे थे। जब दुनीचंद ने कहा। ''आपने आज्ञा दी थी कि हम बाद में भोजन करेंगे। अब रीति वाला कार्य हो गया है, यदि आज्ञा हो तो आपके लिए भोजन ले आऊँ, मैं भोजन परोसूँ, आप भोजन करें, मैं देखूँ और आँखें शीतल करूँ?'' तब बाबा ने मुस्कराकर पूछा-''दुनीचंद! आज तेरे घर में क्या था?''

दुनीचंद - सवामी जी! आज मेरे पिता जी का श्राद्ध था।

गुरू जी - श्राद्ध हो गया क्या?

दुनीचंद-जी विधिपूर्वक, शास्त्र की मर्यादानुसार पुरोहित ने ठीक-ठीक किया है।

---

१. "तब ओहु आइ कर बाबे जी कऊ भाऊ करिकै लै गिआ"। (पुरातन जन्साखी)

गुरू जी – तेरा तथा पुरोहित का क्या प्रयोजन था?

दुनीचंद – जी! पितृ-सेवा। जो इतना आहार दिया है सब पिता जी के निमित दिया है कि उन्हें प्राप्त हो।

गुरू जी – तो फिर क्या उन्हें प्राप्त हो गया है?

दुनीचंद – जी पुरोहित कहता था कि मेरा पिता तृप्त हो गया है। कलियुग में ऐसा श्राद्ध कोई नहीं करवाता, जैसा कि मैंने करवाया है। उसने कहा कि मेरा दान सुफल। मेरे पितृ तृप्त! सभी इस तरह का आशीर्वाद दे गये हैं।

गुरू जी – अच्छा।

'अच्छा' कहकर आपने, एक ठंडा श्वास लिया, पहले आकाश की ओर देखा, फिर दुनीचंद की ओर! फिर कहा :-

सुन दुनीचंद! सभी बातें भावहीन हो गई हैं, पुरोहित तृप्त हुआ है, ब्राह्मण तृप्त हुए हैं, पर तेरा पिता तृप्त नहीं हुआ; वे तीन दिन से भूखा है, यों समझ ले। कोई तीन दिन का भूखा भेड़िया...., हाँ तेरा पिता अतृप्त है।

दुनीचंद काँप उठा – हैं! मेरे इतने यत्नों पर भी मेरा पिता तृप्त नहीं हुआ? और भूखा भेड़िया! चेता आया कि यह गुरू कौतुकी है, इसके कौतुक आश्चर्यजनक हैं। कोई घटना घटने लगी है। यह अंतर्यामी है, कुछ सच दिखायेगा। तब फिर करबद्ध प्रार्थना करने लगा-

जी मेरा पिता कहाँ पर है? कैसे अतृप्त है? मूझे भी दर्शन होगा कि मेरी पहुँच से परे है? जी ! यदि आप की दया हो तो बता दीजिए?

गुरू बाबा – पश्चिम उत्तर की ओर वन में नदी के किनारे चला जा, वहाँ पर तुझे भूख से व्याकुल पड़ा एक भेड़िया दिखाई पड़ेगा, उससे डरना मत, वहाँ पर तेरा पिता हू-ब-हू खड़ा दीखेगा, तेरे साथ बातचीत भी करेगा। वह तुझे बतायेगा कि वह अतृप्त है और तेरे श्राद्ध उसके किसी अर्थ में नहीं आये।

तब दुनीयंद व्याकुल होकर उठ चला। ठीक बताये हुए ठिकाने पर पहुँचा। वहाँ पर उजाड़ है और कुछ दिखाई पड़ा। जब एक झाड़ी की ओर देखा तो भेड़िये का सा कुछ दिखाई पड़ा। जब आगे बढ़ा तो क्या देखता हे कि भेड़िया पड़ा है और उसके शरीर में से सफेद धुआँ सा निकल रहा है। उठते -उठते वह धुआँ खड़ा हो गया। फिर उसके हाथ-पाँव दिखाई देने लगे और वह मनुष्य के रूप में दिखाई देने लगा। जब दुनीचंद ने पहचाना तो क्या देखता है कि उसका ही पिता है। उसने चरण वंदना की और पूछने लगा-पिता जी ! आप तृप्त हैं कि अतृप्त?

पिता – अतृप्त!

पुत्र – मेरा श्राद्ध आपको नहीं पहुँचा?

पिता – नहीं पहुँचा?

पुत्र – क्यों पिता जी?

पिता – बेटा! सारे जगत में व्यवहार चल रहे हैं, प्यार कहीं नहीं और फिर सत्यवान कौन

है। साईं के साथ लगा हुआ कौन है? हम कहाँ! तुम कहाँ! ब्राह्मण कौन है? साधु कौन है!

दुनीचंद – पिता जी! आप इस दशा में कैसे पहुँच गये।

पिता – बेटा! जन्म धारण करके प्रभु के साथ स्नेह न लगा। सारी उम्र ध्यान व्यवहारों में रहा। ध्यान लेना-लेना करता रहा, अमित धन इकट्ठा करके और और माँगते रहे, सो सुरत में भूख का स्वभाव प्राप्त करके तृप्त न होने का स्वभाव आ गया। तृप्ति न आई। फिर पूरे पुरुष का संग न हुआ, जिसे मैंने मन्त्रदाता स्थपित किया था, वह कोरा कर्मकाण्डी था। वह साईं के प्रेम वाला नहीं था। मर के पता लगा है कि साईं का प्रेम सबसे ऊँचा धर्म है। मेरे गुरू ने मुझसे कहा था 'तु मछली खाना छोड़ दे? मैंने कहा, क्या इसे छोड़ने से मेरा उद्धार होगा?' उसने कहा, 'हाँ यदि तू मेरा बचन मानकर छोड़ेगा तो होगा'। मेरे अंदर यह निश्चय बँध गया। एक दिन उसने कहा-यदि तेने मछली खाई तो तू भेड़िये का जन्म पायेगा। यह बात भी पक गई मेरे दिल में बैठ गई। बेटा! जब मेरा अंत समय आया तो पड़ोस के घर में कोई मछली पका रहा था, उसकी सुगंधि आई, इतनी प्यारी लगी कि मुझे इच्छा हुई कि किसी तरह मछली खाऊँ। अंत समय यही वासना बँध गई, इसी में प्राणांत हो गया । बेटा जी! जब मैं देह से बाहर आया तो वहाँ पर रचना ही और थी। मैं जो जीवित समय इतना धनी था, अब किसी अतृप्त भूख में था और सारी उम्र में अपनी ही चाह करता था और दूसरों से किसी न किसी तरह लेकर जमा करता रहा था। मैंने क्या देखा कि मैं अकेला हूँ, पर हूँ उसी तरह जैसे पृथ्वी पर था। फिर मैंने देखा कि मैं तो भेड़िये की भाँति हूँ। पृथ्वी पर तुम भी तो बहुत भूखे को भेड़िया ही कहते हो। सो मैंने देखा कि मैं भेड़िये की भाँति भूखा हूँ, अकेला हूँ, नंगा हूँ कोई अपनी ही कैद है और मैं कैदी हूँ। क्या, क्या बताऊँ? मैं तब से अब तक दुखी था। तेने आज कृपा की है जो अपने घर में ईश्वर के सवरूप को निमंत्रण दिया है। उसके चरणों की कृपा से मैं इस समय अपने आपको मनुष्य के रूप में देख रहा हूँ, अंधकार हट रहा है, प्रकाश पड़ रहा है, प्यार तथा सहानुभूति करने वाले लोग चारों ओर से आ रहे हैं...... लो बेटा! तुम्हारा भला हो; मूझे सुन्दर मार्ग दीख पड़ा है, मैं ऊपर को जा रहा हूँ , तुम जाओ! पर मुझे अब जो कुछ दीख रहा है, मैं कहता हूँ कि मैंने बहुत दु:ख पाये हैं। तुम यहाँ आकर दु:ख मत पाना। ईश्वर की ज्योति जो तुम्हारे घर बैठी है, उसके चरणों से लग जाओ, जो वह कहे, वही करो तो सुख पाओगे। मनुष्य का जन्म ऐसे ही न गँवा देना। पर बाद में यहाँ पर यही हौल्का लगता है कि वह इकट्ठा किया हुआ धन किस काम आया[१]? उस जगत में कमाया हुआ 'नाम' तथा 'यश' यहाँ पर (परलोक में) फूटी कौड़ी का भी नही[२] न उत्तम कुल का, न उच्च जाति का, किसी का भी आगे कोई मूल्य नहीं और न ही आगे जोर की कुछ कदर है। अत्याचारी तथा

---

१. पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई ।। (आसा महला १)

२. चंगा नाऊ रखाइकै जसु कीरति जगि लेइ ।।
जे तिसु नदरि न आवई त बात न पुछै के ।।
कीटा अंदरि कीट करि दोसी दोसु धरे ।। (जपुजी)

हाकिम, जालम तथा धक्केधारों का जोर वहीं पर ही रह जाता है। वे लोग निर्बल होते हैं।[१] वहाँ पर, कि जहाँ पर तू है, शुभ कर्म ईश्वर का यश और उसके नाम का स्मरण किया हुआ यहाँ पर काम आता है।[२] मैं अब इस नये प्रकाश में जो गुरू नानक की दया से आया है, इसे सच्च तथा स्पष्ट देख रहा हूँ और तुम्हें बता रहा हूँ लो बेटा! आशीर्वाद।

यह कहते हुए, पिता की वह सूरत ऊपर को उठती घुलते जाते हुए बादल की भाँति लोप हो गई।[३] पर दुनीचंद क्या देखता है कि एक और सूरत बड़े सूरत बड़े तेज वाली, सुन्दर तथा प्यारी वहाँ पर आ गई और कहने लगी :-

देखा तुमने अपने पिता का हाल, बड़े दुनियादार का? बड़ा होकर मरा। माया के मोह तथा नीच कर्मों की जकड़बंदी में, सारी उम्र अपने गले में साँकल डालता रहा[४] मरकर भी धरती के साथ ही चिपका रहा और सारी आयु पशु वृत्ति में उसी स्वभाव में विचरता तथा दुःख सहन करता रहा।

दुनीचंद – हे ईश्वर वाले! तुम कौन हो?

सूरत – हम इस संसार में, जो तुम्हारे लिए तो है ही नहीं, सेवा करने वाले हैं। तुम्हारे संसार में जो लोग जन्म व्यर्थ खोकर आते हैं, उन्हें सुमति प्रदान कर करके जगाते हैं। भला यदि अब ही समझ लें तो कुछ प्रकाश की ओर रुख हो जाये, पर वहाँ से लोग आपे को इतना खराब करके लाते हैं कि जैसे कोई चने के दाने के टुकडों वाला दाना साबुत रहे तब तो उगने की आशा हो सकती है, पर दो टुकड़ों वाला दाना कैसे उगेगा? फिर भी यहाँ पर सदैव ईश्वर का अनुग्रह रहता है। लोग 'दुखड़े सहन कर करके हमारे परिश्रम से हमारे उपदेश सुनकर, प्रभु की ओर मुँह करते हैं तो लगा हुआ मैल धुल सकता है। कई फिर से सीखने के लिए जगत को जाते हैं, कई यहाँ से फिर उन्नति की ओर चल पड़ते हैं, नाना प्रकार की अवस्थाएँ हैं जिनका कहना कठिन है।'

दुनीचंद – मेरा पिता अब कहाँ गया है? मर कर क्या होता है?

सूरत – उसका वही शरीर-जिसे प्रेत पिंजर कहते हैं और जो भेड़िये का था- टूट गया है ओर अब उस वेग में डाला गया है, जहाँ पर उसे होश आया है कि मैं रूह हूँ और मेरे आगे प्रकाश ही प्रकाश है, और यदि मैं परिश्रम करूँ तो हल्के से हल्का और सुन्दर होकर ऊपर को उठता चला जाऊँगा। वह सुख वाले स्थान को समझ गया है।

१. जब शरीर छूटता है तो धरती से प्यार करने वाले तथा मोटी वासनाओं में उम्र बिताने वाले तथा सारी उम्र शरीर के रसों को ही पालने वाले लोग धरती पर ही रह जाते हैं। शरीर में से एक और सुक्ष्म शरीर निकलता है, इसे तुम्हारे पढ़े-लिखे लोग लिंग शरीर कहते हैं। यह

---

१. अगै जाति न जोरु है अगै जीऊ नवे । (आसा दी वार)

२. अगै करणी कीरति वाचीअै वहि लेखा करि समझाइआ ।।
थाऊ न होवी पऊदीई हुणि सुणीअै किआ रुआइआ ।।
मनि अंधै जनमु गवाइआ ।।3।।

३. अस कहि सुरग बिखै चलि गयो ।।
दुनीचंद सुनि अचरज भयो ।। (गुरू नानक प्रकाश)

४. बडा होआ दुनीदारु गलि संगलु घति चलाइआ ।। (आसा दी वार)

भी अपने-आप में सूक्ष्म तथा स्थूल होता है। कई लोगों के लिंग शरीर इतने स्थूल होते हैं कि धरती पर ही रह जाते हैं और उन बातों में तथा उन स्थानों में भटकते हैं, जिनके साथ सारी उम्र मोह करते रहे हैं। जैसा स्वभाव सारी उम्र पकाते रहे हैं उसी में लगे रहते हैं। अपने-आपको जो कुछ बनाते रहे, वही बन गया। वासना, तृष्णा, भोग, मोटे कर्मों का स्वभाव शरीर छोड़कर भी शरीर की भाँति व्यवहार करता है ओर दुखी[१] करता है।

२. फिर वे लोग आते हैं जो घोर पाप करते हैं, लोगों को सतातें हैं और पशुओं की भाँति खून-खराबा करते हुए पत्थर हो गये हैं।[२] वे बड़े भयंकर स्थानों पर आकर अपने परिपक्व स्वभावों के बीच कष्ट पाते हैं। वे एक प्रकार की नग्नता में होते है।[३] कष्टों में होते हैं। वे बुरे कर्म करते, क्रोधों, कष्टों तथा बुराईयों में व्यवहार करते दुख सहन करते हैं। हाँ, दुख, कष्ट, अन्धकार तथा घबड़ाहट[४] होती है। जैसे तुम जीते जी बुरे कर्मों के कारण कभी-कभी घबड़ाहट अनुभव करते हो, इन पापियों को यही दण्ड मिलता है कि वे अपने किये का फल भुगतते हैं।[५] यह कठोर लोग समझाने पर भी नहीं समझते, उसी तरह अन्धकार में दुःख भरते हैं, पर साईं की रहमत इनके लिए भी यत्न करती है। ये जब पश्चाताप करते हुए पाप करते हैं तो पश्चाताप की पीड़ा से, जो असह्य कष्ट होता है उससे मैल धुलने लगता है और यदि वे पश्चाताप करते रहें और प्रार्थना करें तो धीरे-धीरे सुमार्ग पर लग जाते हैं। हम लोग इनमें भी जाते और आपा न्योछावर करते हैं कि किसी तरह यह पश्चाताप करके प्रार्थना में आ जाएँ। तुम्हारे लोक से भी नाम वाले उच्च लोग इन दुखियों की सहायता कर सकते हैं, जैसे 'धन्य गुरू नानक' ने आज तेरे पिता का प्रेत पिंजर समाप्त कर आत्मिक संसार में उसे उन्नति के मार्ग पर लगा दिया है। यह याद रखो कि धरती कर्म भूमि है, वहाँ का बोया हुआ यहाँ पर उगता है[६]। यहाँ पर आकर उगाना कठिन काम है, महान कठिन कार्य है।

दुनीचंद-फिर महाराज जी! हमारे किये हुए श्राद्ध निष्फल जाते हैं? क्योंकि मेरे श्राद्ध से तो मेरा पिता अतृप्त ही रहा।

सूरत-भाई! तैने माया में लौ लगाई है तेरा बल माया के लोक में है, इहलोक जिसे तू इस समय देख रहा है, यह शुभ संकल्पों का लोक है। यदि तेरी लौ ईश्वर में लगती तो लौ के तार पर तेरा आशीर्वाद, तेरी विनती, तेरी शुभ वासना आ जाती। फिर तेरी कमाई बहुत बुरी नहीं। अक्सर लोग चोरी, यारी, दग़ा, फरेब, कम तौलना, डंडी मारना (कम तोलना) धोका देना,

---

१. प्रेत पिंजर महि दूख घनेरे ।। (मारू महला १)

२. चोरा जारा तै कूड़िआरा खाराबा वेकार ।।

३. कपड़ रूपु सुहावणा छडि दुनीआ अंदरि जावणा ।। मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा ।। हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा ।। नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा ।। करि अऊगण पछोतावणा ।।१४।। (वार आसा महला १)

४. बारि विंडानड़े हुंमस धुंमस कूका पईआ राही ।। (गूजरी की वार महला ५)

५. पुनः- दरि लए लेखा पीड़ि छुटै नानका जिऊ तेल ।। (वार आसा महला १)
आपे बीजि आपे ही खाहु (जपुजी)

६. करम भूमि महि बोअहु नामु ।। (गऊड़ी महला ५)
पुनः-हुणि वतै हरि नामु न बीजिओ, अगै भुखा किआ खाए । (आसा महला ४)
पुनः-इबके राहे जमंनि नाही पछुताणे सिरि भारो ।। (वडहंस अलाहणीआ महला १)

अथवा ज़ोर अत्याचार से धन कमाते हैं, उसमें से श्राद्ध करके इच्छा करते हैं कि पितरों की गति हो, यह मूर्खता नहीं तो ओर क्या है?[१] नेकी से कमाया हुआ धन, हाँ धर्म कृत्य की कमाई करके उसमें से दान देकर जो कोई ईश्वर के भरोसे वाला किसी पितृ के निमित कुछ दे, उस स्थूल दान के आश्रय उसका मन एकाग्र हो तो उसका प्यार, उसका आशीर्वाद, उसकी प्रार्थना उसके दिये हुए की स्वीकृति से अनुग्रह, सुगंधि तथा शीतलता उसके पितरों तक पहुँच सके: –

नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ।।

(वार आसा महला १)

''और रस्मी दिये हुए खीर तथा पुए तो प्रत्यक्ष कौआ, कूकर तथा ब्राह्मण ही खा जाते है: – ''

कऊआ कूकर खाही (गऊड़ी कबीर जी)

पुन: – पिछे पतलि सदिह, काव (वार माझ महला १)

दुनीचंद – हे सुन्दर जी! मैं तो मलिन था, धन के प्यार के कारण भरी था, तेरी भावना धरती से, जैसे कि आपने कहा है, ऊँची नहीं उठ सकती थी, पर जिन ब्राह्मणों को मैंने भोजन कराया, वे वेद पाठी, कर्मकाण्डी, पुरोहित थे और उन्होंने विधिपूर्वक कार्य किया था, वह निष्फल क्यों गया?

सूरत – जगत की दशा बाहर से और है और अंदर से और है। लोग नमाज़ पढ़ते हैं; पर वे अपने कर्मों में मनुष्यों का रक्त निचोड़ने वाले होते हैं। जिसके गले में यज्ञोपवीत लटकता है, वे कई बार छुरी चलाने वाले कसाई होते हैं अपने कर्मों तथा वासनाओं में। उनके घरों में ब्राह्मण भोजन करते हैं। ऐसे कुधान्य खाने वाले ब्राह्मणों में क्या शक्ति हो सकती है? फिर ब्राह्मणों के कर्म[२] ही क्या हैं – बगुले की भाँति समाधि लगाते हैं, झूठ का व्यवहार होता है, कण्ठ में माला, माथे पर तिलक, धोती, शिखा, सूत्र, सभी भेख पूर्ण पर ब्रह्म पर निष्ठा नहीं, नाम की आराधना नहीं, लौ लगी नहीं और साकट अवस्था है।[३] उस ब्राह्मण को खिलाना किस काम का, जो इन्द्रियों को, मन को, संयम में नहीं करता, उसे तो आप ईश्वर की दरगाह में शर्मिन्दगी मिलेगी।[४] वह किसी का किस तरह उद्धार कर सकता है? जो आप नाम नहीं जपता

---

१. जे मोहाका घरू मुहै घरु मुहि पितरी देहि ।।
अगै वसतु सिंजाणीअै पितरी चोर करेहि ।।
वढीअहि हथ दलाल के मुसफी इह करेहि ।।
नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ ।।१।। (वार आसा महला १)

२. माणस खाणे करहि निवाज ।। छुरी वगाइनि तिन गलि ताग।। तिन घरि ब्राह्मण पूरहि नाद ।।
उना भि आवहि ओई साद ।। (वार आसा महला १)

३. पड़ि पुस्तक संधिआ बादं ।। सिल पूजसि बगुल समाधं ।। मुखि झूठ बिभूखण सारं ।।
त्रै पाल तिहाल विचारं ।। गलि माला तिलकु लिलाटं ।। दुइ धोती बसत्र कपाटं।। (वार आसा म० १)
पुन: – मथै टिका तेड़ि धोती कखाई ।। हथि छुरी जगत् कसाई ।।
नील वसत्र पहिरि होवहि परवाणु ।। मलेछ धानु ले पूजहि पुराणु ।। (वार आसा महला १)

४. तगु न इंद्री तगु न नारी ।। भलके थुक पवै नित दाड़ी ।। (वार आसा महला १)

और रसदायक पदार्थों को भोगता है। उसने तो आप लज्जित होना है, उसका खाया हुआ किसी का कैसे भला कर सकता है?[१]

देख ईश्वर की ज्योति तेरे घर आई, उसने अभी तेरा अन्न भी नहीं खाया, पर उसकी सदा बरसती मेहर ने तेरे पिता का उद्धार किया और तेरा भी करेगा! वह तो गुरू ज्योति है, उसका बल अमित है, पर तू जान ले कि जो परमेश्वर के नाम वाला है, जिसकी सूरत लौ में लगी है, उसकी संगति 'सत्संग' है, उसकी सेवा ही सेवा है, उसे खिलाया हुआ सफल है, उसका आशिर्वाद प्राप्त होता है, उसका भोजन कराना ही वास्तव में यज्ञ है, दान है, श्राद्ध है, ब्रह्मभोज है, जो कहो वही है।[२]

दुनीचंद-जी! आपको मुझ जैसे पापी के ऊपर कैसे दया आई, कि आप मुझे अगम की बातें बता रहे हैं।

सूरत - मैं तो आप कुछ नहीं कह रहा, मैं तो अदेशी गुरू नानक देव जी की अगमी वाणी से जो किरणें मुझ पर पड़ रही हैं, उन्हीं का वर्णन कर रहा हूँ। यह अगम वाणी अभी तुम्हारे समझने योग्य नहीं हुई, पर पूरण गुरू द्वारा धुर की वाणी के रूप में मुझ पर प्रकट हो रही है। तुझ पर उनकी अनुकंपा हुई है, उस अनुकंपा के कारण मुझे आज्ञा हुई है, कि मैं यह अगमी वचन प्रकट करूँ। गुरू जी स्वयं तुझसे यह सब कहेंगे। फिर संसार के उद्धार के लिए तुम्हारी समझ में आने वाली भाषा में वे दाता गुरू जी आप इस अगम वाणी को गुरुवाणी के स्वरूप में प्रकट करेंगे, जिसे 'वार'[३] कहा जायेगा, जिसे तेरे पर घटी कहा जायेगा पर वह होगी सारे जगत का उद्धार करने के लिए।[४] दयालु साईं तेरे घर बैठा है, उस जगत-दाता की दया मेरे रूप में इस समय तुझ पर बरस रही है, पर पिता ने भी मुझसे विदा होते ही ऊपर के गति पकड़ते ही जब सुख का श्वास लिया था, तो प्रभु के आगे विनय की कि तुझे सुमति मिले और तू घर में आई हुई ईश्वरीय ज्योति के अनुग्रह से वंचित न रह जाये, तुझे माया न फँसा सके और तू उनसे सुख का नाफा ले सके। इसलिए तुझे बुलाया है कि आगे (परलोक में) आकर लोग अपने किये हुए कर्मों तथा पके हुए स्वभावों के कारण आप कष्ट सहन करते है; अब अवसर है- तू लाभ लेकर जाना।

दुनीचंद - साधारण लोग आगे जाकर कैसे भले बनते हैं?

सूरत-३. जो जगत में साधारण रूप से भले हैं, बुरा नहीं करते, किसी को दुख नहीं देते[५], कुछ नेकी करते हैं, ईश्वर पर भरोसा रखते हैं और प्रार्थना, विनती में लगे रहते हैं, अर्थात् मन को बुराई की ओर से हटाये रखते हैं, वे यहाँ आकर सुखी होते हैं, वे पापियों की भाँति

---

१. जितु मुखि नामु न उचरहि बिन नावै रस खाहि ।।
नानक एवै जाणीऐ तितु मुखि थुका पाहि ।। (वार आसा महला १)

२. अभै निरंजन परम पदु ताका भीखकु होइ ।। तिसका भोजनु नानका विरला पाए कोइ ।।२।। (सलोक वारां ते वधीक महला ३)

३. छंद का एक प्रकार ।

४. 'रागु आसा दी वार कीती पऊड़ीआ पंद्रा '१५ परिथाइ दुनीचन्द के कीतीआ' ।। (पुरातन जन्मसाखी)

५. दूखु न देई किसै जीअ पति सिऊ घरि जावऊ ।। (गऊड़ी की वार महला ५)
पुन: मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ ।। (वार आसा महला १)

नग्न नहीं होते। तुम जगत में जिसके लिये तरसते हो और वह मिलता नहीं वह उन्हें यहाँ पर प्राप्त होता है। बात यह है कि इसका ब्योरा से तो कहा नहीं जा सकता, पर यह जान लो कि वे यहाँ पर भी सुख ही पाते हैं।

४. पर हाँ, जो नाम जपते हैं और लौ लगाकर प्रभु के साथ लगे हैं[१], उसके प्यार में जिये है 'जी का जीवन' व्यतीत करने की लालसा लिये आते हैं उनकी गति अगाध तथा अकथनीय है। वे घबड़ाहट, हुमस, अंधेरा नहीं देखते, रोते नहीं, सुख से पहुँचते हैं[२], नग्न नहीं होते।[३] वे हँसते हुए प्रसन्न चित जाते हैं[४], वे पूरी लौ वाले प्रभु के चरणों की शरण में पहुँचते हैं। अत: समझ लो कि नाम उन्हें सर्वोत्तम गति प्रदान करता है।[५]

दुनीचंद – मुझ पर दया हो जाय।

सूरत – दया की पहली बात कान लगाकर सुन :-

सतगुरू तेरे घर में बैठा है। उसे तू कोरा साधु फकीर ही मत समझना। सतगुरू ईश्वरीय ज्योति हैं। सतगुरू में वह स्वयं निवास करता है। सतगुरू की पहचान कर। भाव धारण कर, प्रेम कर, यह समझ ले कि बिना सतगुरू के किसी ने भी प्राप्त नहीं किया।[६] दूसरी बात सुन, सतगुरू जी नाम का दान देंगे, अत: उसे प्राप्त करके उसमें मगन हो जा।[७]

तीसरी बात सुन – नाम की अराधना भक्ति है। भक्ति करनी है, भाव भरी भक्ति, प्रेम भरी भक्ति। भाव भरी भक्ति में जीवित रहकर फिर नम्र रहना है। कर्म काण्डियों तथा ज्ञानियों की भाँति अपने कर्म के अभियान में नहीं आना।[८] 'जीवित भक्ति' ईश्वर से भेंट के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहती।

---

१. साहिबु होइ दइआलु किरपा करे ता साई कार कराइसी ।।
सो सेवकु सेवा करे जिसनो हुकमु मनाइसी ।।
हुकमि मंनिऐ होवै परवाणु ता खसमै का महलु पाइसी ।।
खसमै भावै सो करे मनहु चिंदिआ सो फलु पाइसी ।।
ता दरगह पैधा जाइसी ।।१५।। (वार आसा महला १)

२. बारि विड़ानड़ै हुँमस् धुंमस कूकां पईआ राही।।
तऊ सह सेती लगड़ी डोरी नानक अनद सेती बनु गाही ।। (वार गूजरी महला ५)

३. ता दरगह पैधा जाइसी ।।

४. जन नानक नामु सलाहि तू लुडि-लुडि दरगह वंञु ।। (वार कानड़ा म: ४)

५. जिना अंदरि नामु विधानु है गुरबाणी वीचारि ।।
तिन के मुख सद उजले तितु सचै दरबारि ।। (सलोक वारां ते वधीक म: ४)

६. बिनु सतिगुर किनै न पाइओ बिनु सतिगुर किनै न पाइआ ।।
सतिगुरू विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ ।।
सतिगुर मिलिऐ सदा मुकतु है जिनि विचहु मोहु चुकाइआ ।। (वार आसा महला १)

७. उतमु इहु बीचारु है जिनि सचे सिऊ चितु लाइआ ।।
जग जीवनु दाता पाइआ ।।६।। (वार आसा महला १)
पुन: - तेरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालआ ।।
पुन: - नाऊ तेरा निरंकारु है नाइ लइऐ नरकि न जाईऐ ।। (वास आसा महला १)

८. भाऊ भगति करि नीचु सदाए ।।
तऊ नानक मोखंतरु पाए ।। (वार आसा महला १)

चौथी बात है- नेकी, संतोष, यथा लाभ संतोष, धर्म कृत्य, बुरी ओर कदम न रखना, बुरे कर्मों से बचना, भले काम करना, संसार में लगकर भगवान को भूल न जाना, खाना थोड़ा-भूख रखकर, उतना सोना, जिससे कि शरीर सुखी हो उठे।[१] देख माया प्रबल है, माया नाम है भुलावे का, कहीं भुलावा न हो जाय कि गुरू नानक केवल एक अच्छा साधु है, उसे खाना खिलाकर, सीस झुकाकर विदा कर दिया जाये । इस समय तुझे गोविन्द रूप दीख रहे हैं, पर माया का प्रभाव पड़ सकता है और घर जाकर तुझे 'गुरू नानक देव गोविन्द रूप' दिखाई न पड़े। पक्के रहना, वह गुरूओं का गुरू है वाहिगुरू में से गुरू ज्योति है। उसको शिक्षक, गुरू, गुरुमुख अनेकों उत्पन्न करने हैं। शिक्षक की सदैव आवश्यकता है पर वह आप तो गुरुमुख[२] भी है ओर गुरू भी है। उस गुरू, गुरुमुख से सुमति ले कहीं यह समझ ले कि मैं तुझे दूसरे लोक (परलोक) से दिखाई पड़ गया हूँ और सुमति देकर चला हूँ इसी पर समाप्ति है। इस तरह की भूल में मत रहना। मैं तो गुरू की साक्षी भरने वाला हूँ। यह वह गुरू है, जिससे देवता, बुद्धिमान, पीर तथा अवतार, ऋषि न्योछावर हो रहे हैं। वह पूरा गुरू है। उस पर न्योछावर हो। वह पशु बुद्धि को मनुष्य और मनुष्य बुद्धि को देवता बनाकर सिद्धि (बुद्धि से आगे वाली अकल) प्रदान करता है। मनुष्यों को देवता बना देता है। गुरू अंतस में प्रकाश भर देता है। जिस तरह सूर्य ओर चन्द्र आँखों को प्रकाश देते हैं, उसी तरह गुरू मन को प्रकाशमान कर देता है। देख दुनीचंद! जगत में बड़े-बड़े बुद्धिमान हैं, शास्त्रज्ञ हैं, जो स्वंय पढ़कर पूर्ण पुरुष बन बैठते हैं और वे बातें भी भली करते हैं। उनकी महिमा गाने वाले सेवक सज्जन भी बन जाते हैं, उनके भवनों की भी पूजा होती है, ऐसा लगता है कि मानों ये जगत के उद्धारकर्ता और शिक्षक हैं, पर वे इस तरह के होते हैं जैसे तिल के खेत में बूआड़ का पौधा होता है जो तिलों से अधिक बढ़ता, फैलता है, पर जब उसकी फली को तोड़ा जाता है तो उसमें से तिल की जगह राख निकलती है।[३] वैसे ही अपने-आप मियाँ मिट्ठू बने हूए ज्ञानी लोग कथन के शुरवीर ही होते हैं, उनका बनता कुछ नहीं, क्योंकि वे मन तथा बुद्धि के साथ परमार्थ का ब्यौरा जान लेने को उच्च गति समझते हैं और यह बात भूल की है। 'जान लेना' ही नहीं पर 'हो जाना' वास्तविक उन्नति है। कहीं तू सव्यं ज्ञानी तथा संत

---

१. सेव कीती संतोखीई जिनी सचो सचु धिआइआ ।।
ओनी मंदे पैरू न रखिओ करि सुक्रितु धरमु कमाइआ ।।
ओनी दुनीआ तोड़े बंधना अंनु पाणी थोड़ा खाइआ ।।
तूं बखसीसी अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ । वडिआई वडा पाइआ ।। (वार आसा महला १)

२. गुरमुख कलि विचि परगट होआ ।। (भाई गुरुदास वार १)

३. बलिहारी गुर आपणे दिऊहाड़ी सद वार ।।
जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार ।।१।। महला २ ।।
जे सऊ चंदा ऊगवहि सूरज चड़हि हजार ।।
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार ।।२।। महला १।।
नानक गुरू न चेतनी मनि आपणै सुचेत ।।
छुटे तिल बूआड़ जिऊ सुञे अंदरि खेत ।।
खेतै अंदरि छुटिआ कहु नानक सऊ नाह ।।
फलीअहि फुलीअहि बपुड़े भी तन विचि सुआह ।।३।। (वार आसा)

महात्मा बन बैठे। यदि तुझे मुक्त होने तथा सुखी होने की आशा धारण करनी है तो तू शूरवीर सतगुरू नानक की शरण लेना। हाँ सतगुरू से मिल, उसकी भेंट से ईश्वर याद आता है, वह भवसागर से पार करने वाला जलयान है।[१]

अब तू जा, इस बात को पक्की तरह गाँठ में बाँध ले कि खाली पढ़े हुए ज्ञानी नहीं होते। न ही गुरूत्व की थोथी डींग मारने वाले, कर्महीन साधु और पूजा का अन्न खाने वाले ब्राह्मण ही कुछ होते हैं। बहुत पढ़ने से बुद्धि सान पर तो चढ़ जाती है पर स्वभाव जो होता है, वही रहता है, बल्कि ओर तीव्र हो जाता है। पढ़ना बुरा नहीं, मन को निद्रा से जगाने के लिये पढ़ना बहुत अच्छा है[२], पर लोग पढ़कर बुद्धि को ऊँचा नहीं करते, पढ़कर अधिक माया में लगते हैं। बहुत से लोग परमार्थ की विद्या पढ़कर भूल में पड़ जाते हैं। बहुत-से-व्यावहारिक विद्या पढ़कर अधिक भूल में फँसते हैं। मैंने बताया था, माया नाम ही भुलावे का है। धन को माया इसीलिये कहते हैं कि यह अपने में यह बात डालकर बता देती है कि सारी शक्ति उसी की है। कुटुम्भ माया है, क्योंकि वह अपने मोह में भुला लेता है। मान तथा शक्ति भी माया है क्योंकि वे अपने मद में भुला लेते हैं। सांसारिक विद्या भुलावा है क्योंकि वह अपने ज्ञान के गर्व में फँसा कर उन्नति में बाधा डालती है। अतः माया भुलावा है, भुलावा माया है[३] :-

भुलावा क्या है? यह दृष्टमान जगत और मन द्वारा समझा जा सकने वाला लोक सदा रहने वाला दीखे, उसके सुख रहने वाले लगें ओर मन उसमें उससे आगे और उसके पीछे, उस शक्ति, उस समर्थ अस्तित्व को न माने जो इस समस्त का मूल है। हाँ, जो ईश्वर से मन को हटाकर उसकी रचना के मोह में डाल दे, वह भुलावा है। यदि मन ईश्वर को मानता है, ईश्वर के नाम में लगा है, हाँ, जो ईश्वर की और झुकाव पकड़ता है तो उसका भुलावा दूर होता है। उसे सांसारिक पदार्थ अथवा परिवार, मान अथवा सज्जन मित्र भुलावे में नहीं डालते। वह गृहस्थी में निवास करता हुआ भी किसी का बुरा नहीं चाहता। बुराई से बचता है, प्रभु में लगकर जागता है, लौ लगाकर चलता है। हाँ, उसने माया से भुलावा नहीं खाया।[४] मैंने कहा था कि लोग व्यवहारिक विद्या प्राप्त करके और अधिक माया के प्रेमी हो जाते है, हाँ, तीखी बुद्धि द्वारा

---

१. सतिगुर विटहु वारिआ जितु मिलिऐ खसमु समालिआ ।।
जिनि करि उपदेसु गिआन अंजन दीआ इनी नेत्री जगतु निहालिआ ।।
खसमु छोडि दूजै लगे डुबे से वणजारिआ ।।
सतिगुरू है बोहिथा विरलै किनै वीचारिआ ।।
करि किरपा पारि उतारिआ ।।३।। (वार आसा महला १)

२. मन समझावन कारने कछू अक पड़ीऐ गिआन ।। (गऊड़ी कबीर जी)
पुनः सचै सरमै बाहरे अगै लहहि न दादि ।।
अकलि इेह न आखीऐ अकलि गवाईऐ बादि ।।
अकली साहिबु सेवीऐ अकली पाईऐ मानु ।।
अकली पढ़िकै बुझीऐ अकली कीचै दानु ।।
नानकु आखै राहु इहु होरि गलां सैतानु ।। (वः साः साः महला १)

३. 'इहु माइआ जितु हरि विसरै मोहु ऊपजै भाऊ दूजा लाइआ ।।' (रामकली महला ३ अनंद)

४. कहै नानकु गुर परसादी जिना लिवलागी तिनी विचे माइआ पइआ ।। (आनंद)

अधिक धोखा, छल, कपट सीख जाते हैं। इस तरह के पढ़े-लिखों को मूर्ख कहा जाता है।[१] और हाँ, एक बात और सुन ले :-

एक और प्रकार के विद्वान हैं जैसे कि साख्य शास्त्री तथा नास्तिक, जो विद्या के तेज़ प्रकाश में चकाचौंध हो जाते हैं। ईश्वर आँखों का विषय बन कर आँखों द्वारा दिखाई न देने के कारण उन्हें यह भुलावा हो जाता है कि ईश्वर है ही नहीं, इस तरह के विद्वानों की संगति मत करना। इस तरह के विद्वान पढ़ते नहीं, पर पढ़-पढ़कर बौखला जाते हैं।[२] यह बात ध्यान में रखना कि ईश्वर की ओर से विमुख लोगों को यहाँ पर आकर अधिक कष्ट होता है। मैं तुझे यहाँ पर बता रहा हूँ कि सारे पसारे का मूल श्री परमेश्वर ही है और उसका नाम ही उससे भेंट करवाता है, उससे लौ लगवाता है, लौ ही उससे भेंट है। वह पढ़ना सफल है, जो उपकार, भलाई, नेकी सिखाये[३], जो ईश्वर का नाम सिखाये।[४] उस शिक्षा की आवश्यकता नहीं जो सीधे मार्ग से भुला दे। पढ़ने का फल तो यह है कि यह बात समझ में आ जाये कि सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी वह एक कर्तार तथा दातार है और वह हमें कभी भी न भूले,[५] वह विद्या सफल है।[६] पढ़ना बुरा नहीं, पर धन इकट्ठा करने के लिये, दूसरों को अनुयायी बनाने के लिये, दूसरों के लिये गड्ढे खोदने, जाल रचने तथा उन्हें दास बनाने के लिये पढ़ना निष्फल है।[७] मन को ज्ञानवान बनाने के लिये, अधिक नेकी सीखने के लिये और बुद्धि को उस मार्ग पर चलाने के लिये कि वह बुद्धि सुधि (सिद्धि) में परिवर्तित हो जाये[८], पढ़ना सफल है।

दुनीचंद - आपने बड़ी कृपा की है। मुझे प्रकाश प्रदान किया है, पर मैं कुछ डर-सा रहा हूँ। मेरा डर दूर कीजिए और गुरू नानक देव जी मुझे प्यारे कर दीजिए।

सूरत - डर का कोई स्थान नहीं, क्योंकि ईश्वर डर का दाता नहीं, वह माता-पिता की अपेक्षा अधिक प्यार करने वाला है, वह दण्ड देने वाला क्रोधी राजा नहीं, वह सदैव दयालु सच्चा पिता, सूची माता है। जीव दु:ख पाते हैं, अपने आप किये हुए कामों से। जो बच्चा अग्नि में हाथ डालता है वह अपना हाथ आप जलाता है, उसे कोई दण्ड तो नहीं देता। वाहिगुरू सदैव

---

१. पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा ।। (माझ वार महला १)
२. लिखि-लिखि पड़िआ तेता कड़िआ ।।
३. बिदिआ बीचारीं तां परऊपकारी ।।
४. नानक सो पड़िआ सो पंडितु बीना जिसु राम नामु गलि हारु ।। (रामकली महला १)
५. गुरा इक देहि बुझाई ।।
सुभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई ।। (जपुजी)
पड़ि-पड़ि गडी लदीअहि पड़ि-पडि भरीअहि साथ ।।
पड़ि-पडि बेड़ी पाईऐ पड़ि-पड़ि गडीअहि खात ।।
पड़िअहि जेते बरस-बरस पड़ीअहि जेते मास ।।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीऐ जेते सास।।
नानक लेखै इक गल होरु हऊमैं झखणा झाख ।। (वार आसा महला १)
६. मनमुख बिदिआ बिक्रआ बिखु खटे बिखु खाइ ।।
७. कहि कबीर बुधि हरि लई मेरी बुधि बदली सिधि पाई ।।
पुन: तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि ।।

दयालु हैं, घोर पापियों के लिए भी उनकी अपनी उत्पन्न की हुई गंदगी में से निकलने के उपाय ईश्वर ने रचे हैं। अपने प्रेमियों पर ईश्वर इसलोक (परलोक) में दया करता है और तुम्हारे लोक (इहलोक) में भी अपने प्यारे भक्तों को, सुमति तथा जीवनदान देने के लिए भेजता है। प्रत्येक स्थान पर, जहाँ-जहाँ पर सृष्टि है, प्रभु की दया, वहाँ पर वर्षा बरसाती है। ईश्वर को सदैव माता की भाँति प्यार करने वाला समझो। देखो, गुरू नानक देव जी का जगत में जाना प्रभु की ही असीम अनुकंपा है।

जो जीव शरीरों में हैं, अर्थात् तुम लोग जो देहधारी हो, यह भी अनुकंपा है। शरीर धारकर, माया में जाकर प्रकृति तथा पदार्थ में निवास करके, आत्मा का कण संघर्षों में पड़-पड़कर बलवान होता है। जैसे अखाड़े में जाकर कुश्ती करने वाले का बल बढ़ता है, वैसे ही प्रकृति तथा पापों में निवास करके उस पर विजय प्राप्त करके आत्मा बलवान होती है, विशालता प्राप्त करती है।[१] यह न समझ लेना कि जगत की रचना किसी भूल के आधार पर हुई है और यह दु:खों का घर है। नहीं, जगत तो किसी सुन्दर (ईश्वर) का एक खेल है। हाँ, इसमें उसकी प्रसन्नता है। इसमें उसका कोई प्रयोजन है। हाँ, यह एक अखाड़ा है, जहाँ पर हमारी समझ से भी परे का कोई कौतुक हो रहा है, जिसमें पड़कर आत्मा उन्नत होती है। आत्मा की उन्नति असीम है। यहाँ पर आकर भी प्रत्येक व्यक्ति एक स्तर का नहीं है। हरेक जिस स्तर की उन्नति करके आता है, उससे आगे उन्नति करता है[२], यहाँ तक कि प्रभु के निकट होता होता समझ से दूर किसी अति आनन्द, किसी अकथनीय यथार्थ तक पहुँचता है। प्रसन्नता, आनन्द, रस असीम तथा दूर-से-दूर हैं। अत: भयभीत मत होवो, प्रसन्न होवो कि तुम इतनी भारी उन्नति कर सकते हो और कहाँ तक पहुँच सकते हो, उसके महल तक, प्रभु के स्वरूप तक तुमहारी उन्नति है।

पर भाई! ईश्वर के भय की भी आवश्यकता है। निर्मल भय[३] मन को शुद्ध करता है। जिस तरह का भय वाला प्यार पिता की ओर से बच्चे का प्राप्त होता है, यदि यह भय न हो तो उसे निर्भय कहा जाता है। निर्भय साहसी होता है और पापों की ओर रुचि कर जाता है, वह कई बार अपनी आत्मा को काला कर बैठता है।[४] निर्मल भय, वह भय नहीं जो प्राणों का ही संहार कर देता है और आत्मा को दबा-दबाकर निचोड़ देता है। भय, मीठा-मीठा प्यार वाला निर्मल कहा जाता है[३], जिससे ईश्वर की स्तुति में मन लगता है।

बेटा! तुम सीमित हो, थोड़ी दूरी तक तुम्हारी दृष्टि देखती है। प्रत्येक मनुष्य सम्पूर्ण का एक भाग है, संपूर्ण का एक अंक है, कण है समष्टि की, रेतस्थल का एक कण है, अत: उसकी सूझ तथा सारी सृष्टि को, संपूर्ण को नहीं समझ सकती। जो सारे का कर्ता तथा दृष्टा

---

१. देही में किसी खास उन्नति का अवसर प्राप्त होता है, इसीलिए तो सतगुरू जी ने कहा है :-
इस देही कउ सिमरहि देव ।। सो देही भजु हरि की सेव ।।
पुन:- प्राणी तूं आइआ लाहा लैणि ।। (सिरी रागु महला ५)

२. डेह किनेही चाकरी जितु भउ खसम न जाइ ।।
पुन:- निरभउ भए सगल भउ मिटिआ ।।

३. निरमलु भउ पाइआ हरि गुण गाइआ हरि वेखै राम हदूरे ।।

४. नानक भै विणु जे मरै मुहि कालै उठि जाइ ।।

है, वह संपूर्ण को जानता है, इस लिए हम सारे के रहस्य को नहीं समझ सकते। बस, यही जान लेना आवश्यक है कि हम किसी, माता-पिता की भाँति प्यार करने वाले द्वारा रचित हैं; उसे प्यार करना-माता की भाँति बच्चा बनकर-उसकी अंगुली को पकड़े रखना ही सुख का मूल है। माता की अंगुली को छोड़कर जैसे बच्चा मेले में भी दुखी हो जाता है, इसी तरह हम भी दुखी हैं। उस माँ की अंगुली पकड़ें, उस माँ के साथ लौ लगायें, तो सारी रचना मेला वत है, सुखों का घर है और दुख हमारी भलाई की वृद्धि के प्रयोजन के लिए है। हम यदि लौ में आकर देखें तो जीवित ही हम देख लेंगे कि हमारा आपा सुख की, रस की, एकाग्रता की, प्रफुल्लता की प्रतीत में आ जाता है। लौ से जीवित समय भी सुख और मरकर भी सुख प्राप्त होता है। अब बेटा! तुम जाओ।

: ४ :

वह सूरत यह कहकर ऊपर को उठी, जैसे कोई प्रकाश की बनी हुई मूर्ति होती है। उस ऊपर को उठती जाती हुई की किरणें दुनीचंद की आखों में पड़ रही हैं। ऊपर को जाती-जाती वह लोप हो गई। दुनीचंद के चकित नैन बन्द हो गये, दोनों हाथ आँखों पर रख कर बैठ गया। काफी समय तक अर्ध बेसुध हुआ बैठा रहा। फिर आँखों पर हाथ फेरता उठा, खोलता और देखता है, वे सभी दृश्य लोप हो चुके थे, ऊजड़ था और दुनीचंद था धीरे-धीरे घर को आया। मार्ग में सारी आप बीती को सोचता तथा फिर-फिर याद करता रहा है और कहता है :-यह नानक सचमुच ईश्वरीय ज्योति हुआ न। कब किसी ने ऐसे कौतुक करके दिखाये हैं? उसे पता था कि मेरा पिता किस बुरी दशा में था, उस सूरत ने क्या कहा था-अतृप्त भूख-वाला ध्यान लेकर जो मरकर पृथ्वी पर ही रहा और प्रेत पंजर में, हाँ शरीर की-सी ही किसी देह में, जो सूक्ष्म है, पर सूक्ष्म लोगों में अति भारी है। यहाँ पर ही भूखी रुचि वाले पशु के रूप में विचरता रहा। हाय! हमारी भूल! हैं, हम अपने भाग्य के निर्माता स्वयं हैं? ध्यान में जैसा अभ्यास करते रहते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। सच है, यदि सारा दिन मदिरालय में भटकते फिरें तो रात को देव मन्दिरों के स्वप्न तो नहीं आयेंगे। फिर स्वप्नों में भी प्याले, सुराही, मदिरालय ही देखेंगे। मैं सारा दिन व्यापार करता हूँ, पत्नी ने कई बार मुझे बताया है कि मैं रात को सोते हुए भी बातें करता हूँ, भाव निर्ख आदि का निर्णय करता हूँ और विदेशों के समाचार बताता हूँ। यों तो मैं मरकर भी मण्डियों के गर्द-गुबार में ही भटकता फिरूँगा। किसी का क्या दोष? जिस प्रकार मैं सारी आयु अभ्यास करूँगा, वही बन जाऊँगा।

सूक्ष्म कातो आपको, न भाई को न बाप को।

अच्छा, बीत गई! जो बीत गई, सो बीत गई, फिर वह वापिस तो नहीं लौटती, जो शेष है उसे सँभालू! हाँ, उस देवता स्वरूप ने कहा था-'तेरे घर में ज्योति स्वरूप बैठा है'। उसकी शरण प्राप्त कर ले, चलकर चरण पकड़कर कह दूँ कि भूला हुआ हूँ, सुमार्ग प्रदान कीजिये!. .वाह रे कौतुकी! कैसे इहलोक ओर परलोक दिखा दिये हैं, इसलिए तो जगत तेरा लोहा मानता है। इस शक्ति के स्वामी के आगे कौन-कौन न झुका? धन्य तू गुरू नानक! हाँ, वे कहते थे-धन्य गुरू नानक देव, तू धन्य गुरू नानक देव!! मेरे नयन खुले रहें, जितना मधुर आज लग रहा है, सदैव लगता रहे! सदैव लगाता रहे!!!

अब मैं क्या करूँ व्यापार का त्याग कर दूं? खाने के लिये काफी है, किसी वन में जाकर बैठूं? गंगा, गया, वारानसी, गोकुल, मथुरा में जाकर ठिकाना करूँ? ठाकुर मन्दिर का निर्माण कर लूँ? धन बहुत है, उसी मन्दिर का पुजारी बनकर दिन व्यतीत कर लूं? पर उस सूरत ने तो कहा था-भगवंत का नाम, भगवंत से भक्ति भावना, प्यार वाला भगवंत का नाम, नाम जपकर नम्रता तथा किसी को दु:ख न देना, यदि संभव हो तो भला करना, पर हाँ, सच उसने यह भी कहा था कि जो कुछ गुरू नानक कहे वही करना। मैं भूल गया, धन्य गुरू नानक देव! जो उसकी आज्ञा हो, वही करना, तो मैं क्यों सोच-विचार करूँ? अपने गुरू पर न्योछावर हो जाऊँ। उसने कहा था, गुरू पर न्योछावर हो, वह प्रकाश प्रदान करेगा। ठीक, यदि मेरी बुद्धि प्रकाश वाली होती तो मुझे पता न होता कि पिता कहाँ पर है और श्राद्ध कहाँ पर हो रहे हैं, मैं क्या कहूँ और करवाने वाले कौन हैं और अदेश के कौतुक क्या है अंधकार-ही-अंधकार रहा। चाहे पदार्थों में बुद्धि कितनी प्रतिभाशाली है और नैनों के आगे कितने ही तारे, चन्द्र, सूर्य और फानूस जलते हैं। वाह रे मानव! तेरी अकड़ और वाह वाह तेरा प्रकाश! और प्रकाश के होते हुए अँधकार।....अब चिन्ता का त्याग कर दूं? चिन्ता! चली जाओ।....मेरी चिन्ताएँ क्या कर सकती हैं मैं चाहे लाख बार सोचता जाऊँ। मेरी मति अंधकार में है, जो प्रकाश आज मिला है इसके बिना तो सदैव अंधकार है। उस सूरत ने कहा था कि प्रकाश सतगुरू के पास है, गुरू नानक के पास है, गुरू नानक से अनुग्रहीत हो चुके गुरुमुखों के पास है। प्रकाश का दाता है गुरू, प्रकाश का दाता है, गुरूमुख, पर इस समय गुरू और गुरुमुख दोनों स्वरूप धारण करके वह सुन्दर, मुझ मायाधारी के घर पर बैठा हुआ है। समय का उद्धारकर्ता, हाँ तारनहार कलियुग में अवतरित हुआ है। समय का महान अवतार यही है। चलूँ, मैं उड़कर पहुँचूँ और क्या करूँ? हाँ, अपने सतगुरू पर न्योछावर होऊँ - बस, रात-दिन उसी पर न्योछावर होऊँ। उस पर अपने-आप वार दूँ, जो आज तक अंधकार में रहा, जिसके आज नैन कटोरे खुले हैं और जिनमें धुर से आकर अमृत पड़ा है। बलिहारी सतगुरू नानक पर! सदा-सदा बलिहारी। मुझ पशु को मनुष्य बनाया है, मनुष्य को देवता बनायेगा। वह सूरत यही कहती थी न-सतगुरू पशु से उठाकर देवता बना देता है[१], धन्य गुरू नानक! उड़कर चलूँ? न्योछावर होऊँ? कहूँ चरणों में समा लीजिये, अपने चरणों के साथ ही लगा लीजिये, उसी तरह जिस तरह पवित्र धूल चरणों से लग जाती है। हाँ, तेरे चरणों के साथ धूल होकर ही लग जाऊँ, मैं मलिन-सी धूल ही हूँ न?

इस तरह कभी सोचता, कभी उस दर्शन को नैनों के आगे फिर-फिर देखता हुआ दुनीचंद चलता जा रहा है। मार्ग में कई जानकारों ने बुलाया, पर अपनी धुन में उसे पता न लगा, तब पता लगा, जब घर में आ पहुँचा। मर्दाना दीवानखाने में गुरू जी बैठे थे, मरदाना बारीक स्वर में अपने यन्त्र का स्वर निकाल रहा था, अंदर दुनीचंद की पत्नी तथा दूसरे बंधुजन प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब लौटकर आए और सारे भोजन करें। जब दुनीचंद आया, तो वह अंदर न गया पर गुरू बाबा के चरणों से लिपट गया, 'धन्य तू! धन्य तू!' कहता जाता ओर चरणों के साथ यों लिपटता जाता था, जैसे बालक माता के गले से लिपटता है। 'हे गुरू

---

१. पसू परेतहु देव करि पूरे सतिगुरू दी वडिआई। (वारां भाई गुरुदास १०-१५)

नानक देव!' मेरी वह दशा कर, जिससे तू न विसरे। मैं तुझ पर बलिहार होता रहूँ।'

गुरू बाबा ने सिर पर हाथ रखा ओर कहा-दुनीचंद! उठ, सावधान हो, कर्तार भली करेगा। तेरी लज्जा रह जोयगी। लज्जा के साथ प्रभु के देश में जायेगा, 'तू सचेत रह।'

दुनीचंद – मुझे हे करामाती गुरू, अंधकार न पड़े, भुलावा न आये, तेरी पहचान मुझ से खो न जाये। यदि तूने मेरी दृष्टि को खोला ही है, आरपार दिखाया ही है और तू जो कुछ होकर दिखा है, उसी तरह सदा दीखता रहे। हे सतगुरू! हे प्रकाश दाता! मुझे यह भुलावा न हो कि आपको, ज्योति के अलावा कुछ और समझ बैठू? हाँ, मैं आपको अपना तथा प्यारा ही देखूं।

गुरू बाबा – दुनीचंद! सावधान हो, कर्तार भली करेगा, जा अंदर परिवार भूखा है, तेरी प्रतीक्षा कर रहा है, जा तू भी भोजन कर और परिवार को भी भोजन करवा।

दुनीचंद – सत्य वचन मेरे दाता जी। जो आपकी आज्ञा होगी मैं वही करूँगा, दाता जी! मैं वही कुछ करूँगा, पर हे दीनानाथ! आप भी भोजन कीजिए न, आप भेजन करें, तब परिवार भी भेजन करे। आप ही मेरा परिवार, मेरे बन्धु, सज्जन, सैण, मेरा मान; त्राण अब सब कुछ आप ही हैं। अंदर घर में चलिए और चलकर चरण रखिए। अन्न जेंविए! फिर आपका बचा हुआ आपकी अनुकंपा द्वारा, परिवार खाये। अब में आपके चरणों की कृपा द्वारा भोजन करूँगा, मेरी कमाई मलिन है, आप धो दीजिऐ।

प्रेम की इस विह्वलता तथा व्याकुलता को देखकर दया के स्वामी के नैन जल से भीग गये ओर आप उठ खड़े हुए :-चल मरदाना! आज तुझे श्राद्ध खिलायें।

आगे-आगे दुनीचंद, सिर झुकाये, हाथ जोड़े जा रहा है और पीछे-पीछे दयालु गुरू बाबा जा रहा है। नदियों के किनारों पर, वनों तथा बागों में विचरने वाला, अमीरी ठाठ-बाठ वाले घर में जा रहा है। अब आप अंदर गये तो दुनीचंद ने पत्नी को बुला कर कहा-'गुरू सच्चे गुरू के चरणों में झुक जा'! पत्नी बुद्धिमान तथा प्रवीण तथा पति की प्यारी थी; पति का रंग-रूप तथा आवाज आदि बदले हुए देखे, पति की आवाज़ में मधुरता, नम्रता तथा दर्द-भरी प्यार की झन्नाहट देखी और दूसरे क्षण गुरू बाबा के चरणों में झुकी, सच्चे तारक ने आवाज दी :-

कर्तार भली करे, निरंकार भली करे! उठ बिटिया! सावधान हो! ला अन्न-जल, खिला, पति के मुँह में भी डाल, सवेर से भूखा है। भूखों की भूख हरने के लिये भूखों को खिला-खिलाकर न तो भूखों को ही तृप्त कर सका और न ही स्वयं तृप्प हुआ, सभी भूखे ही रहे। उठ बिटिया! भोजन ला, अन्न सच्चे पातशाह ईश्वर का प्रसाद है। धन पदार्थ, सब-कुछ उस ईश्वर की देन है, उसका प्रसाद है।

ये वचन थे कि मानो अमृत सरोवर से छूटे हुए छोटी-सी फुहार के फ़व्वारे थे, जो कानों में पड़कर अंतस को शीतल कर गये, भूख की व्याकुलता दूर कर गये। अन्न खाकर तृप्त होते हैं, पर देखिए गुरू बाबा के वचनों ने भूख की व्याकुलता दूर कर दी। शीतल हृदय, स्वाद-भरे मन से पत्नी गई। थाल परोसकर ले आई, गुरू बाबा के आगे रखकर बैठ गई। एक ओर, दुनीचंद किसी और रंग में रांता हुआ करबद्ध होकर बैठ गया। गुरू बाबा ने थाल में से कुछ

उठाया ओर दुनीचंद के हाथ पर रखकर कहा, ''प्रभु का दिया हुआ प्रसाद खा।'' फिर कुछ उठाया और भागवंती के हाथ पर रखा ओर कहा, बिटिया! निरंकार का प्रसाद खा। फिर कुछ मरदाना के हाथ पर रखा और कहा, ''हे शब्द के रसिक! ले अन्न मुँह में डाल-'खाणा पीणा पवित्र है दितोनु रिजकु संबाहि।' खा और मस्त हो, नाम जप ओर कीर्तन कर।'' यह कहकर ऊपर की ओर देखा, रसीले नैन भर आये, सुन्दर कण्ठ से आवाज़ आई-''धन्य निरंकार''! और थोड़ा-सा भोजन अपने हाथ पर रखकर जगत की आजीवका के दाता ने मुँह में डाला। जगत को भोजन करवाने के पश्चात आप भोजन करने वाले ने आप भोजन किया, दासों को कृतकृत्य किया-फिर कहने लगे, ''भागवंती! जा बिटिया अंदर जाकर परिवार की भूख को हरो'' भागवंती चली गई।

दुनीचंद - पातशाह! सुन्दर सुलतान! कोई आज्ञा? कौतुकी सतगुरू ने मरदाना से सूई माँगी, मरदाना ने रबाब की पीठ में कभी आवश्यकता पड़ने पर, मोम लगाकर उसमें चुभोकर रखी हुई थी, वह निकालकर दे दी। सच्चे पातशाह ने सूई दुनीचंद को देकर कर कहा- यह सूई ले ले और संभालकर रख, जब तू हमें परलोक में मिलेगा तो हम स्वयं ले लेंगे।

दुनीचंद ने सीस झुकाकर ले ली। मन में कोई विचार नहीं आया। सतगुरू जी के प्यार के रंग में रांता हुआ केवल आज्ञा मानने के आनन्द में मस्त हुआ 'सत्य वचन' कहकर अंदर चला गया। भागवंती परिवार को भोजन करवा रही थी। दुनीचंद ने कहा-यह काम किसी अन्य को करने दे और मेरे साथ अंदर चल। पहले गुरू जी का काम करना है।

भागवंती (अंदर जाकर) - कहिये शाह जी! गुरू जी की क्या आज्ञा है?

दुनीचंद - आपने यह सूई दी है और कहा है कि सम्भाल कर रखिये।

भागवंती - (चकित होकर)-किसके लिये?

दुनीचंद - कहते है कि अगले लोक में मुझ से ले लेंगे।

भागवंती - स्वामी जी! सतगुरू नानक पूर्ण गुरू तथा कौतुकी है, हमारी भलाई के हेतु आपने यह कोई रहस्य की बात की है। उस सौन्दर्य से झिलमिल करते हुए माथा से मैं न्योछावर हो गई, मैं उन वर्षा बरसाने वाले नैनों से बलिहारी, स्वामी जी! सूई ले जाइए और जाकर कहिये कि महाराज जी! जहाँ पर शरीर भी नहीं जाता वहाँ पर यह सूई अगले लोक में कैसे जायेगी, तब वे अनुग्रह करके हमारे मुँदे हुए नैनों में कुछ प्रकाश डालेंगे।

दुनीचंद को भी सुझ आ गई। पत्नी का प्यार और उसकी सुन्दर बात भी मन को अच्छी लगी, उसकी गुरू जी पर अपने आप उत्पन्न हुई श्रद्धा भी बहुत प्यारी लगी, कहने लगा, मैंने कौतुक देखकर श्रद्धा धारण की, इसने दर्शन करके ही श्रद्धा धारण कर ली, धन्य है इसकी कमाई!

जब उसने यह बात गुरू बाबा को आकर सुनाई तब आप कहने लगे-दुनीचंद! तेरे घर के ऊपर सात ध्वुजाएँ किस की हैं?

दुनीचंद - भुलावा डालने वाली, भेड़िया वत, भूख लगाकर भूख-ही-भूख बढ़ाने वाले धन के सात ढेरों तथा सात लाख की ध्वुजाएँ हैं।

गुरू जी - इन्हें साथ कैसे ले जायेगा, यदि सूई साथ नहीं ली जाई जाती?

दुनीचंद – पातशाह! जीवन पर्यन्त मन में प्रसन्नता है कि मेरे पास लाखों रुपये हैं, जगत् में नाम है, चार व्यक्ति साथ चलते हैं, दस लोग मेरे साथ हैं, बाकी धन न तो पिता ही अपने साथ ले गया और न ही मैं ही ले जाऊँगा। अब तो सूझ, आपकी दी हुई सूझ आ गई है। उस समय तो तरसते हुए नैनों से हौका भरे हृदयों से यहाँ पर ही छोड़कर, प्रत्येक व्यक्ति हाथ झाड़कर[१] यहाँ से चला जाता है।

गुरू जी – ठीक है दुनीचंद इस समझ पर दृढ़ता आवश्यकता है। मनुष्य के तीन मित्र हैं :– धन, परिवार, कर्म[२] मरते समय तक धन मित्र है, शरीर के दाह तक सम्बन्धी तथा दोस्त, मित्र हैं, आगे परलोक में कर्म मित्र हैं, जिन्होने भले कर्म किये, उन्होंने सुख प्राप्त किया। पर जिसने कर्मों का शिरोमणि कर्म, ईश्वर के नाम का आराधन किया, वह प्रभु के चरणों के पास पहुँचता है। प्रभु का नाम, उसका प्यार है, प्यार प्रियतम से भेट कराता है।

दुनीचंद – अब अपनी कृपा में ले लीजिये।

गुरू जी – दुनीचंद! तेरे आयु द्रव्य के संचय करने में व्यतीत हुई है। मन को इसके साथ गहरा मोह है। जिस तरह सर्पणी की लपेट होती है, इसी तरह जो काम प्रतिदिन किया जाये उसकी मन को लपेट लगती है। यदि तुमने मन को उस स्वभाव से निकालना है, उस पकी हुई आदत के फन्दे से छुड़ाना है तो उससे विपरीत काम कर। इस संचित धन को प्रभु की सेवा में लगा दे, इस संचित धन को बिखेर दे। इसे फेंक मत दे, यह दासी है; प्रभु के निमित्त, प्रभु के प्रेमियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु, सारा धन लुटा दे, इस संचित धन को लुटा दे। हमें पता है कि तूने इस धन को ज़ोर, अत्याचार द्वारा एकत्र नहीं किया, मनुष्यों का रक्त नहीं निचोड़ा, पर तूने अपने आपे का रक्त निचोड़-निचोड़कर, सोच-विचार में पड़-पड़कर चतुराइयों द्वारा संचित किया है। मन की पकड़ तथा लपेट इसके साथ कड़ी पड़ गई है, यदि तू इस धन को लुटा सके तो तेरा मन मरे से जीवित हो उठेगा। फिर अपनी आजीवका को धर्म के आश्रय पर कर और तब खा। तुझे कोई कमी नहीं। मन से सोच-विचार करके देख ले। क्या साहस कर सकता है? हाँ, पत्नी से भी विचार-विमर्श कर ले।

दुनीचंद – हे गुरू! हे गुरू नानक देव! हे मेरे स्वामी! तू मुझे उसी तरह दिखाई देता रह, जिस तरह मुझे उस सुन्दर सुरत ने तेरे दर्शन करवाये हैं। धन के साथ मेरा प्यार है पर तेरे चरणों का प्यार धन की अपेक्षा अब अधिक है, सात लाख रुपये तेरे चरणों पर न्योछावर कर

---

१. चलै जुआरी दुइ हथ झारि ॥ (भैरऊ कबीर जी)

२. इस प्राणी के तीनों मीता ॥
दरब प्रवार करम लख लीजै। जस संगी तस दशा सुनीजै ॥
जब लौ प्राण रहै तन मांही । तब लौ धन मित, बहुरो नांही ॥
लेत संभार अपर ही यांकौ । कलमल अनिक कीए हित जांको ॥
तन के दाह तीक परिवारा । पुन तृण तोरहिं आइ अगारा ॥
आगे कोइ न संग सहाई। जिन सों हित कर औध बिताई ॥
तीजे कर्म मीत इस केरे । सो नित संगी जाहिं अगेरे ॥
बुरे कि भले करे हैं जैसे । फल देवैं तस हटैं न कैसे ॥ (गुरू नानक प्रकाश)

दिये, तेरी एक आज्ञा पर से सात करोड़ का बलिदान किया। यदि आपकी आज्ञा है तो पत्नी से भी पूछे लेता हूँ ; पर दाता! मैं तेरी आज्ञा में हूं और वह मेरी आज्ञा में है, वह तेरी आज्ञा के चरणों पर झुककर अपना सीस रखेगी।

जा भई! जगत की स्वामिनी माया (धन) से मुकत होना है, दोनों विचार कर लो।

दुनीचंद – 'जैसी आज्ञा' कहकर अन्दर चला गया, परिवार विदा हो चुका था। भागवंती अकेली बैठी थी। पति से गुरू की आज्ञा सुनकर कहने लगी – मेरे सुन्दर स्वामी जी! यदि गुरू जी आज्ञा करें कि मैं भी माया हूँ और मुझे भी रावी नदी में बहा दें, तो यदि तुम्हें मुझे बहा देने के कारण पाप न लगे तो मैं आज्ञा पाकर आप छलाँग लगा दूँगी। द्रव्य तो पुरुष कमाता है और उसका अधिक प्रेम तो स्त्री को होता है। पर तेरी पत्नी तेरी तथा सतगुरू जी की आज्ञा की दासी है। गुरू जी के वचन पर इकट्ठा किया हुआ मैल लुटा दे। तू कृत्य करना मैं भोजन तैयार किया करूँगी। हम दोनों गुरू बाबा के सुन्दर दर्शनों से बलिहारी हो जायेंगे। उस सौन्दर्य से दमकते हुए माथे पर न्योछावर होकर, पति जी! उन दमकते हुए लाल रूप सुन्दर नैनों के सामने सात लाख लुटा दीजिये। मैं प्रसन्न, मेरा पति प्रसन्न, मेरा गुरू प्रसन्न, मेरा ईश्वर प्रसन्न।

दुनीचंद ने आकर गुरू बाबा को पत्नी के वचन सुना दिये। इतने में भागवंती आप आ गई और चरणों पर सिर रखकर कहने लगी :-

हे सुन्दर नैनों वाले! वहाँ पर लेखक कौन था। वहाँ पर तुमने ही हमारे माथे पर सात लाख लिखा था, और यदि इसे यहाँ पर लुटा दें तो तेरा दिया ही लुटता है। हे कृपालु! तेरा दिया हुआ, तेरे दास तेरी आज्ञा पाकर लुटा देते हैं, हमारा क्या है? हमें कोई सुन्दर वस्तु प्रदान कर, जो हमारे साथ निभ सके। हमें अब इन दमकने वाले सजीव कोमल प्यारदाता चरणों का प्यार प्रदान कर।

इस तरह के प्यार की झन्नाहट छेड़ देने वाले भागवन्ती के वाक्य सुनकर दाता के नेत्रों में से दो जल रूपी मोती निकल पड़े।

हाँ, जी! दुनीचंद ने सहर्ष सात लाख का धन लुटा दिया। दम्पति ने होका नहीं लिया, दु:ख नहीं मनाया। पुर्वजों का इकट्ठा किया हुआ, अपनी कमाकर मधुमक्खी की भाँति कण-कण करके इकट्ठा किया और भरा-भराया छत्ता बाँट दिया, शुभ कार्य में लगा दिया। गुरू बाबा ने देखा कि इसका हृदय स्वच्छ हो गया है। जिसनें माया के मोह को इतनी विशाल नदी को तैरकर पार कर लिया है, इसका मन शुद्ध हुआ है। दुनीचंद ने भी देखा कि मन पर से बोझ उतरा है। मन हलका हो आया, तब सच्चे पातशाह ने और कृपा की, दयालु होकर आपने दुनीचंद को नाम का दान प्रदान किया। तदहु दुनीचंद नाम धारण करके सिक्ख होया, तब लगा गुरू-गुरू जाप जपने। (पुरातन जन्मसाखी)'

मिलि सतिसंगति समां बिताए।
सिमरहि वाहिगुरू सतिनामू।
तजे बिअरथ जि घर कै कामू।।
भा निहाल ततकाल बिसाला।
धरि उपदेश जु दयो दिआला।।

लाहौर में एक धूम मच गई। दुनीचंद परगने का अजारादार, व्यापार-धन्धे का सरदार, लखपत, धनी, गुरू नानक का सिक्ख हो गया। उसने अपनी तथा पूर्वजों की इकट्ठी की हुई सम्पति लुटा दी है और वाहिगुरू के स्मरण में लग गया है। इस माने जाते बड़े मनुष्य का-नगर के व्यापारियों में से शिरोमणि मनुष्य का-यह त्याग गुरू नानक की शक्ति की एक धूम मचा गया कि उनके हाथों में कितना जादू है कि जिसके सिर पर हाथ रखते हैं उसका कायापलट हो जाता है। लोग दर्शनों के लिए आने लगे। अनेकों और लोग सतनाम के धारणीय हुए। सत्संग का अच्छा ठठ बँध गया। लाहौर में धर्म-स्थान की रचना की गई[१] और सत्संग का प्रवाह चल पड़ा और गुरू बाबा जी यहाँ से फिर चुपके से तलवंडी को विदा हो गये।

दुनीचंद लाहौर में जैसे धन-सम्पति के कारण एक प्रसिद्ध व्यक्ति था अब गुरू के सिक्ख मत का एक सितारा हो गया । सतगुरू जी का जो गुप्त तथा प्रकट वार्तालाप उसके साथ हुआ, गुरू जी ने उसका सार १५ पौरियों में रचकर (आसा दी वार) नामक वाणी में रखा है।[२] दुनीचंद कितना सौभाग्यशाली हो गया कि जिसके प्रति एक वाणी रची गई और जगत को मार्ग बताने के लिए सदैव के लिए सुखदायी प्रकाश-स्तम्भ बन गई। मृत्यु के पश्चात् हमारी क्या दशा होती है? उसका कारण क्या है? उससे बचकर सुखी होने का प्रयत्न क्या है? इस सब-कुछ को सतगुरू जी ने इस वाणी में साकार किया है।[३]

धन्य भाई दुनीचंद! अपना उद्धार किया और जगत के उद्धार का कारण बना।

गीत[४]

(गुरू नानक आगम पर प्रकृति तथा रचना में आल्हाद)

प्रातः समीर अब आ गया है, 'वन सुगंधि' से भरकर आ गया है। आ गया है और कण्ठ से लगकर शीतलता प्रदान कर रहा है और गिरे हुओं के गले लगकर ऊपर को उठा गया है। अठखेलियाँ कर रहा है और छेड़ रहा है, और कहता है कि मैं आ गया हूँ। 'प्रियतम के देश' का 'सुख सन्देश' सुनो। प्रियतम के देश में शीतल छाया छा गई है। ईश्वर की रचना का रंग देखने के लिए पूरब की ओर देखिए, मुस्कराहट अपना ही रंग लगा गई है। आकाश लाल रंग

१. दुनीचन्द ने अपने उस मकान को धर्म-स्थान बनाया जो दिल्ली दरवाज़ा के चुहट्टा मुफ्ती बाकर, वज़ीर खाँ की मस्जिद के पीछे अब तक स्थित है। हमारी स्मृति मे ज्ञानी हज़ारा सिंह जी (टीकाकार वारां भाई गुरुदास और कर्ता गुरू ग्रंथ कोश) के बहनोई भाई हरसा सिंघ जी इस गुरुद्वारा के सेवक थे, इन्होंने अपना अमृतसर वाला मकान बेचकर एक दुकान खरीदकर गुरुद्वारा के साथ लगा दी थी, फिर उनके पुत्र मस्ताना नरैण सिंघ जी सेवा करते रहे। फिर सन्त पण्डित बनां सिंघ जी थे और अब (पुस्तक लिखते समय) सुन्दर सिंघ जी हैं। छोटी रावी के पार, बादामीबाग़ के समीप भेड़िया वाले स्थान पर भी दुनीचन्द ने गुरुद्वारा बनाया। वह गुरुद्वारा भी अब तक स्थित सुना जाता है।

२. पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि 'राग आसा दी वार कीती, पवड़ी १५ परिथाइ दुनीचन्द के कीतीआं'। हाफज़ाबाद वाली जन्मसाखी में लिखा है कि उस समय "कूड़ राजा" से "मत थोड़ी सेव गवाईऐ" तक लिखकर आगे लिखा है "अगे वार पूरी लिखणी है"।

३. पीछे इसी प्रसंग में बहुत-सी तुकों का, जो आसा दी वार में से हैं, भावार्थ आ चुका है और साथ-साथ 'आसा दी वार' की तुकें नीचे टिप्पणियों में आ चुकी हैं।

४. यहाँ पर गीत का अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

का होकर हँस रहा है; इस बुढ़े (आकाश) पर मानों फिर से यौवन आ गया है। स्वच्छ जल नृत्य करते हुए बह रहे हैं और झरनों का झरन गीत गा गया है। खिले हुए बाग़ दूसरों को भी खिला रहे हैं, फूल की कली हँस पड़ी है, खिल पड़ी है। खिलकर कलियाँ हँस रही हैं और खिलने की देन जो छवि लगा गई है। बादलों की गोदियाँ चढ़ते हुए सूर्य के सुनहरे प्रकाश से भर गई हैं और इन उड़ते हुए बादलों ने पातशाही प्राप्त कर ली है। चढ़ता हुआ सूर्य यों दमकता है, मानों अभी किसी सौन्दर्य के सरोवर से स्नान करके निकल रहा है और हँसता हुआ आ रहा है। गगन पर 'किरणों की सेना' छा गई है। आकाश प्रसन्नताएँ भेज रहा है और बाँट रहा है। देखिए, सूर्य की सवारी आ रही है। धरती 'ओस रूपी मोतियों' को केशों में गूँथकर और निथरकर, हरी घास का मखमली पहनावा पहनकर सुहावनी लग रही है। ओस ने पत्तों को सारी रात चूमा है, अब उनमें नई रंगत आ गई है। पक्षियों का चहचहा राग सुनकर, प्रसन्नता ने सभी सीमाएँ तोड़ डाली हैं। इस रचना, इस उछाल तथा प्रसन्नता को देखकर आनन्द की एक लहर लहरा गई है। प्रियतम के देश का सन्देश सुनाई दे रहा है, यह एक रहस्य है। मेरी सूझ इसका संकेत पा गई है। सुन्दर पुरुषों का पातशाह प्रसन्नता की खबर भेज रहा है, उसकी सूरत आकर एक पहेली डाल गई है। वह प्रसन्नता और रंग की खुशी में खेलता है, उसकी प्रसन्नता में से उसकी एक झलक पड़ गई है। तू इस चाव को देख जो चारों ओर भर रहा है। उस रंगत को देख जो हृदयों को अच्छी लगी है। प्रसन्नता का स्पर्श नखरे से लग गया है और हृदयों पर पड़कर अपनी लहर फेर गया है। समीर, जो गले से लगता हुआ आ गया है, वह आज हर ओर सुख का सन्देश दे रहा है। गुदगुदाकर नींद जगाता है और कहता है कि मेरी रागनी जो स्वर सुना गई है उसे सुन। 'मैं रंग में रांती हुई आ गई हूँ और सुगन्धि से भीगी हुई और रस से भरकर आ गई हूँ।' सूर्यों का सूर्य आ गया है, स्वाभाविक ही प्रकृति ने दर्शनों की देन प्राप्त कर ली है। सौन्दर्य वालों को, नानक सौन्दर्य लग रहा है। आज सौन्दर्य के देश से उसकी सवारी आ गई है। हे मनुष्य तू जाग! अपना आँचल फैला दे, आज अदेश की सम्पत्ति लुटाई जा रही है। तू सौन्दर्य की गोद भरकर धनी बन जा, आज अमीरी हर घर में आ गई है। 'धन्य नानक', कह दे 'सतगुरू धन्य है', 'धन्य रसना' है जो 'धन्य' की ध्वनि लगा रही है।

सूचना - लाहौर से उठकर सच्चे पातशाह जी अब फिर तलवंडी[१] की ओर चल पड़े। वृद्ध रायबुलार बड़ी आकांक्षा से प्रतीक्षा कर रहा था[२], बहनजी तथा अन्य प्रेमी भी कोई आत्मिक संकेतों द्वारा गुरू जी के आगमन का अनुमान लगाकर तलवण्डी में आये हुए थे। उन सभी प्रेमियों की अभिलाषा, चाह, हृदय का प्रेम और सच्चे पातशाह का अपने जन्मदिन पर पहुँचने की गरीबों पर अनुग्रह का कुछ चित्र आगामी प्रसंग में है।

□ □

१. पुरातन जन्मसाखी में दुनीचन्द की कथा के पश्चात् लिखा है, 'तब बाबा जी घर आया तलवण्डी में कोई दिन रिहा ।'

२. इस बार गुरू जी ने तलवण्डी से चलकर कर्तारपुर के स्थापना की और जब कालू जी कर्तारपुर को जाते हैं तब रायबुलार विरह करता बताया है कि 'अब आप चले हैं, गुरू नानक जी यहाँ कब आयेंगे? जिससे स्पष्ट है कि रायबुलार उस समय जीवित था।

५१ प्यारे की वर्षगाँठ

मीठी गुलाबी ऋतु है। ठण्डी-ठण्डी, प्यारी-प्यारी हवा, मधुर चाँदनी की वर्षा करने में मस्त पिछली रात का शीतल चन्द्रमा, छोटी-छोटी ओस की बेमालूमी फुहार-तीनों समय को प्यारा-प्यारा बना रहे हैं। पीलू के वृक्ष किस प्रकार पतले-पतले पत्ते हिला रहे हैं। इनके बीच में से चाँदनी की किरणें धरती पर पड़कर कैसा छाया तथा प्रकाश का चितला फर्श बिछा रही हैं। इस चितले प्रकाश तथा प्रकाश और अँधेरे की गले मिल रही छाया में एक चौकी पर एक वृद्ध पुरुष तकिया लगाकर बैठा है। दोनों हाथ खुले बेसहारे हैं। आगे कपूरकचरी की माला पड़ी है। आँखें बन्द हैं, शरीर अचल है और श्वास बहुत धीमा तथा स्थिर आ रहा है। अमृत वेला इसी तरह व्यतीत हो गई, पौ का पहला फुटाला भी व्यतीत हो गया। अब पौ का दूधिया रंग का प्रकाश सब ओर फैल गया। चिड़ियों, तोतों की तोतली बोलियों से मानो वन सोया हुआ जाग उठा। इस समय सौन्दर्य भरे चेहरे वाले वृद्ध के नैन खुल गये, हाथ माला पर जो पडे, आँखों में से एक-दो अश्रु गिर पड़े और एक बड़े दर्द भरे सवर से यह वाक्य उसके दुर्बल, पर अचल कण्ठ से निकले-

सुणि नाह प्रभु जीऊ एकलड़ी बन माहे।।
किऊ धीरैगी नाह बिना प्रभु वेपरवाहे।।
धन नाह बाझहु रहि न साकै बिखम रैणि घणेरीआ।।
नह नींद आवै प्रेमु भावै सुणि बेनंती मेरीआ।।
बाझहु पिआरे कोइ न सारे एकलड़ी कुरलाए।।
नानक साधन मिलै मिलाई बिनु प्रीतम दुखु पाए।।१।।

(गऊड़ी छंत महला १)

इसके साथ आँखों में से कोई-कोई अश्रु यों गिरता हुआ कपोलों के झुर्रीदार चर्म से गिरता जा रहा है, जैसे पतझड़ में ओस का कोई-कोई कण कुमलाये हुए पत्तों से गिरता हुआ नीचे को लुढ़कता जाता है। एक क्षण के पश्चात् फिर नेत्र मुँद गये और हाथ मनकों पर फिरता रहा और फिर वैराग से भरी हुई आवाज निकली :-

डूंगरु देखि डरावणो पेईअड़ै डरीआसु।।
ऊचऊ परबतु गारवड़ो न पऊड़ी तितु तासु।।
गुरमुखि अन्तरि जाणिआ गुर मेली तरिआसु।।१।।
भाई रे भवजलु बिखमु डरांऊ।।
पूरा सतिगुर रसि मिलै गुर तारे हरिनाऊ।।१।। रहाऊ।।
चला चला जे करी जाणा चलणहारु।।,
जो आइया सो चलसी अमरु सु गुरू करतारु।।
भी सचा सालाहणा साचै थानि पिआरु।।२।।

दर घर महला सोहणे पके कोट हजार।।
हसती घोड़े पाखरे लसकर लख अपार।।
किसही नालि न चलिआ खपि खपि मुए असार।।३।।
सुइना रूपा संचीऐ मालु जालु जंजाल।।
सभ जग महि दोही फेरीऐ बिनु नावै सिरि कालु।।
पिंडु पड़ै जीऊ खेलसी बदफैली किआ हालु।।४।।
पुता देखि विगसीऐ नारी सेज भतार।।
चोआ चन्दनु लाईऐ कापड़ रूपु सीगारु।।
खेहू खेह रलाईऐ छोडि चलै घर बारु।।५।।
महर मलूक कहाईऐ राजा राऊ कि खानु।।
चऊधरी राऊ सदाइऐ जलि बलीऐ अभिमान।।
मनमुखि नामु विसारिआ जिउ डवि दधा कानु।।६।।

(सिरी रागु महला १)

इन तुकों को गाते गाते आवाज़ धीमी पड़ गई और अन्तिम तुकें बहुत धीरे से कहकर फिर नेत्र मुँद गये।

अब दिन चढ़ गया, सूर्य ने किरणें छोड़ दीं, वृद्ध जी ने आँखें खोली तो दूसरे वृक्ष के नीचे से एक दास ने आवाज़ दी, ''राय जी! आपका राज्य सदैव बना रहे, एक काज़ी जी लाहौर से आये हैं।'' राय ने संकेत करके कहा-'ले आओ'। वृद्ध अपनी चौकी से थोड़ा पीछे हट गये, तलवार तथा माला दोनों तकिये के पास कर दीं और इस स्थान पर काज़ी को चौकी पर बिठाया। पहली कुशलता तथा आशीर्वाद के पश्चात् काज़ी ने कहा, ''राय जी! तुम्हारा पिता रायभोइ बड़ा तगड़ा योद्धा था, उसने इस तलवण्डी का निर्माण किया था और आसपास के सारे इलाकों पर विजय प्राप्त कर ली थी। यहाँ तक कि अनेक ग्रामों को साथ मिलाकर इस परगने को बड़ा किया था, पर आप कुछ ऐसे सतोगुणी हुए हैं कि दो तीन इलाके हाथ से निकल भी गये, पर कोई चिन्ता नहीं की। यह आधी रात तक ऊजड़ में बैठकर आप क्या करते रहते हैं? फिर हिन्दुओं के बनाये हुये गीत गाते हो शरद (मुसलमानी धर्म) की पहचान ही नहीं करते। कहाँ पर रायभोइ जिन्होंने पिंडी भट्टियाँ से निकलकर बढ़ते बढ़ते, इलाके पर इलाका मारकर अपनी तलवण्डी स्थापित कर ली? कहाँ पर उसी तलवण्डी के कुछ इलाके कुछ बाबा चाचा के रिश्ते वाले भट्टियों ने हाथ पाँव मारकर ले लिये और कुछ पड़ोसियों के हाथ चढ़ गये। अब के अन्तिम युद्ध में तलवण्डी भी हाथ से चली थी, भला हो आके ढाढी का[1], जिसने राजभाग बचा लिया। मैंने सुना है कि जिस समय आपकी पराजय होने लगी तब नमक हलाल

---

१. उस समय हरेक रईस के पास ढाढी हुआ करते थे तो वारें (यश के गीत) बनाते, गाते तथा कुल के अंगपाल हुआ करते थे। उस समय युद्ध में हारने वाला पक्ष यदि दूसरे जीतने वाले पक्ष को 'राठ' मान लेता, तो वे अपनी जीत समझकर युद्ध बन्द कर देते थे और इसे भारी गौरव समझते थे। रायबुलार के ढाढी ने जब मचे हुए युद्ध में कह दिया कि 'हे राठो ! मैं कहता था आज अपशगुन है, आज मत लड़िये। राय कहता था नहीं। अब बताइये मेरा वचन असत्य हुआ कि राय का'। यह सुनकर अपनी विजय समझकर, वे शत्रु युद्ध-भूमि को छोड़कर चले गये ।

ढाढी ने आगे बढ़कर शत्रुओं के मन का चारा डालकर काम निकाल लिया और राज्य बचा लिया।[१]''

मैंने धृष्टता से कहा है, पर यह भी प्यार के कारण। हाँ, अभी आप उन्हीं भ्रमों में पड़े हुए हैं। निकटवर्ती खरल (एक राजपूत जाति) फिर फिर षड्यन्त्र रच रहे हैं कि राय बुलार को छीन लें। कुछ तो आप तैयारी कर रखिये, मैं आपके पिता का साथी होने के नाते आज आगे को जाता हुआ, यहाँ पर ठहरा हूँ। यदि आप कहें तो आपकी कुछ सहायता लाहौर से करवा दूँ?

रायबुलार – आपने बड़ी कृपा की है, पर यह मेरे वश में नहीं। परमेश्वर ने पिता जी में वीर रस भरा था। मुझ में वेराग भरा है। अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही तो चलना है न। मैं राज्य का द्रोही नहीं हूँ, पर मुझसे सेना चढाकर निर्दोष प्रजा को सताया नहीं जाता। हाँ, जब दूसरे लोग मुझ निर्दोष पर चढ़कर आते हैं, तब मैं अपनी प्रजा की पूर्ण रक्षा करता हूँ, कोई कमी शेष नहीं रखता। जीत हार परमेश्वर के हाथ में है। आप देख लीजिए कि चाहे एक दो बार हार भी हुई, पर मैं अपनी प्रजा को लूटमार से बचा लेता रहा हूँ और वैसे मुझे यही दीखता है कि रायभोएि की सन्तान 'बाघ बच्चा' के निकट जाकर बसेगी और यह तलवण्डी एक बार ऊजड़ होकर फिर बसेगी और उस पिता के नाम से जिसने ज़ोर धक्के से इसे बसाया था, वह टूटकर उस पवित्र[२] नाम से फिर बसेगी, संसार को प्यार से जीतेगा जिसकी दृष्टि में हिन्दू मुसलमान की शत्रुता नहीं, पर दो आँखों की भाँति दोनों के साथ प्रेम है। जिसने मुझे अपना धर्म तथा कर्तव्य पालन के अतिरिक्त उस भारी पातशाह को विजय करना सिखाया है, जिसके लिये आठों पहर रणभूमि गर्म रहती है। अमृत वेला में युद्ध में व्यस्त होकर प्रत्येक दिन नया कोट जीता जाता है और जिसके विजय होने पर इस संसार के झगड़े से सदैव के लिये तथा दुख-सुख के प्रभाव, हर्ष शोक से जीवित ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। काज़ी जी! आपने अच्छा किया, पर यदि मेरा कहा मानिए, तब इस बात का विचार भी कीजिए :-

सऊ मणु हसती घिऊ गुडु खावै पंजि सै दाणा खाइ।।
डंकै फूकै खेह उडावै साहि गइऔ पछुताइ।।
अंधी फूकि मूई देवानी।
खसम मिटी फिर भानी।
अधु गुला चिड़ी का चुगणु गैणि चड़ी बिललाइ।।
खसमै भावै ओहा चंगी जि करे खुदाइ खुदाइ।।

---

१. प्रस्तुत तुकें राय बुलार की वार में से हैं, जो कि एक बहुत पुरानी वस्तु हैं –
"वार कुवार न जाणदा रायबुलारा अंना ।।
कुझ मारी बाबाणीआं कुझ वारी दिआं बंना ।
दसों राठो राणियों मैं भंना (भागा) कि राय भंना ।।
यह सुनकर शत्रुओं को ठण्ड पड़ गई कि हमारी जीत मानी गई है और शत्रु के ढाढी ने हमें 'राठ' की उपाधि दे दी है। अब युद्ध की क्या आवश्यकता है, अत: वे चले गये ।

२. यह तलवण्डी उजड़ी और फिर आबाद हुई । अब इसे ननकाणा साहब कहते हैं ।

सकता सीहु मारे सै मिरिआ सभ पिछै पै खाइ।।
होइ सताणा घुरै न मावै साहि गइऔ पछुताइ।।
अंधा किसनो बुकि सुणावै।।
खममै मूलि न भावै।।
अक सिऊ प्रीति कर अकतिडा अक डाली बहि खाइ।।
खसमै भावै ओहो चंगा जि करे खुदाइ खुदाइ।।
नानक दुनीआ चारि दिहाड़े सुखि कीतै दुखु होई।।
गला वाले हैनि घणेरे छडि न सकै कोई।।
मखी मिठै मरणा।।
जिन तू रखहि तिन नेड़ि न आवै तिन भऊ सागरु तरणा।।२।।

(मलार वार महला १)

काज़ी – इसीलिये तो मैं कहता हूँ कि आप दुर्बल हो गए हैं।

राय – काज़ी साहब! इसीलिए तो मैं परमेश्वर से माँगता हूँ कि वह मुझे ऐसा बल दे कि मैं अपना प्रजा के लिये अपने सारे सुख को न्योछावर कर दूँ। इससे मेरा अभिप्राय यह तो नहीं कि राज्य त्याग करके टुकड़े माँगू, पर अहंकार में मस्त और परमेश्वर को भूले हुए राजा की अपेक्षा गुदड़ी में बैठा हुआ खुदा का प्यारा और परमेश्वर का भक्त अच्छा है। वैसे ही मैं चाहता हूँ कि मैं राज्य को छोड़कर कहीं चला तो न जाऊँ, पर परमेश्वर के प्यार में रहूँ, जन्म का लाभ प्राप्त करूँ और प्रजा–पालन तथा रक्षा के धर्म को पूरा निभाऊँ। आप कृपा करके मुझे बताइए कि मैंने अमुक फर्ज़ पूरा नहीं किया, तब मैं और यत्न करूँ और प्रार्थना करूँ कि ईश्वर मुझे सेवा के लिये और बल प्रदान करे; श्री परमेश्वर जी मुझसे अपनी इच्छा स्वयं पूरी करवा लेने की देन प्रदान करें, आगे प्रजा के भाग्य!

काज़ी – आपके प्रजा पालक तथा प्रजा रक्षक होने में तो कोई कसर नहीं पर हिन्दू फकीर को सीस झुकाने और अपने घर के ही एक 'कालू' नामक महतो के पुत्र को गुरू मानने के कारण भारी दुख होता है। आपने अभी कहा है कि तलवण्डी से रायभोइ का नाम मिटकर उस हिन्दू फकीर का नाम पड़ जायेगा। क्षमा करना, यह बात अच्छी नहीं।

राय बुलार (नैन सजल हो गये) – काज़ी जी! मैं क्षमा करता हूँ कि आप श्रद्धा तथा प्रेम के अभाव के कारण नग्न सत्य को नहीं देख सकते। वह हिन्दू फकीर नहीं है, वह ईश्वरीय सौन्दर्य और जो कुछ मैंने कहा है कि तलवण्डी उनके नाम पर बसेगी, यह ईश्वर की आज्ञा है किसी का कोई ज़ोर नहीं और मैं बहस करना नहीं जानता, पर उस प्यार के कारण जो मेरा प्रत्येक जीव के साथ है, मैं चाहता हूँ कि आप एक बार दर्शन कर लें, जिससे आपको भी शीतलता प्राप्त हो।

यह सुनकर काज़ी ने समझ लिया कि यहाँ पर तो प्रेम ने कसकर तनाव ताना है। मैं पहले ही बढ़कर बातें कह चुका हूँ, कहीं कुछ ज्यादा 'अच्छी न लगने वाली' बात कह बैठूँ। इस धरती का राजा है, कहीं क्रोध में आकर मार ही न डाले। यद्यपि साधु स्वभाव का है, पर राजाओं के स्वभाव का क्या भरोसा? पल में तोला पल में मासा। यह सोचकर काज़ी दो चार इधर–उधर की बातें कहकर विदा हो गया।

उधर राय जी ने एक दास को मेहता कालू की ओर भेजा और आप उसी वैराग्य में बहने लगा, जो उसे गुरू नानक के प्रेम में विह्वल कर लिया करता था। उसके हृदय के प्रेम के वियोग की कुछ झलक इस गीत[1] में अंकित है :-

वृक्ष है नदी तीर,
नीर मारता है ठाठें,
नीचे है कटन लगी,
ढह-ढहकर गिरते कगार।
उछलता है सरिता जल,
भँवर पड़ रहे अनेक,
चक्कर हैं करारे खाते।
ऋतुओं का खाया वृक्ष
काँप काँप उठता है,
पत्ते सूख पीले हुए,
टहनियाँ भी झुर रही हैं;
बीत चुकी मधु ऋतु
साथ बीती मधु-वात
बीता है ग्रीष्म तीखा
वर्षा की उमंग बीती।
रस रूप रंग उड़े
छाया है कुम्हलाना।
जा रही जवानी।
जरा पंख निज फैला रहा।
बेचारे वृक्ष पर है
ऐसी कुछ उदासी छाई
आशाएँ निराश हुई
हारे सब उल्लास।
कहाँ वह किशोरवय
कहाँ यह बुढ़ापा अब
कहाँ वह यौवन के
राग रंग मस्ती सब।
'आगा' अति निकट आया,
'पीछा' बहुत दूर हुआ
बीर रहा दिवस
रात आने का इशारा करती।

---

१. यहाँ पर पंजाबी गीत का सरल हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है।

बीता सो बीत गया
टलता नहीं भविष्य।
फिर क्यों पुकारता है यह
नदी तीर वाला वृक्ष।
प्यारा था प्यार भरा
करता था प्यार आप।
तरसता है दर्शन को
गिरने से पूर्व वृक्ष।
प्यारा विदेश फिरता,
लौटता नहीं है इधर।
लालसा लगी है यही
मुख दीख जाय बस।
तरसता हूँ चाह लिये
अन्तर में आह लिये
आशा यह अथाह लिये
आवें कहीं प्यारे।
बूढ़ा हूँ, दीन बुरा,
अवगुण की खान सारा,
पुण्य कर्म नहीं किया
इससे मैं मान रहितु
काहिल वह राजा हूँ।
खाता जो प्रजा का अन्न।
मेरा तो नसीब नहीं
मुझे कौदों दूध मिले
किया नहीं जाप कोई
करनी क्या करूँगा भला?
मेरी यह हीन आत्मा
तड़पती है दिन रात
मिल जाओ कैसे ही
मुझको हे दुलारे।
फिरता हूँ बन बन
ढूँढता हूँ कण कण
खोजता हूँ सारे मार्ग
आवें कहीं प्यारे।
लालसा से खोज बढ़ी
खोज से है बढ़ी इच्छा

बीतते हैं दिन रात
बस इच्छा खोज ही में।
आओ हे प्यारे गुर
दर्शन दो आकर के।
आओ तुम किसी के लिए,
धारण कर कृपा को आओ।
दुनियां से जाने की यात्रा है आई मुझे
इससे तुम पहले ही प्रभु के सँवारे आओ।

रोकता हूँ रिक्त नयन
झरता है बरबस नीर
आया नीर रोका फिर
रुकता कब? जोश भरा
तरसता हूँ हाय हेय!
मेरा यह तरसना तो
गहरा और होता है।
रोता हूँ दर्शन को
आकर के तारो तुम
आओ हे त्राण कर्ता
राखो, गुरू प्यारे।
नानक गुरू प्यारे।
नानक प्रभु प्यारे।

मेरा हियाव काँपे
थर थर करे कलेजा।
बीती हे रैन सारी
तारे उमर के लटके।
मुझको नहीं है आशा
यदि कर्म पर हो निर्णय,
यदि हो गुणों पे निर्णय
तब है जगह कहाँ फिर
दीनोदुनी में मुझको।

अवगुण का पुञ्ज हूँ मैं
पर्वत हूँ पाप का मैं
फिर भी कृपा करो तुम
अवगुण न मेरे देखो।

सपने में देखता हूँ,
लगता है आ गये तुम।

जगता हूँ चौंककर तो
रोता तुम्हें न पाकर।
पक्षी बनों से बोले
देते हैं यह सन्देसा
प्यारा स्वदेश आता
लोगो करो तैयारी
प्यारा न देश आता
टूटा समय है जाता
जाती है टूटी आशा
है भाग्य क्या अनोखा?
खुशियों से जगमगाते
निशि में चढ़े ये तारे
पाते हैं तेरा दर्शन
ऊँचे खड़े हैं सारे
मेरा निवास नीचे
मैं हूँ स्वयं भी नीचा
कैसे निहार पाऊँ
तुम दूर बहुत मुझसे
तारो! तुम्हीं सन्देसा
लेकर गुरू से कहना
बुड्ढ़ा तरस रहा है
बस दर्शनों की खातिर
कुकरी सा कूकता है,
बिछुड़ी जो डाल से हो,
जो पंख से रहित है
है मन्द भाग जिसका
ऐसे गरीब पर तो
जल्दी कृपा करो तुम
तुम दौड़ करके जाओ
पावन वो द्वार कर दो
मीठी ये हवा आती
सूनी सुलक्षिणी ये
प्यारे की गन्ध इसमें
लेती नहीं हुलारे
भीनी है ओस पड़ती
पर रात है न भीगी

प्यारा विदेश बैठा
विरहाग्नि जल रही है
गाता जो राग कोई
जगता भुजंग–विरहा
फुंकारता है रह–रह
जाता नहीं पिंटारी
ऐसा जो कोई होवे
होवें जहाँ गुरू जी
जाकर कहे वहाँ ही
जाओ स्वदेश प्यारे
मेरा यों दर्द मेरे
मुझको जो कुछ पता हो
हो किस विदेश में तुम
तो मैं संदेशा भेजूँ
आओ मिलो पियारे
मुझको न कुछ पता है
आती न बात कोई
कोई न पेश चलती
सारे उपाय हारे
बेआसरे सहारे
है सूझता नहीं कुछ
हो दीन सब तरह मैं
तव–द्वार पर हूँ गिरता
दो दान यह हे प्यारे
दर्शन की भीख दे दो
भिक्षा मिलन की डालो
वारी मैं जाऊँ तुम पर
तुम जानते हो सब कुछ
जो बीतती है मुझ पर
गुरू जी किसी के सदके
दर्शन दो दास को तुम।

दूर–दूर पीलु के वृक्षों के नीचे, राय के जो अंगरक्षक, सवेर से बैठे हुए पहरा दे रहे थे, उनके स्थान पर अब दूसरे नौकर आ गये और वे गाँव की ओर चले गये। इतने में मेहता कालू भी राय के पास आ पहुँचा। बड़े आदर से राय ने बैठाया और बड़े वैराग्य से पूछा, 'मेहता! कोई समाचार दे, हमारे जगत के सूर्य, अभी इस कठोर धरती को दर्शन देते हैं, कि नहीं'?

मेहता – राय जी! क्या बताऊँ! कोई सूचना नहीं। मैं तो व्याकुल हो रहा हूँ। आयु ढल रही है, तरसने वालों के घर में एक ही पुत्र हुआ, वह परिवार को छोड़कर उदासी होकर फिरता है। दो-चार बार उड़ती-उड़ती बात कानों में पड़ी है, पर पक्की बात कोई नहीं। कुछ पता ही नहीं कि कहाँ गये। कह गये थे कि इधर निकटवर्ती इलाके में ही फिरूँगा। हमें कुछ पता नहीं चलता, कि इतनी कठिन यात्राएँ करके क्या करते-फिरते हैं? हम अब बुड्ढे हो गये हैं और उनका शरीर भी अब अच्छी अवस्था का हो रहा है, पर अभी फिरते-ही-फिरते हैं। उनकी माता तो लालसा ही करती रह जाती है कि अब की बार यदि पुत्र जन्मदिन पर आयेगा तो मैं अपनी चाह पूरी करूँगी, पर प्रतीक्षा में ही सौभाग्य का दिन व्यतीत हो जाता है।

रायबुलार – उनके धन्य भाग्य हैं, जिनके गृह में उन्होंने अवतार धारण किया; जिनके दर्शन से पापों का अंधकार दूर होता है। मेहता कालू! दर्शन की लालसा तो हमें भी तुम्हारी ही तरह रहती है, पर हमारा कोई अधिकार नहीं हमें नाते-रिश्ते का तो कोई मान नहीं, कोई जाति और न जाति-बिरादरी का ही ज़ोर हैं। हाँ, केवल उनकी दया की ही एक टेक है। हम अब वृद्ध हैं, मृत्यु का कोई निश्चित समय नहीं, हमारी इच्छा है कि उनके दर्शन प्राप्त हों, पर यदि उनकी प्रसन्नता इसी में है तो हमारा कोई ज़ोर नहीं।

यह कहते हुए नीचे उतरते हुए नेत्रों में जल भर आया और इस प्रकार के वाक्य मुँह से निकले :-

हमें[१] माया की छाया से दूर करना,
और अपना एक प्रेम हृदय में भरना।
हमें एक प्यार करना, और एक प्यार लेना,
दूसरी आशा को बाहर मार देना।
एक तू ही हो ओर हम नहीं हों।
तेरे बिना तो हमारी सुगंधि तक न रहे।

हे मेहता जी! मैं उन्हें क्या समझाऊँ? सूर्य मण्डल पर क्या ज्योति जलाऊँ? मेरे अंदर तो अहम का भूत है, जो उनका असली रूप देखने नहीं देता। पवित्र आत्माएँ जब संसार में आती हैं, तब अपनी अहम का परदा, सवार्थता का अंधकार, आपे का प्यार हमें उनके सच्चे दर्शनों से परे पर देता है। हम मरे हुए महात्माओं के समाचार सुनकर रोते हैं, जो उच्च आत्माएँ हमारे रिश्तेदार, हमारे मित्र, हमारे सज्जन बनकर हमारे बीच निवास करती हैं और हमारा भला करती हैं हम उनकी कद्र नहीं करते। हाँ, अनजाने ही अपने रचे अवगुणों को उनके गुणों से भरे सरोवरों में डालकर प्यासे रहकर ही आयु व्यतीत कर लेते हैं।

मेहता जी! यह पुत्र नहीं है, यह ईश्वर का सौंदर्य है। इसके दर्शन के लिए लालसा करना परम पुण्य है; इसकी लालसा में हृदय का तड़पना सौ पुण्यों का पुण्य है, इसकी स्तृति लाभों का लाभ है। प्यार का आकर्षण तथा स्मृति की डोरी से हमारा मन उनकी आत्मिक झलक के साथ निर्मल होता जाता है। उन्होंने श्री निरंकार का दर्शन प्राप्त किया है; उनकी आज्ञा का पालन करने से और उनके साथ प्यार करने से निरंकार का दर्शन होता है।

---

१. यहाँ पर अनुवाद प्रस्तुत है ।

मेहता – राय जी! हम मोह के मारे पुत्र-पुत्र करते हैं। इसी मोह ने हमें मार डाला। तुम्हारे कहने पर कई बार होश करते हैं, पर फिर मोह आकर घेरा डालता है कि हाय! पुत्र का सुख न देखा। मन भर कर बातें न कीं । पुत्र का धूमधाम से बसा हुआ घर न देखा, हम क्या जगत में आए?

राय – मेहता जी, इस मोह को प्रेम बनाओ और पुत्र की आत्म-ज्योति की झलक का दर्शन करो, जो सत्यलोक से मातृभूमि तक ब्रह्मण्ड को बसा रहा है अच्छा, यह बताओ कि कहीं से कोई सूचना मिली कि नहीं? मैं तो आज बहुत ही व्याकुल हो रहा हूँ, रात को सपने में मुझे दर्शन हुए हैं। (यह कहकर वृद्ध प्रेमी के नेत्रों में फिर जल आ गया)।

मेहता (नेत्र भरकर) बिटिया का संदेश आया है, वह आजकल जैराम जी को साथ लेकर आने वाली है। यह एक चिन्ह है कि न जाने आते ही हों। राय जी! परिवार में से बिटिया ने उनकी वास्तविकता को पहचाना है, उसके साथ वचन भी हुआ है कि जब स्मरण करके प्रार्थना करोगे, हम आ जाया करेंगे।

राय – शुक्र! प्यारे के प्रेमियों के दर्शन ही सही। बिटिया क्यों प्यार न करे? मेहता जी! जन्म सफल कर लो, बड़ा अमूल्य समय हैं 'नानक' को पुत्र मत समझो, वह तो प्रेम ने मानों रूप धारण किया है। हरेक के साथ उसका प्रेम है, उसका मन्त्र प्रेम है उसका तप प्रेम है। वैर को प्रेम द्वारा पराजित करता है। इसीलिए सारे जगत में फिरता है कि वैर को प्रेम से जीत ले। उसका रूप प्रेम है, उसका काम प्रेम है, उसकी याद प्रेम है, उसकी सेवा प्रेम है, उसका शिष्यत्व प्रेम है, उसकी साधना प्रेम है, उसकी याद प्रेम हैं। मेहता जी, इस तरह का पुत्र प्राप्त करके, मोह-ममता को मिटाकर उसकी वास्तविकता की पहचान कर लो। फिर (नेत्र सजल करके) हे कर्तार! तेरी रचना।

इतने में एक टट्टू गाड़ी की आवाज़ पीछे की पगडंडी की ओर से आई, प्रेम विह्वल वृद्ध राय ने-जो अब इस संसार से अपना विछोह बहुत निकट का ही विषय समझता था-पीछे देखा। दूर से तीव्र खोज वाली, वृद्ध आँखों ने जब देखा तो घोड़ी पर भाई जैराम जी आते हुए दिखाई पड़े। यह देखकर परगने का राजा, पर प्रेम विनम्र वृद्ध रायबुलार, चौकी पर से खड़ा हो गया। उधर जैराम ने देखा, झट नीचे उतरकर आगे बड़ा और बारी-बारी राय जी तथा मेहता जी के चरणों पर झुका। नानकी भी गाड़ी से उतरी। राय जी ने चिल्लाकर कहा-नानकी! तू हमारी बिटिया है। हमारे पूज्य की दीदी है, हमारी भी पूज्य है, गाड़ी पर बैठी रह'। पर दीदी तो रायबुलार को भाई का सच्चा अनुयायी समझती थी, वह इतने प्रेमी का आदर करने से कैसे चूक सकती थी। विह्वल होकर गाड़ी से उतरी और पिता तथा स्वामी की ओर चली आईं और प्रेम की विह्वलता से चीखकर पूछा, 'भैया आये हैं कि नहीं?' यह कहकर भाई के प्रेम में खिंची हुई पिता की ओर झुकी, पर बहुत शीघ्रता से मेहता ने थाम लिया और कण्ठ से लगा लिया और उसकी अपनी चीख निकल गई। 'बिटिया। मुझ माया में फँसे हुए को उस ईश्वर के सौंदर्य के दर्शन कहाँ?' इस समय राय ने नानकी के चरणों की ओर अपना सीस झुकाया ओर विह्वल होकर गाने लगा :-

आवहु सजणा हऊ देखा दरसनु तेरा राम।।
घरि आपनड़ै खड़ी तका मैं मन चाऊ घनेरा राम।।(सूही महला १)

नानकी से उस पुरुष की जिसे गुरू नानक जी आदर दिया करते थे और वृद्ध समझकर सम्मान करते थे, यह नम्रता सहन न हो सही; उसका सीस झुकता हुआ देखकर नानकी किस तरह सहन करे? चौंककर दूर हट गई और नैनों से जल बहाते हुए करबद्ध कहने लगी- राय जी! मैं तो आपकी बिटिया हूँ, आप हमारे पिता हैं।

नानकी यहाँ पर किस लालसा से आई है? अनेकों वर्ष व्यतीत हो चूके हैं, नानकी कभी भी भाई के जन्मदिन पर आमंत्रित होकर नहीं आई, कभी भी तब गुरू जी घर पर नहीं होते थे। अब एक रात सपने में क्या देखा कि तलवण्डी में मायके में भाई के जन्मदिन का समारोह हो रहा है। सपना इतने गहरे प्रभाव का था कि नानकी सुलतानपुर से चल पड़ी और मार्ग में चाह तथा आशा बढ़ती गई कि भाई आया हुआ बैठा होगा, पर यहाँ पर आते ही भाई के प्रेमियों को अपनी भाँति व्याकुल देखा। जिस तरह वे वैराग्य कर रहे थे, नानकी भी उनके साथ वैराग्य में मिल बैठी। राय जी का सपना भी सुना कि गुरू जी तलवण्डी में आये हैं। अपनी माता की व्याकुलता भी सुनी और आज पहला दिन था जब कि पिता की आत्मा में भी पूर्ण प्यार की झलक देखी। अब तो नानकी का हृदय और भी उमड़ पड़ा कि भाई आ जाएँ और पिता जी की वृद्धावस्था का कल्याण हो जाए तो कितना आनन्द प्राप्त हो? मन-ही-मन में निश्चय भरी विनती करने लगी कि हे संसार तारक भैया जी! अवश्य ही दर्शन दीजिये।

अब धूप काफ़ी चढ़ चुकी थी, राय जी ने कहा-मेहता जी! बिटिया जी तथा जैराम जी को घर पर ले चलो, यात्रा के कारण थके हुए हैं। मैंने तो अपने भ्रम के कारण इन्हें मार्ग में ही रोक लिया है। वेराग करते हुए राय जी से विदा होकर सभी घर पर आये। आँगन में से माँ दौड़ती हुई आई, बिटिया को देखकर चीखें निकल गईं और गले से लगाकर इतना रोई कि अड़ोस पड़ोस वाले देखने के लिये आ गये। बेटी के कण्ठ से लगी हुई माता तृप्ता पुत्र के दर्शन की लालसा से मरुभूमि की भाँति अतृप्त तथा दर्शन की प्यास से प्यासी ऐसा वैराग्य करने लगी कि पत्थर हृदय भी पसीज गये। निम्नलिखित गीत[१] से उस वैराग्य की कुछ सूझ पड़ जाती है :-

मैं तो पुत्र-पुत्र करती हूँ, पर मेरे पुत्र ने बड़ा चित किया है। मैं उठ-उठकर मार्गों को देखती हूँ और अपरिचित मित्रों से पूछती हूँ। अरी भाई की प्यारी, बिटिया! अरी आप आने वाले भाई को लाने वाली बिटिया!

मेरे अंदर अग्नि धधक रही है और मैं उसकी लालसा कर-करके चूर हो गई हूँ। मैं लालसा करती हूँ कि पुत्र आये, पर वह दूर होता जाता है।

अरी भाई की प्यारी सँवारी हुई बिटिया! मुझे कह दे कि तेरा भाई भी आ रहा है।

कोई सपने में कहता है कि तेरा पुत्र चला आ रहा है, मैं आँखें उठा-उठाकर देखती हूँ पर मुझे पुत्र दिखाई नहीं देता।

अरी भैया की प्यारी, सँवारी हुई बिटिया! अरी तेरे कदम शुभ हैं, कहीं तेरा भाई भी आये।

रोती-रोती का कण्ठ भर आया, आवाज रुक गई। बेटी के गले से चिपटी हुई पुत्र के

---

१. यहाँ पर अनुवाद प्रस्तुत है ।

वियोग में तार बँध गया। फिर तनिक-सा कण्ठ खुला, फिर वेराग करने लग पड़ी, जिसका कुछ भाव यों समझ में पड़ता है :-

संसार अंधा अँधेरा दिखाई देता है जब पुत्र आँखों से ओझल होता है। पुत्र के ओझल होने से महल मिट्टी के ढेर और रिक्त खंडहर से दिखाई पड़ते हैं। यदि बीच में पुत्र न हो तो बाग़ भी जलते हुए दिखाई देते हैं, मधुर राग काहे के हैं जब माता अश्रु बहाती हो। जिसका पुत्र विदेश को चल दिया है और माँ को कोई खबर न आये तो वह माँ या तो जीवित ही मर गई या वह बावली हो गई। माँ तब जीवित रहती है जब पुत्र आँगन में दिखाई दे पुत्र ने पीठ दिखा दी है और माँ फफोले की भाँति फटे। वह माँ मर जाती है जो पुत्र को वर्षों तक नहीं देखती। वह पुत्र से मिलने की भूल में पड़कर मछली की भाँति तड़पती है। मैं पुत्र के योग्य नहीं थी, पुत्र ईश्वरीय सौंदर्य था। मेरे नैनों को सदैव सौंदर्य का वियोग रहता है। भाई की प्यारी बहन आज घर के आँगन में आई है, वह अपने साथ कौन-सा सुख का संदेश लाई है? जैसे भाई से पहले इसने जन्म लिया था, इसी तरह भाई से पहले दर्शन देने के लिये आई है।

यह कहती हुई, बेटी को दबाती-दबाती बेहोश हो गई। नानकी का हृदय अति द्रवित होकर एकरस प्रार्थना में लग गया, ध्यान में भाई गुरू के दर्शन हुए, प्रकाश का एक गोलाकार दमक रहा है, फिर सुरत का पालना लटक रहा है और शब्द की रस्सियों से झूल रहा है, उसके ऊपर भाई विराजमान हो रहे हैं। गले में कपड़ा डालकर करबद्ध होकर ध्यानमग्न होकर बहन ने कुछ यों प्रार्थना की :-

हे भैया! अब दया धारण करो, हमें आकर दर्शन दो। हाँ, हम तुम से भेंट करने के लिये विलाप कर रहे हैं आओ और हमारे दुख दूर करो। माँ रो-रोकर विरह का रूप हो गई है। तुम प्यार के विरद वाले हो और लालसा से हृदय को धो दिया है। अब माता-पिता वृद्ध हो गये हैं, आयु का कोई भरोसा नहीं। आकर उद्धार करो और पार लगा दो, श्वासों का कोई भरोसा नहीं। अपनी कृपा करके आना और सबका उद्धार करना, गुरूमुख तो छत्तीस कुल का उद्धार करते हैं, आपने तो जगत का निस्तार किया है।

यों प्रार्थना करती हुई नानकी को अपने प्यारे भाई की चेहरे पर एक मुस्कराहट-सी दिखाई पड़ी, धन्यवाद करती हुई ने नैन खोल दिये और माता के गले से लगकर यों कहने लगी :-

हे माँ अब विरह दूर कर, भाई आ रहे हैं। हमारी ओर चल पड़े हैं और इधर को चरण रख रहे हैं। वे प्रेम के विरद का पालन करते हैं, प्रेम को तो तोड़ना नहीं जानते। वे प्रेम की आवाज़ लगा रहे हैं और प्रेम का बाग़ लगा रहे हैं पर हे माता! दया कर, मोह का त्याग कर, मेरे भाई के साथ प्रेम कर। तू यह जान ले कि वे सौंदर्य है मोह के बाण को दूर कर दे। उसे यदि पहचानेगी तो आपको और भगवंत को पहचानेगी । फिर तू संसार से पार हो जायेगी और आदि से अंत तक को जीत लेगी।

इस तरह के वैराग्य तथा धैर्य के पश्चात् माँ बेटी दोनों अंदर गईं और दासी ने भोजन तैयार किया। नानकी ने माँ को बहुत, धैर्य दिया पर क्या देखती है कि दिन में उठते-बैठते समय अनेकों बार नैन भर लाती है ओर 'हाय लाल!' कभी 'हाय गुरू'; कभी 'हाय नानक'

कहकर विरह करती है। किसी-किसी समय वृद्ध पिता जी को उदास तथा नि:श्वास भरते हुए देखती है-'ऐसे पुत्र के होते हुए जिसे संसार, गुरू कहता है, हम अभागे ही चले जा रहे है।'

बहन का स्नेह कुछ ऐसा था कि जब कभी उसके मुँह से निकल जाता कि भैया आ रहे हैं, तब परिवार को भरोसा हो जाता था कि गुरू जी आ रहे हैं। अब जन्मदिन निकट था, इसलिये परिवार को ख्याल हो गया था कि गुरू जी अबके इस सौभाग्यशाली दिन को घर पर ही होंगे। माता, पुत्र के प्यार में तैयारी करने लगी, प्रेम-भरी बिटिया भी साथ लग गई। नानकी को ध्यान सिद्धि थी, इसलिए उन्हें अपने दर्शन में उनके आने की याचना पर मुस्कराहट वाला चेहरा सदैव दिखता था और भरोसा था कि भैया विरह का पालन करेंगे।

इस दिन के दो-चार दिन पश्चात, राय जी उसी तरह वन में भजन में मग्न बैठे हैं, पर आज धरती पर बैठे हैं, भाई सजादा रबाब बजा रहा है और गुरू जी के शब्द गा रहा है। भाई जैराम तथा बहन नानकी जी को पता था कि आज गुरू जी की वाणी का कीर्तन होगा, उन्हें तो आना ही था, इस कारण मेहता कालू जी तथा माता तृप्ता जी भी आए हुए हैं। यह सारे व्यक्ति कीर्तन सुनते रहे। जब समाप्ति हुई तब फिर गुरू जी के दर्शन का वैराग्य चल पडा। राय बुलार यद्यपि राजा था और मेहता उसका कारिंदा था, तथापि गुरू जी के प्रेम के कारण ऐसा प्यार हो चुका था कि सत्संग में कोई बड़े-छोटे का विचार या कोई स्वामित्व अथवा नौकरी का परदा बीच में नहीं था, मानो एक ही पवित्र सिक्ख मत वाले प्रेम में बैठा शब्द का बेधा हुआ उस शब्द के रसदाता गुरू के प्रेम में एक हो रहा है। समाप्ति हो जाने पर वृद्ध राय ने नेत्र खोले, आकाश की ओर देखा और कहा-

पबर तूं हरी आवला कवला कंचन वंनि।।
कै दोखड़ै सड़िओहि काली होईआ देहुरी नानक मै तनि भंगु।।
जाणा पाणी न लहाँ जै सेती मेरा संगु।।
जितु डिठै तनु परफुड़ै चड़ै चवगणि वंनु।।३०।। (वारां ते वधीक महला १)

नानकी बिटिया! हमारे ईश्वर के प्यारे अभी तक नहीं आये बिटिया ! सच्च बता कि मुझे अंतिम समय से पूर्व दर्शन प्राप्त हो जायेंगे, क्या?

नानकी - (नेत्र सजल करके) सत्कार योग्य पिता जी! उनके द्वार से भरोसा नही तोड़ना चाहिये। वे विरद के पालने वाले हैं, अवश्य करेंगे। उनका जन्मदिन निकट है, इसलिये शीघ्र ही आशायें पूरी होंगी।

राय जी - सच्च है, आदर योग्य पूजनीय पुत्री! वे अवश्य ही पहुँचेगे। जन्मदिन! श्री निरंकार जी! मैं भूल गया, जन्मदिन! तो तुम कह सकते हो, जिन्हें संबंधी होने का अधिकार है, मुझे तो सिक्ख होने की लालसा है, मैं, मैं कैसे यह कहूँ? मैं तो यह कहूँ कि मेरे सच्चे गुरू का मीलाद शरीफ (पर्व दिन) कब है, या यह कि ईश्वरीय सौंदर्य के प्रकट होने का शुभ दिन कौन सा है?

नानकी - सम्मान योग्य पिता जी! सत्य है। हम भी शिष्यत्व के इच्छुक हैं, चाहे वह रिश्तेदारी की माया भले ही रहे, पर उसे विजय करना है। प्यारे गुरू जी पर्व के दिन में-पिता जी! कोई आठ दिन और रहते हैं। यह बात अभी मुँह में ही थी कि दूर से दो मूर्तियों के आने की झलक पड़ी। सब की आँखें उधर उठीं, प्यार का आकर्षण बँध गया, कुछ क्षण के पश्चात्

दो प्यारे आ पहुँचे। हाँ, भाई भगीरथ तथा मनसुख जी, श्री गूरु नानक के प्यारे सिक्ख आये। नानकी जी ने उन्हें पहचान लिया, उठ खड़ी हुई, करबद्ध सीस झुकाकर आवाज दी 'ईश्वर रूप भाई के प्यारे देवता! इधर ही आ जाओ।' नानकी जी की प्रेम भी वैरागमय आवाज सुनकर इधर देखने लगे और दूसरे क्षण दंडवत धरती पर गिर पड़े।

बिनु दरसनु कैसे जीवऊ मेरी माई।।
हरि बिनु जीअरा रहि न सकै खिनु सतिगुर बूझ बूझाई।।

(बिलावल महला १)

नानकी जी ने उनके सिर धरती से उठाये और सजल नेत्रों से कहा, हे सच्चे प्रेमियो! हे निष्काम अनन्य भक्त जनो! हमारे मान-त्राण के अधिकारियों पर कृपा करो और बताओ कि भैया कितनी दूरी पर हैं और कब कृपा कर रहे हैं।

भाई भगीरथ - दीदी जी! हम तो दर्शन की आशा लेकर यहाँ पर आये हैं। एक महीने से भाई मनसुख जी और मैं-कहीं बाहर गये हुए थे, वहाँ पर मिलकर सत्संग करके समय अच्छा व्यतीत करते रहे हैं। आज सात दिन हुए कि स्वाभाविक ही हमारी इच्छा हुई कि तलवण्डी चलें और यों लगे जैसे कोई आकृष्ट कर रहा है। दीदी जी! हम तो यह जानकर, कि सतगुरू जी आ गये हैं, सीधे इधर ही आये हैं।

नानकी - अच्छा! तो तुम लाहौर से नहीं आ रहे, कहीं इधर-उधर से आये हो?..... सत्य है, वर्षा होने से पहले प्यारे , झोंके आया करते हैं और वसन्त से पहले मीठी समीर चला करती है। तुम्हारा शुभागमन बताता है कि भाई आ रहे हैं। यह बातें हो रही थीं कि दूसरी पगडंडी की ओर से प्यारे भाई लालो जी निर्धनता और नम्रता अपितु पवित्रता तथा बुजुर्गी की मूर्ति, वहाँ पर आ पहुँचे, यहाँ जंगल में मंगल देखकर तथा दैवी सम्बन्धियों तथा प्रेमियों का दर्शन करके सीस झुकाया और कहने लगे :-

राहु बुरा भीहावला सर डूगर असगाह।।
मैं तनि उवगण झुरि मुई विणु गुण किऊ घरि जाह।।

(दखणी ओअंकार)

भाई लालो का दर्शन करके दूसरे सभी प्रेम तथा वैरागपूरित हो गए। राय जी ने पूछा : आदि के सखा जी! हमारे सतगुरू जी का कोई संदेश बताओ।

भाई जी ने कहा-दीन दयालु! मैंने तो पाठ करते समय महाराज जी का तलवण्डी में दर्शन किया था, इस अनुमान से कि आप आ गए होंगे, पर्व भी समीप है, मैं आ गया हूँ।

नानकी - ओस से भीगी हुई प्यारी शरद ऋतु से पहले कुरीं आती है। रस से भरे हुए आमों से पहले कोयल के दर्शन होतें हैं। प्यारे भैया के आगमन से पहले परमेश्वर जी के संवारे हुए गुरुमुख आ रहे हैं। भैया अवश्य ही आयेंगे।

इस प्रकार कीर्तन तथा वैराग्य, सत्संग तथा विनती करते हुए दिन व्यतीत हो गए। सिक्खों के लिए पर्व का दिन आ गया, परिवार के लिए प्यारे का जन्म दिन आ गया। अपने-अपने प्यार के अनुसार तैयारी हुई। पहला दिन व्यतीत हो गया। रात व्यतीत हो गई,

अमृत वेला आ गई, पर कोई सूचना न मिली। जहाँ पर आजकल सरोवर है[१], यहाँ पर राय जी अमृत वेला में ध्यान मगन हुए। सजादा ने धीमे कोमल स्वर में कीर्तन किया। तीनों सिक्ख और भाई जैराम जी भी आ बैठे। पौ फूटने से पहले नानकी जी, माता जी और मेहता जी भी आ गये। कीर्तन की समाप्ति हो गई। पौ का प्रकाश फैल गया। श्री गुरू जी नहीं पहुँचे। सभी के मन में पक्का भरोसा है कि गुरू जी आ रहे हैं, पर ईश्वर जाने।... दिन चढ़ा सूर्य निकल पड़ा, तीखा हो गया। सभी चुप हैं और सूरत में शब्द पिरोया जा रहा है। सूर्य खूब ऊँचा हो आया तो राय जी ने नेत्र खोलकर कहा, इस सत्संग की किश्ती में मेरी आत्मा बहुत भारी है। मूझे फेंक दो जिससे सबकी किश्ती तैरकर पार हो। मैं राज्य का अंश खाता हूँ, प्रजा का अन्न मेरे अंदर जाता है। गुरू जी आ रहे हैं, पर उन्हें मेरे पाप रोक रहे हैं। उठो मित्रो! बहनो! माताओ! घर जाओ। यह कहकर वैराग में द्रवित हो उठा। फिर कुछ वार्तालाप के पश्चात सभी घरों को चल दिये।

राय तो वहाँ पर ही बैठा रहा और स्मरण करता रहा, मन ध्यान में मग्न और वैराग्य का प्रवाह जारी, मन-ही-मन-आज प्यारे का पर्व है। आज सच्ची प्रसन्नता का दिन है। प्यारे की वाणी का पाठ करना ही प्यारे से भेंट है। संसार से टूटकर प्यारे के गुणों के पुतले के दर्शन में समा जाना ही सच्चा आनन्द है। आज तो एक क्षण-भर भी सुरत किसी अन्य ओर न लगे, मेरा पर्व मनाया जाये। उधर तीनों सिक्ख एक पीलु के वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गये। सुरत नाम में पिरोकर ऐसी ध्यान में मग्न हुई कि यों दिखाई देने लगा कि मानों देह तो है ही नहीं। इतने में नानकी जी घर पर आकर भोजन लेकर वहाँ पर आ गईं, जहाँ पर वे सिक्ख बैठे हुए थे। नानकी जी का प्रेम देखिये- नाम में सुरत में भैया जी, मुँह से धन्यवाद, धन्य तू की ध्वनि और हाथों द्वारा गुरुमुखों के लिए भोजन तैयार किया, स्वयं उठाकर लाईं। सिक्खों ने कहा, दीदी! दासों के सिर पर इतना बोझा! पर प्रेमी बहन ने कहा, मैं तो भैया को भोजन करवा रही हूँ, मेरे प्यारे भैया के सिक्ख उसका स्परूप हैं। तुम्हारे प्रेम में मैं भैया का निवास देखती हूँ।

वे भोजन करते हैं, यह प्रसन्न हो रही है कि आज सच्चे गुरू का पर्व हो गया जो सच्चे सिक्खों की सेवा मेरे हाथों से हो आई। भाई जैराम जी, थोड़ा-सा भोजन पाकर वृक्ष-वृक्ष पर फिर रहे हैं। कभी इस वृक्ष के नीचे नेत्र सजल करके खड़े हो गये, धन्यवाद किया, विनती में लग गये-हे गुरू जी ! मुझ अपराधी के हृदय में नाम का तार बाँध दो। विनती में ही चौंक उठते-'वह आ गये' नेत्र खोलते, फिर सजल करते, फिर दूसरे वृक्ष के नीचे जाकर, ''हे वृक्ष! कभी गुरू जी तेरी छाया में बैठे थे, तेने उनकी पवित्रता प्राप्त की थी, आह! किसी तरह मैं भी स्मृति में पवित्र बनूँ! हे निरंकार! तेरे बिना कुछ भी न दिखाई पड़े, वे आ गये हैं! वे तो मेरे अंदर हैं।'' यों व्याकुल होकर, ''आज तो दर्शन दे दीजिये, दर्शन प्रदान कीजिए।'' ऐसे ही दूसरे वृक्ष के नीचे जाकर बैठते और नेत्र भर-भरकर रोते; यह तो भरोसे वाले सिक्खों तथा प्रेमियों की दशा है, जो पर्व मना रहे हैं।

उधर माता की क्या दशा है जिसे जन्मदिन मनाना है? वस्त्रों का जोड़ा खोलती है, कहती है, ''प्यारे पुत्र, यह तो पहनो। मैंने वर्ष भर लगाकर तैयार किये हैं। हाय! मेरे उतम भाग्य कहाँ! नकारा सीप मोती की खोज करता फिरता है। सीप! तू चूने का है, पुत्र तो 'मोती' था,

---

१. यह सरोवर गुरू संवारे महाराजा कौड़ा मल जी न बनवाया था ।

अत: मोतियों में ही जा बैठा। तू अपनी योग्यता की पहचान कर हाय! खान रोती है कि हीरा आये, हे खान! वह रत्न था और रत्नों की परख करने वालों में जा बैठा। मूल्यांकन करने वालों के पास उसका निवास है। मैं नकारी हूँ।'' यह कहकर रोने लगी, आँखों की आकृति पलट गई और व्याकुल होकर कहने लगी।

''आ गये लाल, वह आ गये। आ बेटा! मेरे गले से लग, मैं तेरा माथा चूम लूं, ले बेटा, यह कफनी-सी अब उतार दे, आ कुर्ता पहन ले, नहीं बेटा, तेने बड़ा काम किया है। अब सेवा हो चुकी, अब यह वस्त्र पहन ले, यह कहती हुई कुर्ते को खोलती और गले से पकड़कर ऐसे करती है जैसे पहना रही है। यों करती हुई बेसुध हो जाती है। फिर सुध आती है। कोठे पर जाती है, चारों ओर देखकर कहती है- हे मेरे लाल, हे मेरे लाल! हे नानक आ! हे ईश्वरीय ज्योति जी आओ! मैं माँ नहीं, माँ तो मर गई है। ममता की मारी माँ! आओ परमेश्वर के सौंदर्य जी आओ, मैं बलिहारी।'' निराश होकर फिर नीचे उतरती है। फिर कहती है, ''बिटिया! तेरा भाई न आया, देख तो घर सुनसान-सा लगता है। भाई को आवाज़ लगा तो। बिटिया लगा आवाज़-''अपनी बहन के प्यारे भैया, आओ। यह कहकर फिर रो पड़ी। रोती-रोती आँगन में चली गई, मेहता जी चादर ओढ़कर लेटे हुए थे । चरण हिलाकर कहने लगी, '' महाराज जी! मैं क्या करूँ? अभी तक नहीं आये? उठो कहीं से देखो, कहीं किसी वृक्ष के नीचे सोये हुए न पड़े हों। कहीं छिपकर न बैठे हों। मेरे लाल को कहीं खोजकर लाओ। किसी प्रेमी के मन में दया आये, जहाँ पर बैठे हों, वहीं से यह कह दे- हे गुरू जी निरंकार के लिए, आज माता को दर्शन दीजिये। हा-हा! बताओ अब क्या करूँ? मेरा जी उड़ रहा है, वह आ गये, माँ-माँ मैं आ गया।'' यह कहती हुई माता बेसुध हो गईं। मेहता जी चौककर उठे प्यारी सत्यवती को थामते हैं- नेत्रों में से नीर बहता है और कहते हैं-'हे निरंकार जी! इतनी अमूल्य वस्तु प्रदान करके उसके लिए इतनी व्याकुलता? पर मैं क्या कहूँ? मैंने तो थप्पड़ मारे थे। मेरे किये हुए का दण्ड है, पर तुम तो बहुत सत्कार करने वाले पुत्र हो, तुमने तो बुरा नहीं माना था, मेरा ही मन बुरा है। मैं तुम्हें दोष नहीं देता, अपने-आपसे कहता हूँ , मेरे घर में निरंकार की ज्योति आये और मैं धक्के मारूँ? मेरे हाथ टेढ़े क्यों न हो गये? मुफ्त की वस्तु की क़दर न की, धोखे में लाल खो बैठा। मेरी आँखों से परदे क्यों न हटे, मैंने क्यों पुत्र को न पहचाना? मैंने बहुत अनादर किया है, मेरा दण्ड तो यही है कि मछली की भाँति तड़पूँ पर दर्शन-पर दर्शन न हो, पर हे लाल ! हे ईश्वरीय ज्योती! हाय? क्या कहूँ? दर्शन दो? और क्या कहूँ, मुझे नहीं पता क्या कहा जाता है? मेरी आँते फूटती हैं, हाँ जी ! सभी कहते हैं, आयेंगे। अब तो मेरी मृत्यु समीप है, देखते हैं पहले कौन पहुँचता है। कर्म तो मेरी मृत्यु को ही पहले लायेंगे। पर यदि तुम्हें अपने विरद की-मुझे पिता कहने की-लज्जा है, तो अवश्य ही तुम पहले आओगे। हाँ, भगवंत! मेरी आँतें कसकस कर टूट चली हैं। ...भरोसा हो, प्रेम हो, कोई आये? ...इस ऊजड़ हृदय के लिए कौन आये? ...इस पर तुमने जो इस ऊजड़ गृह में अवतार लिया, आप ही की कृपा थी, तब हम में कौन-सा गुण था? वैसे ही अब आप ही दर्शन दो। आह! मेरा दिल भी गया! बिटिया! बिटिया! आना बिटिया! मैं जा रहा हूँ । वह लालजी आकाश को जा रहे हैं तेरी माँ भी साथ जा रही है, मुझे बुलाते हैं, मैं चला हूँ।' यह कह कर बेसुध-सा होकर गिर पड़ा।

नानकी छत पर थी, सुर्यास्त होने लगा था, इसलिए नानकी अपने आत्म-प्रेम से ध्यान मग्न बैठी थी, पिता की आवाज़ कानों में कैसे पड़ती? वह तो भाई के वियोग में, भाई के ध्यान में मग्न, उनके विरह में-प्रेम के प्रवाह में-द्रवित-सी हो रही थी उस ध्यान मग्नता में उसके आत्मा की जो प्रार्थना हो रही थी, उसका कुछ चित्र निम्नलिखित गीत (यहाँ पर अनुवाद प्रस्तुत है) में है :-

हे भैया जी! काफी समय हो गया है, आप घर को नहीं लौटे और न ही सुख का कोई संदेश भेजा है, क्या मोह के बंधन तोड़ दिये हैं? न तो सपने में कभी दर्शन हुए, अब ध्यान भी हार चुका है, हे दैवी भैया! दीदी तुम पर बलिहारी! तुमने क्यों हमें भुला दिया है? हे भेया जी! तुम आत्मस्वरूप हो, पर हमने तुम्हें अपना संबंधी समझ रखा है, पर तुम दया के स्वरूप हो, हमारे अवगुणों की कभी भी छानबीन नहीं की। हाँ, रिश्तेदारी के अधिकार जमाकर, आप पर मान करते हैं, आपको ईश्वरीय स्वरूप नहीं जानते और अपना बनाकर स्थापित करते हैं। आप सूर्य की भाँति सबके साँझे बन कर संसार का उद्धार करते हैं, पर मैं कमल की भाँति स्वार्थी बनकर वास्तविकता को नहीं समझती । हे सतगुरू! आप कृपालु हैं। हमारी भूल के लिए क्षमा करना, हे सतगुरू अब घर को लौटो, अब तो इच्छा प्रबल हो गई है। मेरे नेत्र जल से भर-भर आते हैं, फिर जल गिर पड़ता है, फिर भरता है, फिर भरते हैं, मैं फिर रोकती हूँ, पर वे असह्य हो जाते हैं। जब कोई आवाज़ आती है, मैं भागकर बाहर चली जाती हूँ, मैं देहली में ही ठिठक पड़ती हूँ और निराश होकर लौट आती हूँ। यदि कोई मीठी आवाज़ आती है, तो मैं समझती हूँ कि भाई आ गये; या कोई गुरू का प्यारा उनका कोई समाचार ला रहा है। हे भेया! मेरी दशा पर सोच-विचार कीजिये, जब मुझे निराशा होती है, तो मेरा हृदय धड़कता है, मन टूटता है और मैं बैठकर छमछम नैनों से नीर बहाती हूँ। जब ओस से भीगी हुई रात, तारों की छवि लेकर आती है, मन्द-सी वायु चलती है, प्यारी एकान्त आती है तो मैं देखती हूँ कि प्रकृति ईश्वर की आरती उतारती है, पर आरती उतारने वाले तुम प्यारे को, पास नहीं देखती, तब निराश होकर पुकारती हूँ : हे भेया जी! मैं विलपती अति व्याकुल होती, तड़ती और वैरागिन बनकर तड़पती हूँ। हे भैया जी! यदि मुझे पता हो कि आप किस देश में गये हैं? तो मैं किसी दास को भेजकर आपके पास अपनी दशा की सूचना भिजवा दूँ। कब वह सौभाग्यपूर्ण दिन आयेगा, जब मेरे कानों में यह आवाज़ आयेगी 'दीदी' कहे वह चन्द्र मुख और दीदी उस पर से न्योछावर हो जाये। मैं उस समय न्योछावर हो जाऊँ, अपने आपका बलिदान दे दूँ और भैया पर मैं नियम, हठ, तप, जाप सब कुछ बलिहारी कर दूँ। मैं रिश्तेदारी के मान का त्याग करूँ, हे गुरू! जान लीजिये, मैं आपकी सिक्ख हूँ। मैं भारी भूल करने वाली सिक्ख हूँ और यह भिक्षा माँगती हूँ-हे पूरण गूरू! भिक्षा दीजिये, दर्शन की भिक्षा प्रदान कीजिये। यह निमानी होकर दर्शन के लिए लालसा करके द्वार पर गिर पड़ी है। हे दूर बैठे हुए सतगुरू! पर अंतर्यामी ! हे विरद के पालने वाले, जीव को जीवन प्रदान कीजिये। वह प्रकाश कैसा हुआ है, आँगन क्यों चमका है? वह प्रत्येक ओर सौंदर्य खिल पड़ा है और विरह का अंधकार लोप हो गया है। दैवी भैया आ गये हैं जो 'स्मृति' का पौधा लगा गया था, अपने विरद को पालने के लिए आ गया है, एक स्मरण करने पर आ गया है।

इस तरह की विनती इस प्रेम एकाग्रता में हुई कि जहाँ पर केवल नानकी जी की ही पहुँच थी। इस समाधि में श्री गुरू नानक जी की ओर आत्मिक प्रेम से देख रहे हैं और उस सौंदर्य की अधिकता में जो सदैव उनके चेहरे की ओर होती थी वह सदैव प्रसन्न मुख मुस्करा रहा है और नानकी के एकाग्र हृदय को ब्रह्मानन्द दे रहा है। कुछ समय तक इस दशा में रहकर ध्यान खुला, नानकी ने नेत्र खोले। तब पहली दृष्टि आगँन में पड़ी। क्या देखती है कि वह सौंदर्य, नानक सौंदर्य वाले के सौंदर्य का प्रभाव खिल रहा है, उसमें माता-पिता बेसुध पड़े हैं और प्यारी सूरत ने चरण हिलाकर कहा, ''माता जी उठो!'' अब देखती है तो क्या देखती है कि जगत-तारक भैया जी-विरद के पूरे- आये हुए हैं और माता-पिता के चरणों को हिलाकर कह रहे हैं, ''उठो श्रीमान! नैन खोलो।'' पहले तो दौड़कर उठी, पर फिर एकाएक रुक गई, कि पहले माँ जी ओर पिता जी भेंट कर लें तो बाद में भाई से मिले।

कितना बलिदान है। प्रेम में, प्रेमी सब कुछ न्योछावर करते-करते प्रेम को भी प्रेम से यों न्योछावर कर देते हैं, जिस तरह इस समय नानकी ने किया है।

पिता जी की आँखे एकाएक खुल गई, आँख के खुलते ही पुत्र के सामने खड़ा है और झुककर देख रहा है, घबड़ाकर उठे, सिर छाती से लगाया, ''हे ईश्वरीय ज्योति! मिला ले'' और इस तरह विह्वलता से अंगमिलन किया, कि बिछड़ना ही भूल गये। इसी सुख में मेहता जी को ध्यान आया ''मैं सदैव भूलता ही रहा, मैं तो प्रेम से रिक्त निरादर करने वाला हूँ, आप भेंट कर रहा हूँ, पर इनकी माता जी को मिलने से वंचित रख रहा हूँ, जिनका प्रेम अति कोमल तथा सदैव रहा है। हाँ, इस सदैव कोमल प्रेम के कारण मेरी अपेक्षा भेंट करने का इनका अधिकार है।'' छोड़ने को जी नहीं चाहता, पर अपनी सत्यवती का विशेष अधिकार जानकर धैर्य पकड़ा और उसे कंधे से हिलाकर अवाज़ दी। ''तृप्ता! लाल जी आ गये।'' सतगुरू जी ने चरण पकड़कर प्यार सहित दबाये, तब माता तनिक-सी हिली और बेसुधी में आप ही कहने लगी, ''माँ जी! मैं आ गया हूँ!'' श्री गुरू जी ने यही वाक्य बड़े प्यार सहित कहे, ''जी! नानक आ गया है।'' अब माँ की आँख खुली। पुत्र को देखा। उठकर गले से लगाया। आँखों में से अँश्रुओं का प्रवाह चल पड़ा, बलिहारी होती हुई कुछ कहती हुई कुछ कहती है पर समझ में कुछ नहीं आता। एक हाथ से अंगों से लगाये रखा और एक हाथ पीठ पर फेरती हुई कहती है, ''माँ मर गई, मैं माँ नहीं, अब न बिछड़ना।'' इस विह्वलता में कुछ समय व्यतीत हो गया। फिर नैन खोलती है, न्योछावर होकर फिर नैन मुँदते हैं, यों होते हुए माँ जी को जो पहला ख्याल आया वह यह था कि बिटिया कहाँ गई? 'लालजी! दीदी मिली है कि नहीं?'

श्री गुरू जी – माता जी ! दीदी तो सदैव ही मिलती है।

माता – बिटिया, बिटिया! आ बिटिया, आ बेटी या, शुभागमन वाली, आ भाग्यशील! आ, मुझे अपने भाई से भेंट करती हुई देखकर प्रसन्न हो। (गुरू जी की ओर देखकर) लाल जी! बिटिया बहुत वैराग्य करती है।

इतने में नानकी, जो आश्चर्यजनक भेंट को देखकर छमाछम रो रही थी, छोड़कर आगे बढ़ी। भाई के चरणों पर जा गिरी; पर उस मर्यादशील पूरण पुरुष ने बीच से ही सिर को थामकर

दीदी की ओर सीस झुकाया ही था कि नानकी बहुत व्याकुल हुई पर माँ ने दोनों को अपनी बाहों में लेकर अंगों से मिला लिया।

इधर ये अपने प्रेम तथा मिलाप में मग्न थे, उधर अड़ोस-पड़ोस और वेदियों के घरों में समाचार पहुँच गया था। छत्तों पर से ही लोग इनकी छत्त पर आ गये थे। प्यार वाली पड़ोसनियों ने इनके घर में दीपमाला कर दी। चारों और छत्तें इर्द-गिर्द के ग्रामों के लोगों से भर गईं और वनफूलों की वर्षा हो रही है। उधर राय बुलार को संदेश पहुँच गया, वह वृद्ध पुरुष, नगर का राजा, आप चलकर आया, डयोढ़ी में ही था कि गुरू जी उठ बैठे और आगे बढ़े ओर सीस झुकाने ही लगे थे, पर उसने आगे होकर चरणों पर सीस रखकर कहा :-

''इस बड़ाई को मेरे मरने से पहले ही मरने दीजिये।'' पर श्री गुरू जी ने थामकर कहा-''राय जी! तुम धन्य हो! लौ लगी रहे।'' यह कहकर अंगमिलन हुआ और उस प्यार में स्वाभाविक ही मुँह से निकल गया, ''राय जी, कल्याण।'' भाई लालो, भाई भगीरथ और मनसुख जी अब आ पहुँचे थे। श्री गुरू जी प्यारे सिक्खों से खूब प्यार सहित मिले, कण्ठ से लगाकर थपकी दी और कहा, ''कल्याण।''

जब यह सारा मेल-मिलाप हो चुका और सबकी सुध उस चढ़ी हुई सूरत के पंखों से उतरी, तब माता ने जो नये वस्त्र तैयार किये थे, लाकर अपने हाथों से पहनाये और कुछ खिलाया। नगर के लोग तथा सज्जन बधाई देने तथा दर्शन करने के लिये उमड़कर चले आ रहे हैं। जो कोई भी आया आपके दर्शन करके निहाल हुआ। सतगुरू जी ने सबके साथ प्यार किया, आर्शीवाद दी।

इतने में गुरू जी घबड़ाकर उठ खड़े हुए, मेहता जी ने कहा - ''क्यों लाल जी?'' आपने कहा-''जीजा जैराम जी वन में बेसुध पड़े हैं, उनको जाकर ले आयें। मरदाना उनकी ओर गया है, पर वह उन्हें जगा नहीं सका।'' यह आधी-सी बात कहकर उठ खड़े हुए, नेत्र जल से भर आये और शीघ्रता से वन को उठकर चल दिए। सिक्ख, सारा परिवार और बिरादरी के संबंधी तथा पड़ोसी भी पीछे हो लिये। एक ओर पीलू के एक वृक्ष के नीचे, जैराम जी लेटे हुए थे। सुध नहीं थी, पर बेसुधी में आवाज़ आ रही थी, ''हे गुरू नानक, हे गुरू नानक!'' भाई मरदाना जो पहले जगा-जगाकर थक चुका था, अब पास बैठा हुआ यह शब्द गा रहा था :-

हम घरि साजन आए।।
साचै मेलि मिलाए।।
सहजि मिलाए हरि मनि भाए पंच मिले सुखु पाइआ।।
साई वसतु परापति होई जिसु सेती मनु लाइआ।।
अनदिनु मेलु भइआ मनु मानिआ घर मंदर सोहाए।।
पंच सबद धुनि अनहद वाजे हम घरि साजन आए।।१।।

(सूही पहला १ छँत घर २)

पर जीजा जैराम जी की सुध उसी अपनी ध्वनि में मस्त थी। श्री गुरू जी ने आगे बढ़कर सीस के बीच में हाथ रखकर हिलाया और माथे रखकर कहा-''जीजा जी, उठो! धन्य

निरंकार।'' गहरी निद्रा में सोये हुए व्यक्ति की भाँति, आपकी नींद खुली, उठे और उठते ही दर्शन पाकर उधर से उठे और उधर गुरू जी चरणों की ओर हाथ बढ़ाये, पर भाई जैराम जी का सिर सतगुरू जी की गोद में रखा गया, जिसके ऊपर दयालु हाथ टिक रहा है। काफी समय तक इसी प्रेम के हिलोरे में व्यतीत हो गया। फिर सारे व्यक्ति उठे ओर धीरे-धीरे घर के आँगन में आये, वहाँ पर गली में तथा उनके घर में संबंधियों ने दीपमाला कर रखी थी माता ने घर पर आकर बधाई बाँटी। फिर परिवार ने भोजन किया।

आधी रात हो गई। भाई मरदाना तथा साज़ादा ने कीर्तन आरम्भ किया, सारी रात अखंड कीर्तन में व्यतीत हो गई। सिक्खों का गुरूपर्व हुआ और संबंधियों की ओर से प्यारे का जन्मदिन मनाया गया।

धन्य गुरू नानक! धन्य गुरू नानक!!

सूचना – बहन नानकी तथा राय बुलार का गुरू नानक आगम पर मन के तरंगों का एक चित्र और माता सुलखणी जी की जगत के उद्धारकर्ता को हार्दिक भेंट का एक चित्र आगे दिया जाता है। कवि की पंजाबी कविता का यहाँ पर अनुवाद प्रस्तुत है।

१. दीदी नानकी जी का भाई आगमन[१]

आओ री सखी! मिलकर बधाई दो, मेरा भैया घर पर आया है। मेरी अम्माँ का उतपन्न किया हुआ आँगन में आया है, आज आँगन सुशोभित हो रहा है। धवल व्याकुल होकर पुकार करता है कि ''मैने पापों का बोझा सिर पर उठा रखा है। अब इस पाप का बोझा कौन उतारे?' उसने इसी दशा में रो-रोकर अपना-आप बिगाड़ लिया है। सतगुरू ने अदेश में धवल की पुकार सुनी है और सुनते ही मृतलोक पर भागा हुआ आ गया है। प्यारे ने घर-घर, द्वार-द्वार फिर-फिरकर पाप का डेरा उठवा दिया है। उसने सतनाम का चक्र चलाया है और घर-घर में नाम का निवास करा दिया है। ईश्वर प्रेम का प्रकाश कर दिया है, मानों प्रेम का सूर्य चढ़ा दिया है। सच्च का चन्द्र चमकाया है, और मायारूपी नीलिमा हटा दी है। मेरा इस तरह का प्यारा भाई संसार को जीवित करके घर पर आया है। जिन मार्गों पर से भाई चलकर आया है, उन मार्गों पर मैं बलिहारी हूँ। चन्द्र तथा सूर्य की छवि आँगन में छा गई है, तारों ने भी आनन्द लगा दिया है। जलते हुए जगत को शीतल करके गुरू नानक घर पर आया है। आज बधाई हो, बधाई, सतगुरू मेरा, घर पर आया है। मैं क्या कहूँ, भैया अथवा गुरू? हमारे घर में कौन आया है? हे लोगो! यह तो अदेश तथा पृथ्वी का सौन्दर्य है जिसने सूर्य को भी दीप्त किया है। जिसने प्रकाश को प्रकाश दिया है, जिसने छवि की कान्ति बड़ाई है। वह मालिक, पालक और जगत का उद्धारकर्ता, धुर से, ईश्वर के पास से आया है। वह असीम प्यार भरकर लाया है और उसे जगत में लाकर लुटा दिया है। जो मरे हुए, धरती पर भटक रहे थे, उन्हें गले से लगा लिया है। जीवन प्रदान करके उन्हें अपना बना लिया और पकड़कर प्रभु की गोद में बैठा दिया है। हे लोगो! वह गुरू नानक आज हमारे घर में आया है। लाखों बधाइए दो, क्योंकि आज लौटकर भैया घर पर आये हैं। आज बधाई, री सखी ! आज गुरू घर पर आया है। मेरी

---

१. यहाँ पर गीत का अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

अम्माँ का पैदा किया हुआ भैया, सतगुरू लौटकर घर में आया है। कोई लम्बी-सी उदासी के पश्चात् गुरू नानक घर पर आया है। घर-घर में, द्वार-द्वार पर आया है और सोते हुओं को आकर जगाया है। मेरे, तेरे अथवा सबके द्वार पर, गुरू नानक चलकर आया है। सतनाम की देन लाया है, वाहिगुरू को घर में लाया है। आज सारे जगत को बधाई हो, गुरू नानक घर पर आया है।

□ □

२. राय बुलार का गुरू नानक आगमन

वैसे ही अद्भुत-सी तान उठती हैं पर वे वैसे ही मेरे मन को बहला नहीं सकतीं। प्रसन्नताएँ, हँसी, चाव, तमाशे अपने में नहीं ला सकते। कोयल आकर आम पर बोली है वह मेरे हृदय को झुँझलाहट देती हैं, मोर, चातक, पपीह श्रावण में आकर भी मेरे मन को धैर्य नहीं देते।।१।।

फिर – फिर तेरी ओर ही ध्यान पड़ता है और तेरी ओर ख्याल जाता है, तेरें ही वाक्य कानों में गूँजते हैं और कलेजे में कसक उत्पन्न करते हैं। तेरे ही चोज़ ध्यान में आते हैं, मेरे चित को मोहित करके ले जाते हैं। तेरे ही नयन उठ-उठकर मोहित करते हैं, देखते हैं और मुस्कराते हैं।।२।।

जो किसी परिचय से परिचित नहीं होते, जिसे स्वाद मोहित नहीं कर सकते, तू उसकी दया की ओर ध्यान कर कि कितनी घबराहट तथा व्याकुलता से भरी हुई है। संसार उसके लिये ऊजाड़ है, अकेलापन उसे आ-आकर खाता है। जितने ही आमोद-प्रमोद के रसदायक साधन थे, वे सभी फीके हो गये हैं।।३।।

मुझे यह शिकायत तथा उलाहना नहीं; कि क्यों चक्कर नहीं काटते। जिस तरह की उनकी आज्ञा है, वे उसी में प्रसन्न रहें, मेरे लिये व्याकुल होना अनुचित है। हाँ, पर मेरे कलेजे में दर्द, पीड़ा तथा कसक है। काँपकर कलेजा पिघलकर वह चलता है, नैन जल से भरे रहते हैं।।४।।

मेरा क्या अधिकार है? मुझ में कौन सा गुण है? मुझे क्यों याद में बसायें? यदि मुझसे ऊब जायें तो वे मुझे आँख तले न लायें; और मेरी कभी याद न करें। मैं पापी हूँ, भूलने वाला हूँ, मेरी अराधना तो रिक्त-सी है।।५।।

पर उनमें एक दया का निवास है, उसकी वर्षा बरसाते हैं। पीड़ा से व्याकुल लोगों पर वे तुष्ट होते हैं, यही उनका विरद है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि आकर दर्शन दें और मुँदे हुए नैनों को खोल दें। अपना ईश्वरीय रूप दिखाकर झलक से ही पार कर दें।६।।

नैन खोलकर-दास पर प्यारी दृष्टिपात करने के लिये किसके नैन झुक रहे हैं? अमृत की अमूल्य अनुग्रह की वर्षा हो रही है, जिससे झरर-झरर की धूम हो रही है। यह तो गुरू नानक के नैन हैं, जो नीचों को लाड़-लड़ाते हैं, जो विपत्ति आ पड़ने पर आते हैं और पापियों को पवित्र करते हैं ।।७।।

नयन तुष्ट होकर नैनों पर ढलते हैं और अमृत की वर्षा करते हैं, 'मृतलोक' से उठाकर 'अमर पुरी' में पहुँचाते हैं, नैन खुलते हैं, दोनों ओर देखते हैं, आरपार दिखाई पड़ते हैं, यहाँ पर वहाँ पर, अंदर तथा बाहर, गुरू नानक जी रंग लगा रहे हैं।।८।।

३. जगत–जगवेदी पर माता चोणी (सुलखणी) जी की भेंट

स्वगत[१]– 'तू भी कुछ भेंट कर, जगत जलता जा रहा' इस तरह का सुन्दर वाक्य ननद के मुँह से मेरे कानों में पड़ता है। मैं हीन क्या भेंट दूँ? यदि मेरे पास कुछ हो तो दूँ। मेरे प्रिय सदा परदेश में रमतें हैं मैं क्या लूँ और क्या दूँ? अनेकों वर्षों से दर्शन नहीं हुए, घर नहीं आये, कमाई करने वाले विदेश में रहते हैं, मैं कहाँ से धन लाऊँ? मेरे बच्चे अनजान हैं, कमाई कर नहीं सकते, मैं टुकड़ा देती हूँ तो यह कहीं खाते हैं, यह सुन्दर, मेरे हाथों की ओर देखते हैं, पर पैसा तो कहीं से आता नहीं। मेरा पिता भी लखपति नहीं, जिसे मैं लखदाती होकर और असीम दान देकर, जगत के दुःख काटूँ? मैं, पण्डित नहीं, मैंने कोई विद्या नहीं पढ़ी, जिससे विद्या का दान कर सकूँ। मैं, मूर्ख जगत को प्रकाश देकर 'सूझ का दीप' जगा दूँ। न मैं जोगिनी ही हूँ, कि सिद्धि लगाकर जगत का दुःख काटूँ। करामातें दिखाकर जगत का दरिद्र दूर कर सकूँ। मैं वैद्य भी नही, कि दुखियों का दुःख काट सकूँ, उनको औषधि देकर स्वस्थ करूँ, मैं ईश्वरीय संगीत भी नहीं जानती हूँ, जिससे धुर से आई हुई वाणी को गाऊँ, गाकर उसे मृतक जगत के कानों में फुँक दूँ और दोबारा जीवित कर दूँ। अरी सखी! किसी के पास कुछ हो तो वह उसे बाँटे पर जिसके पास कुछ भी न हो, वह क्या दे? अब मैं जगत को बाँटकर क्या दिखाऊ, मेरे लिए तो भारी कठिनाई हो रही है। मेरे अन्दर संन्यास का निवास भी नहीं है, मेरे अन्दर तो ग्रहण करने की रुचि का ही निवास है, त्याग तथा वैराग्य नहीं और न ही मेरे मन रूपी मन्दिर में ज्ञान रूपी दीपक जलता है। यदि मैं दाँत पीसकर कह दूँ कि हे जलते हुए जगत! तू सुन, मैं तेरे लिए सिर का सुन्दर राजमुकुट दान कर दूँ, वह तो दाता है, धुर का दाता, अदेशी त्राण वाला है, गुप्त प्रकट, सब पर उसकी आज्ञा चलती है, और वह मृतकों को जीवित कर देने वाला है। हे जगत! मैं वह दान तुझे देती हूँ, वह तुझे सुख देगा वह तेरे लिए दिन–रात सारे दुःखों को सिर पर ले लेगा। वह तेरा ही हो, मेरा न हो, सारा ही तेरा हो, मैं अपने मान तथा अधिकार का त्याग कर दूँगी उसकी 'पकड़' मेरे मन को न खोये। यद्यपि वे घर पर नहीं आते, एक के पश्चात एक उदासी धारण करते हैं। वर्षों तक घर को नहीं लौटते, कोई संदेश, सूचना नहीं आती, साधु बने हुए हैं, गृहस्थ से छूटे हुए है, पदयात्रा करते फिरते हैं और मोह का त्याग कर दिया है। उन्होंने सभी बन्धन तोड़ डाले हैं, पर हे सखी! मैं पूर्ण रूप से बावली हो चुकी हूँ। मेरी 'पकड़' तो छुटती ही नहीं, मेरा मोह, मेरी ममता और माया नहीं छुटती। 'वे मेरे' वाली भावना भी नहीं टूटती। 'वे मेरे' मैं इस आसरे आशा बाँधकर जीवित हूँ, पर 'वे संसार के हैं, मेरे नहीं' यह विचारते मेरे अन्दर आ ही नहीं सकता। कई स्याने योगी, फकीर, साधु आये हैं, उस अदेशी ज्योति द्वारा अनुग्रहीत होकर यहाँ का चक्कर काटकर गये हैं। कहते हैं, 'तेरा कंत ईश्वर है, वह संसार के लिए आया है, तू अपना अधिकार छोड़ दे और माया तथा मोह को जीत ले'। हाय! मुझ फूहड़ की बुद्धि मोटी है, मेरी समझ में नहीं आता और मेरी प्यार की डोर को कोई शिक्षा भी तोड़ नहीं सकती। मैं रात दिन उसके मोह में फँसी हुई हूँ और किसी तरह भी उसे भुला नहीं सकती। 'वे मेरे हैं' यही एक

---

१. लेखकर की कविता का अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

भारी पकड़ है, मैं किसी तरह भी इसे कम नहीं कर सकती। इस आकर्षण में बँधी हुई सदैव खिची रहती हूँ, चाहे 'ग्रहण' अथवा 'पकड़' कुछ भी इसे कह लीजिऐ, इसी चक्कर में रहती हूँ। इसी 'प्रिय के मोह' से छाती धड़कती है, अन्दर से कसक उठती है। कलेजे में लहरें उठती रहती हैं, हृदय रूपी मन्दिर में थरथराहट सी उठती रहती है। इस रहस्य की पीड़ा के कारण कभी-कभी मैं अपने आपे से भी गुजर जाती हूँ, आँख में से एक अश्रु आकर गिरता है, मेरी दृष्टि खिच जाती है। मेरा सारा आपा पिघलकर, घुलमिल जाता है। किस में? मैं कुछ भी नहीं जानती, फिर एक आश्रु निकलता है। कुछ होता है, कुछ कलेजे में रहता है, कुछ रहता है कि नहीं, पर मैं, सारी-सी-सारी एक कम्पन-सा होकर काँपकर हूँ तथा खो जाती हूँ। इस समय एक प्यारा 'अश्रु' यह पानी की एक बूँद है। इस खारी जल की बूँद आँखों में से झड़ती है। हे जगत! यह तेरी भेट है, यह जल की एक बूँद। हे जगत! जग-वेदी पर यह मेरी एक तुच्छ-सी भेंट है।

सूचना - कुछ दिनों तक प्रेमियों को दर्शन देकर तलवण्डी में चहल-पहल लगा रखी। राय बुलार को पूरणपद प्रदान किया और अनेकों जीवों का उद्धार किया। तलवण्डी में ही सत्संग की सभा लगी रही और कीर्तन होते रहे। इसी तलवण्डी के निवास समय माता-मिता पर अनुग्रह हुआ जिसके लिए आगामी प्रसंग पढ़िये माता पिता के उद्धार का प्रसंग पुरातन जन्मसाखी तथा श्री गुरू नानक प्रकाश, दोनों में दुनीचंद विस्तार के पश्चात् ही आया है।

□ □

५२ माता–पिता निस्तारण

: १ :

समय कई पलटे खा गया, जब तलवण्डी में जगन्नाथ श्री गुरू नानक देव जी अपने बाल्यकाल के कौतुक किया करते थे। सुलतानपुर के मोदीखाने तथा वेईं नहीं और द्रव्य लुटाने के सारे समय व्यतीत हो चुके हैं। उदासी वैराग्य, रसिक वैराग्य रंगो के स्वामी जी दूर–दूर देशों में हो आये हैं, अनेकों जीवों का उद्धार कर आये हैं, ज़न्म–जन्मातरों के अटके हुए पार हो गये हैं। अनेकों नये लगा आये हैं। नये छींटे मार आये हैं। परदेश से आकर एक बार तलवण्डी में होकर अब एक चक्कर स्वदेश का भी लगा आए हैं। जीवों के हृदय रूपी दीपक जगा आये हैं और कई पाखंड के किले तोड़कर आये हैं। अब घर पर आये हैं, पर हैं अब भी अपने बाहरी फकीरों वाले भेस में।

घर बाहर को एक ही करके दिखाने वाले – जबकि वाहिगुरू साथ हो – 'वैराग – उदास' का मार्ग चलाने वाले जी, अब उदास होकर भी घर पर ही बैठे हैं। माता तृप्ता के घर में फिर से ज्योति जल रही है, पर पुत्र अब वह छोटा–सा बालक नहीं, अब वह अपने रंगों में पूरी तरह चमकने वाला मध्यान्ह का सूर्य है, पर माता–पिता का मोह तो अभी मोह ही है। 'अब भी फकीरों वाले भेस उतार दे, गृहस्थियों वाला पहरावा धारण करे, बाल, बच्चे, पत्नी आदि को साथ रखे, हम वृद्ध हैं, परदेश में न जाये।'

गुरू नानक जी उनके हृदय की यह बातें जानते थे, पर फिर भी आजकल उनके घर में ही बैठे हैं, कीर्तन भी वहाँ पर ही होता है, प्रेमी भी आते हैं, दूर निकट के जिज्ञासु पूछने कहने तथा शुभ मति और कल्याण की प्राप्ति के लिए आते हैं।

पिता कालू जी एक दिन सोचते हुए, पत्नी को दिये हुए वचनों को भूलते हुए याद करने लगे कि अब कोई भी बात अपने बुद्धिमान पुत्र को, उनकी रुचि के विरुद्ध नहीं कहेंगे, कहीं फिर विदेश न चला जाये–पर उनसे न ही रहा गया। पास आकर बैठ गये और कहने लगे :– बेटा! अब तुम बड़े हो गये हो, देश विदेश का चक्कर काट आये हो, हम वृद्ध हो गये हैं, अब तुम परदेशों को जाना त्याग दो और यहाँ पर अपने घर में टिककर बैठ जाओ। जो तुम्हारा जी चाहे, वही करो, पर देखो कितना समय व्यतीत हो गया है, कि तुम्हारे बच्चे और पत्नी तुम से बिछुड़े हैं, अब उन्हें अपने पास रखो अब घर–बार वाले बनकर घर को सम्भालो। खाने–पीने के लिए ईश्वर का दिया बहुत कुछ है, अब तो केवल तुम्हारे जम जाने और घर को सम्भालने की आवश्यकता है। तुम्हारे थोड़े से ध्यान देने से निर्वाह के लिए अच्छा धन पदार्थ आ जायेगा। अब हमारी आँखों से ओझल मत होवो। तुम्हारी माता बहुत वैराग्य करती है, अब उसे वियोग मत दो। जितने दिन हमारे शेष हैं, हम तुम्हारे सौंदर्य से चमकते हुए माथे

के दर्शनों के लिए तरसते न रहें, हमारी आँखों से ओझल मत होवो। परिवार बिखरा-सा पड़ा है, सारा इकट्ठा करो और सुख सहित निवास करो।

जगत दाता जी यह सुनकर मुस्कराये और कहने लगे :-पिता जी! जो आप कहते हैं, वह ठीक है, पर मैं जिसका भेजा हुआ यहाँ पर आया हूँ, उसी की आज्ञा का यह सारा खेल है। मैं न तो संन्यासी हूँ, न वैरागी, न योगी, न मैं गृहस्थी, न ही देशाटन करने वाला। मैं ईश्वर की आज्ञानुसार चलने वाला व्यक्ति हूँ। मेरा स्वामी जो कहता है मैं वही करता हूँ, जिधर वह प्रेरता है, उधर जाता हूँ,

इस समय तृप्ता जी भी पास आकर बैठ गईं।

कालू-जगत में सबसे बड़ा अधिकार तो माता-पिता का है, वह स्वामी कौन है, जिसकी आज्ञा में तुम हमारी सेवा का त्याग करके फिर रहे हो?

ये वाक्य सुनकर श्री गुरू का चेहरा बदला। आँखों में से कोई अद्भुत लहर-सी दौड़ गई, देखो, फिर नयन बन्द हो गये। अब चेहरे पर एक दीपति ज्योति के प्रवेश की भाँति नई आभा चढ़ आई। माता-पिता देखकर चकित हो गये। क्षण-भर के पश्चात् श्री दाता स्वामी जी के ईश्वरीय कण्ठ से ध्वनि उठी, 'धन्य निरंकार। धन्य निरंकार'। काफी समय तक यह रंग छाया रहा, ऐसा कि जिससे आज मेहता कालू जी का हिसाबी वृत्ति वाला बिखरा हुआ मन भी कुछ एकाग्र हो गया, कुछ सहम गया, कुछ अपने आप ही 'धन्य निरंकार! धन्य निरंकार' कहने लग पड़ा। दो घड़ी तक यह रंग लगा रहा, कुछ और प्रेमी भी आ गये। उस समय जो भी आया चुप बैठ गया और इसी रंग में रंग गया और सभी इस ध्वनि में सम्मिलित हो गये, 'धन्य निरंकार ! धन्य निरंकार'। दो घड़ी के पश्चात्, निरंकार के प्रेम में रोते हुए नयन फिर खुले और पिता की ओर देखकर कहने लगे :-

अपुने ठाकुर की हऊ चेरी।।
चरन गहे जगजीवन प्रभु के हऊमै मारि निबेरी।।१।। रहाऊ।।।
पूरन परम जोति परमेसर प्रीतम प्रान हमारे।।
मोहन मोहि लीआ मनु मेरा समझसि सबदु बीचारे।।१।।
मनमुख हीन होछी मति झूठी मनि तनि पीर सरीरे।।
जब की राम रंगीले राती राम जपत मन धीरे।।२।।
हऊमै छोडि भई वैरागनि तब साची सुरति समानी।।
अकुल निरंजन सिऊ मनु मानिआ बिसरी लाज लोकानी।।३।।
भूर भविख नाहीं तुम जैसे मेरे प्रीतम प्रान अधारा।।
हरि कै नामि रती सोहागनि नानक राम भतारा।।४।।१।।

(सारंग महला १)

आज पहला दिन था जब मेहता कालू का हृदय भी पसीजा, एक दृष्टि भरकर पुत्र की ओर देखा, ऐसी दृष्टि से पहले कभी नहीं देख सका था। एक लहर-सी आई और एक झोंका-सा आया। ज्यों-ज्यों पुत्र की ओर देखता, बेसुध-सा होता जाता। वह जो 'पुत्र धन कमाये ओर सेवा करे' का निश्चय अन्दर बँधा हुआ था, टूट गया, एक क्षण के लिए पुत्र-भाव

दूर हटकर आंगन में बैठी ज्योति, साधु होकर दिखाई पड़ने लगी। दूसरे क्षण एक नींद का–सा झोंका आया और मुद्दतों बीते समय का सपना आँखों के आगे से फिर गुज़र गया, फिर, नैन खुले, फिर देखा। फिर विचार आया, ''न जाने यह सचमुच ही कोई महाज्योति ही हो,'' जगत भी आकर चरणों पर झुकता है, यह भी सारी आयु अपनी लगन से नहीं हटा और जो कुछ उच्चारण करता है, वह प्यार का आकर्षण डालता है।

इस तरह के विचार और उस प्रकार की झलकें बारी–बारी आँखों के आगे से गुज़र रही थीं कि श्री गुरू जी ने एक तिरछी दृष्टि से पिता जी की ओर देखा, पर परदा जो भक्तिभाव के बिना, मन से नहीं उतरता, इस दृष्टि से तनिक–सा हट गया। मेहता कालू को पुत्र अवतार दिखाई पड़ा। एक दृष्टि से माया को माया के स्वामी ने आकृष्ट किया कालू के हृदय से पट[१] (परदे) उतरे। उस क्षण सोच विचार और वहमों में से निकलकर मन 'ज्ञात' (सूझ) की अवस्था में आ गया। वह जो एक नशा, एक मद, माया के मोह का एक विष–सा चढ़ा हुआ था, वह जो पूर्वले तपों के तामस का अंधकार था, वह दूर हो गया।[२] एक और प्रकार की सूझ आ गई। क्या देखता है कि पिता पुत्र कोई नहीं। वह (कालू) एक जिज्ञासु है, जिसे भाव–भक्ति तथा कल्याण की आवश्यकता है और जो समक्ष बैठा है, वह दाता है, अदेश से आया है, त्रिलोकी का नाथ है। गुप्त प्रकट संसार सारा ही इसके चरणों पर है, तब अति श्रद्धा तथा प्रेम में आकर :-

बोलयो करि कै भाऊ घनेरा :–
'मैं जानत रहिओ सुत मेरा।
महाँपुरुख तुम दीन दिआला,
मुझ उर दीजै गियान बिसाला।
जिस ते जनम मरन है हाना,
उपजै अबचल अनंद महाना।
मैं हौं कौन? मोहि सुध नाहीं,
रहिहौं हरख सोग के मांहीं।
इक छिन मन थिर होवति नाहीं;
बिचरहि राग द्वैख के मांही (गुरू नानक प्रकाश)

इस तरह अपने मन की दशा का ज्ञाता हो आया और इस तरह की प्यास वाहिगुरू की कृपा की लग आई तो श्री गुरू जी ने कहा :-

इस सारे पसारे में एक ज्योति- हाँ एक ही जो–पसर रही है, यह सारा पसार भी उसी एक ही ज्योति का पसार है। वह ज्योति निरंकार है, वह जीवनाधार है, जो व्यक्ति उसके सम्मुख है, वही सुखी है। जैसे, जो व्यक्ति अग्नि के सम्मुख है, वही उसकी तपन से लाभ

---

१. 'आसा अन्देसा दुइ पट जड़े' ।।

२. अस कहि क्रिया दिशटि अवलोकी ।।
पित के ऊर ते माइआ रोकी ।।
ततछिन गयात रिदै हुइ आई ।।
जनु मद उतर गये, सुधि पाई ।। (गुरू नानक प्रकाश)

उठाता है और जो विमुख है, दूर है, वह दु:ख में है। जैसे अग्नि से जो दूर है वह सर्दी के कष्ट में है, वैसे ही जो प्रभु से दूर है । वह दुख में है। आठों पहर इस ज्योति पर–इस निरंजन निरंकार पर–मन की एकाग्रता की आवश्यकता है। जब यह निरंकार सर्वव्यापक है, घट–घट में है फिर राग द्वेश, हर्ष शोक काहे का? यह ज्योति यहाँ पर वहाँ पर, हरेक स्थान पर है, फिर मन का भय क्यों? जब यह रक्षक, पालक प्रत्येक स्थान पर है, तन धन का अंधकार वाला प्यार किस लिए? जब घर में तथा बाहर वही है तो घर का मोह क्यों और बाहर का त्रास क्यों?

कालू – पर वह दिखाई नहीं पड़ता।

गुरू जी – निरंकार सर्वव्यापक है, जैसे धरती में जल होता है, पर छिपा हुआ। इसी तरह न जानने वालों के अन्दर भी निरंकार है, पर छिपा हुआ। जैसे कुआँ खोदें तो जल प्रकट हो जाता है, वैसे ही जिज्ञासुओं को प्रेम–भक्ति के यत्नों से निरंकार प्रकट हो जाता है। जैसे नदी का जल अपने–आप बह रहा है और बिना यत्न के प्रकट होता है, वैसे ही प्रेम वाले, भक्ति वाले, जागृत दृष्टि वाले जीवित मनों को सदैव प्रत्यक्ष दिखता और भासता है। सो सारे जगत में, सभी हृदयों में, प्रत्येक स्थान पर, हर एक रंग, प्रत्येक जगह पर ईश्वर पूर्ण है, प्रत्यक्ष होकर दिखाई पड़ता है। मनों की गति का अन्तर है, मनों का मोह रूपी निद्रा से जगाना है।

कालू – सोया हुआ मन कैसे जागे?

गूरुजी – उस निरंकार का स्मरण करे, याद करे, उसका आराधन करे, जपे उठते–बैठते, चलते, सोते तथा काम–धन्धे में लगे हुए भी उस निरंकार निर्वाण को कभी न भूले। यह समृति, निरन्तर अथवा शाश्वत स्मृति, माया के परदे को हटाती है। यह निर्मल, उज्ज्वल लखता होकर अन्दर प्रवेश करती है और निरंकार तथा हमारे बीच के सभी अन्तर मिटा देती है।

यह सुनकर कालू ने फिर दाता जी की ओर देखा। इस समय मन श्रद्धस में था, पुत्र भाव से नहीं, आश्चर्य तथा विस्मय की अवस्था में जाकर देखा तो क्या देखता है कि गुरू नानक के रोम–रोम में से 'धन्य निरंकार, धन्य निरंकार' हो रहा है, वही आँखों द्वारा दिखता है, कानों द्वारा सुना जाता है। हाँ, गुरू नानक के चारों ओर 'धन्य निरंकार' के सूर्य की किरणों की वर्षा हो रही है। वन, तृण सब में से 'धन्य निरंकार' ही निकल रहा है। अब कालू को 'धन्य निरंकार' की लगन लग गई। इस महारस का स्पर्श लग गया और कालू जपने लगा–

धन्य निरंकार! धन्य निरंकार!!
निरमल मन ह्वे सिमरन लागा।
उपजयो गिआन मोह तम भागा।। (गुरू नानक प्रकाश)

हाँ जी, मेहता कालू आज नाम जप रहा है, आज नानक–उस बालक नानक–से ज्ञान लेकर दमक उठा है, कि जिस नानक निर्बन्ध को सारी आयु अपने अधिकार में डालने का यत्न करता रहा है। जिस नानक को कुल की मान हानि करने वाला, घर का द्रव्य लुटा देने वाला, निखट्टू और बावला समझता था, वह नानक दाता, प्रभु रूप होकर दिखाई पड़ा है। जिस नानक के कोमल कपोलों के ऊपर बीस रुपयों के बदले में नीले कमल का चित्र बनाया था, आज वह गुरू नानक-अदेश तथा पृथ्वी का स्वामी दिखाई पड़ा है और सारा धन उसके चरणों में पड़ा हुआ दिखाई पड़ा है। हाय जगत! शोक है कि तेने कभी समय पर पहचान नहीं की!

जिनके सिर तेने अज्ञान में अलग किये, उनके लिए ही तेने फिर यादगारों के गुरुद्वारे बनवाये। अनेकों बार तेने भूल की, अनेको बार सीखा। पर तू 'कभी भी सीख न सका'। सदैव महापुरुषों और उच्च मनों को तेने तंग किया और आज तक कभी भी तुझे पहले सूझ नहीं आई कभी समय पर तेने सम्मान योग्य व्यक्तियों की कदर नहीं की।

हाँ जी, वह गुरू नानक को कुल को डुबाने वाला पुत्र जानने वाला, मेहता कालू आज कहता है:-यह तो कलियुग का उद्धार करने के लिए गुरू होकर आया है।

मेहता कालू के आज वाले महावाक्य को भाई गुरुदास ते अपने समय में दोहराया और गाया है :-

कलि तारणि गुरू नानक आइआ।।

आईए आज हम भी गाएँ:-

कलि तारणि गुरू नानक आइआ।

और फिर गायन करो:-

मुहि तारण गुरू नानक आइआ।
कलि तारण गुर नानक आइआ।।

अब देखिए, गुरू नानक देव जी का विरद, जिस पिता ने सदैव कष्ट दिये, जिसने थप्पड़ मार-मारकर कपोलों पर नीले निशान डाल दिये, बार-बार उसी पिता से मिलने के लिए आते हैं, सत्कार करते हैं, बोल-कुबोल सहन करतें हैं और फिर झुकते हैं। जब कभी समय आया, बाण मारने का अवसर प्राप्त हुआ, उस पिता के कलेजे में सच्चाई का बाण सीधकर मारते हैं और माया के परदे को बेधकर और भ्रम के परदे को काटकर प्रभु प्यार में डाल देते हैं, 'जीवन दान' प्रदान कर देते हैं।

इधर से दृष्टि उठाकर, जगन्नाथ ने अपनी माँ की ओर देखा । उनके नेत्र मुँद रहे थे, चेहरे पर एक आभा छा रही थी। अन्दर की गति वाहिगुरू की जाने, पर चेहरा अचल होकर टिक रहा था। जगताधार जी ने अब माँ की ओर उसी दृष्टि से-जिस दृष्टि की याचना करते हुए भाई नन्दलाल[१] ने लिखा है:-

"यक निगाहे जां फजइश बस बवद दरकारे मा"[२]

देखा, उन्होंने नैन खोले ओर बावले होकर चरणों की ओर झुके, पर गुरू नानक ने बाँहों पर थामकर ऊँचे स्वर से कहा-'धन्य निरंकार! धन्य निरंकार!' और माता के रोम-रोम से 'धन्य निरंकार' की ध्वनि निकलने लगी। हाँ, निरंकार सर्वव्यापक होकर दिखाई देने लगा। माँ के मोह की निद्रा खुल गई मोह लालसा मिट गई, प्रेम तथा श्रद्धा ने स्थान ले लिया और सारे रोमों ने जिह्वा बन कर कहा-'धन्यवाद' 'धन्यवाद'। हे धरती तथा आकाश के स्वामी! यह

---

१. गुरू गोबिन्द सिंह जी के दरबारी कवि ।
२. सतगुरू जी की प्राण डालने वाली एक दृष्टि ही हमारे लिए काफ़ी है ।

झलक पहले दिन ही क्यों न दिखाई! मैं पुत्र प्रेम में लगकर भूली रही और तू था आप धुर से आया हुआ, घर से.....।

हाँ माता, परम पवित्र माता! वह दाता तो झलक दिखाता रहा, शब्द उच्चारण करता रहा-पाण्डेय, मुल्ला, पण्डित, वैद्य को तुम्हारे सामने सुमार्ग पर चलाता रहा, तब बहन तथा राय बुलार सुमार्ग पर चल पड़े थे, पर तुम दोनों को सूझ नहीं होती थी। मोह तथा धन के अधिकारियों को। यह देन अधिकार रहित भिखारियों को प्राप्त होती है। दाताओं को कौन देन देता है ओर कैसे देता है।

पर हाँ, यह भी गुरू नानक का विरद है कि जिसने धन के मोह के पटलों में आयु पर्यन्त बाँधे रहे माता-पिता को तथा सदैव घर के मोह में आकृष्ट करने वाले माता-पिता का उद्धार किया।

: २ :

यह सौभाग्यपूर्ण घड़ी तथा सौभाग्यपूर्ण दिन व्यतीत हो चुका है। श्री गुरू जी अभी तलवण्डी में ही हैं, माता-पिता के घर पर ही थे और ईश्वरीय आनन्द लग रहा था कि एक दिन श्री गुरू जी बाहर से आकर क्या देखते हैं कि बड़े पकवान तैयार हो रहे हैं। एक ओर बैठा हुआ पण्डित कुछ उच्चारण कर रहा है और बाहर खाने वालों की भीड़ इकट्ठी हो रही है। श्री गुरू जी, पिता जी के पास बैठकर कारण पूछने लगे। कालू जी ने कहा, ''आज पूर्वजों का श्राद्ध है और पितृों के उद्धार के लिए ब्रह्मभोज कर रहे हैं। यह सुनकर श्री गुरू जी मुस्कराये और कहने लगे-''पितृ अवगति को प्राप्त हुए हों, उनकी सद्‌गति के लिए तो कुछ सोच लें, पर जब पितृ सद्‌गति को प्राप्त हो चुके हों, तो उनके लिए सोचने का क्या काम?'' कालू ने चकित होकर पूछा-''क्या हमारे पितृ सद्‌गति को प्राप्त हो चुके हैं? और क्या तुम्हें इसका ठीक पता है?''

गुरू जी – हाँ, ठीक पता है।
कालू – क्या मुझे दिखा सकते हो?
गुरू जी – ईश्वर चाहे तो दिखा सकते हैं।
कालू – फिर दिखाओ।
गुरू जी – नेत्र मूँदकर प्रभु में ध्यान लगाकर बैठिये।

कालू जी अब नेत्र मूँदकर स्मरण में लगे हुए बैठ गये। क्या देखते हैं कि एक पतला-सा अन्धकार है और उसमें घबड़ाहट है और रोने की आवाज़ हो रही है, हाय-हाय हो रही है। फिर यह अन्धकार हट गया और एक मन्द-सा प्रकाश आ गया। फिर यह प्रकाश फैलने लगा, हलका ओर सुखदायी हो गया। फिर प्रकाश का रंग बदल गया, पर यह प्रकाश इतना तेज़ नहीं था जो कि असह्य हो, इसमें एक न चुभने वाली दूधिया कान्ति थी। फिर ज्यों-ज्यों प्रकाश बढ़ा, त्यों-त्यों भीतरी नैनों की देखने की शक्ति ओर सहनशक्ति भी बढ़ती गई, अन्त में वे एक महान रसदायक प्रकाश में पहुँचे, जहाँ पर प्रकाश, प्यारी-प्यारी झलक मार रहे थे, जैसे सागर में लहरें होती हैं, ऐसे ही वे सुन्दर सूक्ष्म तरंग में दमकते थे कि कालू जी ने कभी सपने में भी नहीं देखे थे। फिर उनके पिता जी दिखाई पड़े। जो आश्चर्य-से-आश्चर्य तथा सूक्ष्म-से रंगों के पहरावे में थे। न तो यहाँ पर शरीर थे और न ही शरीरों को ढाँपने के लिए

कोई सामग्री, पर फिर आकार भी दिखाई पड़ते थे और निराकार के से सामान के अति मनोहर वस्त्रों में वे दिखाई पड़ रहे थे। वे वस्त्र हमारे वस्त्रों के से नहीं थे, पर कोई आत्मिक वस्त्र थे जो सत्कार तथा आदर के चिन्ह थे।[१]

श्री कालू जी ने पिता जी को प्रकाश में तथा सुन्दर पहरावे में देखा[२], फिर बाबा जी (दादा) को उसी तरह देखा, फिर सारे पितृ देखे। कालू जी ने पूछा कि यह कौन–सा स्थान है? उन्होंने कहा–महापवित्र सुख की अवस्था है। कालू जी ने कहा। तुम यहाँ पर कैसे आए हो? उन्होंने कहा–जब से तेरे घर में जगत के स्वामी जी प्रकट हुए हैं, हम स्थान–स्थान से उच्च तथा स्वच्छ करके यहाँ पर लाये गये हैं ओर परम सुखी हैं। परन्तु तुम पर शोक है कि तुमने माया–मोह के अधीन होकर उस ईश्वरीय ज्योति का ज्ञान प्राप्त नहीं किया फिर उनका धन्यवाद है कि जहाँ उन्होंने हमारा उद्धार किया था; वहाँ पर उन्होंने तुम्हारे सारे व्यवहार को भूलकर फिर तुम्हें स्मरण प्रदान किया है। हे काले–

सुत को सुत न जान, बडिभागी!
'हरि' सो लखहु, होहु अनुरागी!

मेहता कालू जी ने सीस झुकाया और कहा–सच्च है। ...हाँ पूर्वजो! यह स्थान बड़ा सुखदायी है, मुझे भी यहाँ पर ही रख लो, मेरा चित्त अब लौटना नहीं चाहता। उन्होंने कहा–तू यहाँ पर स्वामी गुरू जी के आग्रह द्वारा आया है। तेरा समय अभी उस जगत में शेष है, कि जहाँ पर 'रात' है, यह 'सदैव दिन' का देश है।[३] यहाँ पर तुम्हारे आने की बेला आयेगी, और यदि तू जगन्नाथ से प्यार करेगा, तो यहाँ पर अवश्य ही आयेगा।

अब गुरू नानक देव जी ने पिता जी को जगा लिया। जागने पर जिस दृष्टि से कालू ने पुत्र को देखा, वह पूरण प्रेम भक्ति वाली थी। इन कौतुकों को देखकर जो सूझ उसे आई, वह उस दिन को भी नहीं आई थी, जिस दिन उसे नाम प्राप्त हुआ था। आज कोई कमी शेष नहीं रही। श्री मेहता कालू पूर्ण प्रेम रूप हो गया। सर्वव्यापक निरंकार की झलक उस पर पड़ गई है। हाँ, 'वाहिगुरू, वाहिगुरू' का स्मरण और उस दर्शनमय स्मरण में वह स्वयं प्रकाश रूप हो गया है। पुत्र से कहने लगा– वह स्थान अति मधुर था। गुरू जी ने कहा, अभी समय नहीं आया, अभी इस जगत में तुम्हारा कुछ समय और है।[४]

---

१. खड़ि दरगह पैनाईऔ मुखि हरि नाम निवासु ।

२. तां दरगह पैधा जाइसी । (वार आसा महला १)

३. ओथै दिहु ऐथे सभ राति । (मलार महला १)
गुरू नानक जी का वाक्य है कि परलोक में सदा दिन अर्थात् प्रकाश है और इस जगत् में वहाँ के हिसाब से 'रात' अर्थात् अन्धकार है।

४. गुरू नानक प्रकाश तथा बाले की साखी बताती है कि इस घटना के कुछ समय पश्चात् मेहता कालू जी परलोक सिधार गए। पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि जब श्री गुरू नानक देव जी करतारपुर को बसाकर वहाँ पर निवास करने लगे तो मेहता कालू वहाँ पर आया और उसने पूर्ण गुरू और अवतार माना और निवास करने लगा । यों लगता है कि अदेशी राजगद्दी का तिलक मेहता कालू ने ही ईश्वरीय माथे पर उस समय लगाया । इस घटना के कुछ समय पश्चात् मेहता कालू जी का देहान्त हुआ होगा ।

अत: श्री मेहता कालू जी अब ईश्वरीय आज्ञा के ज्ञाता, ईश्वर के भरोसे तथा स्मरण वाले, पुत्र की वास्तविकता के ज्ञाता होकर सुखी हो गये हैं। गुरू जी अब फिर घर से उठकर तैयार हो गए हैं। हाँ, जगत तारक जी उठकर चल पड़े हैं। बर्फों से ढके हुए पर्वतों के शिखर बादलों को अपने पास रखने के लिए आकृष्ट करते है, बिजलियाँ उन्हें सदैव आकाश में रखने के लिए इच्छा करती हैं, पर उन्हें प्रत्येक स्थान पर शीतलता प्रदान करनी है और बरसना है, इसलिए चल पड़ते हैं, वैसे ही गुरू जी उठकर चल दिये। आज मेहता कालू तथा माता तृप्ता जी उदास हुए हैं, पर वियोग का रोना नहीं रो रहे, आज टोट तथा कलेजे में कसक नहीं उठती। आज कर्मों पर क्रोध और पुत्र से रुष्टता और ईश्वर से अन्धकार नहीं आता। आज धन्यवाद है, धन्यवाद में वैराग्य है, वैराग्य में प्रेम है, आज्ञा में भरोसा है स्वाद वाले नैन छम-छम बरसते है, पर रसदायक-अश्रु भरते हैं जो नैनों में ही शुष्क हो जाते हैं। आज उन्हें गुरू नानक का विदा होना, ईश्वरीय तथा महान उच्च 'दया' दिखाई पड़ती है। जलता हुआ जगत, रोता, दुखी होता ओर सिसकियाँ भरता और अपनी पहली अवस्था से करोड़ों बार अधिक तड़पता हुआ दिखाई देता है और अदेश में वाहिगुरू जी दयालु हुए दिखाई पड़ते हैं और गुरू नानक जी उनकी आज्ञा में शीतलता का फव्वारा हाथ में लिये हुए सदैव बरसने वाले बादल, की भाँति शीतलता प्रदान करने चल पड़े दिखाई पड़ते हैं।

यह है 'उच्च जीवन' का लाभ, जिसकी ओर से जगत सो रहा है। यह उस 'उच्च' जीवन का प्रताप है, जिसे जगत एक भ्रम, एक वहम, कोई छिपी हुई संशय वाली बात समझता है। हाँ, जिसे जगत मज़ाक करता है और जिसकी टक्कर में कठोर, सख्ती वाले, वणिक-वृत्ति वाले, अन्धकार वाले, भय वाले, स्वार्थता वाले, मोह-माया के अन्धकार वाले जीवन को अच्छा और सत्य समझता है। यह है अन्तर उस जीवन का, जो जगत को प्यारा है और यह वही जीवन है जो मेहता कालू जी ने प्राप्त किया है, जिसका पता जगत को नहीं है और जिनके कारण जगत अब तक इस 'उच्च जीवन' वालों के साथ धक्का, अत्याचार और ईर्ष्या करता है। आज वही मेहता कालू अपने उच्च नये प्राप्त किये जीवन में जा रहा है-मेहता कालू-अपने पुत्र को, पर जगत के पिता गुरू नानक को विदा होते देख रहा है। चाहता है कि उसके पास रहे, चाहता है कि कभी भी आँखों से ओझल न हों, पहले से अधिक इच्छा करता है कि सदैव दिखाई दें, सदैव दिखाई दें पर आज वह जानता है कि अब उसके ध्यान में निवास कर गये हैं। नानक एकदेशीय नहीं, नानक सर्वदेशीय हैं। नानक का निवास प्रत्येक हृदय में है। कहीं भी विचरता रहे, पर सभी ध्यान हृदयों में समाया होता है।

अत: मेहता कालू अब जानता है कि जैसे उसका हृदय शीतल हुआ है, वैसे ही और तपे हुए हृदय भी शीतल हों। हाँ, हम अपने मोह का बलिदान दें, जिसे जगत् शीतल हो। इस महायज्ञ, महा बलिदान, भारी कुरबानी के भाव में मेहता कालू तथा माता तृप्ता जी अपने परम प्यारे; प्राणों से प्यारे जी को आज विदा कर रहे हैं और संसार के महायज्ञ में, वहिगुरू के महान् प्यार में भाग ले रहे हैं।

---

१. जिऊ जल घटाऊ चन्द्रमा । (वार माझ डखणे महला ५)

यह उस 'उच्च जीवन' का प्रभाव है, जो गूरू नानक लेकर आया, जगत् को दान देता और सदैव दान जारी रहने के लिये अपने 'गुरू अंगद' तथा 'भाई बुड्ढा सिक्ख' में लगाकर 'सदैव जाग्रण' जारी रख गया है। उस जीवन में जीवित हो उठना हम सब सिक्खों का काम है।

धन्य गुरू नानक! धन्य गुरू नानक!

गुरू नानक देव जी की भेंट – फूल

''आज गुरू नानक आएँगे'' यह कहती हुई मालिन बगिया में गई। फूलों को सुनकर चाव चढ़ गया ओर आपा भेंट करने लगे। एक से एक बढ़-चढ़कर कहने लगा, 'सभी को तोड़कर ले चल, सुन्दरों के सरदार के सामने जाकर हमें भेंट कर दे।

श्री गुरू नानक देव जी तथा बुलबुलों की अभिलाषा

चन्द चढ़ा, आकाश कूकता गुरू नानक कल आयेंगे। झुरमुट में बुलबुल यों बोली हम भी गाना गायेंगे। गुरू नानक कीर्तन के प्रेमी, कीर्तन चलो सुनायेंगे। तुष्ट हुए तो साथ आपने वे अदेश ले जायेंगे।

सूचनाः- गुरू जी कुछ दिन तलवण्डी में निवास करते रहे थे। यहाँ पर निवास के दिनों में हुए दो और प्रसंग लिखे हुए मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं :-

□ □

५३ ब्रह्मचारी ब्राह्मण[१]

एक दिन एक भूखा ब्राह्मण आचार्य आया, उसने आकर मीठे वचन कहे। गुरू जी भोजन कर रहे थे, तब आपने कहा, 'आइए मिश्रा जी! भोजन तैयार है'। पण्डित ने उत्तर दिया, 'मैं यह भोजन नहीं खाता, मैं अपने हाथों से बनाकर खाऊँगा, जब एक हाथ पर गहरी धरती खोदूंगा, चौका दूंगा, एक बालिश्त भर धरती खोदूंगा, तब उसे चूल्हा बनाऊँगा। लकड़ियां धोकर जलाऊँगा, इस रसोई की धरती कैसी है? मैं तो नहीं खाता। तब बाबा ने कहा, 'इस पण्डित को कोरी रसोई दो।' तब पण्डित को कच्ची रसद मिली। पण्डित उसे बाहर ले गया। जाकर धरती खोदकर चौका बनाने लगा। जहां पर धरती को खोदता, वहां पर ही हड्डियाँ निकलतीं, तब चार पहर तक खोदता-फिरता रहा। जब भूख से व्याकुल हुआ तब कहने लगा, 'बाबा के पास जाऊँ।' तब आकर चरणों पर झुका, कहने लगा, 'जी वह भोजन मुझे प्रदान किया जाये, मैं भूखा मरता हूं।' तब गुरू जी ने कहा, 'स्वामी! भोजन का वह समय तो गया, पर तू अब जाकर वाहिगुरू कहकर धरती को खोद, रसोई करके भोजन कर।[२]

जब ब्राह्मण रसोई तैयार करके खा चुका तब सतगुरू जी ने उसे उपदेश दिया। इस उपदेश का सार सतगुरू जी ने 'बंसत महला' में बताया है :-

सुइने का चऊका कंचन कुआर।।
रुपे कीआ कारा बहुतु बिसथारु।।
गंगा का उदक करंते ही आगि।।
गरूड़ा खाणा दुध सिऊ गाडि।।१।।
रे मन लेखै कबहू न पाइ।।
जामि न भीजै साच नाइ।।१।। रहाऊ।।
दस अठ लीखे होवहि पासि।।
चारे बेद मुखागर पाठि।।
पुरबी नावै वरनां की दाति।।
वरत नेम करें दिन राति।।२।।
काजी मुलां होवहि सेख।।
जोगी जंगम भगवे भेख।।
को गिरही करमा की संधि।।
बिनु बूझे सभ खड़ीअसि बंधि।।३।।

---

१. पुरातन जन्मसाखी में, यह प्रसंग तलवंडी में हुआ लिखा है, पर औरों ने करतारपुर में हुआ लिखा है।

२. पुरातन जन्मसाखी ।

जेते जीअ लिखी सिरिकार।
करणी ऊपरि होवगि सार।।
हुकमु करहि मूरख गावार।।
नानक साचे के सिफति भंडार।।४।।३।।

सतगुरू जी ने उसे समझाया कि शौच, पवित्रता जो तुमने धारण की है, यह पवित्रता तथा शुद्धता से लांघकर वहम के मण्डल में पहुंच गई है। यदि तुम इसी पवित्रता को बढ़ा लो, स्वर्ण का चौका हो, गंगा का नीर हो, दूध तथा चावलों का स्वच्छ भोजन हो, तो भी निष्फल है। शौच के आगे जाकर वेद पुराणों का पण्डित भी हो, फिर तीर्थों की यात्रा भी कर ले, व्रत नियम आदि सभी संपूर्ण कर ले, सभी निष्फल है। चाहे मुसलमान हो, चाहे काजी मुल्ला अथवा शेख, चाहे गृहस्थी या कर्मकाण्डी हो, गृहस्थ से वैरागी योगी जंगम (संन्यासी) हो, सारे जीव हैं और सबकी पहचान कर्म से होगी, अत: अपने कर्म को पवित्र करो। जो कर्म तुम आत्म कर्म समझकर कर रहे हो, वे भ्रम होकर, तुम्हे चिपट गये हैं और तुम उनमें फंस गये हो। उनसे ऊँचे उठो, अपने कर्म को संभालो। शरीर का कर्म है :- शरीर द्वारा भला करना, सुकृत्य करनी। मन का कर्म है :- नाम जपना, जिससे मन का रुख पशुओं की भांति बाहर को उठ-उठकर दौड़ने वाला, चक्कर काट काटकर वाहिगुरू से लौ लगाने वाला हो जाता है। यह कर्म तो स्वीकार होता है, अन्य कोई कर्म परलोक में नहीं माना जाता।

रे मन लेखे कबहू न पाइ।।
जामि न भीजै साच नाइ।।

जब तक सच्चे नाम में नहीं रच जाओगे तब तक कुछ भी परलोक में नहीं माना जायेगा।

अत: ब्राह्मण यह उपदेश सुनकर, सतगुरू जी से नाम का दान लेकर अन्दर तथा बाहर से साधसंगत की सेवा में लगकर स्वच्छ हो गया और झूठे भ्रमों से मुक्त हो गया, स्वच्छता तथा पवित्रता तो उसने रखी पर भ्रम के बंधन टूट गये।

परदेश में गई हुई कोयल की प्रार्थना[१]

हे सुन्दरों के सुल्तान। मैं तुम पर बलिहारी हूं मैं पूर्ण रूप से तुम पर न्योछावर हूँ। तुमको आना है, पर समय के चक्कर ने हमें और देश में भेज दिया है। मुझ कोयल की तो एक ही बिलखती हुई कूक है कि मैं सदैव तेरा नाम लेती रहूं। यदि तुम्हारे दर्शन न हों तो, मैं यह दान मांगूती हूं कि लौ न टूटे।

□ □

१. यहाँ पर कवि की कविता का अनुवाद प्रस्तुत है ।

५४ भाई तारू पोपट

'तारु पोपट तारिआ गुरुमुख बालसुभाइ उदासी''।।[१]

(भाई गुरुदास)

यदि लग गई तो लग गई। लगी हुई कभी पूछती नहीं। जबरदस्ती ही लग जाती है; खरीदी नहीं जाती। आकर अचानक ही तड़पाती है। रो सखी! अगर यह जल उठी तो जल ही उठी। यह जलन सदैव शुभ है। यह जी नहीं चाहता है कि यह जलती हुई बुझ जाये। कोई उस तक पहुंचने का ढंग बताये। अरी सखी! जिसे यह आकर लग गई है, उसे बधाई दो। इसी लगी हुई ने तेरे हृदय में जीवित अग्नि जला दी है। तब उसने अपना स्पर्श लगाया तो गर्मी प्रदान की, तेरा अन्धेरा दूर किया और प्रकाश की ज्योति लगाई। लगी को सहना पीड़ा है, पर यह पीड़ा सुहावनी है। तब पीड़ाओं की, औषधि यह है, कि हे ईश्वर! अब यह न बुझे।'

कहा जाता है कि कुकनूस नाम का कोई पक्षी कहीं पर होता है। वह एक हजार वर्षों तक जीवित रहता है। वह राग गाता है और मस्त रहता है वह सभी संगीत जानता है। कई बुद्धिमान पुरुष कहते हैं कि मनुष्य ने इसी से राग सीखा है, जब इसका अन्त समय निकट आता है तब वह काठ में बैठकर, एक राग गाता है और अग्नि प्रज्वलित कर लेता है। उस लगी हुई आग में बैठा रहता है और राग गाता रहता है। पीड़ा सहन करता है, और तनिक भी हाय शब्द का उच्चारण नहीं करता। जलकर राख हो जाता है। परन्तु वर्षा होने पर जब वह राख भीग जाती है तब वह बरकतों वाली हो जाती है। उस राख में से कुकनूस फिर से जीवित हो उठता है, उसमें नया जीवन आ जाता है। सच्ची लगी के कारण ही कुकनूस ने मौत पर विजय प्राप्त की। उस पीड़ा ने, मृत्यु की पीड़ा को काट दिया और नवजीवन ले आई। अत: लगी हुई को सुहावनी समझिए, लगी हुई सदैव शुभ है। ईश्वर करे, यह किसी तरह आकर लग जाये। कोई उसका रास्ता बताये।

जलते हुए जगत की रक्षा करने वाले श्री गुरू नानक देव जी अभी तलवण्डी में ही नाम की शीतलता[२] प्रदान करते हुए निवास कर रहे हैं। सवा पहर रात जब शेष रहती है तो कीर्तन आरम्भ होता है, सेवेरे होने पर समाप्ति होती है। फिर सतगुरू जी किसी आने-जाने वाले के साथ बातें करते हैं और सुमति प्रदान करते हैं। फिर आप आराम करते हैं।

इस तरह कई जीव आये, और सुधरे। बड़े होकर, संसार के सुख-दुख देखकर ही किसी की अनन्त सुख की चाह उत्पन्न होती है, परमार्थ ही खोज करता है, सत्संग का अन्वेषण

---

१. यह सारी तुक भाई तारू पोपट पर भी समझी जाती है और आधी भाई तारू और आधी भाई बाले के लिए भी ख्याल करते हैं, बाल से भाव बाला समझते हैं ।

२. आतस दुनीआ खुनक नाम खुदाइआ ।। (वार मलार म० १)

करता है, पर आश्चर्य की बात यह है कि यहां पर दस वर्षीय एक बालक भी आने लगा है; जिसे उच्च जीवन का स्पर्श बाल्यकाल में ही लग जाता है। यह बालक सवा पहर रात रहते ही कीर्तन में आ जाता करता है और जहां पर श्री गुरू जी बैठते हैं, वहां पर पीछे की ओर अदब के साथ बैठ जाया करता है। यों बैठा प्रेम से कीर्तन सुनता रहता है और जब समाप्ति होती है तो आदर सहित नमस्कार करके घर को चला जाता है। संगत के लोग भी देखते थे और श्री गुरू जी भी इस कौतुक को जानते थे। लिखा है कि :-

'इक दिन श्रीगुरू बैन बखाने।
बारिक को घर देहु न जाने।'

(श्री गुरू नानक प्रकाश)

यह आज्ञा पाकर दूसरे दिन सिक्खों ने जाते समय बालक को रोक लिया और श्री गुरू जी के पास ले आये। तब श्री गुरू जी ने प्यार सहित पूछा 'बेटा'! तेरी आयु छोटी है, तू अमृत वेला में कैसे जाग पड़ता है? सवा पहर रात रहते समय तो बच्चों को गहरी नींद में सोने का समय लगता है। फिर यह आयु हंसने, खेलने, नाचने, टापने के लिए होती है, तुझे संत्सग का प्यार केसे उत्पन्न हुआ है? तब बालक ने हाथ जोड़े और कहा, श्रीमान्! मुझे मृत्यु से भय लगता है।

श्री गुरू जी – वह कैसे?

बालक – जी मैं समझता हूं कि बुड्ढे होकर मृत्यु आती है, अत: मैं प्रसन्न रहता था कि अभी बाल्यकाल है, यौवन है, बुड्ढे होकर देखा जायेगा, घर में मैने अपने बुड्ढे बाबा की मृत्यु देखी थी।

श्री गुरू जी – फिर तुझे मृत्यु का भय बाल्यकाल में कैसे पड़ गया।

'बालक तब ही दुइ कर जोरे।
कहन लगयो 'सुनिए प्रभ मोरे।
इक दिन माता मोहि पठाया।
हित अहार पावक मंगवाया।''

(गुरू नानक प्रकाश)

अर्थात् - मां ने एक दिन मुझे पड़ोस से आग लाने के लिए भेजा।[१] जब मैं आग लाया और चूल्हें में रखकर लकड़ियां जोड़ीं और मैं फूंक मारने लगा, पर आग नहीं जलती थी और मांगकर लाई हुई चिनगारी मन्द पड़ने लगी। तब माँ ने मुझे आवाज देकर कहा कि पहले छोटी-छोटी, बारीक लकड़िया लगाकर फूंक मार, तो आग जल उठेगी, बड़ी लकड़ियां बाद में लगाना। जब मैंने इस तरह किया तो आग जल उठी। उस समय मेरे मन में आया कि हैं, यह क्या हुआ!

---

१. पुराने समय में फासफोरस वाली दियासलाई नहीं हुआ करती थीं, लोग आग को राख में दबाकर रख देते थे और उससे फिर आग जलाया करते थे। या मोटी सी सलाई बनाकर उसके सिरे को गंधक लगाकर रख देते थे। आवश्यकता पड़ने पर आग की किसी चिनगारी के साथ सलाई का गंधक वाला सिरा लगाकर जला लिया करते थे और आगे उससे आग जलाते थे। या एक पत्थर को लोहे से चोट मारते थे और नीचे फटे हुए कपड़े का टुकड़ा रख देते थे, उसमें से चिनग गिरकर कपड़े को जला देती थी । कैसे भी हो, जिस घर में आग जलती थी, अड़ोस पड़ोस के लोग उसके घर से थोड़ी सी लाकर चूल्हा जलाया करते थे।

छोटी लकड़ियों को तो आग पहले लगती है। इसी तरह न जाने मृत्यु भी छोटी को शीघ्रता से ही आ लगती है[१]। फिर मुझे बालक मरते हुए भी पता चले तो मेरे मन में भय आया कि कहीं बाल्यकाल से युवावस्था आये ही न और मुझे पहले ही मृत्यु आ जाये, इसलिए मैं अभी से ही कुछ करूं। मैने सुना था कि सन्तों के पास कोई अच्छी बात होती है, तो आपकी महिमा हमारे घर में तथा सारे गांव में होती है, मै दर्शन के लिए आया, तो आपका आकर्षण पड़ गया। फिर यहां पर आकर सुना है कि अमृत वेला में जागना और सत्संग में आकर कीर्तन सुनना[२], मृत्यु के पश्चात सुख के दाता हैं और मृत्यु का भय दूर हो जाता है, इसलिए श्रीमान्! मैं प्रतिदिन आता हूं और कीर्तन सुनता हूं।

श्री गुरू जी ने कहा – भाई! तेरा नाम क्या है? बालक ने कहा : जी मेरा नाम तारू है। तब गुरू जी ने वचन किया 'बेटा तारू! तू कुल तारू होगा।'

देखा कर्तार के रंग, इस बालक की क्या उम्र है और कैसे लगन लग गई है। सभी बालक बालक ही होते हैं, पर इस छोटी उम्र में, जिसे शौक लग जाये और लकड़ियों में आग लगने से सूझ आ जाये कि मृत्यु का कोई निश्चित वेला नहीं, यह तो बचपन, जवानी, बुढ़ापा कुछ भी नहीं देखती, तनिक आश्चर्य की बात है। फिर यह विचार आ जाना तो बहुत कठिन नहीं पर इसके साथ उद्यम जाग पड़ना, एक पहर रात रहते ही उठ पड़ता और चुपके से अपने गांव से चलकर करतारपुर आ जाना, बालकों वाला भय भी न खाना और अंधेरे में ही मार्ग पर चलकर आना, ये, बच्चे के अन्दर किसी तगड़े गुण होने के चिन्ह हैं, या जैसे कहें कि कोई उत्तम संस्कार इसके अंदर हैं, जिन्होंने इतनी छोटी-सी बात से, जो प्रतिदिन हमारे देखते ही और बिना ध्यान किये ये वैसे ही व्यतीत हो जाती है, उसने बालक के मन में विचार, वैराग्य लाकर फिर उद्यम प्रदान किया और लगन लगा दी, जिससे प्रतिदिन सत्संग में आने का अभ्यास आरम्भ हो गया; जैसा कि ऊपर बताया है। जब कुछ समय इस तरह से बीतता देख तो गुरू बाबा ने आप उसे बुलाकर उससे सारी व्यथा पूछी। बाल्यकाल में मन में गन्थियां कम होती हैं, मन सीधा होता है, तर्क वितर्क कम उठते हैं। जिधर मन का झुकाव हो जाता है ऊधर वह सरल तथा बलवान होता है। वैसे यदि बलपूर्वक बालकों को किसी ओर ढकेल दें कि जिस ओर उसका मन नहीं लगता, तो वे प्राय: बड़े होकर उसके विरुद्ध चलते हैं, पर यहां तो अंदर से कोई ऐसा प्राकृतिक झुकाव हो गया कि अनजान अवस्था में ही सत्संग की लगन लग गई है और निरंजनी ज्योति गुरू नानक देव जी के साथ प्यार हो गया है। जब बालक कुछ समय तक इस तरह आता रहा, तो सतगुरू जी ने कहा! 'तारू'! तू वाणी का कीर्तन

---

१. 'भगत रतनांवली' में लिखा है कि तारू पोपट को छोटी लकड़ियों से वैराग हुआ और अत्याचारियों द्वारा बच्चों बुड्ढों का वध हो जाने पर, भाई बुड्ढा को वैराग हुआ था। श्री गुरू नानक प्रकाश में भी लकड़ियों द्वारा वैराग होने की साखी भाई तारू पोपट जी के साथ हुई दी हुई है। पुरातन जन्मसाखी में नाम नहीं दिया गया, पर साखी यही दी है।

२. पिछहु राती सदड़ा नामु खसम का लेहि ।।
खैमे छत्र सराइचे दिसनि रथ पीड़े ।।
जिनी तेरा नामु धिआइआ तिन कऊ सदि मिलै । (मारू महला १)

३. भगत रतनावलि ।

सुनता है, वाणी तेरे अंतम को धो रही है।[१] अब तुझे काम धन्धे वाली आयु में आना है। काम भी किया, और जो कमाई हो उसे बांटकर खाया कर।[२] तारू ने सत्य वचन कहा।

फिर किसी शुभ घड़ी में गुरू बाबा ने कहा- तारू! मन को द्वेष, विरोध, ईर्ष्या, तथा मोह से शुद्ध[३] रखना[४]। इस तरह शुद्ध मन में फिर इसका नाम में निवास होता है और शुद्ध मन वाले सारे गुण भी आ जाते हैं।

इस पर एक कथा है। एक राजा ने एक सुन्दर मन्दिर बनवाया उसमें शीशे आदि लगवाये। फिर राजा ने उस मन्दिर की दोनों दीवारों पर, दो बड़े कारीगर सुन्दर मूर्तियां बनाने में लगा दिये। दोनों दीवारें एक दूसरे के सामने थीं। दोनों के बीच में एक परदा कर दिया, कि वे एक दूसरे को न देख सके। जब पहला कारीगर मूर्तियां बनाकर उन्हें रंगों तथा स्वर्ण की धारियों तथा नगों आदि को बैठाकर संपूर्ण कर चुका तब राजा ने दूसरे से पूछा, भाई बता, तेरा काम कब समाप्त होगा? तब उसने कहा, बादशाह! मेरे काम में अभी देरी है। तब बादशाह उस कारीगर को उस मूर्तियों द्वारा तैयार हुई दीवार के पास ले गया। उसकी सुन्दरता को देखकर कारीगर क्या, राजा के सभी अहलकार वाह-वाह कहने लगे। जिस कारीगर ने यह मूर्तियां बनाई थीं, वह उस समय अपने साथ तोते का एक पिजड़ा भी लेकर आया था। उस दीवार पर उसने अंगूर की एक बेल बनाई थी, जिसके साथ ताजा, पक्के लाल रंग के अंगूर लहलहातें हुए लटक रहे थे। जब सभी लोग मूर्तियों की प्रशंसा कर रहे थे तो कारीगर ने पिजड़े में से एक तोता निकाल दिया। वह तोता उस मूर्ति की बेल के साथ अंगूरों के चित्रों के सचमुच के अंगूर समझकर झपटा कि मानो वे सचमूच के हैं और खाने के लिये ललचाकर जा पड़ा। जब तोते ने यह धोका खाया तो देखने वालों ने कहा, शाबाश! कला की कौशलता हो तो ऐसी हो कि जिसे पक्षी भी देखकर धोखा खा जायें। राजा ने दूसरे कारीगर से कहा कि देखो कैसा कमाल है। तब उसने कहा श्रीमान! बहुत अच्छा है। कुछ समय और व्यतीत हो गया तब राजा ने फिर कारीगर को अहलकारों सहित आकर पूछा कि सुना भाई! हम तेरा काम देखना चाहते हैं। उसने कहा, हुजूर मेरा काम तो अभी समाप्त नहीं हुआ। राजा ने कहा कि नहीं, जितना कुछ है, हम आज उसे अवश्य ही देखेंगे तब उसने कहा, श्रीमान! आप मालिक हैं, देखने से मैं इंकार कब कर सकता हूं, पर बीच वाले परदे का अंधकार पड़ रहा है और मेरी दीवार पर अभी इस समय गहरा अंधेरा है, इसे दूर करा दीजिये। तब राजा ने वह परदा दूर करवा दिया। जब प्रकाश पड़ा तो उसकी दीवार जगमग-जगमग और झिलमिल-झिलमिल कर रही थी। इस दीवार पर भी अंगूरों की बेल और अंगूर दिखाई पड़े और ऐसे चमकते और रसभरे दमकते थे कि एक बार तो सभी भूल गये कि मूर्तियां देख रहे हैं अथवा सचमुच ही बाग में खड़े है। इस

---

१. कोटि करन दीजहि प्रभ प्रीतम हरिगुण सुणीआहि अबिनासी राम ।।
सुणि सुणि इहु मन निरमलु होवै कटीऐ काल की फासी राम ।। (सूही छंत महला ५)

२. 'धरम दी किरत करके वंड खावणा' (भगत रतनमाल)

३. छोडिहु निंदा ताति पराई ।। (मारू सोलहे महला १)

४. 'मन राग द्वेख ते शुध करना । (भगत रतनमाल)

भुलावे में राजा ने अंगूरों का गुच्छा तोड़कर खाने के लिये हाथ पसारा जब हाथ दीवार से लगा तो ध्यान आया कि वह तो मूर्तियां देख रहा था। इस पर राजा ने स्वयं ही कहा, 'इसकी कोशलता उससे अधिक है, वहां पर तो पशु बुद्धि वाले तोते ने धोका खाया है। 'शाबाश!' बहुत बढ़िया कमाल है।'

जब पहले चित्रकार ने देखा कि यह तो बाजी जीत गया है और मैं पीछे रह गया हूं, तब राजा से कहने लगा, पातशाह्! क्षमा करना, आपको इस कला वाले ने धोका दिया है। इसको दीवार पर कोई चित्र नहीं बना हुआ, कोई बेल नहीं, कोई मूर्ति नहीं है, यह तो वैसे ही दिनों, वर्षों से दीवार को रगड़ रहा है। जब राजा ने इस बात का पता किया तो उसे पता चला कि इसने ठीक कहा है। अब राजा दूसरे शिल्पी से क्रोधित होने लगा, कि उसे धोखा क्यों दिया है? तब उसने विनती की कि मैने धोखा नहीं दिया, मेरी कला तो बहुत समय चाहती है। अब तो आप मेरी दीवार की सफाई का कौशल देखें कि इसने चित्रों का प्रतिबिम्ब अपने में लेकर उन चित्रों का वास्तव में दस गुणा करके दिखा गया है। अब वह मेरी भूमि तैयार हुई है, जिसके ऊपर मैं चित्र बनाऊँगा। यदि आपको शीघ्रता हो तो मैं काम बन्द कर देता हूँ। मेरे गुरू ने पहले मुझे सफाई की कौशलता और फिर चित्रकारी का कमाल दिखाने की आज्ञा की है। सो मैंने अपनी कला का चित्रित करने से पूर्व उसके लिये भूमि की तैयारी की निपुणता प्राप्त कर ली है। अब यदि आज्ञा हो तो चित्रकारी का काम आरम्भ कर दूँ, यदि न हो तो न आरम्भ करूं, पर मुझे समय अधिक लगता है। तब राजा प्रसन्न हो गया और उसे मूर्तियां बनाने के लिये समय दे दिया।

हे पोपट तारू! सफाई मूल वस्तु है। शुद्ध मन में सभी गुण होते हैं। गुणों के लिये भक्ति प्राप्त नहीं होती। भक्ति नाम है, परमेश्वर के प्यार में उसका स्मरण करना। नाम का स्मरण करता है; अतः गुणों तथा नाम का निवास इकट्ठा है, पर जीव में शुभ गुणों का अभाव है, गुण तो सभी कर्तार में हैं, जीव में कोई नहीं।[२] फिर हे पोपट बेटा! तब उस मन को निर्मल करो, मन उसके नाम से ही निर्मल हो जाता है।[३] पर दो और बातों की आवश्यकता होती है : धर्म का काम करना – आजीविका के लिये कोई भी काम किया जाये, वह धर्म से शुद्ध होकर किया जांये, फिर अपनी कमाई में से बांटकर खाये। भाव यह है कि धर्म कृत्य करके कमाई करे और धन का लोभी भी न हो।[४] दूसरे गुरुबाणी का विचार करे[५]। मन एकाग्र करके पाठ करे और फिर विचार भी करे। इस तरह मन शुद्ध तथा स्वच्छ होता है। मन पर लगा हुआ

---

१. विणु गुण कीते भगति न होइ ।। (जपुजी)
२. सभि गुण तेरे मैं नाही कोइ ।। (जपुजी)
३. भरीऐ मति पापा कै संगि ।। ओहु, धोपै नावै कै रंगि ।। (जपुजी)
४. घालि खाइ किछु हथहु देइ ।।
नानक राहु पछाणहि सेइ ।।
५. वाणी बिरलऊ बीचारसी जे को गुरुमुखि होइ ।।
इह बाणी महापुरख की निज घरि वासा होइ ।। (रामकली दखणी ओअंकार महला १)
गुरू रामदास जी ने कहा है :-
जिना अन्दरि नामु निधान है गुरबाणी वीचार ।।
तिनके मुख सद उजले तितु सचै दरबारि ।। (वारां ते वधीक म: ४)

कई प्रकार का मैल, इस तरह दूर होता है। फिर नाम है, वह भी मैल को काटता है। पर यदि पहला परिश्रम न हो, तो मन का दूसरा काम शीघ्रता से हो जाता है। नाम के दो काम हैं–पापों का मैल काटना और स्वच्छ हुए मन में रस रूप होकर स्थिर हो जाना। वह मन फिर प्रभु से एक स्वर होकर, उसे भेंट का रस कहें, चाहे उसे सफल का वास्तविक ज्ञान कहें, उसे लेता है अत: भाई तारू! तुझे कृत्य करके खाना है। बांटकर खाना है, सत्संग कीर्तन, वाणी का पाठ, सुनना तथा उसका विचार करना है। जो तू अमृत वेला में करता है, वही करना है और इस विचार द्वारा मन पर पहरा देना है, जिससे वह द्वेष, ईर्ष्या, आदि बुरे भावों में फिर न जाये। साथ ही शरीर पर पहरा देना है कि वह बुरे काम न करें। फिर हमको श्वास श्वास नाम जपना है।[१]

इस बाल्यकाल में ही सत्संग में लग जाने वाले भाई तारू जी का फिर अब जीवन क्या बना? लिखा है कि वह भजन में लगा रहता था और धर्म का कृत्य करता था और बांटकर खाता था, यों कि घर पर आने वाले सिक्खों की सेवा करता और सबसे प्रेम भक्ति करता। वह सज्जन पुरुष इस तरह का नाम तथा सेवा का जीवन व्यतीत करता हुआ अंत के पूर्ण तथा सफल तत्वज्ञान को प्राप्त हुआ।

भाई गुरुदास जी ने लिखा है :-

तारु पोपट तारिआ गुरमुख बाल सुभाहि उदासी।।

पुरातन जन्मसाखी ने लिखा है–

"तब बाबे की खुशी होई, लड़का पैरी पिआ।"

□ □

---

१. श्वास अंदर आये सो वाहिगुरू का जाप करना और यदि बाहर जाये तो वाहिगुरू का जाप करना । (भगत रतनावली)

इसका भाव है, श्वास अन्दर जाये या बाहर जाये तो नाम जपना है।

२. बाबा जी ने उसे आत्मज्ञान प्रदान करके निर्भय किया । (तवारीख खालसा)

१. ओअंकार सतिगुर प्रसादि

१. कर्तारपुर स्थापित किया

सूचना – अब सतगुरू जी परदेश नहीं गये पर घर से चल पड़े। पुरातन जन्मसाखी में लिखा है–'तदहु बाबा रवदा रहिआ घर तों।'

(तब गुरू जी घर से चल दिये)।

अनुमान है कि तलवण्डी से चलकर आप आसपास ही बिचरते हुए नदी पार हो गए और एक स्थान पर जंगल में ही नदी के किनारे बैठ गए। जैसा कि पुरातन जन्मसाखी में लिखा है :

''तब बाबा दरिआ पर बैठ गया'', तलवण्डी के निकट एक स्थान पर बहुत चर्चा चली, जो कोई सुनता था, आता था। लोग कहने लगे कि कोई खुदा का फकीर उत्पन्न हुआ है, उसका नाम नानक है और वह अपने खुदा के साथ रांता है। बहुत लोग इकट्ठे हुए, श्रद्धालु बनने की इच्छा की। जो कोई भी आता उसे आनन्द प्राप्त होता। बाबा जो श्लोक रचता था वे प्रकट हुए। ये श्लोक जो उच्चारण किये फकीर लोग इन्हें सरकण्डे बजा–बजाकर गाया करते थे :

'कूड़ निखुटे नानका ओड़कि सचि रही'

तब नानक के घर में 'एको नाम बखाणीअै' अर्थात एक ईश्वर के नाम का प्रवाह चल पड़ा। बहुत स्तुति होने लगी, बहुत यश फैला। जो कोई हिन्दू, मुसलमान, योगी, संन्यासी, ब्रह्मचारी, तपस्वी, तपेश्वर, दिगंबर, वैष्णव, अदासी, गृहस्थी, वैरागी, खान खानीन, उमराव, करोड़पति, भूमिपति, आता ज्ञान प्राप्त करता। सभी लोग स्तुति करते। तब जहाँ पर बाबा रहता था, उस ग्राम के पास एक करोड़पति रहता था।''

उपरोक्त से विदित है कि तलवण्डी के निकट, रावी नदी के किनारे, आप कहीं पर बैठ गए हैं, पर जिस समय करोड़पति का नाम आ गया तो स्पष्ट रूप से पता चल गया कि भाव कर्तारपुर से है, जो लाहौर से ऊपर की ओर रावी के किनारे पर ठिकाना है, जहाँ पर सतगुरू जी ने कर्तारपुर की स्थापना की।

जब पुरातन जन्मसाखी की ओर खोज की जाय तो दूसरी उदासी से पूर्व राजा शिवनाभ के साथ मनसुख की वार्तालाप होती है तो वह राजा को बताता है, श्रीमान! लाहौर से कोई पन्द्रह कोस की दूरी पर पंजाब में कर्तारपुर की स्थापना की गई है। वहाँ पर गुरू बाबा नानक का निवास है। रायभोइ भट्टी की तलवण्डी की रावी के पार, कर्तारपुर नामक स्थान की रावी के इस किनारे पर स्थापना की है, वहाँ पर महापुरुष रहता है।[१]

अत: यह स्पष्ट हो गया कि कर्तारपुर की स्थापना पहली उदासी से वापस लौटकर कुछ

---

१. स्पष्ट हुआ कि उस समय कर्तारपुर इस ओर था और अब रावी अपना पुरानी मार्ग छोड़कर इस ओर आ गई है। सम्भव है कि लेखक का अनुमान गलत हो जैसे लाहौर से १५ कोस अर्थात् बीस मील बताता है, पर यह स्थान ल़ाहौर से काफी दूर है।

दिन घर पर ठहरकर और दूसरी उदासी, कर्तारपुर से आरम्भ की। कर्तारपुर की स्थापना का कुछ समाचार आगामी प्रसंग से चल जाएगा।

□ □

५५ दोदो रानी

: १ :

सुहावनी रावी अपने बरफानी घरों का त्याग करके, ऊँचे, नीचे, टीलों, खड्डों, पत्थरों वाले पहाड़ी मार्गों को लांघकर माधोपुर के समीप मैदानों में आ गई है। यहाँ से चलकर भी कुछ आगे होकर गुजरी है। हरे-हरे खेतों के कोसों के कोस दोनों ओर लहलहा रहे हैं; बीच में यह रावी, जीवन प्रवाह की भाँति दिन-रात चलती हुई, मग्नता की गति से अपने विशाल सागर की ओर चली जा रही है।

मीठी-मीठी गुलाबी ऋतु है, गर्मी समाप्त हो चुकी है, शरीर को कष्ट देने वाली सर्दी अभी नहीं आई। सुखद, प्यारा लगने वाला, मीठा-मीठा आँखों को ताज़गी प्रदान करने वाला, चेहरे को शीतल करने वाला जाड़ा है। सर्दी रात में तो भीतर सुलाती है पर दिन में दोपहर के समय इतनी भी नहीं रहती।

दोपहर का समय है, पतली-पतली ठण्डी-ठण्डी वायु चल रही है, धूप अभी तापी तो नहीं जाती, पर बुरी भी नहीं लग रही। इस समय एक जाट स्त्री रावी के किनारे एक पुराने वृक्ष की गिरी हुई डाल पर बैठी है। थोड़ी दूरी पर एक बड़ा शीशम का वृक्ष है, जिसके पत्तों में से धूप छाया की एक परछाई-सी इसके ऊपर पड़ रही है, न तो छाया का जाड़ा है और न धूप की घबड़ाहट। छाछ की खाली मटकी धरती पर नीचे रखी है, इसके ऊपर कांसी का कटोरा रखा है और कटोरे में रोटी लपेटने वाला कपड़ा पड़ा है। जाटिनी ने दोनों हाथ अपने हाथों में फँसाकर कलाई घुटनों में डाल रखी है। नदी के उत्तर की ओर दृष्टि जमा रखी है और अचल कानों को उस ओर लगाकर यों बैठी है कि मानो एकाग्र हो रही है।

इसकी उम्र जवान है, डीलडौल लम्बा है, शरीर ज्यादा मोटा नहीं, पर बहुत दुबली भी नहीं। गंदमी, रंग है, नक्श तीखे हैं, चेहरा लम्बा है, पर कुछ गोलाई वाला है। नैनों में एक सलोनापन है पर इस समय एक ओर ध्यान में लगे हुए नैन शांत रूप हैं, जब हिलते हैं तो बताते हैं कि जिस मन के यह झरोखे हैं, वह समझदार है। इस युवती नें विद्या प्राप्त नहीं की, शिक्षित लोगों की संगति भी नहीं की पर नैनों पर स्वामी संस्कारी जीव है, स्वभाविक ही सिद्ध पुरुष समझ तथा विचार वाला है। हाँ, वह अच्छी बातें करने की कदरदान भी है और सुंदर बातों का विवेचन ही कर लेती है।

इस समय इस युवती के कान किसी मधुर प्यारे स्वर की ओर लग रहे हैं, नैन उस ओर लगाये हुए हैं, कानों तथा नैनों का स्वामी मन सारा उसी रस में लीन हैं बैठी है। पर अचल, मानो पत्थर की मूर्ति है। जिधर इसके कान, नयन तथा मन लग रहे हैं, वह स्थान नदी के उत्तर की ओर है। उधर से ही इसकी आत्मा में शीतलता प्रदान करने वाली एक ईश्वरीय नाद जैसी आवाज आ रही है, उधर से ही रावी नदी की जलधारा आ रही है। यद्यपि काफी दूरी पर

कोई व्यक्ति एक साज बजा रहा है, जिसकी टंकार इतनी दूरी तक आकर इसके कलेजे में झन्नाहट छेड़ रही है, यों कि मानो मन भी एक साज़ है और तारों की टंकार एक मिजराव है जो दिल के तारों को बजा रहा है ओर स्वर निकाल रहा है। उधर साज की मधुर तथा हृदयस्पर्शी टंकार के साथ एक कण्ठ की आवाज़ स्पष्ट आ रही है। कोई बहुत मीठा राग गा रहा है। सुनाई तो पड़ता है, पर सुनने वाली के कानों को इससे पहले इस तरह के ऊँचे राग को सुनने की आदत नहीं थी, इसलिये सारा नहीं पर कोई-कोई टप्पा समझ में आ जाता है। समस्त बोले जाने वाले बोल को पूर्ण रूप से नहीं समझ रही, पर जितना कुछ समझ में आता है, वह संगीत के आते हुए स्वाद के साथ मिलकर मन को मग्न कर रहा है।

काफी समय तक राग होता रहा, काफी समय यह बैठकर सुनती रही। पहले एक टक बाँधकर ऊपर की ओर देखती हुई बैठी रही, फिर नैन मुँद गए थे, अब जब राग थम गया और कुछ समय व्यतीत हो गया तो पहले तो उसे ठण्डे निःश्वास आये फिर जुड़े हुए हाथ खुल गए, फिर नैन खुले, पर थोड़ी-थोड़ी देर बाद खुलते और बन्द होते थे। हाँ, अब सुन्दर सुखदाई तथा हलक श्वास बार-बार आता है। यों काफ़ी समय के पश्चात सावधान हो गई और अब अपने आप से बातें करने लगी!

''हे प्रभु! यह कौन हैं? कहाँ से आए हैं? तीन दिनों से यहाँ पर हैं। क्या करते हैं? जब ही इधर से गुज़रती हूँ इन्हें गाता-बजाता ही सुनती हूँ। सहेलियों के झुण्ड में मैं भी गाती थी। अब भी विवाहों में सारी-सारी रात जागती तथा गाती रहती हूँ। सुहाग-घोड़ी के अलावा मैं लम्बी ध्वनियों वाले गीत आदि सभी जानती हूँ। खीऊड़े (एक गाने वाली जाति) भी मैंने सुने हैं। सारंगी वाले भी आँगन में आकर बजा-बजाकर सुना जाते हैं, डोम स्त्रियों को भी मैंने सुना है, कितना मधुर गाती हैं, पर हे ईश्वर! यह राग मैंने कभी नहीं सुना था। यह गाना नहीं, एक जादू है। क्या यह मनुष्य हैं कि इन्द्र के देश से आये हैं? यह गाते हैं कि सिर में जादू की पुड़िया डालते हैं? स्वर निकालते हैं कि कलेजा बींधते हैं? बजाते हैं कि मन को ठाह-ठाह करके छेदते हैं? मेरी समझ में नहीं आता कि इनके पास क्या है। यहाँ पर कोई मनुष्यों की बात तो दिखाई नहीं पड़ती, कहीं कोई छल न हो। हो सकता है दोपहर को कोई परियों का राजा अपना राग गाता-बजाता हुआ मुझे दिखाई दे रहा हो। हैं? हो सकता है कोई ईश्वर के द्वार से ही आया हो। कहा जाता है कि आगे स्वर्ग में भी राग है, वह राग यही तो नहीं है? मैं क्या करूँ? घर नहीं जाया जाता। प्रतिदिन जब भोजन लेकर गुजरती हूँ, तो आते-जाते यही कुछ होता है और हृदय आकृष्ट होता है।...देखूँ तो सही यह कौन हैं?.... भय लगता है पर आकर्षण भी होता है, प्यार भी चुभता है पर सहम भी पड़ता है। ...जाऊँ और जाकर पूछूँ कि तुम कौन हो? शरीर में तो शक्ति ही नहीं रहीं, फूल की भाँति हल्की और दुर्बल हो रही हूँ, हाथ-पाँव हिलाने को जी नहीं चाहता, स्वाद है। भरपूर स्वाद यही होता होगा। सहन नहीं किया जा सकता। यह क्या है? यह स्वाद क्या है? कहाँ से आया है? क्यों आया है? किसी तरह यह प्राप्त हो जाए, मेरे पास ही रहे! भोजन तथा घर को फूँक डालूँ। हाय! मैं किसी तरह इस स्वाद में रहूँ? मैं भूखी भली, अकेली अच्छी कंगनी भली मैं भिखारिन भली, पर हाय किसी तरह इस स्वाद में रहूँ। क्या करूँ, किस तरह इस स्वाद को बाधँ लूँ। अन्दर डाल लूं, अन्दर डालकर पक्के ताले लगा लूँ। हाय! मैं किससे कहूँ? किससे पूछूँ, क्या प्रबन्ध करूँ?

क्या चिकित्सा करूँ? उनके पास जाकर पूछूँ? न जाने कौन हैं। क्या कहेंगे? भिक्षा देंगे कि इन्कार कर देंगे? ओह! इस स्वाद के बिना कैसे जीवित रहूँ? क्या करूँ? यदि पति को पता चल गया तो कहेगा बावली हो गई है। हाँ; इस घड़ी आनन्द है, मरना तो है ही, यदि इस क्षण इस स्वाद में समाप्त भी हो जाऊँ तो कितना अच्छा है, न जाने यों किस ढंग से मृत्यु आएगी। पर हाँ, मेरे वश में तो कुछ है ही नहीं। हाय! यदि मैं शहरिन होती, यदि किसी पाण्डेय की पुत्री होती, कुछ पढ़ी हुई होती, तो आज मुझे पता तो चल जाता, अनपढ़ मूर्ख, स्त्री जाति, ग्रामीण, पशुओं के से हमारे काम? हमें क्या पता यह क्या है ओर यह कौन हैं और इन ऐसों के साथ कैसे बातचीत की जाती है।''

काफ़ी समय तक इस तरह सोचती रही, ज्यों-ज्यों सोच-विचार करती गई त्यों-त्यों अनजाने ही वह स्वाद कम होता गया ओर शक्ति बढ़ती गई। अन्त में यह निर्णय किया कि चलकर पूछा जाए; अवश्य ही पूछा जाए, जो हो सो हो। यों सोचती हुई चल पड़ी।

जब समीप पहुँची तो दो व्यक्तियों के स्थान पर एक ही व्यक्ति दिखाई पड़ा, जिसकी गोद में बजने वाला साज पड़ा था और वह नदी की ओर देख रहा था। इस युवती ने थोड़ी दूरी पर खड़े होकर सीस झुकाया ओर कहा, ''भैया! यह गाना तुम गा रहे थे?''

बजनिया – हाँ बिटिया।

जाटनी – तुम कौन हो?

बजनिया – मैं ईश्वर का जीव हूँ।

जाटनी – इसी जगत के हो न?

बजनिया – हाँ बिटिया, तुम्हारे जैसा ही मनुष्य हूँ।

जाटनी – नहीं, झूठी बात है। तीन दिनों से मैं तुम्हें यहाँ पर बैठे हुए देख रही हूँ। हम ऐसे होते तो किसी समय आग जलती दिखती, भोजन बनता होता, कहीं से कुछ लाते हुए दिखाई पड़ते, कहीं जाते हुए दिखते, कभी खाते-पीते हुए दिखाई पड़ते।

बजनिया – बिटिया! मैं तो कई बार दर्शन के आश्रय ही समय व्यतीत कर लेता हूँ, पर मेरा दर्शन दाता शब्द के आधार पर रहता है।

जाटनी – हुई न बात! हुए न किसी अन्य देश के निवासी, यदि हमारे देश के होते तो हमारी तरह खाते-पीते न।

बजनिया – हम तो खाते-पीते हैं। रोटी, दूध, मक्खन सभी वस्तुएँ खाते हैं।

जाटनी – इन तीन दिनों में क्या खाया है?

बजनिया – शब्द।

जाटनी – हुई न बात, सच बताओ भैया! तुम हमारे इसी लोक के मनुष्य हो?

बजनिया – इसी लोक के। तेरी जैसी मेरी बहन है, तेरी माँ जैसी माँ का मैं भी पुत्र हूँ और इस समय मैं भूखा हूँ।

जाटनी – फिर कुछ खाते क्यों नहीं?

बजनिया – यदि कुछ मिलेगा तो खा लेंगे, यदि नहीं मिलेगा तो भी समय व्यतीत हो जाएगा।

जाटनी – भैया! फिर वही बातें! तुम हो तो किसी और जगह के, वैसे ही हेर फेर करते हो.....हैं बता तो दो?

बजनिया – यहीं के हैं, बिटिया।

जाटनी – फिर खाये बिना कैसे जीते हो? बजाते कैसे हो? गाते कैसे हो? मैं तो यदि एक जून खाना न खाऊँ तो घर का सारा काम ही रह जाए, हिल तक भी न सकूँ।

बजनिया – ठीक है, हिलने योग्य तो मैं भी नहीं, पर शोकाकुल नहीं हूँ।

जाटनी – तो क्या तुम गाने के स्वाद के आश्रय ही जीवित रहते हो?

बजनिया – यह स्वाद गाने का नहीं, गाते तो और भी बहुत से लोग हैं, कौन है जो रोना और गाना नहीं जानता, पर यह गाना और प्रकार का है और यह स्वाद और ही प्रकार की देन है; इस स्वाद का तृप्ति की भाँति कोई ओर ही आधार होता है।

जाटनी – तो क्या तुम कोई वे लोग हो, जिन्हें कण वाला कहा जाता है?

बजनिया – जैसे कहो, बिटिआ।

जाटनी – भैया! यदि मैं दूध लाऊँ तो आप उसे पी लेंगे क्या?

बजनिया – पी लूगाँ, बिटिया।... मुझे, बिटिआ ! इस रस का आधार तो लगता है, पर मैं अभी बिल्कुल ही इसके आश्रय जीवित नहीं रह सकता, इसलिये भूख भी लगती है और खाता-पीता भी हूँ।

जाटनी – तो मैं दूध लाती हूँ... (मुड़कर देखकर) भैया! हो तो तुम मनुष्य ही न, कोई और बात तो नहीं। मैं मूर्ख हूँ, गंवारिन हूँ, आयु भी मेरी छोटी है, मैंने काफी समय भी नहीं देखा, न जाने तुम किसी अपछरा जाति के हो और मैं भूल कर बैठूँ।

बजनिया – (हँस कर) बिटिया! क्यों यह भ्रम करती हो?

जाटनी – तीन दिनों से भूखे हो और फिर घबराते नहीं। यदि गाते हो तो जादू डालते हो। मैंने ऐसा, मनुष्यों में तो कभी नही देखा, यह शिखर दोपहर का समय, उजाड़ तथा नदी का किनारा बाल्यकाल से ही जो बातें सुनीं, वही आँखों के आगे फिर फिर जाती हैं। यों लगते हो जैसे अपछरा जाति के हो। बाकी मैं सूझ वाली तो हूँ नहीं, मुर्ख जाटनी हूँ। न जाने तुम वही हो, जिन्हें लोग पूर्ण पुरुष, प्रभु के प्यारे कहते हैं, भैया! गुस्सा मत करना, गाँव के लोग पशु की भाँति होते हैं, हमें कुछ पता तो है नहीं भैया! मेरी कही ऊँची-नीची बात का बुरा मत मानना।

बजनिया – (नेत्रों में अश्रु भरकर) बिटिया! कोई भ्रम मत कर, जिस के साथ तू बातचीत कर रही है, वह मनुष्य है और किसी पूर्ण पुरुष का अनुयायी है। तू मन की प्रसन्नता से अपनी तसल्ली कर ले कि मैं मनुष्य हूँ।

युवती को अब कुछ विश्वास हो गया। खाली मटकी सिर पर थी, मटकी को हाथ का सहारा देकर, सीस झुकाकर चली गई।

: २ :

थोड़े समय के पश्चात वह जाटनी सिर पर दूध का लोटा उठाकर ले आई। लोटे पर

कटोरा था और कटोरे में शक्कर थी जो ऊपर से तश्तरी से ढकी हुई थी। अब इस चेहरे के पर एक लाली थी, एक चाव तथा उल्लास था और कदम तेज़ थे। जब यह वहाँ पर आई तो फिर बाजा बज रहा था, वही बजरिया बजा रहा था, जिसके साथ बातें करके गई थी और गा कोई और रहा था। जब ध्वनि इसके कानो में पड़ी, कदम हल्के हो गये नैन मुँद गए और थोड़ी दूरी पर दूध धरती पर रखकर बैठ गई। इसका सिर बेबस ही पृथ्वी पर जा लगा और बिना कहे दोनों नैन गाने वाली सूरत पर जम गए, ऐसे जमे कि झपकना भूल गए। वह प्रसन्नता का रंग, वह एकाग्र प्रभाव, वह ईश्वरीय सौंदर्य, वह भक्ति वाला सलोना-पर, उस बेचारी ने कब देखा था, स्तम्भित हो गई। ऊपर से जो ईश्वरीय राग कानों में पड़ा, उसने यों बाँध दिया, जैसे मृग बाँधा जाता है। यों बैठी रही, जैसे पत्थर की मूर्ति होती है। अल्हड़, अनजान, जिसने कभी कुछ देखा नहीं था, एकाएक सर्वाच्च दर्शन के सामने आ गई और आश्चर्य में विलीन हो गई। उसे क्या पता यह कौन है? गाना होता रहा, वह दूध का लोटा रखकर मोहक दर्शनों के सामने दर्शन-सम्मुख हो बेठी और बैठी रह गई। उधर यह शब्द होता रहा :

हरि बिनु किऊ रहीऐ दुखु बिआपै।।
जिहवा सादु न फीकी रस बिनु बिनु प्रभु कालु संतापै।।१।। रहाऊ।।
जब लग दरसु न परसै प्रीतम तब लगु भूख पिआसी।।
दरसनु देखत ही मनु मानिआ जल रसि कमल विगासी।।१।।
ऊनवि घनहरु गरजै बरसै कोकिल मोर बैरागै।।
तरवर बिरख बिहंग भुइअंगम घरि पिरु धन सोहागै।।२।।
कुचिल कुरुपि कुनारि कुलखनी पिर का सहजु न जानिआ।।
हरि रस रंगि रसन नही त्रिपती दुरमति दूख समानिआ।।३।।
आइ न जावै ना दुखु पावै ना दुखु दरदु सरीरे।
नानक प्रभ ते सहज सुहेली प्रभ देखत ही मनु धीरे।।४।।२।।

(सारंग महला १)

गाना बन्द हो गया। साज की आवाज़ भी बन्द हो गई। हाँ गायक तथा बजनिया दोनों चुप तथा अचल हो गए, पर युवती की दृष्टि गायक पर ऐसी जमी कि हिलती ही नही थी। काफी समय के पश्चात युवती चौकी, नैन हिले, निश्वास भरा, अमृत के स्वाद वाली दो बूँदे नैनों से गिरीं, शरीर हिला और सुध आई। रस तथा स्वाद की मारी हुई अभी पूरी तरह नहीं हिल सकती थी पर पूरी सुध आ गई थी। थोड़े समय तक और इसी दशा में रहकर देखती है कि उठने की क्षमता आ गई है और अब जी चाहता है कि आगे बढ़े और भाईयों की अपेक्षा मीठे और पिता की अपेक्षा मीठे और पिता की अपेक्षा प्यारे लगने वाले दर्शन वाले दाता जी को दूध पिलाए, फिर उठी, चौंकी और आगे बढ़ी, कुछ दूरी से दूध का लोटा आगे कर दिया। इतने में गायक के नैन खुले, देखा और कहने लगे, ''बिटिया!''

'बिटिया'। न जाने यह आवाज़ कहाँ से आई, युवती का कलेजा व्याकुल हो गया, कलेजा मुट्ठी में लेकर सीस झुका दिया।

फिर आवाज़ आई 'बिटिया'।

फिर और कसक उठी।

फिर आवाज आई 'बिटिया'।

अब युवती के मन में उत्तर न देने के कारण भय आया, तब किसी अति पतले स्वर में कहने लगी:

श्री मान।

गायक – यह क्या लाई है?

युवती – श्रीमान् दूध है,....शक्कर है, इसे पीजिए।...... आप तीन दिनों से भूखे हैं।

गायक – बिटिया तू पी, दूध, पुत्र की भूख वाली है न। यह बात युवती के कलेजे में लगी। उसका पति, पुत्र तथा और धन पदार्थ के लिये प्रतिदिन चिल्लाता रहता था। सोचने लगी, 'सचमुच भुखे लोग तो हम हैं' पर आगे कुछ कहने से रुक गई और चुप हो गई। फिर कुछ क्षणों के पश्चात् कहने लगी–श्रीमान्! आप तो सदैव तृप्त हैं, आप जी.....आप.....।

गायक – तो तू दूध पी।

युवती – जी मुझे पिलाइए न स्वाद, जो अभी आया है जी, यही स्वाद पिलाइए जी मुझसे यह स्वाद कभी भी न बिछुड़े, आप यही पीते हैं न। यह (बजनिया की ओर संकेत करके) कहते थे हम शब्दों के आधार पर जीते हैं। यह स्वाद कहते होंगे; जो आप पीते हैं। यह बहुत अच्छा है, इसे कैसे पिया जाता है, जी मैं ग्रामीण हूँ, पशु की भाँति हूँ, कुछ सूझ तो है नहीं, बहुत स्वाद आया है, यही स्वाद दिलवा दीजिए।

गायक – बिटिया! दूध पी।

युवती – श्रीमान्! क्या पता? आपने दिनों से कुछ दिनों से कुछ नहीं खाया। थोड़ा–सा पी लीजिए और मुझे अगंमी स्वाद प्रदान कीजिए जिससे मैं फिर कभी भी बेस्वाद न होऊँ यों ही रहूँ जी। भूखी रहूँ जी, तृप्त रहूँ, पर जो स्वाद आया है, आता रहे सदैव आए। ...आप दूध को अधरों से तो लगाइए। (बजनिया की ओर संकेत करके) यह कहते थे यह इस धरती के हैं और हम लोगों की भाँति खाते–पीते हैं, इसीलिए तो मैं दूध लेकर आई हूँ।

आप मुस्कराए, साथी की ओर देखा, कहा, 'मरदाना! तू भूख के कारण व्याकुल हो रहा होगा, दूध पी ले'।

मरदाना – पातशाह! पहले आप पीओ, फिर थोड़ा–सा मैं भी ले लूँगा।

आप – बिटिया! दूध (कहते हुए नैन मुँद गए।)

युवती – श्रीमान्! आप पीजिए, मेरा हृदय शीतल हो।

आप – हृदय शीतल हो? हाँ शीतल होगा, कह: 'वाहिगुरू'।

एक झलक पड़ी, कोई दमक आई, चन्द्र की भाँति, नहीं और प्रकार का कलेजे में कड़ाका लगा, सिर में चक्कर–सा आया, चकरा गई, बेसुधी, पर वह बेहोशी नहीं थी, यों मानो, सोच–चिंता भाग गई है। कोई अँधेरा–सा फिरा, पर वह अंधकार की भाँति नहीं था, पर वैसा जैसे सूर्य की ओर देखने पर कुछ भी दिखाई नहीं देता। युवती के मुँह से बेबस ही बेसुधी में, यह झलक पड़ने पर निकला

–वाहि गुरू
मुँह तथा जिह्वा से
निकला – वाहिगुरू
रोम रोम से निकला – वाहिगुरू
अंदर हो गया – वाहिगुरू
अंदर प्रवेश कर गया – वाहिगुरू
अंतस आत्मा में हो गया – वाहिगुरू

यह चार अक्षर अंदर निवास कर गए चार अक्षर? हाँ चार अक्षर, पर 'अखरमहि त्रिभुवन प्रभु धारे'। 'अक्षर क्या घुसे, 'अक्षर' (अविनासी) अक्षरों का दाता आप घुस गया। जिसे यह अक्षर प्रकट करते हैं, जिसके यह जीवित चिन्ह हैं, रूप हैं, जिस निराकार का यह विदित स्वरूप हैं, नहीं जिसमें आप विदित है,[1] वह शरीरधारी, रूपधारी युवती के अंदर निवास कर गया। नाम के अन्दर में प्रवेश करने पर 'नामी' (जिसका यह नाम है, वह) आप अन्दर घुस गया।[2] हाँ युवती का 'अंह' और इस 'घट-घट में निवास करने वाले प्यारे' वाहिगुरू के बीच में जो अंतर था, जो परदा था, वह उठ गया। वाहिगुरू आत्मा में - अहं के अहं - अंतस के अंदर - ज्योंति की भाँति जग उठा। अहं दमक उठा, युवती स्वाद वाली हो गई, रस रूप हो गई।

कीर्तन सुनकर स्वाद तो आया था, पर अब मानो स्वाद का दाता अंदर निवास कर गया। पहले धूप का आनन्द प्राप्त किया था, अब सूर्य अंदर में जा बैठा। धूप कभी भी नहीं बिछड़ेगी। हाँ विलाप करके युवती ने माँगा – 'वह स्वाद न बिछड़े' पर भेंट कराने वाले ने 'स्वाद' का स्वामी अंदर बसा दिया है। बिछड़ी आत्मा को अपने प्रभु के साथ भेंट करा दी।[3] 'रस' माँगने वाली को 'रसाल' प्रदान कर दिया। धूप की इच्छुक को सूर्य प्रदान कर दिया।

वाह गुरू नानक,

दूध का घूँट अर्पण करने वालों को अमृत के सोत!

ईश्वर ने कहा था, बिछड़े हुओं को मिला दे, वाह तू खूब बिछड़े हुओं को मिलाया है, तेरी ही स्तुति में श्री गुरू अर्जुन देव जी ने कहा है:

'बिछुडिआ मेले प्रभु हरि दरगाह का बसीठु।।'

हाँ – 'घोलि घुमाई तिसु मित्र विचोले जै मिलि कंतु पछाणा।।'

गुरू नानक जिनि सुणिआ पेखिआ से फिरि गरंभासि न परिआरे।।

वाह तू, गुरू नानक!

....

१. नावै अंदरि हऊ वसा नाऊ वसै मनि आइ ।। (सिरी राग महला १ असटपदीआ)
२. नानक गुरमुख नामु धिआए नामे नामि समावणिआ । (माझ महला ३)
३. सो सतिगुरू वाहु वाहु जिनि हरि सिऊ जोड़िआ ।। (गुजरी वार महला ५)

युवती के नेत्र अब खुले, उसका सिर चरण कमलों पर है, उसके जीवित हो उठे और शीतल हो चुके सिर के ऊपर दाता का 'प्यार भरा हाथ' फिर रहा है और आवाज़ आ रही है:

''पीओ, यह अमृत सदैव पीओ।''

कुछ समय तक इस तरह प्यार देकर दाता ने कहा:

''बिटिया! उठो बिटिया! सदैव जपो।''

युवती उठी, अपने-आप शब्द हो रहा है, अर्थात् वह प्रयत्न नहीं कर रही, उसके अंदर 'वाहिगुरू' की ध्वनि हो रही है, कोई रस भर रहा है, स्वाद आ रहा है। अब अदेशी दाता जी ने कहा:

'ला बिटिया! दूध पिला।'

किसी आश्चर्यजनक उत्साह, किसी अकथनीय प्यार में युवती ने दूध में शक्कर डाली, कटोरा भरा और आगे बढ़ाया। दाता, सदैव दाता ने भेंट स्वीकार की, जीवित हो उठी के हाथों में से कटोरा लेकर दूध पिया:

अभै निरंजन परम पदु ताका भीखकु होइ।।
तिसका भोजनु नानका विरला पाए कोइ।।

(वारां ते वधीकम :३)

धन्य तेरे चोज़! अपने आप दान करने वाले, परमपद के भिक्षक बनाकर उन्हें दान देकर अमृत रूप कर देने वाले, फिर उनकी अर्पित तुच्छ भेंट भी लेकर प्रफुल्लित होने वाले।

: ३ :

दूध पिलाकर, अमृत, पीकर, कृतकृत्य होकर, जाटनी घर को आई। अब उठते-बैठते, चलते-फिरते, स्मरण तथा स्मरण के रस में रहती है, घर का काम-धन्धा वैसे ही करती है। पति उसे प्रसन्न तथा पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर देखता है, पर है वह मोटी बुद्धि वाला, कुछ भली भाँति ध्यान नहीं देता। वह अब अदेश की देवी बन गई, पर उसी तरह भोजन तैयार करती, सिर पर उठाती ओर खेत में लेजाकर पति को खिलाती है। दोपहर से पहले घर पर आकर फिर दूध का लोटा भरती है और अदेशों के स्वामी नानक जी के पास, जो रावी नदी कि किनारे उद्यान में ज्योती जगा रहे हैं ले जाती है। वे सृष्टि के स्वामी, सर्व के दाता, तुच्छ भेंट स्वीकार करते हैं, आप दूध पीते हैं, मरदाना को पिलाते हैं। युवती दूध पिलाकर और कीर्तन सुनकर घर आ जाती है, पर अभी पति को पता नहीं चला कि उसके घर में क्या अनुग्रह बरस रहा है।

संसार कुकर्मों तथा तर्क-वितर्क के लिए सदैव जागता है। 'जाटनी दोपहर को घर में आकर फिर चली जाती है, दूध का लोटा घर में से लेकर चली जाती है और तीसरे पहर घर को आती है, इस तरह को चर्चा अड़ोस-पड़ोस में होने लगी। वे सखियाँ जो दोपहर के पश्चात इसके साथ गप्पें लगातीं और हँसती-खेलती थीं, अब चकित होती हैं कि इसे क्या हो गया है; क्यों चुप रहती है और यह दूध लेकर किधर जाती है और तीसरे पहर के बाद लौटती है।

पहले यह बात सखियों में ही रही, फिर चर्चा बड़ी उम्र की स्त्रियों में होने लगी। इसी तरह स्त्रियों से फिर फिरकर पुरुषों में पहुँच गई, पुरुषों में से बात होते-होते उसके पति दोदा[१] के पास पहुँची कि उसकी पत्नी दूध का लोटा भरकर दोपहर को घर से चली जाती है और तीसरे पहर के बाद लौटती है।

दोदा था तो उजड्ड-सा, पर पत्नी से बहुत प्रेम करता था। भूमि का स्वामी तो था पर कोई बड़ा भूमिपति नहीं था। इतना था कि निर्वाह के लिए, भूमिकर आदि दे-दिलवाकर अन्न आदि बच जाता था, वस्त्रों का तथा एक दूध देने वाले पशु का निर्वाह चल जाता था। खेती के लिये पशु भी अपने ही थे और गाँव की साँझी चरनी भी थी। छोटे-मोटे बरादरी के धन्धे भी बिना ऋण लिये निभ जाते थे, पर उसका जी चाहता था कि बड़ा धनी तथा भूमिया बने। दोदा को पुत्र की भी बड़ी इच्छा थी। विवाह किये हुए भी पाँच सात वर्ष व्यतीत हो गए थे और अभी कोई बच्चा नहीं हुआ था। प्रायः जब काम-धन्धे से थक जाता और ऊपर से भूमिकर देते समय कभी रुपयों का संकट आ पड़ता, अथवा पशु दूध देने से रह जाता तो कहा करता, दोदो! क्या हम भी कभी दूध तथा पुत्र वाले होंगे? पत्नी भी उसके साथ हौका भर देती थी। वैसे दोदे का स्वभाव कुछ प्रसन्नता वाला और तनिक-सी बेपरवाही वाला था इसलिए वह इस तरह की बातों से साहस का त्याग नहीं कर बैठता था, पुत्र की प्राप्ति होनी तो प्रभु के वश में था, पर दूध के लिए इतना परिश्रम वह आप कर लेता था कि चरनी में से गऊ-भैस का निर्वाह हो जाए। दोदो स्वयं भी पशुओं को चराकर ले आती थी कई बार घर ही घास ले आती, या कुएँ पर चारा ले आती, यदि कुछ अन्न बच जाता या मक्खन बच जाता तो उसका घी बनाकर गाँव के बनिया के पास बेचकर धीरे-धीरे कुछ धन जमा करती रहती थी। जब कोई पशु दूध देना बन्द कर देता, तो बाँसली निकालकर दोदा के आगे रख देती और कहती कि यह ले, दुःखी मत हो, रुपयों का प्रयोग कर ले और घर को दूध देने वाले पशु से रिक्त न होने दे। इस तरह पत्नी पति का जीवन व्यतीत हो रहा था। दोदी सवेरे उठकर गोबर कूड़ा भी सम्भालती थी, दही बिलोकर फिर दूध निकाल लिया करती थी, रोटी, लस्सी मक्खन आदि, अपने पति को खेतों तथा कूएँ पर पहुँचाती थी। कपास निकाल लाती थी, आवश्यकता पड़ने पर खेत में फसल की कटाई के समय भी पीछे नहीं हटती थी। आलसी तो बिल्कुल थी ही नहीं, इसलिये दोदा को, अपनी पत्नी की चुगली सुनकर क्रोध नहीं आया और एकाएक लाठी उठाकर चल नहीं पड़ा था, पर सोच में अवश्य ही पड़ गया था। दोदा मन में से बात को भुलाने का यत्न करता पर प्रतिदिन तेरे-मेरे के कहने को सुनकर मन को धैर्य कैसे आये? उसका मन लोगों की बात पर भरोसा न करता था। एक दिन अपनी मोटी अकल में से राह टूटता कहीं पहुँच गया। कोई ढंग सोच निकाला, वह यह था कि एक दिन छिपकर पत्नी के पीछे जाये। अतः एक दिन, जब उसकी पत्नी दूध लेकर गई, वह भी पीछे-पीछे गया और जब उसने दूध गुरू जी के आगे जाकर रखा, तो थोड़ी दूरी पर एक वृक्ष के तने के साथ, दोदा छिपकर देखता रहा। दूध पिलाकर जाटनी घर को लौट गई, दोदा ने दो-तीन दिन इसी तरह उसका पीछा किया। इसके हृदय पर गुरू जी के दर्शन का आकृष्ट करने वाला तथा मीठे प्रभाव वाला असर पड़ा। एक दिन दूध पी चुकने के पश्चात मरदाना का राग बजा और ईश्वरीय राग हुआ। यह

---

१. ज्ञान रत्नावलि ; जन्मसाखी, कर्ता भाई मनी सिंघ ।

कीर्तन इतना स्वादिष्ट था, कि उड़ते हुए पक्षियों को बाँधकर बैठा देता था। दोदा भी इसके स्वाद में मुग्ध होकर, अपने गुप्त स्थान पर बैठा रहा। आज जगत के गुरू ने कहा–बिटिया उस वृक्ष के तने के साथ जो मनुष्य बैठा है, उसे लिवा ला। जब वहाँ गई तो क्या देखती है कि उसका पति है, कुछ चकित–सी होकर फिर हँस पड़ी ओर कहने लगी – 'छिपकर क्यों बैठे हो? वह तो अन्तर्यामी है, आ जाओ, तुम्हें बुलाया है, आओ यदि कुछ भाग्य में है तो ले लो। देखो तुम आये हो चोरी–चोरी और बिना माँगे तुम्हें दान देने के लिये अपने–आप ही लिवा भेजा है।'

दोदा लज्जित होता, कुछ झिझकता, पर अन्त में उठकर चला पर पैर आगे नहीं उठता था। एक तो उसे अपनी लज्जा आती, दूसरा वह देख चुका था, कि उसकी पत्नी तो सन्तों को दूध पिलाती है, तीसरा कीर्तन का प्रभाव पड़ चुका था, अत: रुकता हुआ, थमता हुआ तथा लज्जित होता हुआ धीरे–धीरे आगे बढ़ा। पत्नी ने कहा, 'सीस झुका दो और चरणों में पड़ जाओ।' दोदा पत्नी के संकेत पर नृत्य करने वाले पुरुषों में से नहीं था, पर पत्नी के साथ झगड़ता खीजता भी नहीं था। पत्नी के गुणों ने इसे प्यार करने वाला और उसकी बात की क़दर करने वाला बनाया हुआ था। अत: इस समय अपनी लज्जा, पत्नी के कहने और आगे से भारी प्रभाव पड़ जाने के कारण दोदा चरणों पर झुक गया। सतगुरू जी मुस्कराये और कहने लगे :–

दोदा! आ भाई सज्जन ! सामने आ।

दोदा–श्रीमान्! कुछ नहीं जी, हाज़र जी।

सतगुरू–तू पुरुष है, कानों के साथ ईश्वर ने आँखें भी दी हैं, तूने आँखों का प्रयोग भी किया है। अब माँग, जो तेरी इच्छा हो, ले ले।

दोदा माँगने से संकोच कर गया, कुछ झिझक गया, आँखें नीची कर लीं और चुप हो गया।

इतने में मरदाना ने जंत्र बजाया :–

हरि बिनु किऊ जीवा मेरी माई।।
जै जगदीस तेरा जसु जाचऊ मैं हरि बिनु रहनु न जाई।।१।।रहाऊ।।
हरि की पिआस पिआसी कामनि देखऊ रैनि सबाई।।
श्रीधर नाथ मेरा मनु लीना प्रभु जानै पीर पराई।।१।।
गणत सरीरि पीर है हरि बिनु गुर सबदी हरि पाई।।
होहु दइिआल क्रिपा करि हरि जीऊ हरि सिऊ रहा समाई।।२।।
ऐसी रवत रवहु मन मेरे हरि चरणी चितु लाई।।
बिसम भए गुण गाइ मनोहर निरभऊ सहजि समाई।।३।।
हिरदै नामु सदा धुनि निहचल घटै न कीमति पाई।।
बिनु नावै सभु कोई निरधनु सतिगुरि बूझ बुझाई।।४।।
प्रीतम प्रान भए सुनि सजनी दूत मुए बिखु खाई।।
जब की उपजी, तबकी तैसी रंगुल भई मनि भाई।।५।।

सहज समाधि सदा लिव हरि सिऊ जीवां हरि गुन गाई।।
गुर कै सबदि रता बैरागी निज घरि ताड़ी लाई।।६।।
सुध रस नामु महारस मीठा निज घरि ततु गुसांईं।।
तह ही मनु जह ही तै राखिआ ऐसी गुरमति पाई।।७।।
सनक सनादि ब्रह्मादि इंद्रादिक भगति रते बनि आई।।
नानक हरि बिनु घरी न जीवां हरि का नाम वडाई।।८।।

(राग सारंग असटपदीआ म: १)

कीर्तन के पश्चात् दोनों सीस झुकाकर घर को चले गये, घर जाकर पति पत्नी की बातचीत हुई। उस सरल तथा अब नाम रसिक ता सुखी हो गई महिला ने सारी व्यथा कह सुनाई और सतगुरू जी के ईश्वरीय प्रताप का समाचार बताया।

दोदा ने सब कुछ सुनकर कहा: 'यह अच्छा हुआ, हमारे कर्म जागे हैं कि आप पूर्ण पुरुष हैं, तैने परखा है, मुझे भी विश्वास हो गया है, अब मैं कल फिर जाऊँगा और यदि उन्होंने फिर कहा कि माँग तो मैं दूध तथा पुत्र माँगूगा।' दोदी ने कहा, 'यह माँग मत माँगना, उस अमृत को माँग जो उन्होने मुझे दिया है, वह अमृत तो प्रत्येक समय साथ ही रहता है और मरकर भी साथ जायेगा ओर दूध, पुत्र का त्याग तो यहाँ पर ही हो जाएगा।

अपनी सामर्थ्य के अनुसार उस जाटनी ने समझाया; पर वह दूध पुत्र की माँग करने पर अड़ा रहा, उसे इसी बात की भूख थी और वह यही माँगना चाहता था। दूसरे दिन दोदा फिर गया, जाकर सीस झुकाया। आज दोदा स्वयं दूध उठाकर लाया था और उसने स्वयं ही महाराज के आगे रखा था। सतगुरू जी ने मुस्कराकर कहा, 'दोदा! दूध क्यों लाया है?' दोदा ने उत्तर दिया, 'महाराज! मेरे पास दूध तथा पुत्र का अभाव है। लोगों के घर में दस-दस भैंसें, चालीस-चालीस गऊँए हैं, सैकड़ों घुमाव भूमि है और मेरा तो मुश्किल से निर्वाह ही चलता है। यदि आप मेरे पर तुष्ट हुए हैं तो यह दया कीजिए कि यहाँ दूध तथा पुत्र का अभाव न रहे।

गुरू जी ने आज्ञा की, 'कुछ और माँग'[१]। तीन बार 'कुछ और माँग' का वाक्य हुआ पर दृढ़ निश्चय वाले दोदा ने तीनों बार दूध-पुत्र ही माँगा। मरदाना ने कहा, अरे भले पुरुष! साथ ईश्वर का प्रेम भी माँग लेता। दोदा ने कहा, भला ईश्वर के फकीर ! यह आपकी प्रसन्नता पर निर्भर है, दे दीजिये, पर दूध तथा पुत्र के साथ तो पहले घर को पूर्ण कीजिए।

सतगुरू जी ने हसँकर कहा-

कईओं की माया वैराग द्वारा छूटती है और कईओं को माया की ओर से तृप्ति होकर वैराग लगता अच्छा दोदा! तुझे दूध तथा पुत्र की प्राप्ति होगी पर 'दोदो रानी' के सत्संग द्वारा तुझे नाम भी प्राप्त होगा। यह वरदान लेकर दोदा ने सीस झुकाया और दोनों घर को आये।

: ४ :

दोदा की पत्नी, जिसे सतगुरू जी के मुँह से स्वाभाविक ही 'दोदो रानी' का वरदान प्राप्त हुआ था, सुरत में तो रानी ही हो चुकी थी। क्योंकि स्मरण के आनन्द में वह यों उच्च मन

१. भाई मनी सिंघ जी की साखी में लिखा है कि बाबा जी ने दोदा को दूध की नदी दिखाई थी ।

वाली, अर्थात् उच्च प्रसन्नता से भरे हुए, एकाग्र सुखी तथा रसभरे मन में रहती है, जिस उल्लास में तो सिंहासन पर बैठा हुआ राजा भी नहीं होता। अन्दर की यह दशा अब बाहर भी आ रही है और वह बाहर से भी प्रसन्न दिखाई देती है। उसकी सखियाँ भी अब उसके बदले हुए स्वभाव और चन्द्र की तरह प्रकाशमान उसका चमकता हुआ माथा तथा नैन देखती थीं, पर इसका उनमें बैठना कम हो गया था। पहला व्यवहार जो बेकार, छिद्र निकालने वाले और जाते-जाते बाधा डालने वाले संसार से दोदो रानी को प्राप्त हुआ, वह उसके लिए अच्छा बन पड़ा। पति शत्रु बनने के स्थान पर, आप अदेशी ज्योती का प्रेमी बन गया था, चाहे वह दूध तथा पुत्र का इच्छुक था पर यह मान चुका था कि दाता जी अदेश से आये हुए कोई कलावान हैं। गुरू जी के वाक्य भी सत्य हो गये। दो-चार दिन के पश्चात् ही इसका चाचा संसार को त्याग करके साधु बनकर तीर्थों को चला गया और जाता हुआ दो भैसें और तीन गऊँए, सो घुमाव भूमि, कोठे, तीन जोड़ी बैल और हल आदि कृषि के यंत्र, सब कुछ दोदा को देकर चला गया। दूध तो दोदा के घर में झटपट ही आ गया। उसके सांसारिक पर सच्चे भरोसे में ओर परिपक्वता आ गई कि रावी के किनारे पर बैठे हुए कोई वैसे ही फकीर साधु नहीं, अपितु पूर्ण शक्तिवान हैं। गाँव के चर्चा करने वालों ने भी अब तीन बातें देखीं, दोदो रानी की बेपरवाही, प्रसन्नता तथा सुख का रंग, दोदा का उस के साथ पहले की अपेक्षा अधिक प्यार और उनका एकाएक धनी हो जाना। दूध देने की बात तो अब रही, दोदा से पुरुषों और दोदो रानी से महिलाओं ने पूछना आरम्भ किया। दोनों को इसे छिपाना तो था नहीं। सूर्य को परदे की क्या आवश्यकता ? और चन्द्र को परदा तानने की क्या इच्छा? प्रकाश कभी परदा नहीं चाहता। दोनों ने बीती सुना दी। धीरे-धीरे गाँव में यश फैल गया। जितने मुँह उतनी बातें, पर यह बात एक सी सभी ओर फैल गई कि उद्यान में कोई पूर्ण पुरुष, ईश्वर का स्वरूप आकर निंवास कर रहा है, बस्ती नगर में नहीं आते, माँगते नहीं, हर समय कुछ गाते रहते हैं, अथवा नेत्र मूँदकर समाधि लगाकर बैठे रहते हैं। दोदा ने उन्हें प्रसन्न किया है, दूध पिलाया और आर्शीवाद लिया है।

इस तरह की बातें होने के कारण और लोग भी आने-जाने लगे। कोई तो दु:खों की निवृत्ति के लिए, कोई वरदान के लिये, कोई अन्न-जल लेकर सेवा के लिए और कोई दर्शन करने के लिये आने लगा। जो कोई भी गया वह सत्कार की भावना हृदय में लेकर आया। एक गाँव से बात दूसरे गाँव में गई, यों चारों ओर धूम मच गई। कोई कहता कि रावी के किनारे पर एक 'तपस्वी प्रकट हुआ है,' कोई कहता है कि कलियुग में अवतार प्रकट हुआ है, कोई कहता है कि पूर्ण पुरुष, प्रभु के प्यारे आये हैं। लोग दर्शनों के लिए आने लगे।

एक दिन गुरू जी कहीं दूर से फिरकर आये तो आगे दोदा तथा दोदो रानी एक छप्पर बनवा रहे थे, गुरू जी देखकर मुस्कराये और कहने लगे, 'दोदा! यह क्या?'

दोदा-पातशाह! छप्पर बनवा रहा हूँ, अब बहुत जाड़ा उतर आया है, वर्षा तथा वायु का भय है। यहाँ पर सर छिपाने को कोई स्थान नहीं, कुछ स्थान तो छाया वाला हो जाये।

गुरू जी-भाई सज्जन! हमारे ऊपर प्रभु ने 'आकाश का चँदवा डाला है।'

दोदा-पातशाह! आप तो सदैव अदेशी खेमे तथा सौंदर्य के छप्परों कें नीचे निवास करते हैं, मेरे जैसे दर्शन करने के लिए आते हैं, उन्हें छत्तों की आवश्यकता होती है, आपके चरणों

की कृपा से अब बहुत लोग आते हैं, दूर-दूर से आपके प्रेमी आ रहे हैं, दोदा ने आपके प्रेमियों के लिए छोटा-सा उद्यम किया है, आगे आपकी आज्ञा।

आप मुस्कराये और कहने लगे-दोदा! तुझे तो बातचीत करने का ढंग भी आ गया है, 'प्रेमियों का प्रेम' भी तेरे अन्दर आ गया है, अब 'नाम का प्रेम भी आयेगा'।

थोड़े दिनों में सुन्दर छप्पर बन गये। अमृत वेला में मरदाना 'आसा दी वार' का कीर्तन किया करता था, सायंकाल को 'सोदर' की वाणी का पाठ होता था, दिन में राग बिलावल, दोपहर को धनासिरी राग में आरती, रात को सोते समय 'सोहिला' नामक वाणी का पाठ, अत: प्रत्येक समय आन्नद लगा रहता था। दोदा ने एक बाड़ा और एक छप्पर कीर्तन की सभा के लिए बनवाया था। एक छप्पर के नीचे लंगर (भोजन) तैयार होता, एक के नीचे रात को प्रेमी विश्राम करते। इस तरह उद्यान में ईश्वरीय आनन्द बन गया। दूर-दूर के इलाकों में धूम मच गई कि गुरू जी इस स्थान पर ज्योति जगा रहे हैं। प्रेमी लोग आने लगे और आस-पास के सभी गाँवों के लोग प्रभु का स्मरण करने लगे। दिखावे की मूर्तिपूजा, रीतिरिवाज और खोखले नमाज-रोज़ों से मन उचाट होकर वास्तव की ओर मुड़ने लगा। सच्चे का प्रेम ओर स्वच्छ जीवन का प्यार लोगों में पड़ गया। वाहिगुरू का स्मरण, उसके चरणों में प्रार्थना, इस तरह के लोगों के व्यवहार हो गये। हिन्दू-ब्राह्मण, पुजारी, मुसलमान-काज़ी, मुल्ला, जिन सबमें अपने धर्म का वास्तविक जीवन नहीं था, पर रीति पूजा तथा पुरातन पदचिन्हों पर लोगों के चले जाने से उनका जीवन चल रहा था और आजीवका प्राप्त होती थी, वे सभी ईर्ष्या करने लगे। उनका वश तो चलता नहीं था, जब प्रेमियों का प्रवाह एकरुखा और एक रंग का हो गया तो करते ही क्या? पहले तो समझते थे कि यह कोई रमता साधु है, चार दिन आतशबाज़ी के अनार चलाकर चला जायेगा, पर अब जब देखा-कि छप्पर बन गये हैं, लोगों के झुण्डों के झुण्ड आ रहे हैं, सभाएँ लगती हैं, कीर्तन होते हैं, उपदेश और नाम का दान प्रदान होता है, खुला भण्डारा चलता है, योगी जंगम, साधु, पण्डित, काज़ी, मुल्ला जो कोई भी चर्चा तथा वाद विवाद के लिए आता, उसे सच दृढ़ कराया जाता और उनके झूठ बताकर मुक्त कराया जाना आरम्भ हो गया, तब सबको ज्यादा चिन्ता होने लगी।

जब कभी पुजारी सम्प्रदाय की किसी ईश्वरीय सौंदर्य वाले व्यक्ति के आ जाने पर अथवा किसी अवतार पैग़बर के प्रकट हो जाने पर अपने अन्न-जल की चिन्ता होती है, तो वे आप कुछ भी नहीं कर सकते, समय के शासकों को बहकाकर उसके पीछे लगा दिया करते हैं। यह एक ऐतिहासिक बात है, प्रभु के दास के साथ टक्कर लेने के लिए पूजाधारियों ने सदैव 'राजा' को ही आगे किया है। अब काज़ी, मुल्ला, ब्राह्मणों तथा योगियों ने मन्त्रणा करके षड्यंत्र बनाकर परगंने के शासक क्रोड़ी चंद[१] को जा बहकाया। पहली बात तो यह कही कि एक तपा ने उसकी भूमि पर अधिकार कर लिया है, वहाँ पर छप्पर बन गये हैं, लंगर चल रहे हैं, लोगों के झुण्डों-के-झुण्ड जाते हैं, धीरे-धीरे यह तपा भूमि का स्वामी बन जायेगा, फिर वह (क्रोड़ी चंद) उसे उठा नहीं सकेगा। उत्पन्न होने वाले बड़वृक्ष उखेड़ देना तो एक

---

१. यह व्यक्ति शासक भी था और लखपती भी था। इसी की संतान में से महाराजा रणजीत सिंह के समय भगत राम नामक मन्त्री हुआ है।

क्षण का काम है, पर जब फैलकर ढाढी छोड़कर विस्तार पकड़ जाये तो फिर उसे उखेड़ना कठिन है। दूसरी बात यह कही कि वह कहता है, न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान, जो उसके पास जाता है, नमाज रोज़ा का त्याग कर बैठता है। जो हिन्दू जाता है वहां ठाकुर पूजा, व्रत, यज्ञोपवीत का त्याग कर देता है, बस 'धन्य गुरू ' कहता है और 'वाहिगुरू' का जाप जपता है।

उसके अनुयायी कहते हैं: यह नानक जो सभी अवतारों तथा पैग़ंबरों की अपेक्षा बड़ा है, यह गुरू है और गुरू अवतार है। युवक सबसे आगे हैं। महिलाओं में चाव और भी अधिक है, सभी कुमार्गों पर चल रहे हैं। धुर से ही हिन्दू और मुसलमान दो धर्म के मार्ग चले आ रहे हैं; यह नया आया है, जो कहता है, न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान है। अत: तुम इस समय के शासक हो। ईश्वर ने तुम्हें समर्थ बनाया है, इस समय यदि तुम ही आन रखो तो यह रह सकती है, अन्यथा संसार कुमार्गों पर चल पड़ेगा, वरण शंकर हो जायेगा, न दीन, न धर्म, कुछ भी नहीं रहेगा। अभी तो फूटता हुआ स्त्रोत है, यदि अभी इसे बाँध लिया जाये तो अच्छा है। इस तरह की और बाधाओं के कारण क्रोड़िया उद्यम करने लगा। गुरू जी को पकड़कर बन्दी में डाल देने और संगतों को मारकर बिखेर देने की बात[१] को मन में धारण करके कुछ व्यक्तियों को साथ लेकर घोड़े पर चढ़कर चला। अभी थोड़े कदम ही चला था कि घोड़ा चौंका और आप उस पर से गिर पड़ा। चोट लगी, टाँग टूट गई। फिर जब कुछ दिनों के पश्चात स्वस्थ हुआ तो गुरू बाबा की ओर फिर चला और[२] कुछ लोग साथ ले लिए, करोड़िया जब थोड़ी दूर गया तो उसकी आँखों के आगे अन्धकार छा गया, उसको कुछ दिखाई नहीं देता था।

इस दशा में वह घोड़े पर से उतरा, जब दो-चार कदम पीछे हटा तो मार्ग दीखने लगा। जब फिर गुरू बाबा की ओर मुड़ा, तो फिर आँखों के आगे अंधकार छा गया। परख करने के लिए वह कई बार आगे बढ़ा और कई बार पीछे हटा। जब आगे बढ़ता तो कुछ भी दिखाई न देता, जब पीछे हटता तो मार्ग का पता चलता। इस समय दोदा ओर दोदो रानी खेत में से आ रहे थे, शासक को इस दशा में देखकर खड़े हो गये। उन्होंने सुन रखा था कि करोड़िया गुरू बाबा के साथ टक्कर लेने के लिए जा रहा है। इस समय उसे इस दशा में देखकर वे निकट आये और भाँप गये कि क्या खेल हो रहा है और यह अंधा हो रहा है।

यह देखकर दोदो रानी रह न सकी ओर कहने लगी :-

"ठाठें मारती हुई बाढ़ के आगे छाती मत तान।"

करोड़िया - वह कौन बोल रहा है?

दोदो रानी - धुर की वाणी किसी अनुग्रहीत के मुँह से निकली है।

करोड़िया - नानक कौन है?

दोदो रानी - धुर से आप।

करोड़िया - मुझे कैसे भरोसा हो?

---

१. पुरातन जन्मसाखी और ज्ञान रत्नावली ।

२. जन्मसाखी भाई मनी सिंघ ।

दोदो रानी – घोड़ी पर से गिरकर भी भरोसा न आया, अंधा हो गया, फिर भी भरोसा न आया, अब रसातल में पहुँचकर भरोसा आयेगा? अब भी अवसर है, पछतावा कर ले।

करोड़िया घबड़ा गया।.......कहने लगा–हाँ क्या करूँ?

दोदा – हे पढ़े लिखे शासक! तेरी न्यायशील बुद्धि इन पूजा की कमाई खाने वालों की बुद्धि के अधीन क्यों हो गई? मन से शत्रुता दूर कर दे, कह गुरू नानक सच है, ईश्वर का भेजा हुआ अवतार है, मैं श्रद्धालु होकर दर्शन करने के लिए जाता हूँ, फिर आगे बढ़ देख ले, यदि नैन खुल गये तो सच्च मानना, यदि न खुले तो भुलावा समझना, अन्यथा लोट जा, मार्ग अपने आप दिखाई देता रहेगा।

करोड़िया इस तरह की झिड़की सहन करने के स्वभव वाला नहीं था, पर बड़े कष्ट में था, 'आँखें एक अमूल्य निधि हैं', इस बात का तब ही पता चलता है जब ये खो जायें। उस समय की घबड़ाहट को वही जानता है जिसके साथ घटती है और फिर यदि आँखों के मिलने की आशा लग जाये तो जो सहारा बढ़ जाता है, उसे वही जानता है। करोड़िया ने झिड़की सहन कर ली। झिड़की में सीधी बुद्धि थी, जो उसमें नहीं थी। उसने उस समय कहा, 'धन्य गुरू नानक तू धन्य है।' उसके साथ जो व्यक्ति थे उन्होंने सतगुरू जी की ओर मुँह करके सीस झुकाया, तब जाकर कहीं उन्हें कुछ सूझ आई। प्रसन्न हुआ और घोड़े पर सवार होकर, श्रद्धालु बनकर सतगुरू जी के दर्शन करने के लिए चल पड़ा। अभी चार कदम ही गया था कि फिर घोड़े पर से गिर पड़ा। दोदा पास ही खड़ा था फिर कहने लगा–सत्कार में आ, तू किसके पास जा रहा है? कोई साधु फ़कीर तो नहीं? सत्कार में आ और नीचे उतर, गले में परना डाल और पैदल चल। पातशाहों के पास कैसे जाया जाता है? हे लाहौर के शासक! तू सच्चे शासक के पास जाने लगा है, ज्यादा सत्कार सहित चल।

तब करोड़िया पैदल चला दोदा को पास बुलाकर उसके पाँव छूकर कहने लगा–सज्जन! मुझे काज़ियों, ब्राह्मणों तथा कनफटे योगियों ने भूल में डाल दिया है, तू तो कोई भला दिखाई देता है। (दोदो रानी की ओर देखकर) अच्छा, यह महला थी जो आकाशवाणी बोल रही थी–'ठाठें मारती हुई आ रही बाढ़ के आगे छाती मत तान।' नमस्कार हे देवी! तुझे नमस्कार।

अब तीनों वार्तालाप करने लग पड़े। दोदो रानी तथा दोदा ने आप बीती सुनाई, सतगुरू जी के कौतुक बताये। आपका ईश्वरीय ओज, ईश्वरीय रंग, ईश्वरीय प्रवाह में रांते रहना, सत्य का प्रकाश करना, जलते हुए जगत को शीतलता प्रदान करना, कई–कई दिनों तक भूखे रहना, नदी में रात के तीसरे पहर से खड़े रहना, सारे जगत में चक्कर लगाना, आदि सभी प्रसंग दोदा ने थोड़े–थोड़े कह सुनाये। इतने में गुरू बाबा जी जहाँ पर बैठे थे, उस स्थान पहुँच गये। आ क्रोड़िया की आँखों के आगे से एक झलक गुज़री, सिर में कड़क की–सी आवाज़ होकर कुछ हुआ, इस तरह जैसे मछली के छिल्कें उतरते हैं, जैसे साँप की केंचुल बदलती है, जैसे पके हुए बीज का छिल्का उतरता है, वैसे ही क्रोड़िया को आभास हुआ कि उसकी आँखों के ऊपर से कुछ गिर पड़ा है, नैन खुले हैं, खोई दृष्टि दोबारा आ गई है, पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चान्द, दोदा तथा दोदो रानी स्पष्ट दीख पड़े। 'आँखें अमूल्य निधि' अब क्रोड़िया को फिर से पता चल गया, हाँ उसी को पता चलता है, जिसे खोई हुई वस्तु फिर से प्राप्त हो जाये। पहले

तो देवी के चरणों पर झुका, फिर दोदा की ओर मुँह करके कहने लगा :-

तुम सचमुच देवता हो; अब ले चलो, मुझे भी उनके चरणों से मिला दो।

अब तीन व्यक्ति आगे होकर चले, इतने में ठिकाना आ गया, हरी-हरी घास के ऊपर अदेश का प्रभु बैठा था, मरदाना रबाब बजा रहा था, शब्द हो रहा था :-

सत संगति कैसी जाणीऐ।।
जिथै एको नामु वखाणीऐ।।

इसमें मरदाना ने श्लोक उच्चारण किया :-

गुरू दाता गुरू हिवै घरु गुरू दीपकु, तिह लोइ।।
अमर पदारथु नानका मन मानिऐ सुखु होइ।।१।।

करोड़िया दौड़कर सतगुरू जी के चरणों पर झुका, जैसे भ्रमर फूलों से लिपटता है, वैसे ही लिपट गया। मादकता का एक चक्कर आया, शरीर में से कुछ निकलता तथा सरकता हुआ आभासित हुआ। कोई ऐसी झन्नाहट छिड़ी, शरीर हल्का हो गया, शीतलता छा गई, कोई शान्ति और एकाग्रता आ गई। अब और झन्नाहट छिड़ी, यों लगा कि कुछ सरर-सरर करता हुआ शरीर में घुस रहा है। स्वाद आ गया, रस भर गया और किसी के बिना कहे और बोले, उसके कान सुनने लग पड़े-वाहिगुरू।

अपने हृदय में से आवाज़ आई - वाहिगुरू

उसकी जिह्वा ने अत्यन्त स्वाद में उच्चारण किया - वाहिगुरू

उसे आभास हुआ कि उसके रोम कह रहे हैं-वाहिगुरू

सिर उठाया, चारों ओर देखा, वन, तृण, घास पौधे सबमें से ध्वनि आती हुई लगी - वाहिगुरू

फिर चरणों पर गिर पड़ा, अब रस का एक चक्कर आया और काफी समय तक पड़ा रहा।

गुरू बाबा ने सिर पर प्यार किया, उठाया और पूछा, कहा :-

'क़रोड़िया निहाल।'

करोड़िया ने कहा :-

आपकी अनुग्रह के कारण।

अब दर्शन किया, हृदय से कहता है, हाय! जिस गुरू नानक को बाँधने के लिये चला था, वह विशुद्ध प्यार तथा मधुरता है और उस पर तुष्ट हो रहा है। धिक्कार है मुझ पर और धन्यवाद है उस दाता का, धन्य-धन्य....। किसी ने कहा था :-

''ठाठें मारकर आ रही बाढ़ के सामने छाती मत तान।''

हाँ वह आकाशवाणी किसी जिह्वा पर बैठकर बोली थी?

उधर देखा, सीस झुक गया:

''धन्य गुरू नानक!'' ''धन्य गुरू नानक द्वारा निर्मित देवी-देवता।''

करोड़िया सिक्ख बना, गुरू बाबा ने मारने के लिए आने वाले को भी नाम का दान प्रदान

किया। देता भी क्यों न? चन्दन कुल्हाड़ियों तथा आरों को भी सुगन्धी प्रदान करता है।

क्रोड़िया ने नाम धारण किया।

करोड़िया के सिक्ख बनने का समाचार उसी दिन फैल गया। सारे देश में 'धन्य गुरू नानक' 'धन्य गुरू नानक' हो गया।

करोड़िया ने अब सत्संग सभा के लिये पक्का धर्मस्थान बनवाया, प्रेमियों के लिये और स्थान ठिकाने बनाये। इस सारे परगने की भूमि का पट्टा लिखवाया और अपने आप ही सारी भूमि सरकारी काग़ज़ों पत्रों में गुरू जी के नाम लिखवा दी। जिस स्थान पर गुरू जी ने डेरा डाला था, उसका नाम कर्तारपुर रखा।[१]

यह स्थान वह पावन धरती थी जहाँ पर गुरू बाबा ने जलते हुए जगत का उद्धार करके ठिकाना किया था और उसके पश्चात जितने चक्कर विदेशों के लगे, इसी स्थान से चले और फिर यहीं आकर विश्राम करते रहे। 'गृहस्थ उदास' का प्रमाणीक मार्ग सतगुरू जी ने यहाँ पर प्रत्यक्ष करके दिखा दिया और प्रचार किया। यहाँ पर ईश्वरीय प्रवाह की ज्योति जलाई और सब ओर प्रचार फैला।

अमृत वेला में 'जपुजी' नामक वानी का उच्चारण और 'आसा दी वार' का कीर्तन और सायंकाल को 'सोदर' नामक वानी का कीर्तन और आरती की रीति यहाँ से ही चली[२] पहले यहीं से खुला लंगर चला! नामदान का लंगर भी यहीं से जारी हुआ।

१. गीत

(यहाँ पर अनुवाद प्रस्तुत किया है)

दोदो रानी- रावी के किनारे पर गुरू नानक देव जी का दर्शन रूपी अमृतपान करके :-

अरी सखी! आज प्रात:काल, मैंने रावी के पश्चिम की ओर चन्द्रा देखा था।।१।।

उसके नैन सलोने थे, शरीर गोरा और चन्दन की भाँति सुगन्धि प्रदान कर रहा था, उसका माथा सौंदर्य बरसा रहा था और चुम्बक की भाँति आकृष्ट करता था, उसके आकर्षण ने मन को चुरा लिया, अब वह (मन) उसके दर्शन के बिना किसी दूसरी ओर नहीं लगता।।२।।

कविता ने रूप धारण किया है, गीत ने रंग धारण किया है, अरी सखी! उसकी छवि देखकर आनन्द अंगों में नहीं समाता। वह हिलोरें देने वाले दर्शन देता है, मैं चकोर की भाँति फिरती हूँ, बिना उसे देखे, मेरा जीना नहीं होता ।।३।।

हे अदेश के चन्द्र! अब तू कभी भी ओझल मत होना,

मेरे नैन झपकते नहीं, प्रति दिन अमृतरूपी दर्शनों को पीते हैं। यह प्रेम का स्वभाव, मस्ती तथा मादकता की हिलोर, ऐसी है, जैसे चित्र बनाया गया हो ।।४।।

---

१. कर्तारपुर रावी के पश्चिम के किनारे वाले परगने में था जो अब भी तहसील कलानौर कहलाता है और गुरदासपुर के ज़िले में हैं । करोड़िया इसी परगने का भूमिया और शासक था। वैसे करोड़िया लाहौर का निवासी था। दोदे का स्मृतिचिन्ह उसका गाँव पर ही है। उसकी सन्तान निवास करती है और गाँव दोदा कहलाता है। अब यह पाकिस्तान में है।

२. सोदर आरती गावीऐ अमृत वेले जाप उचारा ।। (भाई गुरुदास वार १ पऊरी ३८)

सूचना– पिछले प्रसंग में करोड़िया का समाचार जा चुका है। यह प्रसंग संक्षिप्त-सा कविता[1] में रचा जाकर खालसा समाचार में मुद्रित हुआ था। वह यों है :-

□ □

५६ प्रसंग भाई करोड़िया

लाहौर नगर में करोड़िया नाम का एक खत्री निवास करता था। वह दो नदियों के बीच, उत्तर की ओर शासन करता था। वह भूमि का बड़ा स्वामी था और सयाना साहूकार था। ज्यों-ज्यों वह धन एकत्र करता था, ज्यों-ज्यों धोका और ज़ोर ज्यादा करता था। साधुओं तथा फकीरों को छलिया समझता था और उन्हें दुःख देता और जलता था। ईश्वर तथा परमार्थ को कुछ भी नहीं जानता था, तृष्णारूपी अग्नि में जलता था। सबसे अधिक तो वह गुरू नानक का यश सुनकर, जलता था। गुरू नानक को 'कुमार्गी' कहकर जल-भुनकर तथा सिर पीटकर गालियाँ देता था। जब कभी कोई सिक्ख उसे मिलता था तो अपना बस चलने पर उसे दुख देता था। वह निर्वैरों के साथ वैर करता था और गुरुमुख व्यक्तियों के साथ ठगी करता था। मुल्ला, पाण्डेय उसे जा-जाकर बहकाते थे और कहते थे, ''तू राजा है जिसका यश जगत में छा रहा है।'' उस गुरू नानक का डेरा उठवा दे। एक दिन एक योगी किंगरी बजाकर गुरू जी की बानी गा रहा था, उसको सुनकर वह जलकर कोयला हो गया, पर उसका वश न चला। अन्त में यह सोचा कि चलो साथ कुछ शूरवीर लेकर चलें, उसका डेरा उखाड़कर फेंक दें और किसी के भी कहने पर न टलें-। वह शूरवीर, घोड़ी पर चढ़कर उसको मारने के लिये चला, जिसका डेरा अदेश में है, और प्रत्येक स्थान पर जिसका निवास है। घोड़ी रुककर चौंकी और करोड़िया धरती पर गिर पड़ा। कुछ दिनों के पश्चात स्वस्थ होकर पाप से भरा हुआ फिर चला। अब सिर में एक चक्कर आया और वह घबड़ाया। उसे सूर्य की भाँति दीप्त एक प्रकाश दिखाई पड़ा। जब इस प्रकाश की झलक पड़ी और आँखों से दिखाई देना बन्द हो गया। उसका दिल उलटा हैरानी में बह गया और कछुए की भाँति सिमट गया। आँखें फाड़-फाड़कर देखना चाहता है पर पापी को कुछ भी दिखाई नहीं देता। दुष्ट पुरुषों को सच का चढ़ा हुआ सूर्य दिखाई नहीं देता। हत्यारी आँखें मुँद गईं, जो गुरू जी को घूरने के लिये आई थीं। जो दाँत पीस रहा था, वह बन्धन में आ गया। वे पापी हाथ निरर्थक हो गये, जो गुरू जी को मारने के लिये आये थे। जो पैर गुरू जी को मारने के लिये आ रहे थे, वह जकड़कर वहीं बँध गये। वह चांडाल हृदय जिसमें खोट फुरा था, पत्थर हो गया, उसकी सुरत चक्कर खाकर ठिटकी और कलेजे में बाण चुभ गया। उसने समझा था कि धन की ताकत के आगे सभी हेय हैं, पर वह आत्मशक्ति से अनजान था, मानों दिन के समय ही अन्धा हो रहा था। जब वापिस लौटने के लिये कदम मोड़ता, तब तो कुछ दिखाई देने लगता, पर जब एक कदम ही आगे रखता तो फिर अन्धा हो जाता। तब एक प्यार भरी आवाज़ सुनाई पड़ी; ''ठाठें मारती हुई तेज़ी से आ रही बाढ़ के आगे छाती मत तान।'' दूसरे क्षण किसी ने कहा, ''भाई नम्र होकर झुक, गुरू नानक ईश्वरीय ज्योति है, उसकी ओर हृदय को झुका।'' झिड़की सुनकर उसने हृदय को

---

१. यहाँ पर पंजाबी कविता का सरल हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

झुकाया, तब उसको कुछ थोड़ा-सा दिखाई देने लगा, उस समय उसके हृदय में सतगुरू के ऊपर निश्चय हो गया। अब हृदय में निश्चय धारण करके अपनी भूल के लिये क्षमा माँगने के लिये चला। चढ़कर आने की जो भूल की है, उसके लिये जाकर क्षमा माँगूं। वे उसे बाँह से पकड़कर साथ लेकर चले और गुरू जी के चरणों में ले आये। यहाँ पर आकर उसकी सारी आँखें खुल गईं। चरणों पर गिरकर करबद्ध कहने लगा, ''मुझ अपराधी का उद्धार कीजिये; क्षमा कीजिये, अपराधी को क्षमा कीजिए, अब चाहे क्षमा कर दीजिये, चाहे मार दीजिये, आपकी इच्छा है।'' सतगुरू जी ने जब नैन खोलकर देखा कि अहंकारी और अभिमानी, अथवा जो बड़ा घमण्डी था, वह झुककर विलाप कर रहा है; कहने लगे-''हो सिक्खं! मृत्यु को मत भूलना और ईश्वर को समृति में रखना। मन में से अहंकार और घमंड का त्याग करना और किसी का मन मत दुखाना।'' सतगुरू जी की आवाज़ मीठी लगी और सुन-सुनकर मन प्रसन्न हो गया। ज्यों-ज्यों गुरू जी के चरणों को छूता था, प्रकाश आता-जाता था।

उसकी विकारों वाली पहली दृष्टि कहीं उड़ गई, अब उसे दैवी दृष्टि मिल गई, जो दर्शक की झलक को सहन कर गया था। उसका हृदय धुलकर इस तरह स्वच्छ हो गया, जिस तरह पौधे वर्षा में स्नान करने के पश्चात होते हैं। अहं के बन्धन टूट गये और शरीर हल्का फूल होकर आभासित होने लगा। दैत्य से पलटकर देवता बन गया और देवता से सिक्ख बन गया। भक्ति, वैराग तथा प्रेम के रस में गूँथा गया और रसिक पुरुषों में उसकी गणना होने लगी। इसने एक दिन विनय की, ''हे कृपा सिन्धु गुरू स्वामी! हे अन्तर्यामी सतगुरू! मैं आपके चरणों में करबद्ध प्रार्थना करता हूँ। मेरी इच्छा है कि इस स्थान पर एक सुन्दर धर्मस्थान का निर्माण कराया जाये, आप उसमें विश्राम कीजिये और लंगर जारी हो जाये।'' सिक्ख के इस प्रेम को देखकर सतगुरू ने उसकी विनय स्वीकार कर ली। तब सिक्ख ने प्रसन्नता सहित वहाँ पर, काम आरम्भ कर दिया। वहाँ पर बड़ा अद्‌भुत धर्मस्थान बना और घर के मकान भी साथ ही बन गये। रावी नदी के किनारे पर सुखालयों का निर्माण हुआ। उसने सतगुरू जी से कहा कि धर्मस्थान में जाकर ''डेरा डालिये।'' और कहने लगा कि अपने नाम पर इस नगर का नाम रखिये। गुरू जी ने कहा कि स्थान का नाम ''श्री कर्तारपुर'' रखो। यहाँ पर भजन करो हरिनाम का अराधान करो, और उसके नाम के बिना और कोई आश्रय मत देखो। करोड़िया सिक्ख कृतकृत्य हुआ, उस पर गुरू जी प्रसन्न हुए। जो अहं में फँसा हुआ था, वह मुक्त हो गया और उसे मनमाने सुख प्राप्त हुए। फिर सतगुरू जी वहाँ पर विराजने लगे ओर लंगर चलने लगा। नाम का लंगर चला दिया। हरि रूपी धन बाँटा जाने लगा। आज भी रावी के किनारे पर गुरू जी का चिन्ह सुशोभित हो रहा है। यह सतोगुण वाला एकान्त स्थान है, इसे देखकर हृदय खिल जाता है। गुरू नानक देव जी की अति आश्चर्यजनक बड़ाई देखिए; जिन्होंने प्राणों के शत्रु को क्षमा कर दिया और अपनी छाती से लगा लिया। वह बुराई करने की इच्छा धारण करके आया था, पर गुरू जी ने उसके साथ बुरा नहीं किया। उसकी बुराई को क्षमा करके, उसके साथ नेकी की और उसे भव-जल से पार कर दिया। सभी इसी संसार में बुरे के साथ बुराई करते हैं, पर बुद्धिमान उसे क्षमा कर देते हैं। बुरों के साथ नेकी करना तो केवल गुरू नानक ही जानता है।

□ □

५७ प्रसंग भाई बुड्ढा

सूचना- भांई बुड्ढा जी से भेंट का प्रसंग इस प्रकार है-बूढ़ा वन में गऊँए चराया करता था। उसने आकर गुरू जी का दर्शन किया और प्रार्थना की 'किसी तरह मेरी भी मुक्ति हो।' तब सतगुरू जी ने पूछा, 'तू तो अभी बालक है, तुझे यह बुद्धि कहाँ से प्राप्त हुई है? ' तो उसने अपने गाँव पर मुसलमानों के आक्रमण की और कच्ची-पक्की फलीदार खेती को काट लेने की बात सुनाई कि उसे वैराग वहाँ से हुआ है कि इन अत्याचारियों का हाथ किसी ने नहीं पकड़ा तो यमराज का हाथ कौन पकड़ेगा, ऐसा न हो कि मैं छोटा ही उनके हाथ में आ जाऊँ। तब गुरू जी ने कहा, ''तू बालक नहीं, बुड्ढा है'' और अनुग्रह किया।

(भगत रतनावली)

''जीवन चरित्र भाई बुड्ढा साहब'' नामक पुस्तक में भी यही साखी दी गई है। श्री गुरू नानक प्रकाश में[१] तथा बाले वाली जन्मसाखी में भी यही साखी लिखी है और यही साखी आगामी कविता (यहाँ पर अनुवाद) में अंकित की गई है :-

प्रंसग

श्री गुरू नानक देव जी, जगत के गुरू स्वदेश में आये। आपने रावी नदी के किनारे पर डेरा डाला और वन को भाग्यवान बनाया। आप अपने-आपे में आनन्द लेते हैं और अमूल्य आनन्द प्रदान करते हैं। जो शरण में आते हैं, उन्हें नाम का दान प्रदान करके अदेशी प्रेम लगा देते हैं। प्रात:काल से अखंड समाधि लगी हुई है और अब दिन के भोजन का समय हो गया है। वह भी व्यतीत हो गया है, दोपहर ढलने लगी और सूर्य का तेज कम होने लगा। बूड़ा चरवाहा बनकर वन में गऊँए चराता फिरता है। वह देखकर चकित होता है और चक्कर काटकर आता है। गऊएँ चराकर फिर-फिर आकर देखता है, आप उसी स्थान पर बैठे हैं। फिर कुछ चक्कर लगाकर आता है फिर जाता है। गुरू जी उठे नहीं, वहीं पर बैंठे हैं और बुड़े को चैन नहीं आता। गऊओं के पास बार-बार जाता और बार-बार आता है। जब तीसरा पहर हुआ तो उसने देखा कि गुरू जी उस स्थान से उठे हैं; फिर आप विश्राम करने के लिये लेट गये हैं, बूड़ा देखकर व्याकुल होने लगा। शीघ्र कूए में उतरकर एक बाल्टी खोलकर बाहर

१. श्री गुरू नानक प्रकाश में यह प्रसंग यों लिखा है-एक बार गुरू जी कर्तारपुर में एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। एक बालक बकरियाँ चराने के लिये आया, सतगुरू जी ने उसे बुला भेजा और नाम पूछा, तो बालक ने बतलाया "नाम बूड़ा है और जाट जाति है" गुरू जी ने कहा, "जाओ बेटा, बकरियों की सँभाल करो ।" बालक ने कहा, "जिस काम के लिये बुलाया था, वह बताइए।" आपने कहा, "बातचीत हो गई है, अब तुम जाओ।" चला तो गया पर बालक के हृदय में अत्यन्त प्रेम हो गया, रात को घर पर सो नहीं सका, तड़के ही मक्खन भेंट लेकर आ हाज़र हुआ। इस मक्खन पर सतगुरू जी की वार्तालाप हुई जिस पर आपने कहा, " तम बुड्ढों की-सी बातें करता है। उस समय पूर्ण पद प्रदान किया और बुड्ढा नाम प्रदान किया। दिन चढ़ने पर माता-पिता खोज करते हुए आये तो उन्होंने देखा कि बालक बुड्ढा दीख पड़ता है। अत: वे उसे वहाँ पर ही छोड़कर चल दिये और बुड्ढा गुरू के स्थान पर ही रहा ।

आया, उसे उसने अपने पास सभाँलकर रख लिया और फिर एक गऊ को ले आया। यह गाय बछड़े के बिना ही दूध दे देती थी। बूड़े ने एक और नई बाल्टी लेकर उसमें दूध निकाला। गऊ का दूध निकालकर, दो बाल्टियाँ में डालकर ले चला। उसने गुरू जी के प्यारे चरणों के पास लाकर दोनों बाल्टियाँ रख दीं। फिर गुरू जी के चरणों पर सीस रख दिया, सिर टिकाकर हृदय उँडेल दिया। नैनों से प्रेम के कारण नीर बह रहा है और आपा भेंट में दे रहा है। दयालु गुरू जी उठकर बैठ गये और उसका सिर ऊँचा करके कहने लगे, ''हे बालक! तू हम से क्या चाहता है, किस वस्तु की खोज कर रहा है।'' बूड़ा भीगे हुए मन तथा हृदय से, प्रेम सहित यों कहता है; ''हे गुरू गोसाई शक्ति वाले! मैं दुखी रहता हूँ, मुझे मृत्यु का भारी भय खाता रहता है। मैं रात-दिन डरता हूँ और मेरे प्राण हौका लेते हैं।, मेरा जन्म-मरण काट दीजिए, मैं यही प्रार्थना करता हूँ। हे गुरू जी! सनम्र होकर मैं आपके द्वार से यही दान माँगता हूँ।'' गुरू जी ने कहा, ''तू बालक है, अभी तेरी आयु छोटी है, तेरे दूध के दाँत भी अभी-अभी टूटे हैं पर तैने बड़ों जैसी बात कही है। यह भय तुझे कहाँ से आया है, तेने यह बुद्धि कहाँ से प्राप्त की है? हे बालक! तू अपनी सारी व्यथा हमें सुना दे।'' बूढ़े ने उत्तर दिया, ''हे गुरू जी! यहाँ पर आक्रमणकारियों का दल आया था, उसने कच्ची-पक्की, फलों वाली हरेक तरह की खेती काटी अर्थात कत्लेआम करवा दिया। वे जो कुछ मिला उसे जबरदस्ती लेकर चल दिये। उस दल के इस तरह के व्यवहार को देखकर मेरे मन में सहम उत्पन्न हुआ और मेरे नैनों में से छम-छम अश्रु निकले। उन अत्याचारियों के साथ किसी का कोई वश न चला। इसी तरह सुना जाता है कि यमराज शक्तिशाली है और अत्याचारियों की भाँति वध करता है और जैसी भी उसकी इच्छा हो वैसी कच्ची-पक्की कभी भी कैसी भी खेती को काट लेता है। अत: न जाने मैं किसी समय भी कच्चा अनजान बालक, खेती की भाँति, काटने वाले यमराज द्वारा चुना जाऊँ। इसलिये मैं सोचता हूँ कि मैं ऐसा काम करूँ जिससे मेरा हृदय स्थिर हो जाये और मेरा जीवन सुखी होकर भय डर से मुक्त हो जाये। हे सतगुरू! इस दास ने सबसे बड़ी आपकी शरण देखी है, ''अपने बालक को चरणों से लगाकर, हे सुखदाई सतगुरू! रक्षा कीजिए।'' उसके वाक्य सुनकर सतगुरू जी ने कहा, ''हे अनजान बालक सुन! तेने वृद्धों जैसे वाक्य कहे हैं और वृद्धों जैसे सुखों को प्राप्त करना चाहता है। हे बुड्ढे! तू जो बालक दीख रहा है, तुझमें जो सुध डाली गई है, जिसकी डोर प्रभु ने तेरे हाथों में पकड़ाई है। हे बालक! उस सुध का किसी और काम में मत लगाना। उसे प्रतिदिन परमेश्वर के स्मरण में रखकर उसका पालन करना। जैसे गऊ का ध्यान सदैव बछड़े में ही रहता है, जब वह बाहर चरने के लिये जाती है और सायंकाल को घर पर लौट आती है, इसी तरह अपनी सूरत को प्रतिपल प्रभु के चरणों में लगाये रखना। हाथों द्वारा जगत की सेवा करके, सेवा के सुख का स्वाद चखना। हे प्यारे! सदैव स्मरण में लगे रहना और नाम में लौ लगाये रखना। लौ लगाना, लौ न टूटे, यदि टूटे तो उसे जोड़ देना। फिर यम के दूत तुझसे दूर रहेंगे ओर तेरा जन्म-मरण समाप्त हो जायेगा। तेरी आयु अब बड़ी हो गई है, गुरू का सिख धर्म धारण करके सुख की प्राप्ति करेगा। बूड़ा बालक गुरू जी के चरण पकड़कर 'भाई बुड्ढा' हो गया। जो देन गुरू जी ने उसे प्रदान की, उसे उसने हृदय में पिरो लिया। यह भाई बुड्ढा वही है, जो छटे गुरू जी तक अहं का त्याग करके गुरू की संगत में जीवित रहा, जिसने दूसरे तथा तीसरे गुरू जी के

समय, गुरू की खोज की थी। उसने सेवा की कमाई की और दूखी प्रेमियों को सुखी कर दिया। इसने गुरू प्रणाली का मन्त्री बनकर सेवा में अपना जीवन सफल किया। जिसने हरिमन्दिर (अमृतसर) में सेवा करके, जगत् में यश प्राप्त किया। इसी बुड्ढे के पास छटे गुरू जी को बाल्यकाल में, गुरू अर्जुन देव जी ने धार्मिक विद्या पढ़ाने के लिये बैठाया था। यही बुड्ढा गुरूओं के गद्दी पर बैठते समय तिलक की रीति करता रहा है उसके पश्चात, फिर यह काम उसकी सन्तान करती रही है और सभी ने दशम गुरू जी तक गुरू के सिक्ख मत को निभाया है।

सूचना– जब सतगुरू जी यहाँ पर कर्तारपुर में रहने लगे तो मेहता कालू जी परिवार सहित यहाँ पर आ गये। पुरातन जन्मसाखी में इस तरह लिखा है :-

''तां पिछहूँ कालू आपणे आदमी सभ लेकर बाबे पास आया। बाबा टिकिआ, संगत सिक्ख लागे हुंदे जान। बाबे ओह भेख उतारिया। एक चादर नीचे, एक ऊपर, एक पटका सिर, निरंजन निरंकार का रूप धारिआ, जगत निसतारण के ताईं। जगत विचि डोरी उभर गई, जो वाहु वाहु! नानक जी, वाहु वाहु! बड़ा भगत पैदा होआ है।''

उपरोक्त लिखित से विदित है कि सतगुरू जी कर्तारपुर में 'जगत गुरू' होकर विराज गये और अब बैठकर वाहिगुरू के यश का प्रचार करने लग पड़े। लोग दूर-दूर के प्रदेशों तथा सारे पंजाब में से आने लगे। सारे देश में धूम मच गई थी, सिद्ध, योगी तथा पीर फकीर, जिनका ज़ोर था ओ प्रसिद्ध हो चुके थे और आपका लोहा मान चुके थे। यदि कोई उमड़ता तो आ टकराता और सीधा तीर होकर जाता था। कर्तारपुर में सत्संग का बड़ा अद्‌भुत प्रवाह चल पड़ा, प्यार तथा भ्रातृभाव, जिसका पंजाब में अभाव था, वह गुरू सिक्खों के जीवन आदर्श से किरणों की भाँति चारों ओर फैल गया। स्वच्छ जीवन, पवित्र आचरण और सच गुरू के सिक्खों के जीवन से तिल्ले के तारों की भाँति चमकने लग पड़ा। वाहिगुरू जी से प्रेम, अन्दर आत्मा में प्रभु की ओर ध्यान, काम कार्य करते हुए भी लगे रहना, यह हीरे के कण की भाँति, सिक्खों के अन्दर जड़ा हुआ उनके माथों पर से चमकने लगा। नाम का लाल गुप्त था, वह रहस्य अन्दर निवास करता था, पर माथे की दमक में से प्रकट होता था; लोग देख-देखकर चकित होते ओर इकट्ठे हो-होकर आते थे। देश में पहले से भी सिद्ध, पीर, गुरू-चेले, सब कुछ था, पर योग की समाधि के स्थान पर मदिरा की मस्ती प्रचल्लित थी, प्रमाण गुरू जी की वानी से मिलता है, सिद्धों, योगियों के साथ चर्चा के समय गुड़, धावा, कस, रस निकालना, थोथा मदय आदि, मदिरा सम्बन्धी सभी शब्द आते हैं। 'मुरीदी पीरी' गुरू-चेला बस इतनी बात का नाम ही रह गया था- पीर तथा सिद्ध के पास गये, आगे भेंट रखी, कान में मन्त्र सूना और घर पर आ गये। ब्राह्मण को घर पर बुलाया, कण्ठ में धागा डलवाया, कान में मन्त्र सुना, भेंट दी और काम समाप्त हुआ। न भजन, न भक्त, न नाम जपना और न ही नाम जपकर अन्तस में जागृति लाकर सदैव ध्यान ईश्वर की ओर रखना। अंतस की तृष्णास, रुचि सम्पन्न होकर और अनजाने ही पशु वृत्ति की ओर लगे रहना, कोई अन्दर का झुकाव लौ की ओर न होना। दूसरा यह कि आचरण की शुद्धता की परवाह ही न करना। केवल मन्त्र फूँककर गुरू बनने वाले के अपने आचरण बुरे, अनुयायीओं को उनके आचरण की पवित्रता का ध्यान ही करने देना; बल्कि कइओं ने कह देना कि हमारे से मन्त्र लेने वालों को शुभ कर्मों की आवश्यकता ही नहीं। इस तरह देश के आचरण का पतन हो रहा था। ऊपर से पहले पठानों का शासन

बहुत अत्याचार वाला था, उस अत्याचार के नीचे झूठ, दग़ा, कायरता बढ़ चुकी थी और आचरण का पतन हो चुका था। यह नियम है कि अत्याचार की छाया में झूठ का लालन-पालन होता है। फिर मुग़लों का शासनकाल आया। यह भी अभी नया था और सहानुभूति देने वाला नहीं था और न ही इन्हें प्रजा के सुधार की कोई आवश्यकता थी। बल्कि विदेशी शासक इस बात के इच्छुक थे कि प्रजा का आचरण गिरा रहे, क्योंकि निम्न आचरण वाले स्वार्थी होते हैं, साझे काम के लिए बलिदान नहीं दे सकते, साझे काम के लिए इकट्ठे नहीं हो सकते, इकट्ठे न होने के कारण दुर्बल रहते हैं और दुर्बल प्रजा पर राजा भली-भाँति अपना आंतक जमा सकता है। इधर तो देश के नेताओं, सिद्धों पीरों, मुल्लाओं तथा ब्राह्मणों की ओर से प्रजा पर अधिकार पड़ता था और उधर राजा की ओर से अत्याचार तथा असहानुभूति का ग़ुबार छा जाता था, उस घबड़ाहट तथा कोलाहल में गुरू बाबा ने सूर्य चढ़ा दिया, हृदय में दीपक जला दिये। आत्मा को परमात्मा का ध्यान देकर सोये हुए को जगाकर उच्च कर दिया, शताब्दियों से गिरी हुई देश की सुध को ऊँचा कर दिया, मन को आचरण द्वारा धोकर उज्ज्वल कर दिया और मरा हुआ त्राण जाग उठा, मर चुका, मान जीवित हो उठा। लोग कुकर्मो से संकोच करने लगे। मन में कायरता के आते समय, मन से तगड़े होकर दुख सहन करने और बलिदान के बल का सामर्थ्य रखने लगे। आपसी व्यवहार जो स्वार्थता का हो रहा था, वह प्यार में परिवर्तित होने लगा। एक-दूसरे का दुख देकर अथवा छलकर अपना लाभ निकालने के स्थान पर एक-दूसरे का भला करने आपा न्योछावर करके सुख देने का स्वभाव होने लगा। वेद, उपनिषेद, शास्त्र आदि संस्कृत में थे; कुरान अरबी भाषा में था। दोनों भाषाएँ आम लोगों की समझ में नहीं आ सकती थीं। ब्राह्मण तथा काज़ी अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए लोगों को अज्ञान में रखने के लिए सिद्धहस्त थे। पर अब सतगुरू जी का दिया हुआ ईश्वरीय सन्देश 'गुरूवानी' लोगों की भाषा में आ गई, जिसकी इच्छा होती, वानी लिख लेता। कोई मुंडी अथवा महाजनी लिपि में, कोई सारदा में, कोई किसी अन्य पहाड़ी तथा फारसी अक्षरों में यह वाणी लिखकर बड़ी सुविधा से ईश्वरीय ज्ञान की विधि अपने पास रख लेता।

इस प्रकार के जागृत लोगों की एक मण्डली रूपधारी होकर दीखने लगी। पहले यदि कहीं कोई सत्य की खोज चलती थी तो वहाँ पर कट्टरता आगे होती थी। मुसलमान हिन्दुओं को मूर्तिपूजक, नीच तथा घृणित समझते थे। हिन्दू दुर्बल थे, पर मुसलमानों को म्लेच्छ समझते थे। यह घृणा देश के लिए फूट का कारण थी और प्रजा के सुख के लिए क्लेश देने वाली थी। यही फूट कल्याण के मार्ग में बाधा थी। इस नये समाज में किसी मत के साथ द्वेष नहीं था। कट्टरता के ताव से जले हुए में यह नया प्रवाह एक शीतलता भरने वाली मरहम थी। अतः इस तरह के जागृत पुरुषों के आदर्श ने सारे पंजाब में मानो एक तरह का खमीर लगाना आरम्भ कर दिया। लोग चले आते ओर सिक्ख बनते जाते।[१] उधर पुराने पीरों, सिद्धों, गुरूओं की निद्रा

---

१. पुरातन जन्मसाखी में कर्तारपुर का स्थापन करने पर, सिक्ख मत में आने का जो अनुमान दिया गया है, वह इस प्रकार है - "बहुत लोग इकट्ठे हुए, अनुयायी बने, जो भी आता वह अनुयायी बन जाता । ... बहुत यश फैला। ... हिन्दू, मुसलमान, योगी, संन्यासी, ब्रह्मचारी, तपी, तपेश्वर, दिगम्बर, वैष्णव, उदासी, गृहस्थी, वैरागी, खान, खनीन, उमराव, करोड़िये, भूमिपति भूमिया

खुलने लगी कि लोग उनके हाथों से निकलने लगे। उन्होंने भी अपने व्यवहार में परिवर्तन लाना आरम्भ कर दिया और कई अगुआ को तो सतगुरू जी ने आप उनके घरों में जाकर उन्हें सुमार्ग पर चला दिया था और कई वहाँ पर चर्चा करने के लिए आए सुमार्ग पर चलने लगे थे। इस प्रकार एक आदर्श प्यार वाला धर्म स्थापित करके और एक प्रकार की टकसाल का स्थान कर्तारपुर' स्थापित करके सतगुरू जी फिर और चक्कर लगाने की तैयारी करने लगे। भाई मरदाना कीर्तन के लिए पीछे छोड़ दिया, भाई भगीरथ सेवा के लिए और अनेकों सिक्ख गुरुवानी का प्रचार तथा सिक्ख धर्म की शिक्षा देने के लिए, पीछे रखे।

इस समय में तैयार हुए सिक्ख जो उच्चकोटि के नेताओं के स्तर के थे, उनमें से कुछ एक के नाम हमें भाई 'गुरूदास जी की वार' में से मिलते हैं और उनके जीवन के किसी एक चमत्कार का वर्णन 'भगत रतनावली' में मिलता है; प्रमाण के लिए हम कुछ उदाहरण देते हैं, जिसे ज्ञात होगा कि परोपकार तथा भ्रातृभाव के कितने उच्च आदर्श स्थापित हो गए थे।

सूचना २ – गुरू दीक्षा

सिक्खों को गुरू जी से (१) एक तो उपदेश मिलता था जिससे वे संसार में से मुग्ध, अचेत जीवन से जाग उठते थे, (२) जाग उठे जो कल्याण के याचक होकर खड़े होते थे, उन्हें गुरूदीक्षा प्राप्त होती थी। दीक्षा का सिक्ख मतानुसार अर्थ है – परमात्मा से प्रेम द्वारा संयुक्त हो जाने के लिए उसके स्मरण की प्राप्ति के लिए नाम के दान का संस्कार यथा –

तिना मिलिआ गुरू आइ जिन कऊ लीखिआ।
अमृतु हरि का नाऊ देवे दीखिआ।।

(सूही महला १)

इस दीक्षा के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं –

यथा – **बिन गुरू दिखिआ कैसे गिआनु।।**

(भैरऊ महला ५)

दीक्षा पूरे गुरू से प्राप्त होती है।

यथा – **पूरे गुरू की पूरी दीखिया।**[१]
जिस मनि बसै तिसु साचु परीखिया।। (सुखमनी)

जो कोई भी आता, आनन्दित होता, सभी स्तुति करने लगा" । उससे स्पष्ट है कि उस समय के सिक्खों की संख्या हज़ारों, बल्कि इससे भी अधिक थी। भाई गुरुदास ने जो सिक्खों के नाम दिए हैं, उन्हें मुख्य सिक्खों के नाम समझना चाहिए। इनमें भाई बुड्ढा, भाई मरदाना, भाई अजिता, भगीरथ आदि नाम सम्मिलित होने के कारण यही पता चलता है कि यह नाम मुखिया सिक्खों के अथवा उनमें से भी कुछ एक के हैं, जिनका नाम देने की भाई जी को खास आवश्यकता हुई; क्योंकि कई उच्चकोटि के सिक्खों के नाम भाई गुरुदास जी के इस ब्योरे में भी हैं, उदाहरण के लिए – मनसुख, राजा शिवनाभ, झंडा बाढी सालसराय, जिसका काव्य भी मिलता है। करोड़िया, जिसने भूमि देकर कर्तारपुर स्थापित किया, दोदा, ब्रह्मदास काश्मीरी और सज्जन (ठग), यह नाम भाई गुरुदास ने नहीं दिए, पर दूसरे इतिहासों में हैं ।

१. यह पद तान्त्रिकों ने भी उपदेश के लिए लगाया है। पर हिन्दू साहित्य में 'दीक्षा' उपनयन संस्कार को भी कहते हैं, जिसमें आचार्य गायत्री मन्त्र देता है। अब प्रायः इस पद का प्रयोग 'गुरू मन्त्र प्राप्ति

कर्तारपुर स्थापित किया

पुनः - **दीखिआ गुर की मुंदा कानी द्रिड़ियो एकु निरंकारा।**

(गऊड़ी म: ५)

इसके अन्दर टिकने से ही कल्याण है, यथा -

गुर दिखिआ जिह मनि बसै नानक मसतकि भागु।।

(गऊड़ी बावन अखरी म: ५)

पुनः - **गुर की दीखिआ से सचि राते।।**

(रामकली सिध गोसट)

पुनः - **दीखिआ दारु भोजनु खाइि।।** (रामक़ली महला १)

गुरू नानक देव की दीक्षा एक रस्मी तथा रिवाजी दीक्षा नहीं थी, जिसे वे आप यों लिखते हैं -

'सिखा कंनि चड़ाईआ गुर ब्राह्मण थिआ'।।[१] (वार आसा महला १)

पर गुरू जी अपनी दीखिआ हृदय में प्रवेष करवा देते थे और उसके लक्ष्य को लखा देते थे। यथा -

दिखिआ आखि बुझाइआ सिफती सचि समेऊ।
तिन कऊ किआ उपदेसीऔ जिन गुरू नानक देऊ।।[२]

(बार माझ सलोक म: २)

(३) गुरूदीक्षा देकर समझा - बुझाकर स्तुति श्लाघा में लाकर लक्ष्य के मार्ग पर चलाकर गुरू नानक देव जी इस अंतस के साधन को दृढ़ कराकर बाहर के व्यवहार को भी सिद्ध कर देते थे। अतः जिस प्रकार का जीवन अन्दर में उदय होता था, उस प्रकार का ही बाहर में प्रकाश डालता था। इसमें शुभ आचरण तथा जगत के साथ भ्रातृभाव के व्यवहार की जाँच होती थी, जो पहले तो शुभ कर्मों के रूप में होती थी, जिससे मन शुद्ध होता था, तथा कर्म निर्मल होते थे, जिसे सेवा कहते थे। जब अंतस में घट रूपी दीपक जग उठता था, तब सिक्ख का यह साधारण व्यवहार होता था - ''ब्रह्मगिआनी पर उपक़ार उमाहा''। कभी - कभी किसी सिक्ख को किसी विशेष व्यवहार का उपदेश भी होता था, जिससे उसे परमपद की प्राप्ति सुविधा से हो जाती थी, वह हरेक के स्वभाव के किसी लक्षण से गुरू जी विचार करके आज्ञा करते थे, इससे जीवन व्यवहार अंतस के अनुकूल होता था। इस तरह की विशेष शिक्षा के कुछ चिन्ह 'भगत रतनावली' तथा अन्य इतिहासों में मिलते हैं।[३]

□ □

के संस्कार' के अर्थ रखता है। ज्ञान, वैराग, भक्ति, सेवा आदि उपदेशों के अर्थ में यह पद प्रयुक्त होता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। प्रायः किसी सम्प्रदाय के आचार्य के गुरूमन्त्र उपदेश को ही गुरूदीक्षा कहते हैं। इन अर्थों में, गुरूबानी में भी यह पद आया है -

यथा "गुर दीखिआ घरि देवणि जाहि" । (रामकली वार महला १)

१. गुर दीखिआ ले जपु तपु कमाहि । नां मोहु तूटै ना थाइ पाहि ।। (रामकली वार म० १)

२. खालसा में, खालसा जी के जन्म से लगकर अब 'गुरू दीक्षा संस्कार' अमृत पान कराने से होता है।

३. जन्मसाखीयों से । २. भगत रतनावली से, जिसका कर्ता भाई मनीसिंघ माना जाता है। ३. गुरू प्रताप सूरज ग्रन्थ से ४. तवारीख खालसा तथा अन्य इतिहासिक पुस्तकों से ५. गुरू नानक सूर्योदय आदि से ।

५८ पृथ्वीमल सहगल रामा डिड्डी

"प्रिथिमल, सहगल उभै, रामा डिड्डी तीन[१]
आये श्री गुरू दरस को जिज्ञासा मनलीन।"

(गुरू नानक प्रकाश)

जब यह तीनों श्री गुरू जी के दर्शन करने के लिए आए, तो उन्होंने प्रार्थना की, 'हम ने सुना है कि विष्णु की भक्ति की जाती है, आप बताइए उसकी भक्ति करके उसके साथ एक स्वर कैसे हों? सतगुरू जी सुनकर मुस्कराये, उनकी ओर बड़े ध्यान से देखा, फिर मुस्कराये और कहने लगे, भाई तपस्या करो। उन्होंने कहा, हम गृहस्थी, काम धन्धे वाले लोग हैं, तप तो त्यागी लोगों का काम है, हमें कोई आसान मार्ग बताइए। आपने कहा भैया परमार्थ भी एक विद्या है, इसे समझो। तुमने तीन गुण सुने हैं? पृथ्वी ने कहा, जी महाराज! सुने हैं। फिर सतगुरू जी ने कहा: वे शास्त्रकारों की भाषा में ही सुने हैं कि अपने व्यवहार में भी उनका कोई लाभ अथवा हानि समझी है? रामा ने हैरान होकर कहा, हमने तो यह ढंग नहीं सीखा। काम-धन्धों में रहते हैं, कभी-कभी मृत्यु का भय आ जाता है, कि यह एक सत्य वस्तु है, मरना तो अवश्य है और हम जो जीवित हैं, बस बोझा ही उठा रहे हैं। प्रतिदिन वही धन्धे, वही भोग, वही प्यार, वही शत्रुता, वही झगड़े, वही टंटे। बाल्यकाल में दूसरे के अधीन थप्पड़, झिड़कियाँ, युवावस्था में भोगों के रस और वृद्धावस्था में शक्तिहीनता के लिए रोना; न हो आने वाले भोगों के वियोगों के लिए विलाप। तब हम ने पूछ-ताछ आरम्भ की, तो पता चला कि विष्णु सदैव सुखी है, जगत का स्वामी है, उसकी प्राप्ति सदैव सुख की प्राप्ति है। अत: महाराज! आपका यश सुनकर आये हैं कि कलियुग में आप उसका रूप होकर प्रकट हुए हैं और हमें भी किसी ठिकाने पर पहुँचाए। गुरू जी फिर मुस्कराये ओर कहने लगे: भाई तीन गुणों को जो 'दर्शन विद्या' में बताये हैं, तुम उन्हें 'अपने व्यवहार' में देखो और विचार करके प्रयोग करो तो इनसे ऊँचे उठ जाओगे, वहाँ पर सुख है।

सहगल – दया कीजिये, सुनाइए, समझाइए, बताइए और जैसे आपने कहा है पार ले चलिए। तब आपने कहा:-भाई! मनुष्य तीन गुणों में व्यवहार करता है, उसके कर्म तीन गुणों में हैं कभी रजोगुणी करता है कभी तमोगुणी और कभी सतोगुणी। इस तरह तपस्या तीन प्रकार की है : तमोगुणी, रजोगुणी, सतोगुणी।

१. शरीर को नंगा रखकर, जाड़ा सर्दी, गर्मी सहन करके, भुखे रहकर, धूईं तपाकर अथवा जल में बैठ-बैठकर परिश्रम करना तमोगुणी अथवा तामसी तप है। इस तरह के तपस्वी जो इच्छा धारण करके, करते हैं उन्हें ऋषि सिद्धि फुरती हैं, यदि निष्काम होकर तप करें तो मन शुद्ध होता है। यह तप कठिन है और इसमें कई बार क्रोध का निवास होता है और कई बार तपस्वियों को कामचेष्टा आ घेरती है।

२. दूसरा राजसी तप है। आँखों को विकारों वाली दृष्टि से रोकना, कानों को निंदा, ईर्ष्या आदि सुनने से रोकना, हाथों को बुरा काम करने से वर्जना, पाँवों को बुरे मार्ग पर जाने से

---

१. भाई सन्तोख सिंघ जी ने तीन गिने हैं। पर 'रतनावली' के लेखक ने पृथ्वीमल सहगल, रामा डिडी दो गिने हैं ।

रोकना, रसना को कटु वाक्य, झूठ तथा निंदा से हटाना, शरीर को अविहित भोगों की ओर से रोकना, यह राजसी तप है। इनके स्थान पर आँखों को भले पुरुषों के दर्शन में लगाना और भली पुस्तकों के पाठ में लगाना, कानों को कीर्तन सुनने और रसना को मीठा बोलने तथा सत्य बोलने में लगाना, हाथों द्वारा सेवा तथा दान करना, पैरों से सत्संग में चलकर जाना, यह राजसी तप है। बात यह कि इन यत्नों में, बुरी ओर से हटना और शुभ मार्ग पर चलाने में मन का ज़ोर लगे रहना राजसी तप है। ३. शांतिक तप यों समझिए :-यदि आप गुरू की गति के अनुसार चलें तो तुम्हें यहाँ से दो वस्तुएँ प्राप्त होंगी। एक नाम और दूसरी उसकी स्तुति। यदि तुम उस तीन गुणों से ऊँचे प्रभु के नाम का स्मरण करोगे, मन तथा प्राणों में उसे बसाओगे, तो अन्त में उस नामी की प्राप्ति होगी। यदि उसकी स्तुति करोगे, तो तुम्हें बानी का दान मिलेगा। यदि उसे पढ़ोगे, विचारोगे, उसका कीर्तन करोगे, अथवा सुनोगे तो उससे मन का मैल कटेगा और मन निर्मल होकर रस से भरेगा, इसके पंख लगकर गुणों से ऊँचे उठने की उड़ान लगेगी और अन्त में, जिसकी स्तुति करते हो उसी में लीन हो जाओगे। अब सतोगुणी अथवा शांतिकी तप का रूप यह होगा कि वानी तथा नाम के अभ्यास के समय मन वासना तृष्णा में जाएगा, मन को बारी-बारी अन्य वासनाओं में तथा बेकार संकल्पों में जाने से वर्जना, यदि चला भी जाये तो भी वर्जना और नाम में लगाना, कि अन्त में एकचित्तता प्राप्त हो, यह शांतिकी तप है। जैसे घोड़े को मसाला खिलाएँ तो वह फैंक-फैंक मारता है, वैसे ही मन शब्द (नाम) का प्रेमी बनने से कतराता है और इधर-उधर भटकने लगता है। अत: जैसे मसाला खिलाने वाला मनुष्य घोड़े के मुँह में अपना हाथ दिए रखता है, कभी तो बार-बार देता है, तो वह उसे खाकर स्वस्थ हो जाता है। इस तरह न लगने वाले मन को बार-बार लगाना, शांतिकी तप है। जब मन लग गया तो स्वस्थ हो जाता है।[१] अत: तुम्हें यदि यह बात अच्छी लगे, कि मनुष्य के जन्म का लाभ अपने मूल की पहचान करना है, तो भाई! समझिए कि शरीर का मूल मन है और मन का मूल आत्मा है और आत्मा का मूल परमात्मा है। परमात्म देव सत्य स्वरूप है, परम अनूप है, रस रूप है और सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है; उस मूल को प्राप्त करना है, उससे दूरी रखकर अपरिचित रहकर हम दुख सुख के भागी हैं। यदि तुम्हें इस मार्ग पर चलना है तो नाम तथा बानी या पाठ ग्रहण करो और उपरोक्त राजसी तथा शांतिकी तप धारण करो, तब तुम्हारा कल्याण होगा। यह सुनकर वे जाग उठे, चरणों पर झुक गये और दान के लिए याचना की। श्री गुरू जी ने नाम तथा वानी प्रदान करके दिक्षित किया। इसे रजोमुखी तथा सतोगुणी तप की, वाहिगुरू के अनुभव तक पहुँचने की जाँच सिखा दी और चलते समय विशेष शिक्षा यह दी कि सत्संग में अवश्य ही पहुँचना। इसी तरह उन्होंने परमगति प्राप्त की। गृहस्थी जीवन में ही फिरते रहे। जहाँ पर वे कहीं सत्संग होता सुनते तो वहाँ पर अवश्य ही पहुँचते, सेवा करते भी और बानी का अभ्यास भी करते। केवल आप ही इस ओर नहीं लगे परन्तु उन्होंने गुरू जी की शिक्षा का प्रचार अपने परिवार में भी किया और सबको इस मार्ग पर चला कर गुरू जी के चरणों से प्रेम लगवाकर दीक्षित करवाया। यों उन्होंने इहलोक का भी सारा सुख प्राप्त किया और परलोक का भी प्राप्त पर लिया इससे पता चलता है कि आरम्भ से हरेक सिक्ख आप भी जपता

---

१. बारंबार बार प्रभु जपीऐ ।। पी अंमृत इहु, मनु तनु धपीऐ ।। (गऊड़ी सुखमनी महला ५)

चला आया है और दूसरों को भी जपाने के मार्ग पर चलाता आया है।[१]

□ □

५९ पिरथा तथा खेड़ा सोइरी

यह दोनों पुरुष गुरू के पास आये, वहाँ पर गुरुवानी का उच्चारण हो रहा था, दर्शन करके सीस झुकाया और बैठ गये। शब्द का कानों पे झटपट ही प्रभाव पड़ा, एकाग्र चित हो गये। प्रयोजन था मन की एकाग्रता, सो उसी समय पूरा हो गया। जब शब्द समाप्त हुआ और बातचीत का समय आया, तब सतगुरू जी ने पूछा, भाई! किस कामना के लिये आये हो? एकाग्र चित तथा रस के ज्ञाता पिरथा जी ने कहा:-पातशाह! इहलोक में सुख तथा अपने चरणों में शरण प्रदान कीजिए, जैसे आपने संसार को असार दिखाया है, वैसे ही दीखता रहे, जो तृप्ति अब आई है, वह आई ही रहे, हम माँगे कुछ नहीं और जैसे अब उच्चारण हुआ है, वैसे ही अनुग्रह कर दीजिये, ''अणमंगिआ दान दीजै दाते तेरी भगति भरे भंडारा'' (आसा महला १) यह सुनकर गुरू जी ने वचन किया, तुमने चरणों की शरण की माँग की है, मेरे चरण सदैव साधु सभा में रहते हैं। तुम इस समय शब्द सुनकर एकाग्र हुए हो, सदैव एकाग्रचित रहोगे। यदि शब्द का अभ्यास करोगे तो उस अभ्यास से तुम शब्द में लीन हो जाओगे। मेरा शरीर सगुण रूप है; तुम यदि शब्द में लीन होगे तो फिर नहीं बिछुड़ोगे। शरीर से लगने से तो वियोग होगा अत: तुम बिछुड़ोगे। यों वानी तथा नाम की दीक्षा देकर दाता ने और शिक्षा दी :-दोनों समय (सवेरे तथा सांयकाल) धर्मस्थान पर चलकर जाना। संत, सतगुरू तथा प्रभु को एक रूप ही समझना। धर्म की कृत्य करना और ज़रूरतमंदों के साथ बाँटकर खाना। दोनों ने इसी तरह किया और भवसागर से पार हो गये।

□ □

६० श्री कालू खत्री

यह कालू, सुप्रसिद्ध मेहता कल्याणचंद मेहता कालू जी नहीं, जो सतगुरू जी के सांसारिक पिता थे। यह कोई और कालू खत्री सिक्ख था। वह गुरू जी की शरण में आया, गुरू जी का दर्शन किया, संत्सग का प्रभाव देखा। ''गुरुमुख, मनमुख, सनसुख, वेमुख'' आदि शब्द सुने। बानी तथा शब्द का प्रवाह चलता हुआ देखा और कुछ सूझ समझ पड़ी, तो एक दिन पूछने लगा, श्रीमान! यहाँ पर आपकी सत्संग सभा में 'सनमुख' 'विमुख' किसे कहते हैं? आपने उत्तर दिया-जो गुरू के सामने बैठकर शब्द को सुनकर धारण करे, उसके प्रकाश में अपनी वृत्ति का साक्षी हो जाये, वह सम्मुख है। इस तरह का पुरुष अपने व्यवहार में-कर्मों में-पापों से मुँह फेरेगा, पुण्यों को सम्मुख रखेगा। बेमुख इसके उलट चलता है। कालू ने कहा, पातशाह! यह जीव बेमुख कैसे हो जाता है और सम्मुख कैसे रहता है? तब सतगुरू जी ने

---

१. जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की जो आप जपै अवरह नामु जपावै ।।
(गउड़ी वार महला ४)

कहा - जीव का जी स्वाभाविक ही उस बात की इच्छा करता रहता है कि जगत के सभी सुख उसे प्राप्त हों। इस इच्छा से, दूसरे के सुख से ईर्ष्या करने से, जीव बेमुख हो जाता है। 'दूसरे लोग पराये नहीं, मित्र हैं, भाई हैं।' 'एक महि सरब सरब महि एका इह सतिगुरि देखि दिखाई (रामकली म: १) अत: सबके साथ मैत्री रखने से सिक्ख उस 'एक' के सम्मुख रहता है, जिसका आराधन कर रहा है। क्योंकि मित्र का सुख अपना ही सुख होता है, और यह सुख देगा और विद्या, धन, सुख सभी कुछ का बाटँकर प्रयोग करेगा : इसी तरह जो लोग सुखी नहीं अथवा निर्धन या नीच हैं, उनसे घृणा करना प्रभु की ओर से विमुखता है, पर उन पर दया करनी, छोटे भाई समझना, सहायता करनी।[1] यह अपने आराधन देव की सम्मुखता है। इसी तरह यदि कोई आप तो 'धन' करके 'गुण' करके अथवा 'ऐश्वर्य' करके बड़ा है, उनके साथ बराबरी न करे, बल्कि प्रसन्न हो जिस तरह बड़े भाईओं को देखकर प्रसन्न[2] होते हैं, तो सम्मुख रह सकते हैं। इसी तरह जिनके साथ मैत्री तथा प्यार, दया अथवा प्रसन्नता का वश न चले, भला करने पर बुरा मानें, बिना किसी कारण से शत्रुता तथा ईर्ष्या करने पर किसी तरह सुखी न हों, तुम्हारे शुभ उपदेश को न धारण करें तो आगे से उनके साथ शत्रुता तथा ईर्ष्या अथवा उनकी निन्दा नहीं करनी, मन में परायेपन की भाँति निर्लिप्तता धारण करनी[3] इससे सम्मुखता बनी रहती है। अत: भाई जब कालू ने अपनी दीक्षा से यह विशेष गुण धारण किये तो उसका तथा उससे सत्संग करके अन्य कई व्यक्तियों का उद्धार हुआ।

□ □

६१ भगता ओहरी, जापु वंशी

ओहरी जाति का 'भगत' नामक और 'जापु' नामक दो पुरुष सतगुरू जी की शरण में आये। जब इन दोनों ने गुरू जी की शरण प्राप्त की तो इन्होंने विनती की। हे पातशाह! हम विद्वान नहीं हैं, विद्वान सभी बातों को समझ लेते हैं और ज्ञान की प्राप्ति कर लेते हैं। हम वहाँ पर कैसे पहुँचेंगे, जिसे उद्धार कहते हैं? तब आपने कहा तुम यहाँ पर नाम जपने के परिश्रम द्वारा जाओगे, पर स्मरण रहे, बेमुख मत बनना। उन्होंने पूछा, बेमुख कैसे न हों। तब आपने कहा: - दो काम करो, एक करने योग्य और दूसरा न करने योग्य। भवसागर से तरने के लिए यह कर्म तम्हारी सहायता करेंगे। करने योग्य तुम्हारे लिये काम यह है कि तुम्हें गुरू जी के सिक्खों की सेवा करनी है। इस कर्म द्वारा तुम उज्ज्वल होते जाओगे और प्रभु के सम्मुख रहोगे। जो सिक्खों की सेवा करता है, वह एक प्रकार से प्रभु की ही सेवा करता है। दूसरा तुम्हारे लिए न करने योग्य काम यह है: - १. ईर्ष्या, बैर करना अर्थात् दूसरे के गुणों तथा बड़ाई को देखकर जलना। २. अंहकार में रहना, किसी को अपने तुल्य न समझना, छोटों पर दया न करना। ३. निन्दा करना, दूसरों के छिद्र निकालना, यदि छिद्र हों तो बुराई करना यदि न हों तो बेकार के आरोप लगाना। ४. सत्याग्रह करना, किसी को सुमति देना, यदि वह न माने

---

१. करुणा ।

२. मुदता ।

३. उपेक्षा ।

तो उससे जोर जबरदस्ती करना। झूठी बात कहना या कर बैठना, फिर उस पर हठ धारण करके बैठ जाना। भाई! जो न करने योग्य चार कर्म कहे हैं, यदि तुम उन्हें नहीं करोगे और सिक्खों की सेवा करोगे, धर्म की कृत्य करके गुरू के प्रेमियों के साथ मिलकर खाओगे तो बेमुख नहीं बनोगे, कल्याण होगा।

□ □

६२ फिरणा ख़हिरा, जोध

फिरणा खहिरा और जोध नामक दो व्यक्ति गुरू जी की शरण में आये। आकर शिष्यता की प्राप्ति के लिए याचना की। गुरू जी ने कहा, रात के तीसरे पहर में उठकर स्नान करना, फिर इस शब्द 'नाम' का जो तुम्हें दिया जाता है, अभ्यास करना। यह नाम जो तुम्हें जपना है, वह कर्तार का नाम है। उसे अपना स्वामी समझना, नाम उस प्रभु का समझकर उसका अभ्यास करना। बानी का मनन करना, अर्थात् आपस में बानी कीर्तन तथा विचार करते रहना। इस कर्म के साथ विशेष शिक्षा यह धारण करनी, कि मन नम्र रहे, शिष्यता तो मन को नम्र रखने से ही प्राप्त होती है। क्योंकि उच्च मन बुद्धि के ऊपर चलता है और बुद्धि को विचलित कर देता है। मन सदैव बुद्धि की अगवानी में चले, यही मन का नम्र होना है। फिर अहंकार निवृति गुरू के सिक्खों की सेवा द्वारा होती है। फिर तुम्हें साधु पुरुषों की सभा संगति में बैठकर गुरू की बानी को प्रेम सहित सुनना है, यदि ऐसे करोगे से भवजल से पार हो जाओगे। यह दोनों मित्र इसी मार्ग पर चले।

□ □

अदेशी दाता की दूसरी उदासी (यात्रा)

सूचना - कर्तारपुर में सत्संग का ठाठ बांधकर और नाम का चक्कर चलाकर गुरू बाबा ने फिर उदासी धारण कर ली। किसी अगम के आकर्षण में आपको फिर यात्रा में डाल दिया। इस यात्रा में घटे कौतुकों का उल्लेख आगामी पृष्ठों में है :-

६३ प्यारे गुरू नानक देव जी की सरसा में फेरी

गुरू बाबा ने अब फिर उदासी धारण कर ली, दक्षिण दिशा की तैयारी की। पुरातन जन्म-साखी में लिखा है -

'तब पावों में लकड़ी की खड़ाऊँ थी, हाथ में आसा था, सिर पर रस्से लपेटे हुए थे, बाहों तथा जांघों पर भी रस्से लपेटे हुए थे, माथे पर बिंदुली का टीका था, तब फेहो जाति का सैदा जाट का साथ था।'

कर्तारपुर से तलवण्डी आये। राय बुलार को दर्शन दिये। उसे सुखी करके, आप फिर सुलतानपुर आये। सुलतानपुर से चलकर सतलुज पार हुए । धरमकोट, भटिंडा, भटनेर आदि होकर सरसा पहुंचे। यह स्थान हिसार जिले में है। अनुमान यह है कि घगर नदी के सूखे स्थल पर आबाद है। उस समय इस स्थान पर अनेकों करामाती प्रसिद्ध तथा पूजा वाले पीर फकीर बसते थे। योग मत का सब ओर प्रचार होने के कारण मुसलमान फकीर भी प्राय: योग सिद्धियों में लगे रहते थे। सुना जाता है कि अब तक भी मुसलमान अपने-आपको योगी कहलाते हैं और तब तो मुसलमान फकीरों ने अपने दीन के प्रचार की सिद्धियों, करामातों और धागों के तावीजों द्वारा पुत्र दान करने और रोगियों को ठीक करने आदि का सिलिसला चला रखा था। इस प्रकार वे मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के सहायक बनकर धीरे-धीरे लोगों के मनों पर अपना प्रभाव डाल रहे थे और गुप्त रूप से अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे। अत: फकीरों का प्रयोजन जीवों का कल्याण नहीं था, पर जीवों की तृष्णा की पूर्ति में सहायता देकर मानवीय आवश्यकताओं, कमियों तथा पीड़ाओं में मानसिक सहायता का यकीन दिलवाकर अपने ऐश्वर्य का परिचय देने का प्रयोजन मूल्य था। साथ ही साथ मुसलमानों की वृद्धि की गौण आवश्यकता की पूर्ति होती रहती थी। सरसा पीरों का प्रसिद्ध ठिकाना था यहां से मालवा का राजपूताना की रियासतों में अपना प्रभाव जमाने का सुअवसर था।

---

१. हाफिज़ाबाद वाली जन्मसाखी में लिखा है-सेंदों तथा घोहे जाति के जाट । पर आगे चलकर सैदो तथा सीहां की जाति 'घेहा' लिखी है (साखी ४४) अत: सिद्ध हुआ कि सैदो और सीहां दोनों साथ थे, क्योंकि राक्षस को पाहुर सीहों देता है। सीहों साथ था, तब ही तो उसने पाहुर दी थी। इस जन्मसाखी के अनुसार इस यात्रा के समय मरदाना गुरू जी के साथ नहीं था ।

एक ओर मुसलमान आक्रमणकारियों की तलवार बादशाह के लोभ-लालच और दबाव, दूसरी और सूफी फकीरों की करामातों के लालच तथा उपदेश हिन्दुओं को मुसलमानी धर्म की ओर लिये जा रहे थे। हिन्दु योगी सिद्धियों में फंसे हुए थे। हिन्दू पण्डित स्वशोभा तथा सुख के शिकार हो रहे थे। प्रजा में विद्या तथा ज्ञान का प्रभाव था। प्रेम कहीं भी नहीं था। प्रभु से मिलाप, सृष्टि के उद्धार का प्रयोजन एक ओर रह गया था। जीवन कण का अकाल था, इसलिये गुरू बाबा (१) खोज-खोजकर पीरों, फकीरों, योगियों तथा पण्डितों के साथ अड़ता था और उनके दृष्टिकोण को बदल देता था। (२) कभी-कभी भयंकर रूप से भूले हुए लोगों तथा सर्वसाधारण दलों में जा गर्जता था, चिल्लाता तथा रूहानी छट्टा देकर जीवन-दान प्रदान कर आता था। (३) कभी दूर दूर कही सच्चे ईश्वर की तलाश करने वाले अन्वेषकों को कठिन मार्ग तै करके और उनके घर पहुंचकर कोई अन्तिम भूल दूर करके मानों बाजी जिता देता था।

आज बाबा, गुरू बाबा, जगत तारक बाबा सरसा आया है। यहां पर फकीरों का जमघटा बसता है। ख्वाजा अब्दुल शकूर, सबसे बड़ा पीर बहावल हक, शाह नवाज, फरीद्दीन-जती लाल, जलालदीन, लालमती तथा अन्य कई साधू फकीर निवास करते थे। यह लोग हिन्दू फकीरों की भांति तप करते थे, चिल्ले काटते थे, कई जन्त्र, मन्त्र, धागे-तावीज देकर लोगों पर अपनी पवित्रता, तपी तथा पूजनीय होने का प्रभाव डालते थे।

जब सरसा के फकीरों-सिद्धों ने सुना कि यहां पर वह तपा आया है, जो कलियुग में प्रकट हुआ है, और जो जिधर जाता है उधर ही जादू बरसाता है, अपना प्रभाव डालता है और सब को पराजित करता है, तब सबने मंत्रणा की कि तप में, चर्चा में अथवा करामात में, गुरू नानक को पराजित करें। इसलिए सभी व्यक्ति जाकर मिले। पहले तप, भक्ति तथा अभ्यास की चर्चा हुई। गुरू बाबा ने बताया, 'यदि मन विकारी हो, शरीर अमोड हो और शरीर में अधिक रक्त हो, तो शरीर को ठीक करने के लिए तथा मन का मैल निकालने के लिए तप सुखदाई हो जाता है। पर तप आदि, तप अन्त तथा और तप मध्य कोई गुण नहीं। शरीर को मत हराओ। मन को बावलेपन की उदासी में डालकर मरियल करना भी रूह को कष्ट देना है।' जतीलाल ने कहा, 'क्या फिर बातों से मन सोधा जा सकता है? पण्डित लोग पढ़कर तथा विद्या प्राप्त करके चतुरता से जगत को अपना अनुयायी बना लेते हैं, पर वे आप माया के आवरण में होते हैं, तृष्णा में होते हैं, शुभ कर्मों से रहित होते हैं, अभ्यास से रिक्त होते हैं। क्या जगत उनका अनुयायी बनकर डूबता नहीं?'

गुरू बाबा ने कहा - मैंने यह तो नहीं कहा कि बातों से घर पूरा करने वाले लोग अच्छे हैं, वे तो कठोर मोंठ की भांति सदैव भूल में पड़े हुए लोग हैं। जो अन्तर आत्मा में बिना अनुभव किये, कथा कहने वाले, उपदेश देने वाले तथा मार्ग पर चलने वाले बनते हैं, सभी भूल में हैं, पर उसी तरह केवल तपी तथा केवल शरीर का दमन करने वाले भी भूल में हैं। काया कच्ची मिट्टी है, मिट्टी धुलकर कभी चांदी नहीं होती। कोयला धुलकर कभी अपनी कालिमा नहीं छोड़ता।

बहावल-फिर जिस तरह तपियों, अभ्यासियों की तुम हंसी उड़ाते हो, उसी तरह या द्वारा ठगे हुए लोग मूर्ख तथा तृष्णा, ईर्ष्या, स्वार्थ में जलते हुए शिक्षित लोग भी उड़ाएंगे जगत भ्रमित हो जाएगा। प्रभु के धन्धों के लिए मज़ाक शेष रह जायेगा।

गुरू जी - ठीक है! पर तब, जब मैं लंपट लोगों को, स्वार्थ तथा ईर्ष्या का व्यवहार करने

वाले लोगों का भला कहूं और तपियों को बुरा। मैं तो पहले वर्ग के लोगों से कहता हूं कि अवगुण छोड़ो, गुण इकट्ठे करो और करनी कीरति में आओ तथा तपियों से कहता हूं कि वाहिगुरू के प्रेम में आओ, नाम का तप करो।

फरीद्दीन – कहने का स्वाद तो तब है जब कि आप तप कर सके और फिर उसी उच्च बात में निवास करता हो और कह दे कि तप कुछ नहीं। आप तो सवेरे उठ न सके, कोई अभ्यास न कर सके, शरीर के सुखों में मस्त हो, चार अक्षर पढ़कर तर्क-वितर्क सीख कर वैराग वाले, मन का दमन करने वाले, आपा को मारने वाले हठियों, तपियों, अभ्यासियों से मजाक करने लग पड़े।

गुरू जी – मैंने किसी को बूरा नहीं कहा।...फिर?

जलालदीन – फिर पहले हमें तप करके दिखाओ। हमारा यह मंतव्य नहीं कि तुम जगत में लीन हो, हमें पता है कि तुम त्यागी हो पर हम तुम्हें पूर्ण पुरुष तब जानेंगे, जब तुम तप, हठ करके फिर कोई उच्च बात बताओगे।

गुरू जी – हे साधु जनो! तप, हठ, अभ्यास सबका भाव है। बन्धन, रोक; मन को बुरी ओर से रोकना, सीमाबद्ध करना, चाहे मानसिक बल से, चाहे प्रबल इच्छा के बल से, चाहे शारीरिक त्याग तथा शारीरिक तपों से–प्रयोजन मन को वश में करने का है। जो बुरा तो नहीं पर इस प्रयोजन के लिए कोई सुगम मार्ग चाहिए, सारा जगत कठिन मार्गों पर चल नहीं सकता।

लाल – यह ठीक है, पहले अभ्यास करके बताओ।

गुरू जी – भूख, निद्रा, प्यास, शारीरिक आलसों को जीतना तथा वश में करना (१) एक तो हठ द्वारा होता है (२) एक सहज द्वारा होता है। हठ से करना तप है, सहज में एक दरजा है, जहां पर आत्मा का प्रकाश ऐसा प्रकाश डालता है कि निद्रा, भूख अपने आप ही वश में हो जाती है।

जलाल – ब्यौरे की आवश्यकता नहीं। आओ तो, सभी चिल्ले में बैठें, चालीस दिन एक जौ खाना और एक लोटा पानी में अधिक मत पीना, यों करके दिखाओ। जो इसे काट ले वह कहे कि इससे ऊँची बात यह है और इसकी आवश्यकता नहीं।

गुरू जी – त्याग, तप, हठ, योग सब कुछ हमने करके देखा है। नाम सब तपों से शिरोमणि तप है, जो सतोगुण में और इससे ऊपर उठाकर ले जाता है। सतोगुण सुख तो नाम के अभ्यास में है। सुख अनुग्रह में है, सुख आज्ञा के मनन में है।

इस समय सैदों ने धीरे से कान में कहा–'पातशाह! आपको इस टंटे में पड़ने की क्या आवश्यकता है'? गुरू जी ने समझाया–'आवश्यकता तो कोई नहीं, पर यदि कोई बच्चा कीचड़ में फंस जाए तो जो कोई भी उसे निकालने के लिए जाएगा, वह आप उस कीचड़ में जाएगा तो ही उसे कहीं निकालेगा। यह फकीर अपने तमोगुणी तपों के अंहकार में फंसे हुए है कि हम बड़े अभ्यासी हैं, इनका अंहकार तब ही टूटेगा, जब देखेंगे कि तप हर कोई कर

---

१. इस नियम के सम्बन्ध में गुरू अमरदास जी का वाक्य है :
'तिथै ऊँघ न भुख है हरि अंमृत नामु सुख वासु ।।
नानक दुखु सुखु विआपत नहीं जिथै आतम राम प्रगासु ।। (सलोक महला ३)

सकता है, पर अनुग्रह का स्थान कोई उच्च वस्तु है और वह तपों हठों के अधीन नहीं। तपों के अहंकार के टूटने पर ही यह वाहिगुरू के सच्चे यश को सुनेंगे और इनका उद्धार होगा, अन्यथा तपों के अहंकार में करामात के बन्धन में और ऐश्वर्य की भूख में ये भूले हुए चले जा रहे हैं और जगत को भी भूल में लिये जा रहे हैं।

जलाल – आओ फिर बैठें।

कहा जाता है कि चालीस-चालीस जौ तथा पानी लेकर गुफा में उतर आए। गुरू जी को भी एक कोठा मिल गया। ४० दिन व्यतीत हो गए, गर्मी के दिन थे, पर जल एक बड़ा आधार है। वैद्यों में भी लांघन होते है और बड़े-बड़े व्रत रखवाकर शरीर राजी करते हैं, वैसे उन्होंने भी अभ्यास कर रखे थे। अत: सभी ४० दिन व्यतीत करके फिर दो-चार दिनों में कई ढंगों से सावधान होकर इकट्ठे हुए तो सभी दुर्बल तथा पीले हो रहे थे। गुरू जी ज्यों के त्यों लाल शिंगरफ की भांति थे, जैसे आप बैठे थे, तैसे ही निकले। अब सभी देख कर चकित हो गए और कहने लगे-'हे नानक!' तू ने भूख तथा प्यास सहन नहीं की? कैसे कुछ खाता रहा है?' गुरू जी ने कहा, 'तुम्हारे पहरेदार तगड़े रहे हैं कि नहीं?'

पीर – जी तगड़े रहे हैं।

गुरू जी – फिर निश्चय धारण करो कि केवल अन्न से स्वस्थ नहीं रहा जा सकता, पर प्यारे के नाम से भी स्वस्थ रखा जा सकता है।

पीर जलाल – क्यों आपका शरीर, शारीरिक भूख से दुर्बल नहीं हुआ?

गुरू जी – मैंने तुम्हारी तरह तप नहीं किया, मैं तो प्यारे के प्यार में उसके स्वरूप में लौलीन रहा हूं। वह पालक है, अन्न से भी पालन करता है, अपने प्यार से भी पालता है। अन्न खाने से पला जाता है, पानी से पालन होता है, परन्तु जैसे वायु अपने आप अन्दर जाकर पालन करके, अपने आप ही बाहर निकल जाती है, वैसे ही वायु से सूक्ष्म में कोई और तत्व भी हैं, जो अन्न, पानी, पवन सब का स्थान पूर्ण करके अन्दर का अन्दर में ही पालन करते हैं। जब वाहिगुरू से निरंतर अभेद मिलाप हो जाता है, सूक्ष्म तत्व, शरीर का पालन अपने आप करते हैं। उस स्थान पर भूख, प्यास व्याकुल नहीं करती। जब आत्मा का नाम का आधार हो जाता है, तब शरीर को इस तत्व का आधार हो जाता है। मैं सहज के निर्वाण रंग में पड़ा रहा हूं, तुमने हठ करके, जोर लगाकर, आपा को मोड़-मोड़कर हठ से बैठ बैठकर दिन व्यतीत किये हैं। तुम्हारे मन ने प्रभु का स्मरण नहीं किया, पर शरीर को कष्ट देने में लगा रहा है, अत: यह तप है और शारीरिक तप है, क्योंकि मन तो शरीर की रक्षा में लगा रहा है। इससे तो अच्छा है कि शरीर को प्रति दिन का भोजन हो, जिससे मन सुखी होकर और मुक्त होकर वाहिगुरू का ध्यान करे।

जतीलाल – प्रत्यक्ष करामात देखकर आपके आगे सीस झुकता है, सचमुच आपने हमारी तरह कुछ नहीं खाया?

गुरू जी – तुमने अभ्यास में आपा लगा रखा है, अभ्यास तो हठी मनों के लिए औषधि मात्र गुणकारी था। परिश्रम अथवा अभ्यास प्रयोजन तो नहीं था। मथना तो केवल मक्खन की प्राप्ति के लिए था, मथना प्रयोजन तो नहीं था। यदि वैसे ही मथते जाएं तो मक्खन नहीं निकलता। तुम हठ में से राज में आते, राज में से सहज में निवास करते, सहज से फिर तुम्हें

उस दशा की झलक पड़ती जब आत्मा परमात्मा के मिलन में मग्न हो जाता है, तब स्वाभाविक ही भूख, प्यास का संकल्प कम हो जाता है। महान रस छोटे रसों से, महान तृप्ति छोटी भूख से बेपरवाही करती है, पर यह सहज बात नहीं, वश की बात नहीं, अनुग्रह का कोई पद है। प्रत्येक व्यक्ति को भुलावे में मत डालो।

शाह नवाज – श्रीमान्! वैराग धारण किये बिना कभी प्रभु से प्रेम हो सकता है?

गुरू जी – प्रभु के साथ प्रेम तो अपने-आप ही जगत के साथ वैराग है। स्त्री का पति के साथ विवाह हो जाना ही माता-पिता तथा मायके घर की ओर से वैराग है। केवल वैराग करके, मन जगत से निराश होकर एक तरह के पतन की ओर जाता है। यह वैराग नहीं, यह तो अज्ञात ही तमोगुण में फिसलकर जाना है। वास्तविक वैराग यह है, जिसके मन में पदार्थों के लिए तृष्णा तो न हो, पर मन वाहिगुरू के चाव, उल्लास, रस रंग, आश्य; आनन्द में हो, यह वैराग उदासी नहीं है। वैराग, निराश्रय, उदासी तथा केवल निराशा नहीं, पर न रहने वाले को न रहने वाला जानकर 'सदैव रहने वाले' की लगन, आश्रय, प्यार में उच्च तथा रंग में रांते होकर उल्लास तथा चाव, हां सतोगुणी चाव तथा उससे भी उच्च आनन्द में निवास करना है।

फरीद्दीन – क्या यह सब कुछ वैसे ही हो सकता है?

गुरू जी – इसके लिए अनुग्रह की आवश्यकता है।

फरीद – तेरे पर ईश्वर की दया हो, यह तो तेने सत्य कहा है।

गुरू जी – पर मैं ऐसे किसी साधन को पंसद नहीं करता, जो मुर्दा हैं।

जलाल – मुर्दों से आपका तात्पर्य?

गुरू जी – सिद्धि प्राप्त करने के लिए जो जप, तप, संयम अभ्यास है, यह सभी साधन मुर्दा हैं।

जगत को वश करने के लिए जो मानसिक एकाग्रता के साधन हैं, वे सभी मुर्दा साधन हैं।

जिन बातों से मनुष्य की तृष्णा बढ़े, उन बातों में वृद्धि करने वाले साधन मुर्दा हैं, क्योंकि वाहिगुरू से दूर माया की ओर ले जाते हैं, जो जीवित वस्तु नहीं है।

जलाल – और विद्या?

गुरू जी – सान है, मन तथा बुद्धि की। जैसा मन तथा बुद्धि है, विद्या उन्हें तेज कर देती है। जो कुछ समझ में पड़े यदि उसके अनुसार व्यवहार करे तो मन कुछ सोधा जा सकता है, अन्यथा तृष्णालु हो जाता है। यदि विद्या तृष्णा रूपी अग्नि पर तेल डालती है, तो यह साधन भी मुर्दा है।

बहावल – जीवित साधन क्या है?

गुरू जी – नाम।

सभी (चौंककर)-भगवान भला करे! पर हम कोई गधे चराते हैं क्या? सभी नाम ही तो जपते हैं।

गुरू जी – तुम नाम तो अल्ला का लेते हो, ईश्वर का, किसी अवतार का, पर मन का झुकाव उस ओर नहीं होता, जिसका नाम तुम ले रहे होते हो। नाम तो 'नामी' का लेते हो,

पर मन अनजाने ही ऐश्वर्य की ओर लग रहा है, करामातों तथा शक्तियों की ओर लग रहा है। बात यह है, कि मन का लक्ष्य है 'मैं' और जिह्वा पर नाम है 'प्रभु का'। अतः यह नाम हुजूरी का नाम नहीं रहा। नाम जपो अल्ला, ईश्वर, प्रभु पालक का और समझो कि उसकी हुजूरी में है। हम उसे देख तो नहीं सकते, क्योंकि वह इन आंखों का विषय नहीं, पर वह हमें देखता है,[१] वह सर्वव्यापक है अतः हम सदैव और स्वाभाविक रूप से ही उसकी हुजूरी में हैं। हमने इस बात को निरंतर ही जानना है कि हम हुजूरी में हैं, इसलिए आप नाम जपें-कभी भी उसकी हुजूरी से मन को परे न होने दें। मन पारे की भांति है, फिसलने वाली मछली, अस्थिर, इसको हुजूरी में नहीं रहना। इसे मोड़ मोड़कर हुजूरी में रखना यह है कि परिश्रम करना। जिह्वा नाम जपे, इसका लाभ होगा कि दशो दिशा में उड़ने वाला मन कहेगा कि जिह्वा क्या कर रही है? किसी समय पर इधर-उधर उड़ने वाले मन का ध्यान इधर लगेगा, ख्याल आयेगा, ध्यान आयेगा कि जिह्वा क्या कह रही है, फिर ख्याल लज्जित करेगा कि हमको तो नाम जपना है, हुजूरी में रहना है, फिर मन हुजूरी में आने का यत्न करता हुआ हुजूरी में आ जायेगा। यों परिश्रम करते-करते मन हुजूरी का स्वाभाविक ही अभ्यासी हो जायेगा। दिन-रात नाम चलेगा, ध्यान प्रभु की ओर रहेगा यों जब हुजूरी में निवास हो जायेगा, तो सुख हो जायेगा।[२] जिसकी हुजूरी में निवास करते रहें, उसका अनुग्रह हमारे पर आयेगी ; वह आन्नद, हमें दूर से दूर पूरण में ले जायेगा। फिर हमें अंदर बाहर हर ओर वही एक दिखाई देगा। हम हर समय संयोग में उसी जैसे ताजा, हरे-भरे चेतन उल्लास में, रस में, प्रसन्नता तथा सुख में सदैव जागते, सदैव सुहावने बने रहेंगे। यह होगा जीवन वाला साधन, अथवा जो तुम्हारा जी चाहे, कह लो।

बहावल – बात पते की कहते हो और पते भी अंगमी देते हो? हम आपको फकीर समझे बैठे हैं, पर क्या पूछने पर संकोच तो नहीं करेंगे, नम्रता नहीं धारण करेंगे, क्या सत्य बतावोगे?

गुरू जी – पूछिये।

बहावल-क्या आप कोई तप, अभ्यास करते समय पर आकर प्रकट हुए हैं अथवा धुर से ही कोई संदेश लेकर आये हैं?

यह सुनकर श्री गुरू जी विस्मय ही दशा में आये, चेहरा एक आश्चर्यजनक रंग से रांगा गया और मधुर स्वर में गायन किया :-

हऊ ढाढी वेकार कारै लाइआ।।
राति दिहै कै वार धुरहु फुरमाइआ।।
ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ।।
सचो सिफिति सालाहि कपड़ा पाइआ।।
सची अंमृत नामु भोजनु आइआ।।
गुरमती खाधा रज तिनि सुखु पाइआ।।

---

१. ओहु बेखै ओना नदरि न आवै बहुता इहु विडाणु । (जपुजी)
२. पंचम गुरू जी का वाक्य है:- दूख घने जब होते दूरि ।। अब मसलति मोहि मिली हदूरि ।।१।। (आसा महला ५)

ढाढी करे पसाऊ सबदु वजाइआ।।
नानक सचु सालाहि पूरा पाइआ।।२७।।

(वार माझ महला १)

जती – तब आप धुर से आए हुए हैं और धुर से कुछ लेकर आये हैं? बताइए क्या लाए हैं, दया कीजिए।

गुरू जी – जीवन दान।

जती – उससे क्या तात्पर्य है? शुभ कर्म, शुद्ध आचरण, यही जीवन दान?

गुरू जी – पशु जीवन के सामने यह जीवन है, पर आत्म जीवन के सामने यह जीवन नहीं, नीच है और मानो मृतक है।

जती – उसकी आवश्यकता नहीं?

गुरू जी – आवश्यकता तो बहुत बड़ी है, यही तो नीव है, मुझे यही तो सिखलाना है। पर जो कुछ मैं कह रहा हूं, वह जीवन है, वह इससे आगे की बात है। बबूल के पत्ते निकल आने पर तुम कहते हो वृक्ष बन गया, मैं कहता हूं नहीं बना, फूल निकले, फूलों की सुगंधि आये, फल लगें और भरकर लटकें। तुम कहोगे कि वृक्ष फलने-फूलने लग पड़ा, पूरण हो गया, मैं कहूंगा अभी नहीं, मैं कहता हूं कि अब उसमें इतना मद भर जाये कि उसमें गोंद तथा राल होकर प्रत्येक शाखा की नस-नस में से टपके और वह असह्य हो, तब सम्पूर्ण जीवित जीवन है।

बहावल – सुगंधि फैलाये?

गुरू जी – सुगंधि फैलाये, अमृत रस टपके, मद निकले।

बहावल – हम में क्या भूल है।

गुरू जी – तुम सिद्धियों में लगे हो, करामाती हो, एकाग्र हो, पर प्यार की कलाई में नहीं आये। प्यारे से दान जो मांगते हो। पर प्यारे से प्यारे का आपा नहीं मांगते। प्यारे का आपा आकर तुम्हारे आपा के साथ 'बिजली के स्पर्श' की भांति स्पर्श नहीं करता, जागृति नहीं आती, 'माया विस्मय का जादू नहीं टूटता', 'आत्मा तथा विस्मय की अंदर में अग्नि धधक नहीं उठती। तुम्हारा आपा जगत की तृष्णा में, अज्ञान में, उच्च जीवन के वियोग में जल रहा है, लाओ लाओ की खुजली के कारण पीड़ित है, तुम उसकी सहायता करते हो, और जलती पर तेल डालते हो। तुम खुजली की औषधि नहीं करते, नक्ष देते हो कि उससे खुजली और अधिक बढ़े। बुरा मत मानना, तुम तपस्या करके, रतजगे करके, उपवास रखकर, वैराग करके, इन्द्रियों का दमन करके, एकाग्र होकर प्यारे का नाम लेकर अब भी 'माया विस्मय' में लगे हो, प्रेम की लहर बिजली की कड़क की भांति धमाका नहीं दे गई; उच्च नहीं कर गई, 'प्यारे के प्यार' में मिला नहीं गई। यदि किसी में प्यार का कुछ झुकाव है भी तो 'प्यारा मुझे प्यार करता है कि नहीं' इस बात की परख नहीं। यदि तुम कभी भी भक्ति की ओर आते हो तो ईश्वर के प्रेमी बनते हो कहते हो और कि तुम प्रेमी हो, उसे मूर्ति माशूक, दयारहित, पत्थर हृदय भी कहे जाते हो। प्रेमी मन बनो, ईश्वर को प्रेममात्र मत बताओ। तुम माशूक बनो और ईश्वर का आशिक बनाओ।

फरीद – हम प्रेम मात्र! पापी, मलिन, हमारे में है ही क्या, कि ईश्वर हम से प्यार करे?

वह गन्दे लोगों पर क्यों आसक्त हो?

गुरू जी – वह आसक्त हो, यह बात तो सत्य है, वह आदि में आसक्त है, पर हम उसके प्रेमी नहीं बनते। हम हैं तो प्रेम मात्र, पर बनते नहीं। यह बात सत्य है कि मां पुत्र को जन्म देने से पूर्व ही बच्चे पर आसक्त होती है। यदि ईश्वर आसक्त न होता तो रचता ही क्यों? हम प्रेमी नहीं बनते, यही भूल है, हमारे अंदर यह अग्नि हो, प्रार्थना हो, पूछ तथा खोज हो :-

फेरि कि अगै रखीऔ जितु दिसै दरबारु।।
मुहौ कि बोलणु बोलीऔ जित सुणि धरे पिआरु।।

(जपुजी)

हम क्या करें, जिससे ईश्वर हमें प्यार करे? हम वह कुछ बनें जो उसे प्यारा लगता है। हम अपने अंदर से बुराईयों को, गन्दगी, मलिनता, कुरूपता आदि को दूर करें। वह तो आसक्त है, हम इसके योग्य नहीं रहे कि हम उस आसक्त के प्यार के योग्य हों।

''विणु गुण कीते भगति न होइ।।''

वह गुण क्या है? वह है :- अंदर से अपरिचित्तता, उस ईश्वर से अपरिचिता दूर करें। मन का झुकाव जो ईश्वर की अपेक्षा औरों की ओर है, उसे अपनी ओर करें। उसने बता दिया है कि उसे क्या प्यारा है, वह उसकी आज्ञा है। आज्ञा के तीन भाग हैं :-

सच, प्यार, लौ।

फरीद जी – जो अदृष्ट है, उसका प्यार कैसे?

गुरू जी – हां, दूसरी भूल है, ''इश्क मजाजी'' मन को किसी व्यक्ति के प्यार में लीन करके, फिर वहां से उखेड़कर ईश्वर में लगाते हो, मन फिर निकलता नहीं, मन को आरम्भ से ही आसत्य का असक्त मत बनाओ, न पत्नी का, न पुत्र का, न सुन्दर पुरुष का, न सुन्दर वस्तु का। मन को ईश्वर का माशूक बनाओ और अपने में माशूकों वाले गुण भरो, अवगुणों को निकाल दो, पात्र बनो, फिर वह वर्षा जो 'अनुग्रह है, जो सदैव धुर से निर्झर बरस रही है, हमारी आत्मा को पकड़कर तरोताजा कर लेगी। इश्क पर हमें क्या करना है? हमको सदैव आशिक के इश्क का पात्र बनना है।

सज्जनो! सौंदर्य शीशा का आशिक है, सौंदर्य शीशा के लिए बरस रहा है, फैल रहा है, तुम भी शीशा बन जाओ, जिससे सौन्दर्य तुम्हारी रंगों, रोमों में बस जाएगा। पत्थर होकर सौन्दर्य की आशिकी का दम मत भरो, पिस जाओ, आग में पड़कर पिघल जाओ, मैल निकाल दो, बिलौर बनकर निकल आओ, प्रकाश तुम में ही प्रवेश करने का, तुम्हें ही प्रदीपन करने को, चमकाने तथा दमकाने के लिए आशिक हुआ है। लड़कियों, लड़कों, महिलाओं, पशुओं, पदार्थों पर आसक्त मत होवो। प्रेमपात्र बनो, अपने आदि, अमर, धुर तथा आदि के आशिक आसक्त के। आरम्भ ही यहां से करो कि सत्कार में रहो, क्योंकि अवगुणों वाले हो। फिर अवगुणों को निकालोगे, शुद्ध होवोगे। हां प्यारे के प्रियतम तब ही बनोगे, जब प्यारे का तुम्हारे में आकर निवास होगा। फिर तुम बिलौरे की भांति ईश्वरीय चमत्कार के सौन्दर्य का बुक्का बनकर सौन्दर्य प्रदान करोगे, तो संसार तुम से प्रदीप्त होगा। तुम 'माया विस्मय' का अधिकार काट दोगे, तुम आत्मा तथा मन में परमेश्वर का उच्च सपना देकर माया के जादू को तोड़ डालोगे, तुम उच्च मनों को ईश्वरीय सन्नाहट में आकर जगा दोगे। जागृत हो चुके मन ईश्वरीय

आलिंगन में, प्यारे की कलाई में, सच्च बलिहारी, सदैव सुन्दर, प्रेम स्वरूप के शीतल आलिंगन में लेकर ईश्वरीयता से भर दोगे। हां, मनुष्य का, व्यक्ति का, यहां पर आने का धर्म यह है कि मृतक मतों को जीवित कर दे।[१]

विद्या, विद्याधारियों के पास बहुत है, चाहे संसार मूर्खता में है। तप, हठ, एकाग्रता, फकीरों तथा सिद्धों के पास बहुत है। कथा वार्तालाप, समझ समझाना, पीरी-मुरीदी, गुरू चेला, तीर्थ, पर्व, स्नान, दान, पुण्य, नमाज, रोज़ा, व्रतादि, पुजारियों, मुल्लाओं के पास सब कुछ है पर 'जीवन कण' नहीं है। हरेक स्थान पर घृणा प्रधान है। माया का जादू तगड़ा है, सभी बातें जो अनाड़ी लोगों के हाथों में होती हैं, वे माया के संगल की और कड़ी बन जाती है। इस कड़ी को तोड़ना है, हां मन की गांठों को तोड़ना है, अब कहो कि टूटता है कि नहीं?

बहावल - बात तो बहुत पते की है, पर सूक्ष्म है, समझ में तो आ गई है, पर यह अनुग्रह है, अपने कर्मों की बात नहीं दिखाई पड़ती।

गुरू जी - हां रात है, अन्धकार है, दिया जलाने से, अग्नि धधकाने से, अन्धकार नहीं जाता, ढोल बजाने से, बाजा बजाने से, अन्धकार नहीं जाता। चन्द्र हार जाता है और तारे थककर चले जाते हैं, पर वह देखो। सूर्य आ गया, अब अन्धकार को जाते देर न लगी। सूर्य के निकलने पर ऐसा नहीं लगता है कि अंधकार कभी था ही नहीं। आत्मा को, मन को, अंतस् को सीधा प्यारे के प्रकाश के नीचे लाओ, बस प्रदीप्त हो गए, अंधकार, धुंध सभी कुछ चला गया, जाते हुए फिर दिखाई नहीं पड़े।

तुम परिश्रम करो, सच पर चलो, हुजूरी में निवास करो, अंतस् का रुख उसके 'प्यार तेज' के सामने रखो, फिर यह अनुग्रह करता है, अनुग्रह उसका धर्म है, उसका कर्म है, उसका रूप है, वह तो सदैव प्रेम है, सदैव अनुग्रह है, पर हमारा रुख ही और ओर है।

'जीवन कण' अन्दर प्रवेश करे, जीवित हो जाए[२], मेरा तो यही कर्तव्य है। मैं यह कण लेकर आया हूं, यदि तुम्हारे पास है तो अच्छा, अन्यथा ले लो, प्यारे के नाम पर लुटा रहा हूं। यह कहकर श्री गुरू जी चुप हो गए। यों प्रतीत हुआ कि कहीं खोए जा रहे हैं, प्रभाव भी वही छा गया। सारे नेत्र मूंद गए, खो गए, कहीं डूब गए। कुछ घड़ी के पश्चात् सतगुरू जी के कमल नैन खुले, कहने लगे 'वाहिगुरू'।

सारे नैन खुले, शरीर फूल की भांति हल्के हो रहे थे। एक ताजगी थी, एक ठंडक थी, मन का रुख दुष्टा था और उल्लास शीतलता और रस था। यों लगता था कि कोई अदृष्ट शक्ति, प्यार तथा रस जिसका रूप है, हमारे आपा में आपा बनकर रस गई है। मन रिक्त एकाग्रता से उठकर किसी उच्च उच्चता में पहुंच गए हैं।

गुरू बाबा - सज्जनो! यह है प्यारे का प्यार, इसमें जीवित रहा, इसमें जीवित करो। रोम-रोम में, वन-तृण में प्यारे का निवास है। प्यारे का नाम हरेक जिह्वा पर रख दो। प्यारे

---

१. पंचम गुरू जी ने कहा है-
"जन आवन का इहै सुआऊ ।
जन कै संगि चिति आवै नाउ ।।

२. गुरू अर्जुन जी के कथनानुसार- "जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए।"
(राग सूही म० ५)

के प्यार की बात हर कान में कह दी। प्यारे की ओर रुख को मोड़ दो, प्यार की लहर लहरा दो। हरेक जीव अन्दर से जागृत हो जाए और अन्दर से अनुभव में, आकाशवानी में, ईश्वरीय परवाह तरंगों में तथा भेंट में निवास करें, यह प्यारे का संदेश है।

इस प्रकार सतगुरू जी ने सबके रुख तबदील किए, सच्चा मार्ग बताया, चार मास ११ दिन, वहां पर रहे।[१] जहां पर बैठकर आपने यह जीवनदान प्रदान किया, वहां पर जब तक गुरुद्वारा स्थित है। ऐसे एक-एक फकीर के सुमार्ग पर चल पड़ने से, उनके हजारों की संख्या में अनुयायियों का उद्धार हो जाता था, प्रकाश मिल जाता था।

सूचना - यहां से चलकर अनेकों स्थानों पर से होते हुए आप धनासरी देश में पहुंचे[२], जहां पर आप कुछ समय ठहरे। यहां पर बहुत से लोग नाम के प्रेमी हो गए, गुरू-गुरू जपने लगे। यहां पर अनुभवी नामक एक सेवड़ा के साथ गोष्ठी हुई, जिसका भार 'सलोक महला १, सिर खोहाइ पीअहि मलवाणी'' माझ राग की वार - गुरू सत्य जी में है। अनुभी सेवड़ा आपका सिक्ख बना। सतगुरू जी ने 'माझ राग की वार' सारी की सारी वहां पर ही उच्चारण की, जिसे उस समय सैदा घोहा ने लिखा। वहां से चलकर किसी मरुस्थल पर गए। धनासरी देश के उस स्थान पर गुरू राक्षस (मानव-भक्षी असभ्य मनुष्य) रहता था, जिसकी कथा आगे दी है। मानव-भक्षी असभ्य मनुष्य अभी तक संसार में हैं।

□ □

६४ कौडा राक्षस

मनुष्य की सुगन्धि पहचानता था और मनुष्यों को पकड़कर खाता था। मरुस्थल द्वीप में वह दुष्ट रहता था। वह उसे जंगली मानुषखाना राक्षस कहते थे। मनुष्यों को पकड़कर और तलकर खाता था और सारी सृष्टि सहन कर रही थी। दूर-दूर तक चलकर जाता था और छिपकर जगलों में बैठता था। दाव लगाकर मनुष्यों को पकड़ लेता था और कसकर अंगों को बांध देता था। अपने रेतस्थल पर लाकर, कड़ाहा आग पर चढ़ा देता था। उसमें मनुष्य को तलकर मन में प्रसन्न होता था। उसके इस अत्याचार से सृष्टि दुखी हो गई थी और कोई सार नहीं लेता था। न कोई राजा आकर सहायता करता था और न ही कोई चारा चलता था। एक दिन अपने आप ही उस रेतीले द्वीप में, तीन पुरुष आ गए। उन्हें देखकर राक्षस प्रसन्न होकर मन-ही-मन कहने लगा कि आज भाग्य जगे हैं। आज तो आप ही मेरे लिए, ये लोग चलकर आ गए हैं। कई दिन मौज रहेगी और खूब सुख प्राप्त होगा। अच्छे से अच्छे मनुष्य, घर बैठे

---

१. तवारीख खालसा में लिखा है कि सरसा के भाटों की बही में यह बात लिखी हुई है ।

२. अनुमान है कि धनासरी देश तनासरम देश का नाम है। तनासरम बरमा देश का सबसे नीचे वाला जिला, सागर के किनारे-किनारे है। इसका एक नगर तनासरम है। पर इस नगर के उत्तर पश्चिम में एक छोटा-सा द्वीप भी मिलता है-तनासरिमा । जन्मसाखी में रेतस्थल लिखा है। रेतस्थल से भाव छोटा द्वीप है। यह चिन्ह तो मिलता है। पर सम्भव है कोई और ठिकाना हो। जैसे कि आसाम में एक ठिकाना 'धनासिरी' नामक अब भी है, रेलवे का स्टेशन भी है। इसके लिए खोज की आवश्यकता है।

३. यहां पर लेखक की पंजाबी कविता का अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

ही मिल गए हैं। उसमें इस तरह सोचकर मुदित होकर तेज आग चलाकर तेल तपाया। जब तेल का कड़ाहा तप गया तो इसे खूब लाली चढ़ी। इन तीनों में से एक को, जो जलाल वाला[१] था, उठाकर कड़ाहे में डाल दिया और प्रसन्नता से ताली बजाई। पर देखिए वह तपता हुआ कड़ाहा शीतल हो गया, वह गर्म तेल अब उछाले नहीं खाता। उसने बहुत सा ईंधन डाला और लकड़ियों को आगे धकेला। पर बुझती जा रही आग के आगे उसका कोई वश नहीं चलता। वह कड़ाहे से हाथ लगाता है और क्या देखता है कि वह तो शीतल हो चुका है जब चूल्हे की ओर देखता है तो वह सारा बुझी हुई राख हुआ पड़ा है। तेल ठण्डा हो गया है और समाधि लग गई है। सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य भरा प्रकाश है, जिसे देखकर उपाधि मिटती है। चेहरे पर से सुन्दरता बरस रही है, सौन्दर्य की वर्षा हो रही है। उस सौन्दर्य, जलाल को देखकर आकर्षण होता है और भय भी लगता है। उस दुष्ट का हृदय कांप गया और कोई अगमी कसक रही। थरर-थरर करके कांपने लगा ओर रोने लगा और धड़ाम करके गिर पड़ा। कहने लगा, 'तू कोई ईश्वर है, जिसने आग बुझा दी है। तेने तपते हुए कड़ाहे में बैठकर बरफ बरसा दी है। मैं घोर पापी हूं। हे गोसाईं! मुझे क्षमा कर। उस तेज ने आंखें खोलकर एक और चमक दिखाई। राक्षस पर तो मृत्यु छा गई, उसी समय वह मर गया। फिर उस नूरी आंख ने एक चमक दिखाई, फिर वह इस तरह उठा जैसे नवीन प्राण प्राप्त किए हों। राक्षसवृत्ति पलटकर देववृत्ति आ गई। जन्मों का उसका मैल उतर गया और उसके हृदय में ज्ञान की ज्योति जग उठी। कहने लगा, 'मुझे मुक्ति प्रदान करो। अब यदि तुमने अपने चरणों के साथ लगाया है तो अब मेरा उद्धार करना है। 'हे प्यारे पाठक जी! भला बताइए, तो वह प्यारा कौन है, जो तपते हुए कड़ाहे में घुस गया और उसने तृप्त कड़ाहे को शीतल कर दिया। ऐसा प्यारा कौन है, जो जगत से प्यार करता है? जो सृष्टि की रक्षा हेतु स्वयं को न्योछावर कर देता है। राक्षस से किस तरह सृष्टि की रक्षा होती, कौन चलकर जाता है? सृष्टि का दुख अपने पर कौन सहन करता है? कौन तपते हुए कड़ाहे में जाकर बैठता है, ऐसा कौन है, जिसने आप आग को सहारकर जगत को शीतलता प्रदान की? जगत का एक ही मित्र है, जो आपा न्योछावर करता है। जगत का एक ही प्रेमी है जो जगत को उबारता है। गुरू नानक ही एक है, जो वह कुछ करता है। अपने शरीर पर जो कष्ट सहन करके संसार के दुखों को दूर करता है। एक ओर सृष्टि की रक्षा को दूसरी ओर इस नरक में जाते हुए दुष्ट को ईश्वर के मार्ग पर चला दिया। अब गुरू बाबा ने सीहा[१] से कहा कि हे प्यारे! इसे पाहुर दो, जिससे वह भव-जल से पार हो गए। सीहा ने उसे पाहुर प्रदान की ओर स्वामी ने 'नाम' प्रदान किया। संसार के लिए जो बला थी उसे जगत की सेवा में लगा दिया। हे प्यारे! हम तुम सभी राक्षस थे और प्रतिदिन गुरू को तपते हुए कड़ाहे में डालते थे। राक्षस रूप तो हमारा स्वभाव है और हृदय कड़ाहे की भांति तपता है। उसी तपते

---

१. पुरातन जन्मसाखी में लिखा है "तब सीहा ने पाहुर दी, उसने नाम धारण किया, मुक्त हुआ" इस यात्रा में गुरू जी के साथ सैदो तथा सीहों दो सिक्ख थे । पुरातन जन्मसाखी में यह वार्ता धनासरी देश की बताई है और गुरू जी का ही कड़ाहे में बैठना लिखा है और लेखकों ने राक्षस का नाम कौडा दिया है, और कड़ाहा में भाई मरदाना का पढ़ना लिखा है और सतगुरू जी की दृष्टि पड़ने से कड़ाहा का शीतल होना लिखा है। तवारीख खालसा में यह घटना मीलों (एक जाति) के देश में घटी कही है ।

हुए हृदय में गुरू का स्मरण करके प्रतिदिन उसे उसमें डालते है। हे भाई! जब गुरू का अंदर से निवास होता है तो शीतलता मिलती है और तपते हुए शरीर की अग्नि झट ही बुझ जाती है। तब हम मुग्ध होकर कहते हैं, ''कैसी शीतलता आई है। हम जल रहे थे, पर सतगुरू जी ने हमारे शरीर की जलन बुझा दी है।''

''आवण जाणु रहिओ।।''
तपत कड़ाहा बुझि गइआ गुरि सीतल नामु दीओ।।

(मारू म. ५)

यह मत जान लेना कि गुरू जी ने केवल उस समय ही तपते हुए कड़ाहे को शीतल करके सृष्टि का उद्धार किया था। गुरू तो प्रतिदिन हमारे हृदय में जाता है और उसमें बैठकर हमारे तपते हुए कड़ाहे को शीतल करता है। जब हम गुरू को त्याग देते हैं, तो यह अग्नि फिर से जल उठती है, यदि गुरू को अन्दर रखें तो यह जलती हुई शान्त हो जाती है। इसलिए शीतल तथा प्यारे गुरू को नित्य ही हृदय में बसाइए। कर्मों के देवता बनिए और अदेशी सुख प्राप्त कीजिए।

सूचना - अनुमान है कि यहां से चलकर सागर के किनारे वाले किसी अन्य द्वीप में सिद्धों से भेंट की । उन्होंने यही प्रश्न किये कि गृहस्थ में रहकर, कैसे कल्याण हो सकता है। पूरण त्याग वनवास, हठ योग और समाधि, मुद्रा इनके बिना कैसे समाधि लग सकती है। सतगुरू जी ने जो उत्तर दिये थे, वे आपने-अपने शब्द रचकर, उनमें बताया है। उस साखी तथा शब्दों का ब्यौरा पुरातन जन्मसाखी में दिया है। वह प्रसंग इस प्रकार है :-

□ □

६५ मछंद्रनाथ के साथ गोष्ठी

जब श्री गुरू जी सिंहल द्वीप गये तो किसी टापू में अथवा किनारे के निकट किसी छोटे से पानी से घिरे हुए रेतस्थल में पहुचे तो वहां पर गोरखनाथ और उसका गुरू मंछद्रनाथ बेठे थे। गुरू जी को दूर से देखकर मंछ ने पूछा, 'गोरख!' कौन आ रहे हैं? गोरख ने कहा कि गरू नानक है, साथ दो सिक्ख हैं।[१] मछंद्र प्रसन्न हुआ और आदर देकर नमस्कार की। आपसी कुशलता आदि पूछकर बैठ गये, तब मछंद्र ने पूछा :-

हे गुरू नानक! सागर में बैठे हैं, देखो यदि कोई जीवित पुरुष सागर में पड़ जाये तो डूब जाता है, यदि कोई मरकर सागर में पड़ जाये तो तैरता है, पर इस तरह का 'तैरने वाला अथवा 'डूबा हुआ' मुर्दा हो जाता है, तू बता कि इस सागर से कैसे तरें, जिसे पार कर लें और पार करने वाला जीवित भी रह सके।[२]

श्री गुरू जी ने कहा - हे योगीराज! जल के ऊपर तैरने का ढंग सीखो। पहले तैरना तो हाथों-पांवों के बल से आता है। जब तैरने का पता चल जाये तो फिर मुर्दों का-सा तैरना

---

१. सैदो और सीहों उस समय - दो सिक्ख साथ थे ।

२. "किन विधि सागर तरीऔ ।।
जीवतिआ नह मरीऔ ।।१।। रहाऊ ।।

सीखता है। तैरने के इस ढंग के आए बिना ज़गत तैरना है, जैसे मृतक बिना किसी यत्न के तैरता है और फिर तैरने वाला ज़ीवित-भी रहता है। पर हे योगीराज! यह भी सोचो की तैरना किसके लिये है? यों तैरना तो मन का एक चाव है, शरीर की कसरत्त है, किसी प्रयोजन के लिये तैरना चाहिए।

मंछद्र – इसलिए कि शरीर स्वस्थ रहे, आयु दीर्घ हो, अपने स्वरूप में निवास हो, जगत में भली भांति समय व्यतीत हो।

गुरू जी – इस बात के लिये तो तुम ने जगत का त्याग कर दिया, एकान्तवासी होकर योग साधने में लग गए, अत: तुमने तो गृहस्थ के मायाजाल का त्याग कर दिया। अब तो तुम सूखी टांगों से चल रहे हो, तुम्हें तैरने की क्या आवश्यकता है, तुम्हें तो चलने की आवश्यकला है।

मंछद्र चौका, सोच में पड़ गया, फिर कहने लगा – भला बताईए कि तैरने की किस को आवश्यकता है? भौजल किसके आगे है?

गुरू जी – यह तो हम लोगों के लिये है। जिन्होंने अपने प्रियतम के पास पहुंचना है, जिनका मनोरथ आपके सुख की खोज करना नहीं, पर सुखों के स्वामी अपने प्रियतम के पास पहुंचना है; जिन्हें यह लालसा लग गई है कि हमारे प्यारे का द्वार – जो कई द्वारों में से होकर आएं तब कहीं आता है-वह वास्तविक तथा बसने योग्य द्वार कैसे प्राप्त हो, उसकी हमें खोज है। उस प्रियतम के साथ प्यार करने के लिये हम उदास होकर फिर रहे हैं और पूछ-बता रहे हैं कि कोई आकर बताए कि जिस द्वार में वह प्रियतम बसता है, वह कौनसा द्वार है।[१]

मछंद्र – वह दर अपना स्वरूप है।

गुरू जी – हमें तो उसकी खोज करनी है, जो आपे का परम आपा है, जिसे कर्ता पुरुष मानकर जाना जाता है तथा प्यार किया गया है। हमको उसका दर प्राप्त करना है, जहां बैठकर प्यारा सब की संभाल करता है।

मछंद्र – फिर तुम्हारे ख्याल में वह कहां बसता है?

गुरू जी – हमारा प्रियतम पुरुष जिस आसन पर विराजमान है उसका नाम है 'सत्य'। यह आसन जिस घर में लग रहा है, उसके द्वार का नाम दु:ख है, जो किवाड़ उस पर जड़े हुए हैं, उनका नाम आशा तथा संशय है। फिर इस द्वार के आगे जो पहरेदार है, उसका नाम क्रोध है। इसके चारों ओर एक खाई है, जो जल से भरी हुई है। उसका नाम माया है। इस जल के बीच में हमारे प्रियतम ने अपने रहने का घर बनाया है। इसलिये हमें तैरना सीखने की आवश्यकता है, क्योंकि हमारा प्रयोजन आपा निधारण पर ही समाप्त नहीं होता, पर हमें प्रियतम के देश में प्रियतम के घर, उसके पास पहुंचना है।[२]

मछंद्र – तब तुम्हारा मार्ग योग नहीं।

गुरू जी – हमारा मार्ग प्यारे के साथ प्रेम है।

---

१. जितु दरि वसहि कवनु दरु कहीऐ दरा भीतरि दरु कवनु लहै ॥
जिसु दर दर कारणि फिरा उदासी सो दरु कोई आइ कहै ॥१॥ (रामकली महला १)

२. 'दुखु दरवाजा रोहु रखवाला आसा अंदेसा दुइ पट जड़े ॥
माइआ जलु खाई पाणी घरू बाधिआ सत कै आसणि पुरखु रहै ॥२॥

मछंद्र – जिसने तुमने देखा नहीं, उसके प्रेम का क्या स्वरूप है?

यह सुनकर, प्यार के कारण, गुरू जी के नेत्र भर आये, दृष्टि योगियों से उठकर ऊपर को उठकर नैन अर्धखुले, अर्धमुदें होकर मुंद गये। दो अश्रु गिरे और आवाज आई – हे प्यारे – तेरे जैसा तू ही है, तू ही, तू ही, तेरे जैसा और कोई नहीं, मैंने तेरा अंत नहीं पाया, पर तेरा नाम (चौककर) हे मन! ऊँचा मत बोलना, किसे खोलकर सुनाऊँ? हे मन! मन में ही रह। प्यार मन में ही रहे, वह अंतर्यामी है, आप जानता है, आप ही अनुग्रह करता है।[१] यों कहते हुए आप चुप हो गये, और कुछ समय तक मूकता छाई रही। जब फिर से आपके नयन खुले तो मछंद्र ने कहा – हम भी अलख-अलख उसी 'एक' को ही कहते हैं, अंतर कहां पर है?

गुरू जी – योगी जी! जब तक इसके भीतर चाहे वह मायाधारी है और चाहे योगी जति ज्ञानी है, आशा तथा अंदेशा है, तब तक 'एक' का कहना क्या अर्थ रखता है? आशा तथा अंदेसा अलख-अलख कहने की अथवा एकेश्वरवादी होने को आगे नहीं बढ़ने देते, पर यदि आशा में निराश रहे तो वह प्रियतम, जो एक है, उससे भेंट हो जाती है।[२] आशा तो एक प्यारे से भेंट को ही धारण करे, शेष सांसारिक आवश्यकताओं की आशा का चिंतन न करे, अंदेसा इस बात का करे कि मेरा मन हरि प्रियतम के प्यार से – नाम स्मरण से – कहीं दूर न रह जाये और जगत के भय, त्रास दूर करे, कि जो कुछ प्रभु करेगा, वह अच्छा ही करेगा। यों मन लौ में जाता है और सभी संशय दूर हो जाते हैं।

हे योगी! हमने जो सागर कहा है – माया जल खाई रूप, वह इस तरह पार किया जाता है। हां इसे जीवित यों को पार किया जाता है और तैरते हुए न तो डूबते है, न मरते हैं, इसे जीवित मृत्यु कहते हैं।[३]

मछंद्र ने कहा – हे सुभाग तषा! जीव या तो आशा में रह सकता है, या निराशा में : आशा में निराश रहना, अनबन है। जीव आशा में जीवित रहता है, एक दूसरा, एक दूसरे का आश्रय है। सब की आशा उम्मीद एक-दूसरे पर लग रही है। मां बच्चे का पालन कर रही है, कि बड़ा होकर सुख देगा । व्यापारी व्यापार कर रहा है, कि कमाया हुआ धन सुख प्रदान करेगा। हम योगी लोग निराशा में हैं कि जगत मिथ्या है, इसके रसों, पदार्थों, भोगों का अंत है, पास कुछ भी न रखना, अत: वनों में निवास करते हैं और निराश फिरते हैं। यह त्याग मार्ग, गृहस्थ में नहीं हो सकता; अत: घर का त्याग आवश्यक है। तुम बातें तो एकाग्र हुए योगियों की सी करते हो, पर योगी का कोई भेष नहीं, झोली आदि कोई योगियों का चिन्ह नहीं, मन का दमन कैसे करते हो, मेरी जांच में तो तुम गुरू धारण करो, गुरू दीक्षा लो, तब निराशा में आओगे।

गुरू जी – योगी जी! गृहस्थ का त्याग करके फिर उन्हीं गृहस्थियों के घर पर जाकर

१. किंतै नामा अंतु न जाणिआ तुम सरि नाही अवरू हरे ।।
ऊंचा नहीं कहणा मन महि रहणा आपे जाणे आपि करे ।।३।।

२. जब आसा अंदेसा तब ही किऊ करि एकु कहै ।।
आसा भीतरि रहै निरासा तऊ नानक एकु मिलै ।।४।।

३. इन बिधि सागरु तरीअै ।।
जीवतिआ इऊ मरीअै ।।१।। रहाऊ दूजा ।।३।।

भिक्षा मांगना, कैसे योग है? यह कैसे त्याग और निराशा है? तुम वहां पर जाकर हाथ फैलाते हो, जहां पर तुम्हें फैलाने नहीं चाहिए, क्योंकि उसको तो तुम बुरा कहकर, त्याग करते आये हो? हमने भी तुम्हारी तरह हाथ फैलाया है, पर वह हाथ तो प्रभु दाता के द्वार पर फैलाया है और प्रार्थना की है कि इसमें नाम की भिक्षा पड़े[१] आटे की भिक्षा के लिए अथवा अपना पता देने के लिये, कि योगी लोग आये हैं, तुम सिंगीं बजाते हो कि लोग इसे सुनें और तुम्हारे पास आयें। मैं भी सिंगीं बजाता हूँ और उस बजती हुई को भी लोग सुनते हैं, पर वह सींग तथा नल की नहीं, वह तो उपदेश है, जिसे मैं जगत को दे रहा हूं कि शरीर की नालियां परमेश्वर तक नहीं जातीं, पर सुध जाती है, अत: सुध को उस ओर लगाओ, शब्द की कमाई करो।[२] हमने भी गुरू धारण किया है, वह गोरख है, पर मनुष्य गोरख जो है, वह कभी-कभी जागता है मेरा गोरख सदैव जागता है वह गोरख वह जिसने सृष्टि की रचना की है।[३] और उसके इस तरह के महान कार्य करने में देर नहीं लगती। फिर उस निरंकार गौरव ने पवन, जल आदि तत्वों की देह की रचना रचकर उसमें प्राण भर दिये हैं। अत: यों तत्वों की देह प्राणधारी हो गई है। यह प्राण धारण करना, कोई अंध जीवन नहीं, देखने के लिए दो नेत्र भी इसे लगा दिये हैं। फिर इसके पालन के लिए धरती दी है जो इस शरीर को भोजन देती है और मृतक शरीर को अपने में फिर ले लेती है। अत: हे योगी! ऐसे कर्तार तथा दातार परमेश्वर को भूलकर लोग उसके दिये हुए में लग रहे हैं और उन्होंने उसके गुणों को भुला दिया है।[४] हमारा तात्पर्य यह है कि उस दाता की स्तुति करनी है और उसके नाम का स्मरण करना है। यह सीधा और सरल मार्ग है। दूसरों के साथ हमारा द्वेष नहीं, चाहे कोई हिन्दू मत का सिद्ध योगी अथवा जंगम हो या मुसलमानों का कोई पीर हो, किसी प्रकार की साधना करने वाला हो। ऐसे अनेकों हैं जो कोई हो सो हो, मैं उनमें से किसी से मिलूं, मेरा मनोरथ यही होता है कि अपने कर्तार का कीर्तन करूँ।[५] कीर्तन से, एक तो मैं अपने प्यारे के रंग में रहूंगा, दूसरे प्रभु की वह मानसिक सेवा हो जायेगी। तीसरे सृष्टि की सेवा यह हो जायेगी कि प्रत्येक मतावलम्बी को मैं, वास्तविक मूल्यों वाली बात अर्थात् स्तुति का स्पर्श लगा दूंगा, मानों यह उनकी भी सेवा हो जायेगी। हे मंछद्र! आशा प्रभु कर रखनी है। आशा का त्याग नहीं करना, पर जगत में से आशा को उठाना है। जगत की जीवों अथवा पदार्थों पर रखी हुई आशाएं पूरी नहीं होतीं और अपूर्ण होते समय मन को संशय भय तथा रंग में ले जाती हैं। यह वस्तु-प्रभु पर आशा-हरि, कीर्तन से प्राप्त होती है। जैसे कागज तथा लोण को पानी तत्काल ही गला देता है, वैसे ही माया, मनों को अपने में भ्रमा लेती है। जैसे कागज को घी से चिकना कर लें, लोण को

---

१. पतु झोली मंगण के ताई भीखिआ नाम पड़े ।।१।।

२. सुरति सबद साखी मेरी सिंगी बाजै, लोकु सुणै ।।

३. बाबा गोरखु जागै ।।
गोरखु सो जिनि गोइ उठाली करतै बार न लागै ।।१।।रहाऊ।।
गोरख का अर्थ है, सुष्टि की रक्षा करने वाला । सो गुरू जी अपना गोरख कर्तार को कह रहे हैं।

४. पाणी प्राण पवणि बंधि राखै चंदु सूरजु मुखि दीए ।।
मरण जीवण कऊ धरती दीनी एते गुण विसरे ।।२।।

५. सिध साधिक अरु जोगी जंगम पीर पुरस बहुतेरे ।।
जे तिन मिला त कीरति आखा ता मनु सेव करे ।।३।। (रामकली म० १)

चिकनाई में लपेट दें तो फिर जल उन्हें शीघ्रता से नहीं गला सकता। वैसे ही निरंकार की स्तुति की ओढ़नी जब मन को प्राप्त हो जाती है, तो उसे माया भ्रम में नहीं डाल सकती, यों माया में निवास करके भी, माया से अलिप्त रहा जा सकता है। जैसे कमल जल में खड़ा हुआ उसके गालने वाले प्रभाव से गलता नहीं, बल्कि उसका पोषण करता है और उस क्षीण कर देने वाले प्रभाव से पृथक रहता है, वैसे ही ऐसे भक्त, जो नाम तथा प्रभु की स्तुति करने वाले हैं, वे जिन पुरुषों को मिलें उनका यमराज क्या बिगाड़ सकता है[१]? वे तो सत्संग द्वारा नाम, वाणी, कीर्तन के घृत द्वारा, पहले माया के प्रभाव से फिर यमराज की धमकी के प्रभाव से दूर हो गये हैं। अत: वे, लोग योग क्रिया करके यम से क्यों डरे, वे प्रभु की स्मृति श्लाघा करते हुए उसके देश को प्राप्त होते हैं।

मछंद्र – हे नानक! जो कुछ आपने कहा है, हम दोनों ने उसे समझा है, क्या गोरख?

गोरख – हां जी समझा तो है, पर . . .

मछंद्र – पर नानक! जो मार्ग अपने कहा है, यह अतीत मार्ग की अपेक्षा कठिन है। नहीं, नहीं गृहस्थ के योग हो ही नहीं सकता, योग कि बिना प्राण वश में नहीं रहते, प्राणों को वश में किये बिना मन अचल नहीं होता। योग मुक्ति के बिना नहीं आता। युक्ति अतीत हुए बिना नहीं कमाई जा सकती, निलिप्पता में परिपक्वता, बिना उपदेश लिये ही नहीं सकती। अत: जो निर्लिप्त में परिपक्वता, बिना उपदेश लिये हो नहीं सकती। अत: जो निर्लिप्त होकर भेष धारण करे और फिर युक्ति सीखकर योग के सभी अंगों का पालन करे, वह अवधूत तथा अचल बनता है। वह अवधूत फिर और चेलों को युक्ति बताकर अपने साथ मिला सकता है। तुम गृहस्थ में इस प्रकार का अवधूत किस तरह पैदा कर सकते हो, जो भौजल से आप भीतर जाये और दूसरों को भी तार दे। हे नानक जी! इन बातों का त्याग कीजिए और पहले योग धारण कीजिए।

यह सुनकर गुरू जी कहने लगे – हे मछंद्र! मेरी बात सुन, यदि प्राणों की वश में लाकर भी मन डोलता रहे और रस भोगों में लगा रहे, तो क्या बना? तुम देख लो यह बातें करने वाले योगी मंदिरा पी पीकर बैठते हैं। अत: जिस वस्तु की आवश्यकता है वह यह है कि पांच काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को अपने अधीन करना है। जब इनके वश में होकर डोलने का समय आ बने तो उस समय अचल रहे। आप को वश में कर लेने की यह युक्ति, वासनाओं पर नियंत्रण रखने की यह धारणा कर लो।[२] वह मनुष्य स्वयं तर जायेगा और सभी कुल का उद्धार कर देने के समर्थ हो जायेगा, उसका योग, उसकी शक्ति तथा बन को अचल रखेगा। क्योंकि पांचों महाबलि जिसने बांध लिये, संवार लिये, वह यदि अब रात दिन मन में एकाग्र हुआ रहे तो अवधूत बन गया समझो! जहां पर जगत के पदार्थ संकल्प में से शून्य हो गये

---

१. कागदु लूणु रहै घ्रित संगे पाणी कमलु रहै ॥
अैसे भगत मिलहि जन नानक तिन जमु किआ करै ॥४॥

२. सुण माछिन्द्रा नानकु बोलै ॥
वसगति पंच करे नह डोलै ॥
अैसी जुगति जोग कऊ पाले ॥
आपि तरै सगले कुल तारे ॥१॥ (रामकली म० १)

हैं और उस शून्य में जो एकता है, उस एकता में, जिसका टिकाव हो गया है, वह अदधूत है।[१] हमारा तात्पर्य यह है कि उसका आचरण तो शुद्ध तथा पवित्र हो और मन का टिकाव निरंकार में हो, वह अवधूत-अचल[२] है।

मछन्द्र (अधीर होकर) - बिना प्राणायाम के समाधि कैसे लगेगी?

श्री गुरू जी-निरंकार के सच्चे नाम में जो मन को जोड़ेगा, वह उसके चित्त की समाधि होगी? क्योंकि उसके अन्दर इस अभ्यास से अनमन-उच्च ओर का लगाव हो जायेगा। इसी नाम के अभ्यास से यह ध्यान का स्वरूप हो जायेगा, अर्थात् अपने प्रियतम के प्रेम में मग्न हो जायेगा। प्रभु के ध्यान में, ध्यान का रूप हो जाना ही आसन है जो हमारा अवधूत लगाएगा।[३] फिर वह भिखारी बनकर द्वार-द्वार पर जाकर अन्न नहीं मांगेगा, वह तो गृहस्थी है, कृत्य करके खायेगा और खिलायेगा, पर एक भिक्षा वह भी मांगता है, वह प्रार्थना करता है कि हे भगवंत! मुझे अपनी भक्ति के प्रेम की भिक्षा दे[४]। इस तरह पांचों को अपने अधिकार में लाकर प्रभु में लौ लगाकर फिर वह प्रार्थना में लगकर जीवित होता है और वाहिगुरू के भय में चलता है। अर्थात् वह अपने जीवन के कामों में प्रभु का भय रखता है, जिससे उसकी लौ भी नहीं टूटती और आचरण भी अचल रहता है। आशा, भ्रम, तृष्णा आदि उसे नहीं सताते क्योंकि उसे अमूल्य पदार्थ 'सन्तोष' प्राप्त होता है। इस सन्तोष में से वह सदैव तृप्त रहता है और जो कुछ प्रभु देता है, उस पर सन्तुष्ट रहता है[५]। हे मछन्द्र! तू अवधूत का चिन्ह सुन ले। नानक पेचदार भावों में तथा कठिन पदों में और बेरस उदासियों वाली भाषा में नहीं पर सदैव जीवित अमृत के से रस से प्रेम-भरी वाणी द्वारा अवधूत के लक्षण बताता है कि, जो आशा में निराश होकर दिन व्यतीत करेगा, निस्संदेह वह कर्तार की प्राप्ति करेगा, जो कर्तार की प्राप्ति कर लेगा, वह अवधूत है। हें मछंद्र! नानक विनती करता है कि चेले के कान फाड़कर मुद्रा पाकर गुरू और चेला की मर्यादा, इसे हमारा अवधूत नहीं चलाता। यह अवधूत जो हमने बताया है, वह चेलों का उद्धार करेगा कि निरंकार जो सर्व गंमता से दूर है, वह चेलों को उस अगंम का

---

१. जो सांसारिक संकल्पों से रहित हो जाता है, वह सत्य वस्तु में-जो एक है, टिकता है। शंकर जी ने भी शून्य का अर्थ परमात्मा बताया है।

गम्भीर धीरं निर्वाण शून्यम ।।
संसार सारं नच पाप प्रणयमु ।।

२. सो अऊधूतु ऐसी मति पावै ।।
अहिनिसि सुनिं समाधि समावै ।।१।।रहाउ।। (रामकली म० १)

३. भिखिआ भाए भगति भै चलै ।।
होवै सु त्रिपति संतोखि अमुलै ।।
धिआन रूपि होइ आसणु पावै ।।
सचि नामि ताड़ी चितु लावै ।।२।। (रामकली म० १)

४. या, वह प्रेम भक्ति की भिक्षा लेता है।

५. अथवा वह अवधूत जगत के जीवों के साथ अमृत की सी मीठी भाषा बोलेगा, और तुम्हारी तरह अभिशाप का भय नहीं देगा।

६. नानकु बोलै अंमृित बाणी ।
सुणि माछिन्द्रा अऊधू नीसाणी ।।
आसा माहि निरासु वलाए ।
निहचऊ नानक करते पाए ।।३।। (रामकली महला २)

पता बतायेगा कि है तो वह अंगम पर उसके नाम का स्मरण करके, वह प्राप्त हो जाता है, यों वह अवधू गुरू तथा चेलों के सम्बन्ध को चलाता है[१]। यह अवधूत मंदिरा का पान नहीं करता और साथ भांग के भोजन नहीं खाता जैसे कि दूसरे योगी करते हैं, पर यह गुरूदीक्षा गुरू से प्राप्त हो चुके नाम की कमाई को मंदिरा की भांति आप सेवन करता है और यही उसका भोजन है। यही मदिरा और भोजन वह अपने चेलों को देता है। यह अवधूत केवल एक योगी की ही नहीं अपितु छः दर्शनों के सिद्धान्त की सूझ को प्राप्त कर लेता है[२]।

अतः हे मछन्द्र! हे गोरख! हमारा गृहस्थ तथा उदास का मार्ग यों चलता है।

यह सुनकर दोनों चकित रह गये और झुक गये[३]।

यों मछन्द्र के साथ गोष्ठी सम्पूर्ण हुई। योगी अपने मार्ग पर चले और गुरू जी ठण्डी ठण्डी मधुर मधुर परोपकारिनी समीर की भांति राजा शिवनाभ को सुखी करने के लिये और शीतलता प्रदान करने के लिये सिंहल द्वीप पर चल पड़े।

१. गीत[४]

राय बुलार की प्रार्थना, स्वदेश में नाम के चक्कर चलाने के लिये चलते समय की गुरू नानक देव जी के चरणों में :-

आप फिर इस घर में कब आयेंगे?
हे गुरू नानक! हे गुरू नानक! गुरू नानक सुख धाम!
आप अनुग्रह की वर्षा बरसाने के लिये जा रहे हैं, जैसे काले बादल जाते हैं।
आप घर-घर में, द्वार-द्वार पर फिरकर, जलते हुए को शीतल कीजिए।
अपितु आपके जाने के पश्चात् मुझे विरह की गर्मी व्याकुल करेगी।
अच्छा हे मेरे नानक चन्द्र! मैं तेरी ही शरण में रहूंगा।
हे राम! जो मुझे आपसे बिछोड़ रहा है, वही फिर संयोग करा देगा।

आप मेरी तपन को सहन नहीं कर सकेंगे और शीतल करने के लिये आप अपने आप ही वापिस लौट आयेंगे, आप इस घर में लौट आयेंगे।

□ □

---

१. 'गुरू चेले की सन्धि मिलाए' का अर्थ यों भी किया जाता है :- गुरू स्वर्ग=ईश्वर तथा चेला, अल्पज्ञ=जीव, अतः जीव तथा ईश्वर की एकता दिखा देता है।

२. प्रणवति नानकु अगमु सुणाए ।।
गुर चेले की सन्धि मिलाए ।।
दीखिआ दारू भोजनु खाइ ।।
छिअ दरसन की सोझी पाइ ।।४।।५।।

३. लिखा है कि उपरोक्त वार्तालाप अथवा गोष्ठी जो तीन शब्दों में गुरू बाबा ने उच्चारण की उसे सैदों नामक सिक्ख ने, जिसकी जाति घेहो जाट लिखी है, लिख लिया और यह वाणी-तीनों शब्द-पंचम गुरू जी ने गुरू ग्रन्थ जी में सम्मिलित की, जो रामकली राग में आई है।

४. यहाँ पर लेखक के गीत का अनुवाद प्रस्तुत है ।

६६ राजा शिवनाभ

: १ :

मूसन मसकर प्रेम की रही जु अंबरु छाइ।।
बीधे बाँधे कमल महि भवर रहे लपटाइ।।४।।

(चउबोले म० ५)

चौधवीं रात का चन्द्र, चौधवीं भी कार्तिक की। कार्तिक, मीठी सुहावनी ऋतु, का शर्द कार्तिक। सुन्दर-सुन्दर सर्दी, भीनी-भीनी रात, सफेद-सफेद चाँदनी। सदैव चाँदनी, हाँ इसी रात को सर्द चाँदनी की रात कहें, इसी को भीगी रात कहें। कैसे सुन्दर तारे आँख-मिचौली करते हैं, आकाश की नीलिमा कैसी दमक रही है, कैसे मन आकृष्ट होता है। हे आकाश! हे चन्द्र! हे तारागण! मन को आकृष्ट मन कीजिए! हे अलंकृत रात्रि! हे भीगी हुई रात्रि! हे उज्ज्वल रात्रि! अपनी सुन्दरता से मोहित मत कर, हम धरती पर चलने वाले तेरी सुन्दर गहराईओं में नहीं जा सकते और शिखरों में नहीं उड़ सकते।

पर कहाँ पर? सुन्दर जब अपनी सुन्दरता से खींचने को आते हैं, तब कहीं किसी सुनते भी हैं? दूसरे को क्या कष्ट होगा, वे उसकी क्या परवाह करते हैं। वे तो अपने सौंदर्य में हमें लीन करने के चाव में होते हैं, कैसे कीचड़ में से खींचकर निकालते हैं, कैसे बल लगाकर खींचते हैं, कैसे फटक-फटक कर खींचते हैं, कैसे दबाते हैं, खींच लेते हैं, उन्हें क्या? वे खींचते हैं, वे आकर्षण करते हैं। हाँ, सुन्दरता में आकर्षण है, जब खींचती है, तो खींचती है यही उसका धर्म है, यही उसका स्वभाव है, यही उसकी सज्जनता है। सुन्दरता आकृष्ट करेगी, जहाँ पर हम हैं, वहाँ पर से उठा लेगी, सभी ओर से उदास करके अपनी ओर आकृष्ट करेगी, सभी ओर से भुलाकर अपनी ओर लगायेगी, सुन्दरता की सुन्दरता यही है कि जब झलक मारी, मोहित कर लिया। जब दमक मारी बस ठग लिया। ठग लिया तो आपे में आपा मिला लिया, चाहे उसमें आँख झपकने का समय ही क्यों न लगे।

आह! आज नीले, मानो धोकर साफ किए हुए, गहरे रंग के दमकते हुए नीले आकाश की तारों से सुशोभित और चन्द्रमा से छविमान रात कैसी मोहित कर रही है। आँखें ठगी जा रही हैं। वैद्य हल्ला करते हैं कि यह ऋतु कच्ची-पक्की है, रात को बुरी ओस पड़ती है; खूब ठण्ड पड़ती है, छत के नीचे सोना ठीक है। पर हाय! श्रृंगारी हुई रात की सुन्दरता रसिक मनों को चुराकर ले जाती है। प्राकृतिक सुन्दरता दाव खेलती है, वैद्यों की अपनी मति तथा सोच उड़ जाती है। आशा और भ्रम समाप्त हुए। अब क्या रह जाता है? प्रकृति का सौंदर्य और श्रृंगार और उन्हें देखने वाली मस्त आँखें, प्रकृति का यौवन और रसिक लोगों की मोह के कारण आलसी आँख पुतलियाँ प्रकृति की छवि और कदरदान अर्धखुले नैन, प्रकृति का सुहाव और नैनों वालों के मुग्ध हो चुके नेत्र; प्रकृति के ठगने वाले कटाक्ष और रंग से भरे हुए प्रेम के कारण कसे हुए नैन, हाय नैन! छोटे-छोटे नैन, अगाह आकाश, सारा दीखने वाला तारा मण्डल, चन्द्र की चाँदनी, सब कुछ अपने में समा लेती हैं। जादू के कारण मुग्ध हो चुके नेत्र झपकी लेना भूल जाते हैं, हाँ झपकना भूलकर पुतलियों से कहते हैं, ''भारी तो हो जाओ पर

गिरना नहीं, आज प्यारे की प्रकृति सुहावनी तथा प्यारी दुति पर हाँ, प्रियतम का सुन्दर स्वरूप जो प्रकृति में दमकता है, इन आँखों-इन छोटे-छोटे पर जीवित छेदों-में से अंतस से आलिंगित हो रहा हैं।''

वाह सुन्दरता! तू भी खूब ठग है। जिनके अन्दर तूने चक्कर लगाया, तू उन्हें ले गई....। जब इस सुहावनी सुन्दरता की गोद में कभी सच्चे प्रेमी बैठ जाएँ तो कहते हैं; ''हम चले। लो! पलंग बिछा रहा उस पर सीधी चौपट देह लेटी रही, हाथ छाती पर पड़े हुए बँधे रहे, नैन अर्धखुले, प्रेम में मुग्ध प्रेम प्रविद्ध, उसी तरह खुले रहे, टक बँधी रही, पर देखिए सुन्दरता, धीरे से हमें बीच में से उठाकर लिये जा रही है। हे मड़ोली! (शरीर) अब पड़ी रह, राख की पुतली पड़ी रह, तू जाने तेरा देश, हमें तो सुन्दरता अपने देश में लिये जा रही है। हे मिट्टी की मटकी, पड़ी रह! और वे रिश्ते-नाते वाले बन्धु पड़े रहें, जो तेरे लिए हमारे बने थे। तू अथवा तेरे पदार्थ पड़े रहें, हम अपने ठगने वाले ठग के देश में जा रहे हैं, हमें हमारा डाकू उठाकर लिये जा रहा है। हम एक दृश्य पर ही मुग्ध होकर चल पड़े हैं उस दृश्यों के देश में।''

आह सुन्दरता, तू धन्य है! तू वह देवी है, जो बिछुड़े हुओं को मिलाती है। तू है जो सोच के सागर में से निकालकर मस्ती के पालने में झुलाती है। तू है जो इस देश और वहाँ से अदेश में ले जाती है। हे छवि! तेरा जादू धन्य है। इस गणना वाले सोच वाले जीव को तू अनन्त अगाह रस में उड़ाकर ले जाती है। तू योगीराज है, जो क्षण में चित्तवृत्तियों का विरोध करती है, तू है जो मन को खड़ा करती है और बुद्धि के चक्कर को बाँधकर बैठा देती है। तू है जो दूसरे देश का पता देती है! तू है जो मन्त्रों तथा फलसफियों की सीमा पार करके रस के देश, हाँ, आपे के देश में ले जाती है। तू धन्य है, तुझे नमस्कार है, तुझे 'वाह वाह' है। वाह वाह, वह देश है, जहाँ पर वाणी की पहुँच नहीं। तू वाह-वाह का रूप बाँधकर इसी समय आती है।

वाहु वाहु करतिआ रैणि सुखि विहाइ।।
वाहु वाहु करतिआ सदा अनंद होवै मेरी माइ।।
वाहु वाहु करतिआ हरि सिऊ लिवलाइ।।
वाहु वाहु करमी बोलै बोलाइ।।
वाहु वाहु करतिआ सोभा पाइ।।
नानक वाहु वाहु सति रजाइ।।१।।

(सवार गुजरी महला ३)

वाह सुन्दरता! वाह सुन्दर दाता! जिसने सुन्दरता का भेद बताया। वाह वाह सुन्दरता तू ने सुन्दर के दर्शन दिखाए। वाह वाह! सुन्दरता तू ने वाह वाह सिखाई पर वाह! हे 'वाह वाह' तू ने फिर सुन्दरता दिखाई और सुन्दर के चरणों से लगाया, वाह वाह:

वाहु वाहु बाणी निरंकार है तिसु जेवडु अवरु न कोइ।
वाहु वाहु अगम अथाह है वाहु वाहु सचा सोइ।।
वाहु वाहु बे परवाहु है वाहु वाहु करे सु होइ।

वाहु वाहु अंम्रित नाम है गुरुमुख पावै कोइ।।
वाहु वाहु करमी पाईऐ आपि दइआ करि देइ।।
नानक वाहु वाहु गुरमुखि पाईऐ अनिदिनु नामु लइइ।

(वार गुजरी महला ३)

हे सुन्दर! हे मेरे सुन्दर के सुन्दर! हे सुहावने, हे सदैव सुहावने! हे छवि वाले! हे आभा वाले! हे अद्वितीय दुति वाले! हे मन मोहन! हे आनन्द! हे ललित! हे सौंदर्य! हे सुन्दरता के सरदार! हे खूब! हे खूबों के शाहनशाह! हाँ, हे सुन्दर! सुन्दरता को अपना प्रकाश बनाकर प्रकाश पर मोहित हुओं को अपने में आकृष्ट कर लेने वाले! वाह वाह तेरी आज्ञा सत्य!

हाँ, कभी-कभी यही सुन्दरता मन को कोई और आँखें भी लगा दिया करती है। वैसे तो आकाश का पहरावा और अगाध शून्यता आँखों को रिक्त तथा खाली ही अभासित होता है, पर इन नवीन आँखों से यह सारा जीवित होकर दिखता है, सुन्दर तथा ज़ीवित लोगों के साथ बस़ रहा दीख पड़ता है।

वह देखो कौन दिखाई पड़ा है? एक तो रसिक धरती पर मड़ोली छोड़कर पवन-रूप हो कर इसी सुन्दरता के कंधे पर चढ़कर ऊँचा होकर आया है। अदेश से कोई प्रकाश की देवी आई, माता आई, अम्माँ आई, अम्माँ रजी हुई आई। तृप्ति हुई आई कि राजी आई। धन्यवाद है, 'राज़ी आई। धन्यवाद है धरती के ऊपर तो अतृप्ति और अस्वस्थता का निवास था, पर यहाँ अम्माँ स्वस्थता आई और अम्माँ तृप्ति आई है, अब भूख व्याकुलता तथा रोग दुख चले गये। अम्माँ तृप्ति और स्वस्थता।

आओ अब इनकी बातें सुनें-अम्माँ तृप्ति ने कहा-आओ बेटा! आओ मेरी गोद के बच्चे! मैं तो सदैव तेरे साथ होती हूँ, तू रात-दिन मेरी गोद में खेलता है, फिर तू भूखा होकर क्यों व्याकुल होता है, और रोगी-सा होकर 'हाय'-'हाय' क्यों करता है? तू जगत के पालकों तथा वैद्यों की और मत देखा कर, अपनी माँ की ओर देखा कर, तू सदैव मेरी गोद में खेलता है।

रसिक – अम्माँ जी! तुम मेरे उन धरती के नैनों से दिखती नहीं हो। वे मेरे नैन तो वैद्यों तथा अन्न दाताओं को ही देखते रहते हैं। अम्माँ तू सुन्दरता के देश में निवास करती है, मैं आशा तथा अँदेसे[१] के देश में निवास करता हूँ। सुन्दरता से कह दे कि मुझे ठगती रहा करे, अपने कंधे पर उठकर मुझे यहाँ पर ले आया करे और मैं अब की भाँति तेरी छाया में सुख प्राप्त किया करूँ।

अम्माँ – बेटा! तू वाह वाह किया कर।

वाहु वाहु गुरू सिख नित सभ करहु, गुरू पूरे वाहु वाहु भावै।
नानक वाहु वाहु जो मनि चिति करे निसु जम कंकरु नेड़ि न आवै।।२।।

(वार गुजरी म: ३).

रसिक – अम्माँ जी! मैं क्या करूँ, जब सच्ची तथा स्वच्छ सुन्दरता झलक मारती है, अपने

१. आसा अंदेसा दुइ पट जड़े ।

आप पड़ी 'वाह वाह' होती है। जब आशा अँदेसे के भूत आ दबाते हैं तब 'वाह वाह' करें तो भी स्वाद नहीं आता।

अम्माँ – फिर भी 'वाह वाह' को मत छोड़ा कर, तब वाह, वाह आशा, अंदेश की जकड़ को नाप-नापकर काटती है।[१] वाह-वाह कभी भी व्यर्थ नहीं जाती। वाह वाह दो काम करती है-एक तो मैल काटती है, दूसरे जब मैल को काट लेती है तब प्यारे के 'सति सुहाणु सदा मनि चाऊ' की झलक मारती, मस्त करती, बेसुधी के झूटे देती तथा अमृत पिलाती रहती है।[२]

रसिक – फिर तुम चली मत आया करो।

अम्माँ – 'तृप्त तथा प्रसन्न' अम्माँ तो सदैव गोद में रखती है और तू बाहर फिसल जाता है, 'आस अंदेसे' में यदि तू फ़िसला न करे तो तू 'सदैव राज़ी' रहा करे।

रसिक – माँ! मैं इस समय कितना प्रसन्न हूँ, यदि मेरा शरीर साथ होता तो मेरे चोले की कलियाँ टूट जाती हैं और फिर शरीर फट जाता है। इस तरह की सुन्दर प्रसन्नता को क्यों छिपाकर रखती हो? हैं? जी!

अम्माँ! परदा तो कोई नहीं रखती, लोग उन आँखों को नहीं खोलते जिसके द्वारा यह दीखता है, वे नैन वाह वाह करने से खुलते हैं, लो वाह वाह नहीं करते। हाय हाय करते हैं, तड़पते हैं, इसलिए इस प्रसन्नता से वंचित रहते हैं, फिर यह प्रसन्नता इतनी सस्ती है कि इसे किसी कठोर साधन, हठ, त्याग, झंझट की ज़रूरत नहीं। 'है' का निश्चय धारण करके अंदर में वाह वाह करता रहे, वाह वाह पर जमा रहे, फिर इस प्रसन्नता का आनन्द आठों पहर प्राप्त करता रहेगा।

"सलोक मः ३।।
वाहु वाहु से जन सदा करहि जिन कउ आपे देइ बुझाइ।।
वाहु वाहु करतिआ मनु निरमलु होवै हउमै विचहु जाइ।।
वाहु वाहु गुर सिख जो नित करे सो मनि चिंदिआ फलु पाइ।।
वाहु वाहु करहि से जन सोहणे हरि तिन कै संगि मिलाइ।।
वाहु वाहु हिरदै उचरा मुखहु भी वाहु वाहु करेऊ।।
नानकु वाहु वाहु जो करहि हउ तनु मनु तिन कऊ देऊ।।१।।

(वार सूही मः ३)

रसिक – जो मर जाते हैं और 'वाहु वाहु' के रंग में रांते होकर मरते हैं, वे क्या करते हैं?

अम्माँ – जो कुछ अब तू कर रहा है।

रसिक – इतनी प्रसन्नता का आनन्द लेते हैं ?

अम्माँ – आ, मैं तुझे वाह वाह करके आए मनुष्यों का एक सत्संग दिखाऊँ।

यह कहते ही दोनों उड़े, ऐसे उड़े कि संसार में उस तेजी के सामने कोई तेज हो ही नहीं सकता, मानो क्षण में करोड़ो मीलों की यात्रा समाप्त होती थी। प्रसन्नता, शीतलता, रस, स्वाद, ज्यादा-से-ज्यादा पसर रहा था, जिन तारा मण्डलों भूखण्डों, ब्रह्माण्डों को देख देखकर हम हैरान होते है। हां उनमें से गुजरना कोई बड़ी बात नहीं थी। बात क्या, इस तरह उड़ते हुए

वे एक सुन्दर मण्डल पर पहुंचे। यह स्थान इतनी दूरी पर है कि यदि प्रकाश इस स्थान से चले तो धरती पर पचास वर्षों में मुश्किल से पहुंचे। यह मिट्टी लोहा तांबा आदि की धरती नहीं थी, यह अग्नि तथा प्रकाश का लोक दिखाई पड़ता था।

यहां धरती की भांति ही एक सभा लगी हुई दीखती थी और कीर्तन हो रहा था। गायक कैसे थे, मानो उनका कीर्तन केवल रस तथा स्वाद का ही रूप था। प्रेम की वर्षा हो रही थी, आनन्द के फव्वारे छूट रहे थे।

रसिक से अम्माँ जी ने पूछा – 'बता यह स्वाद कैसा है?'

रसिक – क्या कहूँ, बस यही है अकथनीय है, गूँगे का गुड़ है।

अम्माँ – जो उस सूई के छेद के से स्थान (धरती) पर अपने दिन 'वाह वाह' के रंग में व्यतीत करते हैं वे ऐसे रसों का आनन्द लेती हैं ओर इस जैसी अवस्था को पहुँचते हैं।

रसिक – माँ जी! क्या हम, उन भूखण्डों में से किसी एक में खड़े हैं, जिनका उल्लेख 'जपुजी' नामक वाणी में आया है।

अम्माँ – वे खण्ड, धरती की भाँति कोई स्थान ठिकाने नहीं हैं, वे तो एक अरूप रूप के स्थान हैं, पर वे ठिकाने हैं भी। खण्ड (भुखण्ड) के रूप में भी हैं और ब्रह्मांड में भी हैं, ब्रह्माण्ड के खेल को समझने के लिए पहले नाम का रसिक होने की आवश्यकता है। शरीर में और अपनी उच्चता प्राप्त करने के लिए साधन के पक्ष में यों समझ लें :-

(१) पहले 'खंड' 'धर्मखंड' 'जपुजी' में बताया है, अत: तुम्हारी धरती धर्म का खण्ड है अर्थात् वहाँ हरेक प्राणी के सिर पर कोई फर्ज़ अथवा धर्म है। उस स्थान को कुछ और बनाने के लिए चाहे कितना ही बल क्यों न लगायें, पर राजा से लेकर प्रजा तक सब किसी के सिर फर्ज़ अथवा धर्म का कर पड़ा हुआ है। इसीलिए तुम्हारी धरती धर्म की शाला है और फर्ज़ों के निभाने के लिये अर्थात् किये हुए कर्मों के अनुसार उनका विचार होता है, उनका कच्चापन और पक्कापन यहाँ ही पड़ता है, पर पता आगे जाकर लगता है।

(२) धर्मखंड हमारे लिए धरती है, पर जब ज्ञान में आता है, तो कई कर्म भूमि, कई चन्द्र, कई सूर्य, कई लोक तथा उनके देशों का ज्ञान होता है, उसे लोक की विशालता दीखती है और उसे ज्ञान का प्रकाश होता है और ज्ञान से उत्पन्न होने वाले आनन्द का स्वाद आता है जो इन्द्रिय रसों की अपेक्षा बहुत ऊँचा आनन्द है। अत: बेटा! जो 'धर्म के खंड' में निवास करता है, उसे अवश्य ही यह समझने की ज़रूरत है कि धर्म क्या है? अर्थात् उसे अपने फर्ज़ अथवा धर्म के समझने के ज्ञान की आवश्यकता है। अत: जो मनुष्य धर्म-अधर्म का ज्ञाता हो जाता है, वह विश्व की अनन्तता का ज्ञाता हो जाता है, फिर उसे पता चलता है केवल शुभ कर्मों द्वारा मुक्ति नहीं मिलती, इससे आगे कुछ और है जिससे कि कई कान्ह, महेश, ब्रह्मा, धुव, सिद्ध, बुद्ध, नाथ, देवी, देव, दानव, मुनी आदि ज्ञान प्राप्त करके ऊँचे उठे हैं। इस तरह 'कर्म' से आगे मुझे 'सुरता सेवक' बनना है, अर्थात् सुरत द्वारा अपने मन-मण्डल को वाहिगुरू के साथ लगाना है। वह फिर सुरत को ईश्वर में लगाता है और भाँति-भाँति के आनन्द देखता है। इसलिए उसे वाहिगुरू के स्मरण का मार्ग मिलता है। अर्थात् फिर वह समझता है कि 'वाह, वाह' परम धर्म है। अत: बेटा! जिसे यह ज्ञान हो गया, वह 'ज्ञानखंड' में आकर नाम का अभ्यास करता है कि ध्यान प्रभु में लगा रहे।

(३) नाम जपता हुआ मनुष्य नाम के रस तथा सुन्दरता की प्रतीति में जा पहुँचता हैं। अंतत में, उज्जवलता तथा रस का अनुभव, यह प्राप्ति 'सुरत वाले सेवक' को हो जाती है। वहाँ सुरत, मति, मन, बुद्धि का पता चलता है, पर इससे आगे एक और उन्नति होती है कि उसे 'सुधि' अथवा 'सिद्धि' प्राप्त होती है। यह वह बुद्धि है जो देवताओं तथा सिद्ध पुरुषों को प्राप्त होती है। यह स्वभाविक बुद्धि है, इससे 'बिना कार्य-कारण जाने के' ज्ञान होने लग जाता है। मन तथा बुद्धि तो जगत में काम करने के लिए जीव के सहायक हैं, प्रवृत्ति के मार्ग के औज़ार हैं, पर 'सिद्धि अथवा सुधि' आपे को एकाग्र करके वाहिगुरू की ओर ले जाने का हथियार है। वास्तव में यही बुद्धि है, जो परमात्मा से भेंट कराती है, ''कहि कबीर बुधि हरि लई मेरी बुधि बदली सिधि पाई।'' मरदाने ने गुरू नानक देव जी से पूछा था कि वाहिगुरू की प्राप्ति बुद्धि द्वार होती है? तब सतगुरू जी ने कहा था मरदाना! इस बुद्धि से एक और बुद्धि उत्पन्न होती है जो भेंट करवाने वाली बुद्धि है। वह बुद्धि यही थी, जो सतगुरू जी ने यहाँ 'सुधि' करके बताई है। अत: इस अवस्था[१] में जीव प्रसन्नता, रस तथा उल्लास में पहुँचता है।

अन्दर आत्मा में तो जिज्ञासु 'श्रमखण्ड' में यों है, पर बाहर वह श्रम अर्थात् परिश्रम में भी है, क्यों कि वह 'धर्मखण्ड' के धर्म का भी पालन कर रहा है और 'ज्ञान खण्ड' के विचार का भी। सारा बल लगाकर नाम जप रहा है, सो वह 'प्रतीत' में तो रस तथा प्रसन्नता (श्रम्मन) में रहता है, पर कर्म में 'नेकी तथा नाम' के यत्न में लगे होने के कारण परिश्रम में रहता है। इसीलिए सतगुरू जी ने इस 'खण्ड' का नाम 'श्रम खण्ड' रखा है।

धर्मी पुरुष 'धर्मखण्ड' में है, नामी पुरुष ज्ञानखण्ड में है, नाम का रसिक 'श्रम खण्ड' में है।

(४) आगे चलकर 'कर्मखण्ड' है। दया का, अनुग्रह का, ईश्वर के तुष्ट होने का ठिकाना। 'श्रमखण्ड' का जिज्ञासु स्मरण रस में लौ लगाता-लगाता देश काल की अंतिम सीमा पर पहुँच जाता है। परिश्रम उसे यहाँ तक ले आता है। आगे फिर अकाल तथा अदेश में अकाल अथवा 'लामकान' के ठिकाने में, अथवा निरंकार पुरुष ज्योतिस्वरूप के अपार देश में जाने के लिए उस देश से ही कुछ चमत्कार होता है, जो आगे ले जाता है। यह कृपा है, अनुग्रह है, दया है। अब इस अवस्था को जो कोई प्राप्त हुआ है, वह किसी शून्यता में अथवा पतन की ओर नहीं गया, पर प्रभु के साथ एकस्वर हो गया है। अब वह ईश्वरीय त्राण का सांझी हो गया है। वाहिगुरू का आत्म बल उसका बल हो रहा है। वह उसे केवल आपा ही दिखाई नहीं देता, पर अनेकों लोकों के भक्त, ब्रह्माण्ड के दूसरे लोकों के अनुग्रहीत लोग मिलते हैं, जिनके अंदर सच्चे वाहिगुरू का निवास है, जो निवास कि अभेद हो गया है। आत्म मण्डल के महाबली शूरवीर, सुन्दरता के तेज वहाँ पर निवास करते हैं। इस अवस्था पर पहुँच चुके हुओं को जन्म-मरण और माया का मोहक मन्त्र उन पर अपना प्रभाव डालने से रह जाता है :-''ना ओहि मरहि न ठागे जाहि''। वह 'श्रमखण्ड' में जो नाम का रसिक था, वह अब नामी को प्राप्त करके उसके मिलाप के अकथनीय रस का आनन्द ले रहा है। उसके अन्दर

१. श्रम्मन - प्रसन्नता, उच्चानन्द को कहते हैं ।

जो 'सच्च' था, वह अब 'सच्चा' हो गया है। नाम नामी बनकर निरन्तर मेल हो गया है। अतः उसकी समझ अब जानती है कि अब उसका परिश्रम केवल –

"सुनि री सखी इिह हमरी घाल।।
प्रभ आपि सीगारि सवारनहार।।१।।"

के अनुसार ईश्वरीय अनुकंपा है। उसकी समझा अब 'कर्मखण्ड' में है, अर्थात् वह इस 'रस भरी वाह वाह के निरन्तर' प्रवाह को, नाम के अन्दर में निवास को, रस को, आनन्द को अनुकंपा तथा अनुग्रह अथवा दया समझता है। उसके अन्दर अब एक 'भक्ति की नदी' बहती है, जैसे तेरी वाह वाह अब तुझे रस दे रही है, और बिना परिश्रम चल रही है। तू आनन्द में है, उल्लास में है, भरोसे में है, प्रसन्नता में है ओर समझ रहा है कि तेरा किया कुछ नहीं हुआ, यह विशुद्ध अनुग्रह ही अनुग्रह है। अब तेरे अन्दर अहं की टेक नहीं रही, केवल अनुग्रह की टेक और आश्रय हो गया है। यह तू अब 'कर्मखण्ड' में है, 'प्रभु की अनुकंपा' में है।

(५) जब प्रभु की दया अनुग्रह में पलट जाती है, और जब कर्म द्वारा रस में स्मरण करने वाला परमेश्वर की अनुग्रह द्वारा पूर्ण मिलाप प्राप्त कर लेता है, तो फिर उसके आगे की कथा अकथनीय है। आगे 'सच्च खण्ड' है, वहाँ निरंकार का निवास है, अनुग्रह तथा दया तथा आनन्द वहाँ पर पसर रहा है। यह तो जिज्ञासु की 'प्रतीति' होती है और कर्म उसकी आज्ञानुसार क्रिया करना होता है। तब समझ द्वैत में नहीं होती, केवल सत्य स्वरूप वाहिगुरू ही 'है' में रस रूप लीनता में होती है। प्यारे प्रियतम के प्रेम स्वरूप में एकता प्राप्त होती है। दूसरे पद्यों में जीव तत्व ब्रह्म तत्वों की भेंट हो जाती है।

रसिक – अम्माँ जी! मैं पहले तो 'खण्ड' समझता ही नहीं था, प्रायः ज्ञानी लोग इनके अर्थ काण्ड ही करते हैं, तीन काण्ड–कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञान काण्ड। यह 'खण्डों' का ज्ञान तो 'राणा सूरत सिंघ' नामक पुस्तक पढ़कर हुआ था कि जगत् गुरू जी ने 'जपुजी' नामक वाणी में इहलोक तथा परलोक की सूझ के लिए ये लिखे हैं। आज स्पष्ट रूप से पता चला है कि ये हमारी आत्मिक अवस्थाएँ हैं और खण्ड में भी तथा ब्रह्माण्ड में भी यह अवस्थाएँ हैं अरूप ठिकाने भी हैं।

अम्माँ – बेटा! सुख के मार्ग पर चला करो, रिक्त हिसाबों तथा वहमों में क्या रखा है? अपने कर्तव्य को पहचानो, शुभ कर्म तथा नेकी सीखो, जो धर्म समझो, उसी पर चलो। सबसे बड़ा धर्म नाम है, उस पर चलो, चलने वालों पर प्रभु अनुकंपा करता है तो परिश्रम स्वीकार होता है। जिन लोगों पर अनुग्रह हो जाती है उन्हें सत्यस्वरूप वाहिगुरू की प्राप्ति होती है। अतः तुम्हारा धर्म है लगे रहना, लगे रहा करो।

रसिक – अम्माँ! किसमें?

अम्माँ – नाम में!

रसिक – अम्माँ जी ! यह नाम क्या वस्तु है?

अम्माँ – बेटा! यह प्रेम है। स्मरण ही प्रियतम के प्रेम का विदित स्वरूप है। जो अपने प्यारे का स्मरण करता है, उसके अन्दर प्रेम होता है। प्रेम वाला प्यारे को भूल नहीं सकता। इसी तरह सदैव याद रखने वाला मनुष्य प्रेम में निवास करता है, उसके अन्दर प्रेम होता है। प्रेम वाला प्यार को भूल नहीं सकता। इसी तरह सदैव याद रखने वाला प्रेम में निवास करता है। नाम जपते समय प्रभु में प्यार भावना होनी चाहिये।

रसिक – ठीक!

अम्माँ – यह कर्तव्य की विद्या है, कथनी रिक्त वस्तु है। यों कहकर वहाँ से एक 'वाहिगुरू' की रसभरी गूँज उठी; और सब कुछ लोप हो गया। पर धरती के ऊपर एक स्थान पर उस समय एक जीवित मूरत इसी स्मरण के प्रवाह में, हाँ इसी याद के रंग में झूम रही थी। याद थी अथवा विरह, विरह था अथवा प्रेम, प्रेम था अथवा स्मरण; हाँ वह दर्शन इस प्रकार का था :-

सागर के बीच एक छोटा-सा द्वीप है। इसमें उत्तर की ओर एक इलाका है, जो कई सौ ग्रामों तथा छोटे नगरों वाला है। बीच में एक शहर है, उसका यह राजा है, जो बहुत सुन्दर छैल-छबीला है। सिर पर मुकट है, वस्त्र राजाओं के से हैं, पर समुद्र के किनारे एक शिला पर बैठा, छम-छम रो रहा है। लम्बे-लम्बे हौके लेता है। किसी समय 'हाय'! मुँह से निकलता है। कभी आँखें मुँदकर चुप हो जाता है। जब नैन खोलता है तो फिर जलधारा बह निकलती है। है राजा, पर फिर रोता है। सिर पर ताज है और आँखों में नीर है। यह तो सच्च ही है कि राजा के ताज में सिर दर्द के नग जड़े हुए होते हैं। पर यह रोना राजा वाला रोना नहीं लगता, क्योंकि अकेला रो रहा है, कभी आकाश पर, कभी समुद्र के अद्दष्ट दूर किनारे की ओर रीझ लगाकर उल्लास के साथ देखता और रोता है, पर अपनी भाषा में कलेजे को चीर देने वाली आवाज़ में कुछ कहता है जो कुछ इस तरह स्पष्ट हो जाता है :-

हे ईश्वर! कभी तो आओ! मेरे अन्दर लग रही आग को बुझाओ। बिना देखे ही मेरे हृदय में तलवार-सी लग गई है, कभी तो आकर इस हृदय में झाँको। मेरे अन्दर लग रही अग्नि को आकर बुझाओ। हे भगवान! कभी तो आओ। न ही आपने झाँका है और न ही खिड़की खोली है, घूँघट उठाकर कभी नहीं झाँका। कभी तो दया दिखाओ। मेरे अन्दर लग रही वियोग की अग्नि को बुझा दो। मेरे नैन रात दिन तरस रहे हैं। रसिक को मिलने के लिये मेरी छाती वेधी जाती है। हे प्रभु! कभी तो आओ, मेरे अंदर लगी हुई को बुझा दो। मेरे कलेजे में किसने बाण मारा है, मारने वाला तो दिखाई नहीं दिया। हे प्रभु! दर्शन दिखाओ, मेरे अन्दर लगी हुई को बुझा दो।

हे भगवान्! यह राजा है, देखो इसे भी प्रेम वाणों ने वेध लिया है। किस प्रियतम की लालसा करता है और प्रियतम भी वह, जिसे कभी देखा भी नहीं। बिना देखे ही लग गई है? ओर अद्दष्ट के स्मरण तथा कीर्तन में मग्न है। तरसता और उल्लसित होता है।

लोग कहा करते हैं कि हमने ईश्वर को कभी नही देखा, बिना देखे प्रेम लगे कैसे? पर लो देखो कि इसने प्रियतम को अभी देखा नहीं और प्रेम सहित जलहर होता हुआ ही रो रहा है। है न ऐसी भी दशा कि बिना देखे भी प्रेम लग जाये? वास्तव में हमें संशयों तथा वहमों ने मार रखा है। बुद्धि की चिड़िया तर्क करने के लिए सिंह बनी रहती है। यह कभी भी सुख के पिंजड़े में नहीं पड़ती। इस समय एक अदेशी आवाज़ कानों में पड़ी :-

१. ''सबने दर्शन किया हुआ है, अन्दर गहरे स्थान पर दर्शन की कसक सबके अन्दर उपस्थित है।

सुरत दृष्टमान में लगकर भूल रही है।

२. चन्द्र तेरे ही 'भूल के बादल' के ओझल हैं, पर चन्द्र की प्रीत लगाने वाले तेरे पास ही हैं, तेरी हऊ मैं मिलने ही नहीं देती।

३. उसने प्रियतम को नहीं देखा, पर किसी प्रियतम को देख चुके ने उसे अदृष्ट का प्रेम लगाया है।''

इतने में वह राजा उठा, सागर के खारे पानी के साथ आँखों को धो डाला, नैनों में से निकल रहे खारे पानी को धैर्य आया। अब यह डेरे की ओर चल पड़ा, कुछ दूर पर पालकी खड़ी थी, दास हाज़िर थे, पालकी उठाकर डेरे को ले चले, जहाँ पर तम्बू लगे हुए थे।

राजा डेरे पर पहुँचा, रात को परिवार सो गया, राजा भी सो गया। जिस समय सारा परिवार निद्रा में डूब गया, राजा उठकर टहलने लगा और 'हे गुरू नानक ! हे गुरू नानक' करके स्मरण करने लगा। कभी रोने लगता, कभी चुप हो जाता, कभी हँस पड़ता, कभी आकाश की ओर देखता, कभी उत्तर की ओर देखता, कभी बैठ जाता, कभी टहलने लगता पर सारी रात 'नानक, नानक' पुकारता रहा।

चित चात्रिक को प्यास पुकारत।।
चाहत स्वांत दरस हरि आरति।।६४।।
लोचन भए चकोर बिचारे।
चंद बदन कबि आन दिखारे।।
अस प्रकार भूपति अभिलाखा।
दिन प्रति बधत बिटप ज्यों शाखा।।
रैन बिखै निन्द्रा जिन त्यागी।
दिन मैं भूख पिआसा भागी।।६६।।
प्रेम अधार जीवना जिह को।
लोचन चलत रहत जल तिह को।।

(गु : नानक प्रकाश ४४)

कूड़ अमावस सचु चन्द्रमा
दीसै नाही कह चड़िआ।।

एक शास्त्रज्ञ विद्वान है; षट् दर्शन के ज्ञाता; बल्कि सर्व दर्शन के ज्ञाता; साथ वेद भी मुख से उच्चारण करते हैं, १८ पुराणों के ज्ञाता हैं, आज समुद्र के किनारे उसी पास वाली राजा जी वाली शिला पर बैठे हैं, पर शोक-रूपी सागर में बह रहे हैं। इतनी विद्या और फिर शोक! पर यदि तनिक-सा ख्याल दें तो शोक न हो और क्या हो? पढ़ा हुआ, हाँ जी 'लिखि-लिखि पड़िआ तेता कड़िआ' सोचों के भँवर बढ़ते गये। जितनी ज्यादा सोच, जितनी गहरी सोच, उतने ही संशय, जितने संशय उतने शोक।

इतने में एक और मनुष्य आया और कहने लगा - पण्डित जी! क्या समाचार है?

पण्डित जी - क्या बतायें भाई! परमेश्वर की माया अब वृद्धवस्था में देखी है।

सहजू - कैसे?

पण्डित - तू पूछता है कैसे? तुझे चिंता नहीं?

सहजू - मुझे चिंता! इसीलिये तो माता-पिता ने मुझे गहरा पढ़ाया नहीं। हमारा काम मज़ाक की कमाई खाना, विदूषक हमारा नाम, हम क्या जानें चिन्ता?

पण्डित – और यदि भोजन ही बन्द हो गया तो?

सहजू – हमारा भोजन कौन बन्द करेगा?

पण्डित – राजा।

सहजू – क्यो?

पण्डित – तू मसखरा है और वह रात-दिन रोता रहता है। अब उसे विलाप करने वाली महिलाओं की आवश्यकता होगी कि तेरी? तैने किसी-न-किसी समय मज़ाक करना है, उसने चिढ़कर कह देना है, जाओ सहजू जी आराम कीजिए।

पण्डित ने पते की बात कही, खूब लगी सहजू, सदैव हँसने वाला सहजू घबड़ाया, उसके माथे पर कालीयाँ त्योरियाँ चढ़ीं। जिसने कभी चिंता देखी नहीं थी, वह आज विद्वान की संगति से चिन्ता में पड़ गया है। इतने में मन्त्री आया।

मन्त्री – हैं! आज विदूषक जी का चेहरा उदास है! अद्भुत बात है।

सहजू – भाई कुछ मत पूछ! पण्डित जी की शरण में आये थे कि कुछ सुख प्राप्त होगा, पण्डित जी संशयों में बह रहे थे, मुझे भी साथ ही बहाकर ले गये। अत: दोनों बैठकर भोजन की चिन्ता में डूब रहे हैं। तुम कहा करते हो, ''जिसने उत्पन्न किया है उस पर भरोसा नहीं बैठता, कर्मों पर संतुष्ट नहीं रहा जाता।'' पर श्रीमान्! आश्रयदाता में जो नया रंग आया है, वह हैरान कर रहा है। राजा क्या और रोना क्या, रोने वाले स्थान में हम ऐसे मज़ाकियों और तर्क-वितर्क वालों का क्या स्थान?

मन्त्री – सच्च है विदूषक जी!

पण्डित – मुझे तो इस बात का आश्चर्य है कि एक अपढ़ पथिक निरक्षर भट्टाचार्य[1] कह क्या गया। न वह पण्डित था और न विद्वान। मैंने बहुत कहा कि मेरी उसके साथ चर्चा कराइए, पर राजा ने एक न मानी। वह बस काती लगाकर चल दिया। अब यदि यही दशा रही तो हमें कौन पूछेगा? इस वृद्धावस्था में अन्न जल के लिये कहाँ फिरते रहेंगे?

मन्त्री – पण्डित जी! नि:संदेह बहुत चिन्ताजनक बात है, पर यदि हम अपने स्वामी को प्यार करने वाले दास बने रहें, तो हमें क्या वे किसी दशा में रहें, हमारा अंग पालन और भक्ति कायम रहे।

पण्डित – हाँ जी! यह तो ठीक है। आप तो ठहरे मन्त्री, आपकी तो ज़रूरत हुई पर मुझे तो कमाई ही पुस्तकों की खानी हुई। जब राजा का धर्म ही और हो गया तो मुझे कौन पूछेगा? ओर अंत में उसी जैसे बनियों ने मन्त्रीपद को हाथ मारना है, जो राजा पर प्रभाव डाल गये हैं। अत: तुम भी कोई प्रबन्ध कर लो। यदि अब नहीं करोगे तो चार दिन बाद में करना पड़ेगा।

मन्त्री – क्या करें?

पण्डित – राजा जी को समझाएँ, सदा शिव की उपासना का त्याग मत करें।

मन्त्री – अच्छा, पर कहें क्या?

---

१. एक अक्षर भी न जानने वाला पण्डित ।

पण्डित – राजा किसी देवता का नाम लेता है?

मन्त्री – दासियों से सुना है कि 'नानक-नानक' करता है।

पण्डित – बस सभी मिलकर 'नानक निन्दा' शुरू कर दें; प्रत्येक ओर से उसके कानों में निन्दा डालें, अपने आप ख्याल टूट जाएगा।

सहजू – अरे रिक्त ख्यालों की कमाई खाने वाले! न तैने नानक को देखा, न मैंने, न उसके गुणों को देखा, न अवगुणों को, न कभी पास रहे और न परख की, कैसे निन्दा करें? केवल झूठ बोलते रहें।

पण्डित – नीति है, क्यों मन्त्री जी?

मन्त्री – नीति तथा झूठ पर्यायवाची[१] शब्द नहीं है।

सहजू – पण्डित जी! झूठ झूठ है, नीति का नाम लेने से भी झूठ, झूठ ही रहता है।

पण्डित – धर्म प्रचार के लिए झूठ सत्य के तुल्य है।

सहजू – हाँ, झूठ सदैव उसी तरह की वस्तु है, जिस तरह की वस्तु अधर्म है।

पण्डित – क्या कहा?

सहजू – मैंने कहा कि धर्म का प्रचार झूठ से किया जाए तो वह तो अधर्म हुआ, धर्म तथा सत्य दैवी सम्पदा की वस्तु है और झूठ आसुरी[२] सम्पत्ति की वस्तु है। अन्धकार से प्रकाश का प्रचार कैसे?

पण्डित – भोले मूर्ख! तू समझता नहीं। कार्य सिद्धि के लिए साम[३], दाम[४], दण्ड[५], भेद[६], सब कुछ प्रयुक्त होता है।

सहजू – राज्य के कार्यों में साम, दाम, दण्ड, भेद लगाया जाता है कि सत्य के प्रचार में भी? धर्म तो अपनी सचाई और अपनी शक्ति के बल पर प्रचारा जाता है, न कि चुराईयों, ज़ोर अथवा झूठ के साथ? भारत के साथ पठान शासक कितना बल लगा थके, ज़ोर, दबाव, भय, गाली-गलोच तथा तलवार के भय से कितना श्रम कर चुके हैं। फल क्या हुआ कि अभी तक जो लोग उनके धर्म में गए हैं, उनके आचरण उसी तरह के हैं, जैसे कि पहले थे। किसी में कोई विशेष बात नहीं आई। सभी वैसे के वैसे हैं। हाँ, यदि कभी कहीं किसी सूफ़ी ने प्यार सहित किसी को प्रेरणा की, तो उसमें कोई गुण आया हो तो कहा नहीं जा सकता।

पण्डित – फिर यह तो ठीक है, पर हम यह तो नहीं चाहते कि राजा सत्यवादी, धर्मी, सचमुच ही कुछ बन जाए। बाबा! हमारे मत में लगा रहे, धर्म हो अथवा मत हो। एक राजा पण्डित है, इतना परिश्रम करके मैंने विद्या पढ़ाई है, दूसरे धर्म धुरन्धर है, तीसरे हमारी मन्त्रणा

---

१. समान अर्थों वाला ।

२. दैवी गुण-भले गुण, ईश्वरीय गुण : सत्य, दया, सज्जनता आदि । आसुरीगुण-अवगुण, बुराई, कुकर्म, झुठ, निन्दा आदि ।

३. सालिसी द्वारा अधिकार में लाना ।

४. छल द्वारा बस में लाना ।

५. बल द्वारा अधिकार में लाना ।

६. शत्रु के घर में फूट डालकर अधिकार में लाना ।

में न रहा, तो शत्रुओं को लाभ होगा। इसलिए अन्दर से चाहे वह धर्मी हो अथवा अधर्मी, पर हमारे में टिका रहे। हमारा मान बचा रहे, हमारी आजीविका सुरक्षित रहे, हमारे शत्रु दबे रहें।

विदूषर्क – वाह महाराज जी! तुम धन्य हो! तुम्हें तो मन्त्री बनना चाहिए था। मन्त्री जी! शिरोमणि मुन्शी का बस्ता इन्हें लेकर दे दीजिए। यह धर्म प्रचार के योग्य नहीं है।....पण्डित जी! तुम्हे शायद पता नहीं मैं ब्राह्मण मत का नहीं, पर मेरा धर्म बौद्ध है। तुम जैसा मेरा धर्म नहीं, हम बुरे ही सही, पर सज्जनता वाले पुरुष हैं। झूठ को झूठ, पाप को पाप जानते हैं। यदि तम्हारे धर्म में कोई शक्ति है, कोई जीवित शक्ति है तो उसके बल से राजा को स्वैधर्मी प्रेमी बनाओ, अन्यथा उस मनुष्य के आगे झुक जाओ, जो तुम्हारे राजा की विद्या और चतुरता के होते हुए भी उसे अपना कर गया है।

पण्डित – वह मनुष्य दुष्ट था, पापी था, कोई जादूगर था, भोले राजा को खराब कर गया है।

विदूषक – पण्डित जी! तुम्हारा धर्म खोखला है। धर्म से मेरा तात्पर्य वह सूक्ष्म विचार नहीं, जिसके तुम समझने वाले हो, पर वह शक्ति, वह प्रभाव जो तुम्हारी आत्मा में है। देखो एक आदमी तुम्हारे राजा का धर्म पलटा गया है, तुम उसकी शक्ति को तोड़ नहीं सकते। सिद्धान्त यह कि तुम्हारे अन्तस् में आत्मिक बल कमज़ोर है, कमज़ोरी का प्रत्यक्ष चिन्ह क्रोध है, तुम अनजाने अकारण ही उसे गालियाँ देते हो, मुझे आशा नहीं कि नीति से, अथवा धर्म शक्ति द्वारा तुम राजा का मन पलट सको।

पण्डित – मेरी धर्म शक्ति का तुझे पता नहीं, मैं कल ही पूरी, कासी तथा नदीए को मनुष्य भेजूँगा, और वहाँ से पण्डितों की आज्ञा आएगी कि राजा जी को निकाल दिया जाए अन्यथा ठीक हो जाएँ।

विदूषक – इतना सामर्थ्य मुसलमानों में तो है, तुम लोगों में नहीं। पर कोई बात नहीं, यदि हो भी तो 'भय' से धर्म प्रचार करते हो? धर्म का फल है 'निर्भय पद' और तुम भय डालकर धर्मी बनाते हो, भय तो आसुरी सम्पत्ति की वस्तु है, अन्धकार है। पण्डित जी। धर्महीन को हा देना बुरा नहीं, पर तुम पत्रों वाले पक्षी क्या जान सकते हो कि राजा को प्रेम लगा है, जो लगा गया है, वह कोई शक्ति वाला पुरुष था, वह परदेशी कोई आत्मिक बल वाला था, जो आपके शास्त्रज्ञ राजा जी के अन्दर प्रेम भर गया है। अब राजा 'नानक प्रेम' में मग्न है। तुम जो कुछ सोच रहे हो, यह कुछ प्रेमियों को कष्ट देने के लिए लोग सदैव सोचते तथा करते आए हैं, पर प्रेमी कभी नहीं गिरे। लोगों ने प्रेमियों को जीवित जला दिया, विष के प्याले पिलाए, सूली पर चढ़ाया, अनेकों कष्ट तथा भय दिए, पर प्रेम की चिन्गारी कभी बुझी नहीं और यहाँ पर तो सच्चा प्रेम है, आत्मिक प्रेम है, आध्यात्मिक प्रेम है और है भी किसी 'पूरण पुरुष' का। पूरण पुरुष मैं इसलिए कहता हूँ कि जिसके चेले में इतनी शक्ति है कि अपराधी होकर कचहरी में आए और राजा को स्वैधर्म में प्रेरकर ले जाए, वह अवश्य ही आत्म आरूढ़ पुरुष है और जिसका वह चेला है वह कोई 'पुरण पुरुष' है। अरे पण्डित! मुझे तो शंका होती है कि भविष्य पुराण में जो कलियुग में अवतार होना लिखा है, जिसको म्लेच्छों से रक्षा

करनी है,[१] कहीं यह वही नानक तो नहीं?

पण्डित – विदूषक! मेरे विचार में तू भी राजा के साथ खराब हो चला है।

विदूषक – नहीं पण्डित जी! मैं तो शुद्ध बोद्ध मत का हूँ। हमारे मतानुसार सदाचार ही धर्म है, इसलिए मैं सच्च का साथ नहीं छोड़ सकता और धर्म-प्रचार में किसी आसुरी सम्पत्ति के व्यवहार को ठीक नहीं समझ सकता। राजा चाहे मुसलमान हो जाए, पर मैं भय से, छल से, निन्दा से, चालाकी से, उसे कभी भी हिन्दू रखने के यत्न नहीं करूँगा।

पण्डित – हे सत्यवादी! क्या तू ही हरीशचन्द्र का अवतार है?...... अच्छा फिर तू ही कोई युक्ति बता?

विदूषक – तुम उसे युक्तिपर्वूक समझाओ, उसके संशय दूर करो, पर मुझे भय लगता है कि तुमको यों भी सफल नहीं होना। जो पुरुष अपने धर्म को शास्त्रार्थ में हारकर अथवा बुद्धि की खोज करके तर्क के सिर पलट जाये, वह प्रबल युक्ति से दोबारा अपने धर्म में आ सकता है, पर जिसे सर्व युक्तियों से ऊपर कोई आत्मिक बल प्राप्त हो जाए, जिसके अन्दर कोई रस, कोई सच्च प्रत्यक्ष हो जाये, जो हस्तामल (हाथ की करामात) की भाँति किसी स्वाद तथा शक्ति का अनुभव करे, उस अनुभव वाले प्रवाह में चले गये जिज्ञासु को तुम युक्ति द्वारा भी हटा नहीं सकोगे। उसके अन्दर कुछ है, वह कुछ अनुभव कर रहा है, वह अन्दर से पक्का है, तुम बातें करते हुए ढीले-ढीले, रिक्त-रिक्त लग रहे हो। वहाँ केवल तर्कों का, जिनके नीचे जीवन नहीं है, आत्म-शक्ति नहीं है, क्या प्रभाव पड़ेगा? पण्डित जी! हम लोग केवल प्रत्यक्ष रूप से बुद्धि के पीछे लगने वाले हैं, आत्मा को भी कुछ और ही करके समझते हैं, जिसे सिद्ध हुआ कि हम केवल समझ के प्रकाश में चलने वाले हैं, पर देखो मेरी प्रत्यक्षवादी, अर्ध नास्तिक की क्या दशा हुई है? उस अपढ़ के साथ मैंने भी दो दिन बातें की हैं, मैं सत्य कहता हूँ, मुझे अपने धर्म पर शंका होने लगी है और मेरी समझ में आता है कि बुद्ध जी यदि दो कदम और आगे रखते, तो यह मनुष्य बन जाते। मैं सच्च कहता हूँ कि मैंने उस मनुष्य के अन्दर कोई बल प्रतीत किया है। उसके अन्दर कोई उज्ज्वल शक्ति है, उसके अन्दर कुछ वह जीवन है, जिसे हमारे पूर्वज 'निर्माण जीवन' कह गए हैं। बात करता है कि बेधता है। देखता है कि आकृष्ट ही कर लेता है, पास बैठता है कि रस की एक झन्नाहट छेड़ देता है। यदि कहीं दस दिन और रह जाता, तो इस 'नानक प्रेम' की लगन मुझे भी लगा जाता। इतना

---

१. एवं वै अधर्म प्राचुर्य भविष्यति यंदा कलौ ।।३३।।
तदा बै लोक रक्षार्थ म्लेच्छाना नाश हेतवे ।।
पश्चिमे तु शुभे दिशि वेदिवंशे च नानक: ।।३४।।
नम्ना च भुविं राजर्षि: ब्रह्मज्ञानैक मानस: ।।
विभक्ति कलौ स्कन्द तत्रविद कला हरे: ।।३५

अर्थात्-इस तरह जब अधर्म बहुत बढ़ेगा, तब लोगों की रक्षा के लिए और पाप की इच्छा वाले अधर्मियों के नाश करने के लिए पवित्र पश्चिम के देश में वेदियों के वंश में (गुरू) नानक नाम वाले हरी की कलाओं सहित अवतार होगा और राजर्षि (सत्य) नाम के उपदेशक ब्रह्म के ज्ञान सहित मन वाले अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ, वाहिगुरू में सदैव अभेद रहने वाले होंगे। यह शलोक 'भविष्य पुराण' पूर्वार्ध, त्वास्टकल्प, अध्याय १२९ के हैं, इससे पहले कलियुग के अधर्म प्रचार का कथन है। यह प्रसंग शिव के पुत्र स्कन्द को ब्रह्माजी ने कहा है। उससे आगे राज खालसा का प्रसंग है ।

तो अवश्य ही हो गया है कि मुझे राजा पर क्रोध नहीं आता, मैं समझता हूँ कि राजा सच्चा है और किसी जीवित शक्ति की ओर आकृष्ट हुए जा रहा है। आज रात को मुझे भ्रम होता था कि संसार में ग्लानि हो गई है, हमारे मत में भी और तुम्हारे मन में भी। श्रीकृष्ण देव जी ने कहा है कि जब ग्लानि होती है, तो मैं संसार में आता हूँ। मेरे ख्याल में कहीं बुद्ध जी, या कृष्ण जी का दूसरा अवतार, तो नहीं आ गए? फिर मुझे भविष्यत पुराण याद आया, तो मैंने यह खोज निकाला कि हो न तो यह तुम्हारे मतानुसार अवतार और हमारे मतानुसार फिर बुद्ध जी आ गये हैं।

पण्डित- (हौका भरकर)-एक को क्या रोती है, यहाँ तो अवा ही बिगड़ा पड़ा है। तू बुद्धिमान पुरुष, तू भी उस जादूगर के प्रभाव में आ गया?

विदूषक-मेरे विचार में यह जादूगरी वैदिक ऋषियों का मूल था। यही जादूगरी मांडकू, गीता, पातंजल में लिखी है, यही जादूगरी कृष्ण देव के पास थी, इसी जादूगरी को लेकर सरल राम जी ने इस देश में आकर पण्डित रावण का पराजित किया था, यह जादूगरी हमारे बुद्ध जी के पास थी, यही जादूगरी चीन के कनफ्युक्स, ईरान के ज़िन्दकर्ता, यूनान के प्लातूस के पास थी। यही कनान के ईसा और अरब के मुहम्मद के पास थी। यह जादूगरी अब संसार में नहीं है। इसका अभाव ही ग्लानि है। इसे लेकर कोई तगड़ा दूसरों की अपेक्षा ज़बर्दस्त, पूर्ण पद पर खेलने वाला संसार में आया लगता है, जो पहले हो चुके सभी से उच्च काम करेगा, जो मृतकों को जीवित करेगा, जीवित लोगों को मुक्त करेगा, पर हे पण्डित जी! मैं अभी 'नानक प्रेम' में नहीं आया, मेरे ऊपर उस जादूगर का प्रभाव नहीं पड़ा, मैं अभी निष्पक्ष केन्द्र पर खड़ा हूँ, किसी हठाग्रह, किसी कट्टरता की ऐनक से वास्तविकता को नहीं देखता। मैं तब तक पक्की राय नहीं बनाऊँगा, जब तक आप देख नहीं लूँगा। आप खोज करूँगा, आप तोलूँगा, आप निरख-परख करूँगा, जब निश्चय हो जायेगा, सीस झुका दूँगा, यदि तसल्ली नहीं होगी तो भी प्रसन्न रहूँगा, पर धर्म के विषय में आसुरी सम्पत्ति का व्यवहार नही करूँगा। नहीं, तो महमूद ग़जनवी को अत्याचारी क्यों कहते हो? वह तलवार के बल से मुसलमान बनाता था, तलवार के बल से मूर्ति-पूजा का खंडन करता था, वही आज तुम कर रहे हो। जो भाव इस समय तुम्हारे मन में हैं, यदि तुम में महमूद का-सा बल होता, तो उस मुसाफिर की कब्र आज सागर में बनी होती और राजा जी फांसी पर लटके होते। क्योंकि तुम में बाहुबल नहीं है, इसलिए वे सुरक्षित हैं। मैं न 'नानक-प्रेम' में हूँ, न ब्राह्मणी मत में हूँ, पर मैं सच्च कहता हूँ कि तुम में और महमूद ग़जनवी में, मेरी दृष्टि से तनिक-सा भी अन्तर नहीं।

यह सुनकर पण्डित जी बिगड़े 'म्लेच्छ म्लेच्छ' कहकर दो कदम पीछे हो गये:-हाँ, तभी तो हमारे शास्त्रों में लिखा है कि मस्त हाथी के पैरों के नीचे आकर मर जाओ, पर यदि (जैन मन्दिर अथवा बौद्ध मन्दिर) में जाकर प्राणों की रक्षा हो सके तो मत रक्षा करो।

विदूषक - कैसे भी कहो, प्रत्येक बात में तुम यह प्रकट करते हो कि तुम निर्बल हो।

मन्त्री - पण्डित जी! सच्च तो यही है जो विदूषक जी ने कहा है।

पण्डित जी क्रोधित से होकर उठे और सीधे महलों की ओर चले गये और रानी जी से जा मिले।

पण्डित – रानी जी! राजा जी को यह क्या हो गया है?

रानी – तुम जानो, बुद्धिमान हो, हमारे लिए तो 'नानक प्रेम' हो गया है।

पण्डित – नानक को न देखा न भाला, वैसे बिना देखे भी प्रेम हो सकता है?

रानी – हो सकता है अथवा नहीं? हमें पता नहीं। 'हो गया है' यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

पण्डित – ऐसा कभी नहीं हो सकता।

रानी – तब तुम क्या कहते हो कि मेरे स्वामी जी कपट करते हैं?

पण्डित – नहीं, यह बात नहीं, पर प्रेम, बिना देखे लग नहीं सकता।

रानी – मैं शास्त्रज्ञ नहीं, पर जो प्रत्यक्ष दीखता है, वह यह है कि प्रेम सच्चा है और लग गया है। 'अच्छा है कि बुरा' यह तुम जानो।

पण्डित – फिर तुम चाहती हो कि राजा रोता रहा करे और राज्य को कोई और आकर सम्भाल ले।

रानी – पण्डित जी शुभ वाक्य कहो, मैं तो सदैव राजा जी को प्रसन्न मूर्ति देखने की इच्छुक हूँ, पर मेरे बस में क्या है?

पण्डित – कोई उपाय करें?

रानी – हाँ, करो।

पण्डित – राजा को भय दें।

रानी – न, मेरे प्राणपति को भय मत दो, समझाओ।

पण्डित – समझाकर तो मैं थक गया हूँ, चिकने घड़े पर पानी पड़ता है, पर कोई असर नहीं पड़ता।

रानी – न जाने पण्डित जी! कहीं यह अच्छी वस्तु ही हो, क्योंकि राजा जी अब कुछ शीतल, कुछ स्वादिष्ट, कुछ दयालु और प्रेमी ज़्यादा हो गए हैं। अब पहले की भाँति क्रोध नहीं करते, गाली नहीं देते, मीठे और रसिक हो गये हैं।

पण्डित – आपको क्या पता?

रानी – हाँ मैंने शास्त्र नहीं पढ़े और न ही मैं विद्वान् हूँ, जो आँखों के सामने घटता है, वही देखती हूँ और वही कहती हूँ।

पण्डित – फिर अब राजा को धर्म से पतित होने दें?

रानी – नहीं पण्डित जी! बचाइए, पर कोई ऊँची बात बताइए, कोई अधिक प्रेम का रंग चढ़ाइए, कोई आत्मिक बल व्यय कीजिए, जिसे पिय जी सूख सहित ऊँचे उठें।

पण्डित – अच्छा रानी! विचार करूँगा।

यह कहकर आर्शीवाद देकर, शास्त्री पण्डित, शैवमत उपासक (शिव का उपासक), शांभवी मुद्रा का ज्ञाता[१], नादानुसंधान का जानने वाला[२] खेचरी[३] आदि का ज्ञानी, संयम का

---

१. अंदर निशाना मन्त्र अथवा किसी चक्र का और अर्धखुले नैन, यह शांभवी मुद्रा है। देखिए हठयोग प्रदीपका मुद्रा प्रकरण ।

२. कानों का विषय, जो आकाश तत्व तथा वायु संबंध से एक तरह की आवाज़ सुनने वाला ।

३. जिह्वा को अंदर ऊपर की ओर उलटाकर कण्ठ तक ले जाना और भृकुटी में ध्यान लगाना ।

जानने वाला पण्डित चला गया। पर हैरान है। मन से कहता है, ग्रहण तो केवल एक राजा को लगा, पर छाया सब पर फिर गई है। विदूषक बौद्ध होकर 'नानक प्रेम' के प्रत्यक्ष प्रभाव का अनुयायी है, मन्त्री वैष्णव है, वह भी उसकी यथार्थकता को मान गया है, रानी कुछ नहीं जानती, मेरी चेली थी, वह भी मान गई है। जिसके साथ बात करता हूँ, वे सभी मानते हैं कि वह परदेशी कोई शक्तिवान, कोई आत्म-बल वाला था। सभी जानते हैं कि राजा को सच्चा प्रेम लगा है और उसका प्रभाव प्रजा के लिये भी नेक पड़ रहा है, अब मेरा कोई सहायक नहीं है। धर्म की हानि भी नहीं देखी जाती और मैं भी इस बात को सच्च जानता हूँ कि उस परदेशी 'मनसुख' की-सी मेरे में 'मन+सुख' शक्ति कोई नहीं है, जिससे मन्त्र मारूँ और राजा वशीभूत हो जाये। अब तो कोई राजनीतिक चाल ही चलें? कि तन्त्रशास्त्र में से कोई टोटका निकालें? क्या करें समझ में नहीं आता। यह उत्तर की ओर से क्या अदेश का प्रकाश आया है, सभी मोहित हुए जा रहे हैं, हे भगवन! सहायता करो।

: ३ :

'पाधा पड़िआ आखीऐ बिदिआ बिचरै सहजि सुभाइ।।
बिदिआ सोधै ततु लहै राम नाम लिवलाइ।।'

(दखणी ओअंकार)

अगाह सागर नीला-नीला साफ़ स्थिर है। छोटी-छोटी लहर तो चलती है, पर वैसे आज अचल है। किनारे के उसी रमणीय स्थन पर राजा जी आ विराजे हैं, रात तो राजा की व्याकुलता से व्यतीत होती है; सवेरे निद्रा कुछ ज़बर्दस्ती गिरा लेती है। दिन में दरबार में कार्य-धन्धा करता है। किसी समय जब जी बहुत बेबस होता है, तो काम-काज त्यागकर उठ जाता है, स्नान वाले स्थान पर रो-धोकर फिर मुँह-हाथ धोकर आ बैठता है। अभी तक राजा के दिन के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं पड़ा; राज-प्रबन्ध ठीक चल रहा है, पर दूसरे काम-धन्धे उलट गए हैं। नृत्य, राग में नहीं जाता, शतरंज आदि खेल बन्द हैं, शिकार को कभी गया नहीं, यदि घर गये तो एकान्त चुपचाप लेटा रहे, रानी के पास, गए तो प्रेम सहित देखा, नैन भर आये, 'चंद्रकला'[१] करके आवाज़ दी और फिर आपे में खो गए। जब कहीं बहुत उदास हुए तब समुद्र के इस प्राकृतिक सौन्दर्य वाले रमणीय किनारे पर आ बैठे! चन्द्रकला बड़ी प्यार वाली स्त्री थी, परदे की प्रथा इस देश में नहीं थी। कई बार रानी पति को बहुत उदास देखती तो यहाँ पर साथ ही जाती। कभी साथ वीणा ले आती, कोई वैराग का गीत गाती तो उनका जी परच जाता। आज भी रानी साथ आई है, राजा जी उत्तर दिशा को मुँह करके सागर के अदृष्ट दूसरे किनारे की ओर रुख करके बैठे हैं, रानी पास बैठी है, राग मालकौंस की मधुर ध्वनि वीणा से बजा रही है, सुर्यास्त होने का समय है। पश्चिम की ओर सूर्य इस तरह डूबता जाता है मानो स्नान करने के लिए जल में चला जा रहा है। मंद गति की पवन है और प्रकृति ने वैराग का चित्र बना दिया है। रानी की आँखें भी सजल हैं और राजा जी के तो बड़े-बड़े अश्रु निकल रहे हैं। जो कुछ रानी गा रही थी, उसका भाव कुछ इस तरह का सा था :-

---

१. पुरातन जन्मसाखी में रानी का नाम चन्द्रकला लिखा है ।

पूछ हे प्यारी! तू क्यों पुकार रही है? सज्जन पार है, मैं इधर खड़ी हूँ, मेरे प्राणों में त्राण नहीं रहा। सज्जन इस ओर नहीं आता, मैं अवगुणों से भरी हुई हूँ। मैं पुकार करती हूँ और मेरी पुकार उसके पास, हे प्यारे पवन! पहुँचा दे। आ प्रियतम मेरी चिरकाल की लालसा पूरी कर, मैं सारी तुझ पर न्योछावर होती हूँ।

फिर राजा ने आप कुछ गाया जिसका आशय कुछ इस तरह था[१] :-

'मैंने रूप नहीं देखा, चरण नहीं परसे केवल नाम के आधार पर ही जीवित हूँ। दर्शन कब करूँ, कब चरणों में समाऊँ, प्यारे गुरू जी कब आयेंगे? दूरी बहुत दूर की है, मार्ग टेढ़ा है, नदियों तथा सागर से पार। क्या कहकर बुलाऊँ कैसे बुलाऊँ, द्वार पर कैसे पहुँचूँ। मन में मिलने की भारी इच्छा है, हे प्यारे! मेरा मन भर आता है । हे सतगुरू जी! आओ, प्यारे आओ! आओ रक्षक! अपने चरणों के साथ लगा लीजिए, अपने चरणों में समा लीजिए, मेरे सारे दुख मिटा दीजिए। आपका नाम मीठा लगता है, उसको जप-जपकर बलिहार होता हूँ। आपकी याद में रस आता है, नाम जपने से स्वाद आता है। मन में आपकी याद चुभती जा रही है और रोम-रोम में झन्नाहट छिड़ रही है। बिना आपके दर्शन किए, बिना बचन सुने और बिना आपके चरण परसे। मैं घायल, मै बलिहारी हुआ, मैं न्योछावर हुआ हूँ। हे सतगुरू! आप मेरे अपने लगते हैं और बहुत ही प्यारे लगते हैं! दर्शन की भिक्षा के लिए तरस रहा हूँ, नैनों रूपी आँचल फैला दिया है। आप अपना विरद सम्भालिए, हे प्रभु! मुझ पतित का उद्धार करने के लिये एक बार आइए। मैं आपका दैवी मुखड़ा इन नैत्रों द्वारा देख लूँ। मेरा मस्तिक आपके चरणों रूपी कमलों का रस प्राप्त करे और मुख पर आपकी चरण धूल को लगाऊँ। आपके चरणों के स्पर्श में मग्न होकर मैं सदैव मग्न रहूँ।'

इस प्रेम भरे गीत का आश्चर्यजनक चित्र बंध रहा था। सारा सागर, सारा वन, सारी हवा प्रेम रूप हो रही थी कि श्री पंडित जी आ निकले, कुछ समय तो खड़े रहे। रानी तथा राजा नैन बंद किये हुए अपने रंग में थे, जब आँख खुली तो पण्डित जी को नमस्कार करके पास बैठा लिया। पण्डित जी ने आर्शीवाद दिया, कुशलता पूछी, फिर कहने लगे - हे राजन! राज तथा वैराग दो बातें कठिंन हैं।'

राजा-ठीक है पण्डित जी! यदि अपने बस में हो तो बात है।

पण्डित-राजा! आप बुद्धिमान हैं, सर्व विद्या सम्पन्न हैं, आप अपने वश से बाहर कैसे हैं?

राजा-पण्डित जी! इस समय कुछ शान्ति रस का स्वाद आ रहा है, किसी और समय यह बातें करेंगे।

पण्डित-जैसे आपकी आज्ञा। मैं केवल दुखित हूँ, इसलिए इस समय आया था, आपकी दशा मुझे रात को सोने नहीं देती।

राजा-(चौंककर)-क्यों?

पण्डित-वैसे तो मैं आपकी प्रजा हूँ, परन्तु पुरोहित होने के नाते और विद्या का समागम इकट्ठा रहने के कारण मुझे आपसे कुछ अधिक प्रेम है। आपका प्रतिदिन वैराग में डूबते जाना, प्रसन्नताओं में से निकलते जाना, मुझे हैरान कर रहा है। यह प्रतिदिन की बढ़ती हुई उदासी कहाँ तक ले जायेगी? राज्याधिकार का क्या बनेगा?

---

१. यहाँ गीत का अनुवाद प्रस्तुत है ।

राजा – पण्डित जी! मैं दुखी तो नहीं हूँ, मैं तो किसी सुख में हूँ।

पण्डित – सुख में हैं? यह रोना सुख का चिह्न है?

राजा – यह दुख का रोना नहीं; यह प्रेम के अश्रु हैं।

पण्डित – प्रेम कैसा?

राजा – किसी प्रिय वस्तु का।

पण्डित – वह प्रिय वस्तु मुझे भी बताइए?

राजा – उस दिन जब आपके साथ वार्तालाप हुआ था तो मैंने सारा समाचार बताया था।

पण्डित – पर आप मेरी तसल्ली नहीं कर सके थे।

राजा – पण्डित जी! आपको याद है जब हम पातंजल जी के दर्शन का विचार करते थे जब भक्ति का विषय चला था तो ईश्वर के लक्षण आये थे कि वह क्लेश कर्म तथा फल आदि से सदैव प्रभावित नहीं होता और विशेष पुरुष है। इतना कहकर उसने फिर कहा :-

"तत्र नृत्यशयं सर्वज्ञ बीजम"

(योग दर्शन, समाधिपाद, सूत्र २५)

इस सूत्र के समय मैंने आपको हँसकर कहा था कि यह युक्ति कैसे हुई? परमेश्वर में सर्वज्ञता का बीज नृत्यष: है, अर्थात् उससे अधिक और किसी में नहीं है। यह एक उत्तम विचार है अथवा किसी के धर्म की प्रतिज्ञा है, जो उसने कह दिया। 'परमेश्वर अवश्य ही है' इस बात की यह युक्ति किस तरह हुई? सांख्य ने कह दिया कि ईश्वर सिद्ध नहीं होता, योग ने कह दिया कि पुरुष विशेष ईश्वर है और उसमें सर्वज्ञता की अवधि है, यह युक्ति तो नहीं है। फिर आप भी घबराये थे। दूसरे दिन आप योगभाष्य लाये थे। भाष्यकार ने इसी सूत्र से युक्ति सिद्ध करके दिखवाई थी कि यह उसके अस्तित्व की युक्ति है। जो रस उस समय तुम्हारी तथा मेरी समझ में आया था, उसकी समृति है कि नहीं?

पण्डित – जी हाँ आश्चर्यजनक रस था।

राजा – भला वही बात आप किसी अपढ़ कृषक को समझाइए, तो क्या वही रस उसे आयेगा?

पण्डित – नहीं जी।

राजा – इसी तरह जैसे वह रस बुद्धि की प्रागल्भता का था, और बुद्धि मंडल की वस्तु था और उतनी मंजी हुई तथा स्वच्छ बुद्धि वाले ही उसका रस ले सकते हैं, इसी तरह जो रस मुझे अब प्राप्त है यह किसी अन्य मंडल का है, जहाँ मेरी समझ में बुद्धि से ऊँचा कुछ और हो जाता है। मैं अब उस रस का बुद्धि किस तरह वर्णन कर सकता हूँ?

पण्डित – राजन! जहाँ पर बुद्धि काम नहीं करती, वह क्या दशा हुई? क्या वह जड़ता है, अचेतनता है? क्षमा करना, वह अज्ञान ही तो नहीं?

राजा – यदि बुद्धि से नीचे की ओर झुकाव हो तो कुछ ही कह लीजिए पर यदि ऊपर को रुख हो तो दशा बुद्धि रहित कैसे हुई?

पण्डित – जब बुद्धि न रही तो रह ही क्या गया?

राजा – हमने योग बशिष्ट इकट्ठे ही पढ़ा था, जिस अवस्था को वह ऊँचा पुकार कर

निर्विकल्प तथा अक्रिय अवस्था बताता है, जहाँ संकल्प-विकल्प नहीं रहा, जहाँ पर फुरना नहीं रहा, वहाँ जड़ता क्या रही?

पण्डित – नहीं, वहाँ शुद्ध चेतंन रहा।

राजा – जहाँ पाँच ज्ञानेंद्रिय मन सहित खड़े हो जाते हैं और बुद्धि भी नहीं डोलती[१], क्या तब जड़ता और अज्ञान हो जाता है?

पण्डित – अच्छा......, हूँ.......पर कैसे?

राजा – जहाँ स्मृति नहीं, प्रमाण नहीं रहा, वहाँ मन और बुद्धि कहाँ रहे? मन का धर्म चिंतन है, बुद्धि का धर्म विवेक है। जब चित् की सारी वृत्ति निरुद्ध हो गई तो क्या अचेतनता हो गई?

पण्डित – नहीं, वहाँ दृष्टा अपने स्वरूप में स्थित होता है।

राजा – तो-तो कोई अवस्था है न, जहाँ कोई संकल्प न उठे जहाँ वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाएँ और फिर 'है' की अवस्था हो और वह 'है' ज्ञान हो और उस ज्ञान में आनन्द हो।

पण्डित – उत्तर तो आ गया, पर आप ने न तो क्रिया योग किया है, न सांख्य योग किया है, न हठयोग, न राजयोग, न नाम रूप से निकलकर ब्रह्माभ्यास किया है, मैं किस तरह स्वीकार कर लूँ कि आप योगी अथवा संन्यासी हो गए हैं।

राजा – मैं न योगी हूँ, न संन्यासी, पर मैं अन्धकार में नहीं, दुख में नहीं, मैं किसी रस में हूँ, जहाँ मेरी बुद्धि के पैर लंगड़े हैं। रस अलौकिक है, सचमुच है। आपने कहा था वह रस नहीं, अज्ञान है। मैंने आपको सिद्ध करके बताया है कि कोई ऐसी अवस्था भी हो सकती है जो साधारण से ऊँची है, जहाँ इतना ज्यादा प्रकाश है कि प्रकाश की अधिकता के कारण बुद्धि के नेत्र मुँदे जा रहे हैं।

पण्डित – उस रस का वर्णन कीजिए।

राजा – जहाँ चेतंनता के पंख झड़ते हैं, जहाँ चिंतन के पाँव जलते हैं, उस स्थान का वर्णन जिह्वा कैसे कर सकती है?

पण्डित – कुछ चित् की दशा ही बताइए, क्या कहता है?

राजा – चित् एक शीतल रस में रहता है, कोई आकर्षण रहता है, जो अति स्वादिष्ट पीड़ा करता है। पीड़ा नहीं करता, रस का आकर्षण इतना है कि असह्य है, प्रसन्नता तथा स्वाद टूटते नहीं।

पण्डित – कोई चिंतन?

राजा – मन के 'अनेक चिंतन' टूट गए हैं, केवल 'एक चिंतन' निरंतर रहता है, और वह कुछ मस्ती में रखता है[२], यह मस्ती अकथनीय है।

पण्डित-कुछ नशा-सा है? और कभी वह टूटता भी है?

राजा-नशा नहीं, पर कोई उच्चता की सी प्रतीती है। मनोराज नहीं उठते। हल्कापन,

---

१. कठऊनिषद ६, १० ।

२. चिंतत ही दीसै सभु कोइ ।। चेतहि एक तही सुखु होए ।। (दखणी ओअंकार)

उज्जवलता, अंतस में, आत्मा में सुन्दरता की प्रतीत रहती है। एकाग्रता है, आनन्द है। टूटने का तो पता ही नहीं। श्री नानक के चरणों के दर्शनों की अभिलाषा कभी-कभी इतनी तीव्र होती है कि प्रेम व्याकुल कर देता है। श्री नानक.......

यह कहकर राजा के नेत्र मुँद गए, नैनों से नीर का प्रवाह चल पड़ा और घड़ी भर आँख नहीं खुली, जब खुली तो..........

पण्डित – मैं आपको कष्ट दे रहा हूँ।

राजा – नहीं श्रीमान!

पण्डित – भला जी! यह बताइए कि सारा दिन अथवा बहुत सारा समय आप राज्य का काम ज्यों-का-ज्यों करते हैं, भोजन भी करते हैं, शारीरिक क्रिया भी करते हो, साथ ही आपका मन 'एक चिंतन' करता है और साथ ही यह संसार के सारे काम करता है, क्या यह संभव है? मन एक है, एक समय में एक ही ओर लग सकता है।

राजा – क्या आप इस बात को स्वीकार करते हैं कि राजा जनक तो पूर्ण भक्त और साथ ही पूर्ण ब्रह्मज्ञानी थे, और साथ-साथ राज्य के काम भी पूरे करते थे।

पण्डित – जी हाँ!

राजा – क्या जब वह राज्य का काम करता था, उस समय भक्त और ज्ञानी नहीं रहता था? और जिस समय सत्संग में बैठता था अथवा समाधिस्थित रहता था, क्या उस समय राजा नहीं रहता था?

पण्डित – वह तो गीता के सिद्धान्त के अनुसार कर्म करता हुआ निष्काम था। वह निष्काम भक्त था, उसके दोनों पक्ष पूर्ण थे।

राजा – जब कृष्ण जी ने अर्जुन को लड़ने के लिए उपदेश दिया था उसे गीता में शास्त्र विद्या सिखाई था अथवा ब्रह्मज्ञान? और ब्रह्मज्ञान में परिपक्व करके लड़ना सिखाया था, तो उसके मन ने 'बध' किया था कि ज्ञानी होकर 'धर्म' का पालन किया था?

पण्डित – उसका मन निर्लेप था, उसने धर्म का पालन किया था, हुआ चाहे बध था।

राजा – अत: कोई अवस्था है न, जहाँ मनुष्य का एक मन एक समय में दो काम कर सकता है।

पण्डित – हैं!

राजा – नहीं, राजा जनक के से ज्ञानी और श्री कृष्ण जी के से योगी की अपेक्षा आप संसार में देखिए; घड़े पर घड़ा और उसके ऊपर और घड़ा रखकर पनिहारिन चली आ रही है और साथ-साथ सखियों से बातें करती आ रही है। गोदी में बच्चा है, उसे दूध पिलाती आ रही है; साथ ही उसका चित् मटकों को सीध में रखता है, साथ ही सखी की बातों का उत्तर देता है। कभी बाजीगर को देखा है? एक तो रस्से पर चलता है, साथ गाता है। एक तो उसका मन रस्से के ऊपर अपने बोझ को एक तुल्य रखता है और दूसरे राग के स्वर ताल में लगाकर उसे ठीक रखता है। है न कोई ऐसी दशा कि एक मन एक ही समय दो काम कर सकता है। मैंने आपको कई बार देखा है कि साथ पान चबा रहे होते हैं और साथ शतरंज का खेल-खेल रहे होते हैं।

पण्डित – मज़ाक तो आप विचार के समय भी नहीं त्यागेंगे !

राजा – मज़ाक नहीं, मैं चाहता हूँ कि आप समझ लें कि मुझे भी कोई ऐसी दशा प्राप्त हो गई है कि मेरा मन एक ही समय दो काम कर लेता है।

पण्डित – विशेष खोलिए।

राजा – पण्डित जी! आप ऐसी दशाओं के ज्ञाता है कि चित् कई काम करता है। अब देखिए चित् के और दो पक्ष हैं, एक इरादा संयुक्त है, दूसरा बिना इरादे काम करता है।

पण्डित – कैसे?

राजा – एक मनुष्य की मृत्यु हो गई है, शरीर उसका ज्यों-का-त्यों है, उसके पेट में यदि भोजन डालें तो पचता नहीं।

पण्डित – पचाने वाला मन जो बीच में नहीं है।

राजा – जब जीवित है, तब भोजन पचता है, इससे सिद्ध हुआ कि मन भोजन को पचाता है।

पण्डित – शरीर की सारी क्रिया मन के आश्रय है। मन ही सभी इन्द्रियों, सभी अंगों को शक्ति तथा स्फूर्ति देता है।

राजा – पर यह बताइए कि कभी आपने भोजन करके संकल्प देकर, ध्यान देकर भोजन पचाया है? अथवा भूख के आश्रय भोजन किया है, भोजन पेट में गया आप किसी और धन्धे में लग गए, सायंकाल को अविकाश मिला, देखा तो भूख लग रही है, तब पता चला कि भोजन पच गया है। पचाया तो तुम्हारे मन ने है, पर तुम्हारा मन सारा दिन काम-धन्धा करता रहा है, भोजन मन ने किस तरह पचा लिया है? है न मन की कोई और ऐसी दशा कि हमारे इरादे अथवा संकल्प के बिना भी काम करता रहता है, जहाँ हमें किसी संकल्प द्वारा शक्ति देने की आवश्यकता नहीं?

पण्डित – (चकित होकर) है तो सही।

राजा – फिर सिद्ध हुआ कि या तो मन ही दो हैं, एक हमारे इच्छा के बिना काम करता है और दूसरा हमारी इच्छा अथवा संकल्प द्वारा काम करता है। अथवा मन एक है और उसकी दो दशाएँ हैं अथवा उसके कोई दो अंग ऐसे हैं कि एक बिना संकल्प के काम करता है और दूसरा संकल्प पाकर काम करता है। हमें संकल्प वाले मन का पता है, पर दूसरे के काम-काज का सीधे ढंग से कोई पता नहीं, अनुमान आदि से पता चलता है।

पण्डित – ठीक है।

राजा – तब फिर मन को या तो दो कहिए, या दो पक्षीय कहिए, या दो शक्तियों वाला कहिए, या कोई और बात कहिए।

पण्डित – आपका क्या सिद्धान्त है?

राजा – मेरा सिद्धान्त तो आप अभी समझ नहीं सकेंगे, हाँ आपके प्रश्न का उत्तर है कि यदि मन एक है तो इसके गुण, स्वभाव, शक्तियाँ अनेक होंगी, एक समय में किसी रूप में दो काम कर सकता है और यह कि ''बिना संकल्प'' की शक्ति तो मन सदैव अन्दर के प्रबन्ध में लगा रहता है और 'संकल्प' की शक्ति द्वारा समझकर काम करता है। इस समझ के काम को भी मैंने सिद्ध किया है कि एक समय दो काम हो सकते हैं। अतः ऐसी दशा में असम्भव है कि मन एक समय में दो काम कर सके। फिर आप 'ज्ञानी चित', 'ध्यानक्ष चित्त',

'निष्काम चित'[१] की शक्ति का भी विचार कीजिए।

पण्डित जी अब सोचते तो रहे पर कोई बात न सूझी, बात पलटकर यों कहने लगे-

हे राजन! आप धर्म धुरंधर है। गौरंग स्वामी जी जब रामेश्वर आये थे तब आप दर्शन करने के लिए नहीं गए थे, आप कहते थे कि हमारे मत का नहीं है और अब आप चुपचाप धर्महीन हो रहे हैं।

राजा – पण्डित जी! आपका सत्कार मुझे वर्जता है कि मैं कुछ कहूँ, पर आप ऐसे कठोर वाक्य मत उच्चारण किजिए मैं धर्महीन नहीं हो रहा।

पण्डित – अब आप नानक उपासक हो गए हैं, पर इस तरह होने में आप अपने धर्म से उपराम हो रहे है।

राजा – पण्डित जी! बात करने का, यह इस तरह का ढंग ठीक नहीं। मुझे 'नानक प्रेम' का आवेश हुआ है, यह सच्च है, पर इस होने में मेरे अन्दर किसी के साथ द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ। जब द्वेष नही है, तो मैं धर्मी हूँ। न ही उसने मुझे कोई द्वेष की बात कही जिसने मुझे यह सुचना दी। उसने कोई खंडन-मंडन मेरे साथ नहीं किया, किसी प्रकार की घृणा, किसी प्रकार का द्वेष, ग्लानि आदि भी, उसने मुझे नहीं दिखवाई उसने नाम लिया 'नानक' और मुझे आकर्षण हुआ; उसने कीर्ति की, मुझे प्यार हो गया, उसने उनके समचार सुनाए, वे मुझे अपने प्रतीत होने लगे।

पण्डित – क्या उसके पास कोई जादूगरी थी?

राजा – जादूगर तो आसुरी सम्पत्ति के खिलाड़ी हैं। उसका काम-काज़, आचरण शुद्ध था, उसके शुभ कर्म भी निष्काम थे, उसके अन्दर रसभरी और शीतल एकाग्रता थी और सबसे अधिक उससे अन्दर कोई जीवित कण था, कोई आत्मिक प्रवाह था और कोई ऐसा उच्च चमत्कार था जो विशुद्ध आत्मिक था। जो कुछ यह था, इसे जादूगरी नहीं कहा जा सकता, और यदि जादू था तो यह था कि वह जीवित था और अपने स्पर्श से जीवन प्रदान करता था।

पण्डित – मेरी समझ में आता। एक जीव आत्मा अथवा पुरुष, एक मन, एक शरीर तो हुए, एक और जीवन कैसा?

राजा – जीवात्म मन तथा शरीर तथा हरेक को प्राप्त है और परमात्मा भी सबमें व्यापक है, पर सभी रसिक नहीं, प्रसन्न नहीं, आनन्दित नहीं, मस्ती की दशा में नहीं, 'अनेक चिन्तन' से मुक्त नहीं, आकर्षण में नहीं, प्रेम के हिलोर में नहीं, सोच चिन्ता के मण्डल से दूर नहीं, 'आशा संशय' से मुक्त नहीं।

पण्डित (घबड़ाकर और फिर बात पलटकर) – और यदि वह एक ऐसा था तो पंजाब की धरती से चलकर, जहां कहा जाता है कि दूध की नहर चलती है और गेहू के टीले खड़े हैं, यहां क्यों आया? यदि आशा अंदेशे से मुक्त है तो यहां माल बेचकर धन कमाकर पल्ले में बांधकर घर पर क्यों ले गया है?

राजा – अनेकों है जो माया के अतीत होकर विचरते हैं, जो पैसे को हाथ नहीं लगाते

---

१. यह तीन नाम उस चित् के हैं जो ज्ञान, योग तथा भक्ति आदि साधनों की शक्ति से वासना रहित हो गया है, पर उसे वासना रहित रहकर भी काम करने का ढंग आता है।

जो त्यागी है, पर फिर आशा अंदशों में हैं।

पण्डित – इसका क्या अर्थ?

राजा – अर्थ यह है कि पदार्थ का प्रत्यक्ष रूप से त्याग अथवा ग्रहण आत्म–जीवन का कोई पक्का चिन्ह नहीं। बन्धन–मुक्त, ग्रहण–त्याग तो बुद्धि का है। यदि वह धर्म की कमाई करता है, दूसरे का अधिकार नहीं छीनता, परिश्रम द्वारा जो कुछ कमाता है उसी से आजीवका चलाता है और फिर हाथों से दान देता और दूसरों का भला करता है, उसके अन्दर लाभ–हानि का हर्ष–शोक घेरा नहीं डालता, तो उसका ग्रहण सफल है। यदि कोई त्यागी पुरुष है और वह इस अहंकार में है कि वह त्यागी है और त्याग करके शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होते समय उसके अभाव के कारण बैठता और जलता है कि हाय! उसकी आवश्यकता पूरी नहीं हुई, हां में कहता हूँ जो त्यागी है और त्याग में कुढ़ता है, सन्तुष्ट नहीं है, उसका त्याग निष्फल है।

पण्डित – राजा! उसे पदार्थ का लोभ नहीं होता, कोई और पकड़ होगी। चाहता होगा कि यदि राजा हमारे मत में आ जाये तो हम राजमत वाले हो जाएंगे। यों भला निष्काम परोपकारी था तो यहां के गरीबों को क्यों न धर्म की शिक्षा देता रहा, राजा को प्रेरणा देकर क्या लेना था।

राजा – तो गरीब ज्यादा अधिकारी हैं और राजा अवश्य ही नरक को जाये? (हंसकर) क्यों पण्डित जी? चलो यह बात तो कुछ हंसी की भी है। वास्तविकता पर विचार कीजिए भाई 'मनसुख' हमारे देश में व्यापार करने के लिए आता है, अपने देश की वस्तुएं यहां बेचता है और यहां का माल लाहौर ले जाता है। जब कभी आया, व्यापार करके चल दिया, न राजा न रंक, उसने कभी किसी के साथ धर्म की बात नहीं की, किसी का खण्डन–मण्डन नहीं किया, कभी डौंडी नहीं की कि 'मैं धर्म का अगुआ हूँ।' इस बार आपके स्थापन किए हुए कर्म–काण्ड के व्रतादि जब उसने नहीं किए तो मेरे पास नालिश दागी गई, मैंने उसे दोषी जानकर बुलवाया। वह अपराधी के नाते मेरे पास आया, पर उसके अन्दर छिपा हुआ बल था, आत्मिक अवा की कोई दबी हुई अग्नि थी जिससे वह डोला नहीं, बल्कि धैर्य तथा गम्भीरता सहित आया। उसने प्रेम सहित मेरे प्रश्नों के उत्तर दिये। जब उसके वाक्य मुझे पसन्द आए और उसके विश्वास ने मुझे आनन्द दिया तो मैंने उसके धर्म का समाचार पूछा, आपके सामने उसने उत्तर दिये। जब वह मुझे प्यारा लगा तो मैंने उसके धर्म के गुरू का नाम पूछा तो उसने अपने अपार प्रेम के धनुष पर चढ़ाकर अपने प्रियतम के नाम का तीर इस तरह कसा कि मेरे कलेजे में चुभ गया। फिर मैंने मिन्नतें करके उससे प्रेम–कण का दान मांगा। उसने कई एतराज किये, अंत में मेरी लालसा को सच्चा देखकर उसके जीवन कण प्रदान किया। मैं राज्याधिकार का त्याग करके, भिक्षु बनकर उसके साथ पंजाब जाने को तैयार था, पर उस फूलों को पौधों से तोड़ने वाले संन्यासी ने मुझे शाखा के साथ लगे हुए ही सुगन्धित कर दिया और कहा : गृहस्थ में रहो, राजधर्म का पालन करो, प्रेम की आन वाले सतगुरू जी आप आकर मिलेंगे।

इस बात में मुझे उस धर्मज्ञ पुरुष में कोई कामना निवास करती हुई दिखाई नहीं दी। न

उसे मेरे पदार्थ की इच्छा थी, एक पाई तक उसने मुझ से ग्रहण नहीं की। मेरे राज्य का उसें लाहौर में क्या सुख और मेरा राज्य है ही क्या वस्तु? मेरी विद्या का उसे क्या लोभ? वह रसहीन विद्या को, केवल तोता बनाने वाली विद्या को पसन्द नहीं करता था और उसके गुरू के द्वार पर कई मुल्ला, काजी तथा पण्डित, पाण्डेय, सिक्ख उपस्थित हैं। परमेश्वर के प्रेम से रिक्त विद्या का जब उसकी दृष्टि में मूल्य ही कुछ नहीं था तो उसे मेरी विद्या का क्या लोभ था? मेरा बाहुबल लाहौर की सप्त सिन्धु[१] धरती को यवनों से छुड़ा तो नहीं सकता, अत: उसे मेरे पदार्थ, विद्या, बल आदि वस्तुओं का लोभ नहीं था। यदि कुछ उसके अन्दर था तो अनुग्रह थी, बलिदान था, आपा न्योछावर करने का भाव था। उसने अपने जीव में से मुझे जीवनदान प्रदान करके जीवित किया। वह 'मनसुख' था, उसने मेरा मन सुखी कर दिया। (ऊपर को देखकर) हे मनसुख! तुम युगों तक जीवित रहो, हे मनसुख! तुम सदैव शीतल रहो, हे दाता! तू सदैव प्रसन्न रह। जिसने मुझे सुख दिया, युगों पर्यन्त जीवित रहो।

यह कहकर राजा विह्वल हो गया, काफी समय तक मुँह से 'धन्यवाद', 'धन्यवाद' करता रहा और नैनों से अश्रु निकलते रहे। जब आँख खुली तो क्या देखता है कि पण्डित भी रो रहा है।

राजा – पण्डित जी। मैं तो बावला हो गया, आप क्यों रोए?

पण्डित – देश के अभाग्य देखकर रो रहा हूँ, अब धर्म चला जायेगा। सदा शिव के मन्दिर गिर जाएँगे। होम यज्ञ नहीं होंगे। तीरथ, व्रत, पूजा लोप हो जाएँगे। देश नास्तिक हो जाएगा।

राजा – व्यर्थ विलाप का कोई लाभ नहीं, देश तो नास्तिक राजा अशोक के समय से है, जब से सभी बौद्ध हो गए थे। यह मेरी धरती का टूकड़ा हिन्दू मत का है। अत मैं निश्चय दिलवाता हूँ कि मैं किसी हठा ग्रह में नहीं, मुझे कट्टरता नही सिखाई गई, मुझे द्वेष तथा घृणा का पाठ नहीं मिला, मेरी प्रजा में जो जिसका धर्म है, उसकी उसे स्वतंत्रता है और सदैव रहेगी, मैं किसी पर जोर नहीं करूँगा। पण्डित जी! आप भूल रहे हैं, मै कोई सांसारिक राग द्वेष में नहीं हूँ। आप अन्याय कर रहे हैं, जो मुझे द्वेष में समझ रहे हैं। मैं बेबस हो किसी जबर्दस्त जीवित शक्ति की ओर खिंचा जा रहा हूँ। आप धर्म को 'उपदेश होता' समझते हैं, पर मुझे यह दीख पड़ा है कि धर्म प्रेम है, यह एक शक्ति है, एक जीवित रस है, एक तेज अथवा आनन्द है।

पण्डित – फिर, शास्त्र झूठे हैं क्या?

राजा – मैंने तो ऐसे नहीं कहा, पण्डित जी! जलपवाद, वितंडावाद, वाद-विवाद, झगड़े, लड़ाई, ईर्ष्या, अहं, खींचातानी वाले मत मे मैं नहीं गया। मैं तो एक सुन्दर ललित मूर्ति की ओर बिना देखे आकृष्ट हुआ जा रहा हूँ, मेरी दशा पर दया कीजिए। मेरा मन, मेरा धर्म, मेरा मज़हब प्रेम है, उस प्यार की ओर से कोई प्रवाह चला रहा है जो मुझे सुख, एक रस, एक लय में निरन्तर रखता है! मैं सबके साथ प्रेम करूँगा।

पण्डित – फिर क्या शास्त्र झुठे हैं?

राजा – मैं ऐसे नहीं कहता ! आप क्यों बार-बार यही कहते हैं, जिसका मैंने संकेत

---

१. सिंधु तथा पंजाब का साझा पुरातन समय का यही नाम था ।

तक नहीं किया। मैं तो यह कहता हूँ कि मुझे एक धनी मिल गया है, वह रुपये दे गया है और पूँजी प्रदान कर गया है। उसकी पूँजी के साथ मैं व्यापार करूँ, जिस तरह के हिसाब की आवश्यकता पड़े मैं उसका प्रयोग करूँ। शेष मेरे लिए हर एक स्वतन्त्र है और निश्चय में प्रेम मुख्य होना चाहिए।

पण्डित – फिर स्वधर्म तथा शास्त्र का अपमान करोगे क्या?

राजा – तुम बहुत कुछ घबड़ा गये हो, आपका सत्कार भी बना रहेगा। प्रजा का अपना धर्म रहेगा, 'मैं क्या करूँगा', जब दाता आयेगा, जो वह कहेगा वही होगा। पर यह निश्चय ही जान लीजिए कि मेरे वाक्यों में, मेरे कर्म में, मेरे संकल्पों में प्रेम होगा। आप चाहे अन्याय करना, मुझे बुरा कहना, डाँट देना, दुख खड़े करना, चाहे प्यार करना, मुझमें से प्रेम का प्रकाश तथा रस का प्रादुर्भाव ही होगा, मेरा मत प्रेम है! कलेजा फाड़ने से रक्त निकलता है, हृदय का चित्र दिखाई नहीं देता, अन्यथा पण्डित जी ! मैं हृदय चीरकर आपको दिखाऊँ, आप मेरे अन्दर की दशा देखकर सुख में मस्त हो जाइए।

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि
तद्ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः
यस्यानुषग्डि.ण इमे भुवनाधिपत्यभोगादयः
कृपणलोकमता भवन्ति।। (वैराग्य, शक्तम् – ७६)

: ४ :

''मैं जाणिया वडहंस है तां मैं कीता संगु।
जे जाणा बगु बपुड़ा जनमि न भेड़ी अंगु।।''

(श्लोक फरीद)

इस श्लोक को राजा से इस लय में पढ़ा कि पण्डित जी के दाँत भी जुड़ गए और नैन मुँद गये। अब बड़ी सन्ध्या हो गई थी, चन्द्रमा तथा तारे चढ़ पड़े थे। राजा बातें करता थक गया था, रानी पण्डित जी के हठ और छोटी दृष्टि पर ऊब रही थी, पण्डित जी उदास हो रहे थे कि इतने में एक दास ने आकर कहा कि आपके शुष्क तथा परित्याग किये हुए उपवन में एक साधु आया है, और कहता है कि यह नानक शाह फकीर है।

नाम सुनने की देर थी कि राजा उठ भागा, हाय प्रेम! न घोड़ा, न पालकी, न राज्य का ध्यान, न मान-प्रतिष्ठा कम होने का भय, अन्धाधुन्ध भागा जा रहा है। रानी भी चली, पर पुरुष की चाल और भाग-दौड़ के साथ कौन मिले? उसे तो अन्त में दासों ने पालकी पर चढ़ा लिया और पण्डित जी धीरे-धीरे अपनी पालकी के पास पहुँचे और घर की ओर चल पड़े।

उपवन में एक अच्छे हृष्ट-पुष्ट भगवे वेष वाले साधु बैठे थे, राजा जाकर दण्डवत कर चरणों पर गिर पड़ा, बैराग से कण्ठ रुक गया था, प्रेम के कारण नैन झड़ी लगा रहे थे। चरणों पर सीस झुकाया, सन्त ने उठाया, थपकी दी, कुशलता पुछी। राजा जी उत्तर देकर ससत्कार

---

१. इसलिए अनन्त, अजर, अमर, अविनाश और शान्तिपूर्ण ब्रह्म का ध्यान करो । मिथ्या जंजालों में क्या रखा है ? जो ब्रह्म का जरा-सा भी आनन्द पा जाते हैं, उनकी नज़रों में संसारी राजाओं का सुख तुच्छ जँचता है ।

बैठ गए। अब रानी भी आ गई थी और कुछ दास भी आ गये थे। राजी ने विनय की कि महलों में चलिए, तब उन्होंने कहा कि हम अतीत हैं, घरों से हमारा क्या वास्ता?

राजा, सुनकर कुछ देखने लगा। ''नानक, मेरा नानक, मेरा गुरू नानक, मेरा सतगुरू नानक तो गृहस्थी सुना था, यह वैरागी है। हैं! कहीं मेरी बावली अवस्था के साथ छल तो नहीं हो रहा?'' इस तरह विचारकर राजा ने सीस झुकाया। दासों को आज्ञा दी कि बारहदरी में डेरा करवाओ और सीस झुकाकर चल दिया। प्रत्येक अंग में पीड़ा है, जो निढाल है, नैनों के स्त्रोत सूख गये हैं, कलेजे में कसक उठती है, आँखों में धूल की वर्षा होती हुई प्रतीत होती है। पालकी में राजा जी चढ़ बैठे, घर पहुँचे, सारी रात यों व्यतीत हुई, जैसे सिर को ज्वर हो रहा है, शरीर टूटता है, हाय-हाय होती है। चन्द्रकला कहती है-''स्वामी जी! मैंने कई बार विनय की है कि पण्डित जी के साथ चर्चा मत कीजिये, उनका क्या बिगड़ता है? उन्हें तो दिन-रात चर्चा का स्वभाव पड़ा हुआ है, उनका व्यवसाय ही चर्चावाद है। आपने सारे दिन राज्य का काम करना, रात भगवन्त के स्मरण में व्यतीत करनी, आपका हृदय कोमल और सरल है, कठोर पण्डित के साथ झगड़कर चोट खा जाता है। मष्ट वाक्य रहा कीजिये। मैं तो सुन-सुनकर थक गई, आप कर करके न थके। पर उस पर क्या प्रभाव पड़ता है? निरुतर हो जाता है फिर भी हठ का त्याग नहीं करता। कोरी विद्या का यही अवगुण है कि यह जीव को सारग्रही नहीं रहने देती; हठी बना देती है।'' (रानी की यह प्यार भरी झाड़ राजा को शीतलता प्रदान करती थी), ''फिर आप पैदल ही भाग उठे। क्षमा करना, जिस नानक का मनसुख सिक्ख था, यह साधु वह नानक नहीं है। इसमें तो मनसुख जितनी सुगन्धि भी नहीं। क्षमा करना, मुझे तो आपके दर्शन, वैराग तथा प्यार में जो रस मिलता है, इस साधु के दर्शन से उसमें उलट मिला है। यदि आपका कोमल हृदय आज्ञा दे तो मैं रात-ही-रात में पता निकाल लूँ कि यह कौन है? नानक और आपका प्यारा गुरू नानक और मनसुख का पूज्य गुरू नानक देव तो यह साधु तीन काल भी नहीं है।''

राजा - चन्द्रकला! लगता तो ऐसे ही है, पर मेरी बुद्धि तो चर्चा के कारण अपने आप लगाई धूल के नीचे मलिन हो रही है, अन्यथा प्यार के प्यार का प्रभाव बता देता कि यह कौन है? पास जाकर मैं रिक्त हो गया हूँ, दुखी हो गया हूँ। कोई प्रयत्न लगाओ कि सवेरे तक पता चल जाये कि यह ठग है अथवा साधु।

रानी ने जाकर अपनी एक दासी को आज्ञा दी कि बाग वाले साधु को मांस-मदिरा का भोजन भेजो और रात को वहाँ नृत्य-गाने हों। सवेरे पता चले कि वह साधु है अथवा पाखण्डी।

पहली रात तो राजा ने जागकर व्यतीत की, पर अमृत वेला में आँख लग गई, आँख क्या लगी, एक निद्रा आ गई, आधी घड़ी के पश्चात सुभाग निद्रा खुली। निद्रा में मीठा-मीठा आत्म किरणें बरसाता हुआ स्वच्छ छवि वाला मनसुख का चेहरा दिखाई पड़ा, सभी व्याकुलताएँ दूर हो गईं; वही शीतल रस, वही प्रेम झन्नाहट, वही हरि चरणों में प्रेम, वही प्रसन्नता से भरा हुआ स्मरण, वही हिलोर और मस्ती के झोंके शुरू हो गए। इधर दासी ने आकर बताया कि वह तो साधु नहीं है, कोई पाजी जीव राजा जी को धोखा देने के लिए आया था।

यह सुनकर राजा जी ने बहुत वैराग किया और रानी से कहने लगे-''चन्द्रकला! बड़े की बात हुई, हमारे प्रेम के रंग में भंग पड़ गया। पाखण्डियों ने हमारे प्रेम को बावलापन समझकर जाल फैलाने आरम्भ कर दिये हैं, हमारे लिए सुरक्षा आवश्यक हो गई है, यह प्रयत्न रस भंग करेगा।''

चन्द्रकला – स्वामी जी! कैसे?

राजा – जिस समय हमारे कृपालु सतगुरू जी को आना था, हमने उछल-उछलकर, निश्शंक होकर उनके चरणों पर झुकना था, उनकी भेंट के स्वाद के समय चित्त में कोई संशय नहीं होना था। अब हमें संशय पड़ गया है, पहले परख करेंगे फिर झुकेंगे। तो हमारे अंदर क्या बात होगी? तनिक ध्यान से सोचना भाई! जब प्यारा सचमुच आया होगा, हमें संशय होगा कि न जाने यह प्यारा है कि नहीं। इस अपने संशय से, अपने दुख और अज्ञान से पार होने के हम प्रियतम की परख करेंगे। न्यूनता हममें होगी, परीक्षा में उस पूरण ज्योति को डालेंगे, जब वह पूरा उतरेगा, तब मानेंगे। अत: प्रिय! विचार कर। एक तो भारी अपमान होगा, दूसरे हमें वह जो स्वाभाविक ही, नि:संशय भरोसे, श्रद्धा तथा प्रेम सहित उछल पड़ने का रस आना था, वह नहीं आयेगा। फिर प्रिय! प्रेम का मैदान है, न अपने प्रियतम हमारे इस व्यवहार को सहन करे अथवा न करे?

चन्द्रकला – स्वामी जी! आपकी पहली बात ठीक है और मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं। किसी निर्दय ने यह हमारे साथ बड़ा अन्याय किया है, परन्तु दूसरी बात ठीक नहीं प्रतीत होगी, क्योंकि वे प्रेममूर्ति हैं, कृपालु हैं, उन्होंने अपने विरद की लज्जा को अपने तुष्ट हो जाने वाले स्वभाव के रंग को आना है और अनुग्रह करनी है, वे हमारे अवगुणों को क्षमा करेंगे।

अब दास ने आकर सूचना दी कि विदूषक जी आये हैं और कहते हैं कि उनकी ओर से विन्य की जाये कि इस एकान्त में से कुछ समय उन्हें प्रदान किया जाये, उन्हें कोई बात करनी है। राजा जी सुनकर कुछ सोच में पड़ गए, पर चन्द्रकला ने कहा-''हे राजन! विदूषक चाहे मसखरा है, पर है अंगपाल, उसे बुला लीजिए ओर उससे भेंट कीजिए।'' राजा सुनकर मुस्कराया और कहने लगा-''ले आओ!'' दास गया और विदूषक को ले आया। विदूषक ने आकर सीस झुकाया और बैठ गया, बातें चल पड़ीं, वह जो पहले बात-बात पर युक्ति लगाया करता था, आज बड़ी विचारशील बातें कर रहा है, और गुप्त लाल की भाँति अमूल्य चमक मारता है।

विदूषक – राजा जी! यह जो रात को एक पाखण्डी ने आकर धोखा दिया है, मेरे जी को इससे बहुत कष्ट हुआ है। यह उस पतन का चिह्न है जिसने सारे भारत को तबाह कर दिया है। चार सौ बरस से वह सारा देश नष्ट हो रहा है। वहाँ का प्रभाव यहाँ भी आ पड़ा। जिस देश में सच्च नहीं रहा, वह देश किस आधार पर सुखी रह सकता है? फिर जिस देश में स्वार्थसिद्धि प्रधान है, वह देश कब सुखी हो सकता है? मेरी इच्छा है कि इसे कड़ा दण्ड दिया जाये।

राजा – विदूषक जी! यह मेरा अपराधी है, अपराधी भी महान है, पर मेरी ओर से योग्य दण्ड मेरी 'क्षमा' है।

विदूषक – राजन! आपकी यह महान गम्भीरता देश के सुखी होने के चिह्न हैं।

इतने में मन्त्री जी की सूचना आई। राजा ने बुला लिया। मन्त्री जी नमस्कार करके बैठ गए।

मन्त्री – हे राजन! पण्डित जी तथा इस दास को श्रीमान जी के साथ विद्या प्राप्त करने का मान है, फिर हम तीनों का मत एक है और आज तक ठीक तरह व्यतीत हो गई है। अब एकाएक आपके विचार बदल गए हैं। मैंने तो यह समझ लिया है कि आपकी रुचि ईश्वर प्रेरणा से कर्मकांड से उठकर ज्ञान में आरुढ़ हो गई है, और कुछ नहीं हुआ, पर यदि कुछ और भी हुआ है तो आपका सच्चा विश्वास है और आप अपने कल्याण के लिए स्वतन्त्र हैं। आप जिस बात में कल्याण समझते हैं उससे हटाने के लिए आपके साथ अन्याय करना अपराध है और धर्म विहित नहीं है। पर आज जो अपराध आपके साथ हुआ है मैंने उसे भारी पाप समझा है और उस अपराधी को कैदखाने में भेज आया हूँ, यदि आपकी आज्ञा हो तो उसे सूली पर चढ़ा दिया जाये।

राजा (चौंककर) – मन्त्री! उसने प्रजा का अपराध नहीं किया, मेरा अपराध किया है। यद्यपि अपराध मेरे लिए अत्यन्त दुखदाई है पर गुरू नानक के चरणों के पराग की सुगन्धि के कारण मुझे इतना विशाल ह्रदय प्राप्त हुआ है कि जो उस महान दुख से-जो उसने मुझे दिया है, इतना बड़ा है कि मैं उसे क्षमा करता हूँ।

मन्त्री-आपकी बढ़ाई, क्षमा, धैर्य, गम्भीरता ऐसे ही हैं; और इसी में देश का सौभाग्य है, परन्तु दण्ड न दिया गया तो इस प्रकार के अपराध प्रतिदिन होंगे और इस पाप का यह अर्थ नहीं कि किसी ने धोखा दिया है, इस धोखे का अर्थ है कि किसी में बल का अभाव होने के कारण छल किया गया है, अत: यह छल नहीं, बल्कि बल ही है। यदि सचमुच किसी के पास बल होता तो आपको दुख दिया जाता, जैसे सुनते हैं कि भारत में कई मुसलमान राजा कर रहे हैं। यहाँ बल नहीं इसलिए छल से काम लिया गया है। यह एक प्रकार का आपके साथ मुकाबला है। यदि आज्ञा हो तों गहरी खोज की जाये और योग्य दण्ड दिया जाये।

राजा – सच है, संसार में धर्म के नाम पर बहुत कष्ट पहुँचाया जाता है और यह भूल है, मैं नहीं करूँगा, पर मैं इसके कष्ट सहन करने के लिए तैयार हूँ। खोज क्या करनी है? मेरे इन नैनों से अदृष्ट प्रियतम जी प्रेम बाण लेकर आ रहे हैं; बिना खोज किये ही सबको पराजित करेंगे। मन्त्री जी! तुम क्षमा करो और उस छोटे ह्रदय वाले साधु को मुक्त कर दो, और जिनका वह दूत है, उनके अवगुग ढके रहने दो। क्षमा का सूर्य उन्हें चुपचाप प्रकाश प्रदान करेगा। आगे के लिए मेरी रक्षा इस तरह करो कि जो व्यक्ति आकर कहे कि मैं वह हूँ, तो उसका आदर करो, पर कड़ी परीक्षा में डालो। यदि उसका सदाचार ठीक निकले तो मुझे खबर करो और यदि उसका आचरण ठीक न निकले तो विदा कर दो, दण्ड कोई मत दो। इधर मुझे भी कोई खबर मत भेजो। क्यों विदूषक जी! तुमने भी योग-दर्शन पढ़ा है? जिसके 'यम-नियम' ही नहीं संवरे उसमें योग की सम्भावना करनी ही भूल है। आप रुष्ट तो नहीं हैं?

विदूषक-मैं चरणों का दास हूँ। मेरी नौकरी यह थी कि मैं आपको प्रसन्न रखूँ। आप अब

अपने-आपमें प्रसन्न हैं, आपको प्रसन्न रखने के लिए मेरे ऐसे भाँड़-मसखरे की आवश्यकता नहीं रही। इसका अर्थ यह है कि जिस कार्य के लिए में नौकर हूँ, वह तो आपकी स्वाभाविक तथा उच्च प्राप्त हो रहा है, आपकी प्रसन्नता में मेरी प्रसन्नता है। आप प्रसन्न हैं, मेरी नौकरी प्रकृति स्वयं कर रही है और मुझे आराम दे रही है। हे भगवान! मैं प्रसन्न हूँ, आपका विश्वास सच्चा है, आपका प्रेम ठीक है, आपकी आत्मा में 'निर्वाण सुख' का प्रवेश देखता हूँ। निर्वाण का आनन्द, अनुग्रह तथा रहस्य हमने पढ़े ओर सुने, पर देखे नहीं थे। अब मैं आपसे प्रत्यक्ष रूप से उसका निवास देख रहा हूँ, बल्कि मेरे चित्त में तो आप पर अपने आप श्रद्धा आ रही है। इस सुख का नाम आप कुछ रखिए, पर मेरा आर्शीवाद यह है कि आपका यह सुख बढ़े।

: ५ :

"नानक साजन कऊ बलि जाईऐ साचि मिले घरि आए।।१।।"

(सूही महला १)

इसके पश्चात समय व्यतीत होता रहा, कई साधु आए, कईयों ने कहा 'मैं नानक हूँ' पर अब जो कसौटी लगाई जाती थी, उस पर कोई पूरा न उतरा। यदि कोई शूरवीर बहादुर अपने पर जीत प्राप्त कर चुकने वाला होता अथवा कोई पूर्ण हरि रस का रसिक होता तो पूरा उतरता। कई त्यागी, वैरागी आये पर अन्त में माया के कई रंगों की परीक्षा में जो मन्त्री जी अपने प्रबन्ध में लेते, कहीं-न-कहीं जाकर गिर पड़ते।

एक दिन फिर राजा जी सागर के किनारे पर बैठे थे, चन्द्रकला पास बैठी थी, आप कह रहे थे-

प्रिय! उत्तर दिशा की पवन प्यारे की सुगन्धि लाया करता था, आज तीन दिनों से पवन खाली आता है। हाँ! मेरे भाग्य भी कभी जागेंगे? कभी मेरी भी दर्शन की इच्छा पूरी होगी? फिर एक गीत गाया जिसका भाव इस प्रकार था :-

किनारे पर खड़ी होकर मैं पुकार कर रही हूँ, प्रभु को आवाज़ें लगा रही हूँ, आ प्रभु! मैं मन-तन न्योछावर कर दूँ , मैं बावली सी हूँ। हे प्यारे! मेरा जी तरसता है और उड़कर मिलने की मेरी इच्छा है और चाहती हूँ कि दूसरे किनारे पर चली जाऊँ, पर जाने के लिए कोई सहारा नहीं? मैं अकेली ही तरस रही हूँ। उधर जाने में बाधा पड़ी हुई है और इधर खड़े रह रहकर आयु व्यतीत हो रही है, मैं निमानी आप जा नहीं सकती। दोनों ओर से दुखी होकर खड़ी हूँ। हे प्रियतम! आओ और अपना दर्शन दिखाओ, अनुग्रह करके लक्कर लगाओ, मुझ तरसती हुई को अपने चरणों के साथ लगा लो, मैं अब तो बावली हो चली हूँ।

इस तरह बैराग में थे कि मन्त्री जी आ गए और कहने लगे :-

हे राजन! तीन दिनों से एक साधु आए हुए हैं, जिन जैसा पहले कोई नहीं आया। पहले तो उन्होंने आप ही आकर शुष्क बाग़ में डेरा डाला है, दो सुन्दर सुडौल मनुष्य और भी साथ है। माली बता रहा है कि उनके चरण रखते ही बाग़ के सूखे पौधे हरे हो गये। कलियाँ फूट पड़ी हैं। दूसरे जिस दिन से आये हैं, आधार रहित हैं। साथियों ने थोड़े दाल, चावल पाये हैं, पर आप अभी तक पवन आहारी हैं और आप इस उपवास के कारण दुर्बल नहीं हुए। तीसरे,

जो व्यक्ति उनकी परीक्षा के लिए बाग़ में जाता है, जाते ही उसकी बुद्धि और हो जाती है, परीक्षा भूल जाती है, हृदय में प्रसन्नता होने लग पड़ती है। दूर से ही जब दर्शन होते हैं तब जिह्वा बन्द हो जाती है, बोला नहीं जाता, अपने आप सिर झुकता है और उन पवित्र चरणों पर गिर पड़ता है। चरणों से छूते ही ध्वनि होने लगती है–'वाहिगुरू, वाहिगुरू'। जब लौटकर आता है तो नैन सजल होते हैं, यदि पूछें तो यह उत्तर मिलता है:– ''अपने प्रभु का स्मरण करो, रचयिता के साथ प्रेम करो।'' हे राजा! जितने भी व्यक्ति गए हैं, सभी का इस तरह काया–कल्प हो गया।

राजा (रोकर) – क्या कुछ नाम–पता भी बताते हैं?

मन्त्री – मूक हैं। किसी बात का उत्तर नहीं देते। जो व्यक्ति परीक्षा लेने के लिये जाता है, वह जिह्वा रहित होकर लौटता है और वह ऊपरी दशा में होता है। आज मैं और विदूषक जी–आप गए थे, वे तो दर्शन मग्न वहीं पर बैठे हैं, कहते हैं ''यह अवश्य ही वासना रहित हैं। जाओ राजा जी से कहो निःसंशय ही आयें।'' मुझे कहते थे, ''इतने प्यारे हैं कि यदि मुझे आप यही कह देंगे कि 'ईश्वर है' तो मैं मान लूँगा और अभी बौद्ध धर्म का त्याग पर दूँगा।'' फिर कहने लगे, ''मैं इस मोहक मूर्ति को देखकर मोहित हो गया हूँ, यह मनुष्य नहीं है, अवश्य ही कोई महान अवतार है।'' हे राजा! मैं भी आर्कष्ट होकर आया हूँ, बहुत प्यारे लगते है। धरती के जीव नहीं प्रतीत होते, मन मानता है कि अदेश से आये हैं।

राजा – (हौका लेकर)–मन्त्री! उस पाखंडी को सीस झुकाकर मेरे मन को जो दुख हुआ, वह दुःख भूलता नहीं। तब का चित डरता है, कि सच्चे के बिना यह सिर किसी दूसरे के आगे भूल से भी मत झुके। अब भागकर पहुँचने को जी उमड़ता है।

मन्त्री – हे राजन! अब तो सच्च प्रत्यक्ष है। कल राग विद्या में निपुण्य सुन्दरियाँ गई थीं, कि नृत्य करके उन्हें उनके रंग में से उखेड़ें, पर उस मृदुल मूर्ति ने जाते ही कहा :–

''राग का हरि कीर्तन में प्रयोग करो।
नाम जपो।''

उसी समय वे समाधिस्थित हो गईं, कुछ समय के पश्चात होश आई तो वापिस लौटीं, उनके नैन सजल हैं, और मानो शरीर में से अखण्ड ध्वनि निकल रही है। इस तरह दिखाई देती हैं कि मानो पवित्रता और हरि स्मरण की देवियाँ है। हे राजा! बाग में प्रभाव भी कुछ और तरह का है, पाँव रखते ही जी प्रसन्न होता है, शीतलता मिलती है, शान्ति आती है और यों लगता है कि मानो ईश्वर ही ईश्वर हो रहा है। मेरे विचार में तो अब संशय नहीं, मनसुख का गुरू, आपका गुरू नानक, सृष्टि का त्राण कर्त्ता, महर्षियों का शिरोमणि अवतारों का गुरू अवतार यही है।[१]

राजा यह सुनकर चक्कर खाकर गिर पड़ा, फिर सँभला और कहने लगा, अहो! मैं अपराधी, मैंने अपने प्रभु की परीक्षा लीं। धिक्कार मेरे पर! (चौककर)–

हे मन्त्री! तू क्या कहता है?

---

१. 'सभ ते बडा सतिगुरू नानकु' गुरू जी का वाक्य है ।

मन्त्री – पातशाह! अब तो आप हैं, आप हैं, आप हैं। आज तो मैंने और विदूषक जी ने, नाम, जाति पता आदि पूछने की धृष्टता नहीं की, पर वे कीर्तन में मग्न थे। आपके दैवी कंठ से जो अनाहत नाद हुआ तो जो कुछ गाया गया जो अपने लेखक ने साथ-साथ लिख लिया :-

जोगी जुगति नामु निरमाइलु ताकै मैलु न राती।
प्रीतम नाथु सदा सचु संगे जनम मरण गति बीती।।१।।
गुसाईं तेरा कहा नामु कैसे जाती।।
जा तऊ भीतरि महलि बुलावहि पूछऊ बात निरंती।।१।।रहाऊ।।
ब्रह्मणु ब्रहमु गिआन इसनानी हरि गुण पूजे पातीं।।
एको नामु एकु नाराइणु त्रिभवण एका जोती।।२।।
जिह्वा डंडी इहु घटु छाबा तोलऊ नाम अजाची।।
एको हाटु साहु सभना सिरि वणजारे इक भाती।।२।।
दोवै सिरे सतिगुरू निबेड़े सो बूझै जिसु एक लिवलागी जीअहु रहै निभराती।।
सबदु बसाए भरमु चुकाए सदा सेवकु दिन राती।।४।।
ऊपरि गगनु गगन परि गोरखु ताका अगमु गुरू पुनि वासी।।
गुर बचनी बाहरि घर एको नानकु भइआ उदासी।।५।।११।।

(मारू म: १)

इस शब्द की ध्वनि मारू राग में थी इसलिए यह वैराग का चित्र बना गई, उस ईश्वरीय ध्वनि को सुनते ही सब पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चल हो गए और हमें स्पष्ट उत्तर मिल गया कि आपका ही नाम 'नानक' है।

राजा – सच्च है, वह पतित पावन है आप, पर मैं पतित हूँ।

पर हाँ, 'वह पतित पावन आप हैं!' यह कहते ही राजा का हृदय टूटा, प्रेम का प्रवाह बाधा हटाकर चढ़ा, सीमा बन्धन सोचें, संशय बह गए, प्रीत की बाढ़ आई, प्रेम की न रुकने वाली बाढ़ के वेग का प्रवाह आया, बुद्धि को ले चला मन को ले चला, देह को ले चला। आकर्षण की तीव्र बाढ़ राजा को भगाए चले जा रही है। 'प्रियतम आया, मेरा प्रियतम आया' कहता हुआ, जैसे लोह चुम्बक की ओर लोहा भागकर जाता है, वैसे ही राजा खिंचा जा रहा है-यों जैसे बछड़ा माँ की और भागकर जाता है; जैसे अधीर नदी सागर की ओर भागी जा रही होती है; वैसे ही राजा सतगुरू जी की ओर भागा जा रहा है।

बाग का वायुमण्डल आत्म सुगन्धि से सम्पूर्ण है। जाकर दर्शन किया, कलेजा आकर्षण तथा प्यार से और टूटा, जबर्दस्ती सिर झुक गया, सुरत मोहित हो गई। महाराज के नेत्र बन्द थे, उस समय दैवी नैन खुले, राजा उस तेज को सहन न कर सका।

फिर चरणों पर झुका, रो रोकर बलिहारी और जलहार हो गया, काफी समय तक चरणों पर सिर रखे हुए को सुध न रही। हाय राजा! तरसने वाले तथा इच्छुक राजा! आज तेरी साध पूरी हुई, सच्चखण्ड (स्वर्ग) से चलकर जो संसार की रक्षा हेतु आया है, वह आज तेरे गृह में आया है। हाँ, सीस झुका; सिर मत उठा, लीन हो और इन्हीं चरण कमलों में लीन हो जा।

पड़ा रह हे राजा! अब अमृतकुँड से सीस क्यों उठाता है? देख! किस तरह की हिलोर-भरी तथा रस की लहर भर झन्नाहट चरणों से तेरे शरीर में आ रही है। पड़ा रह हे राजा! इस सुख पुञ्ज पर पड़ा रह, आज तेरे धन्य भाग्य हैं।

सतगुरू जी ने प्यार देकर उठाया, कहा-''राजा ! सावधान हो, निरंकार की ज्योति सम्भाल।'' राजा उठता है, सभँलता है, पर प्रेम से भरा हुआ सिर झुक-झुककर पड़ता है। चाहता है कुछ विनय करे, पर कण्ठ रुकता है। अन्त में रुक रुककर इच्छाओं ने कहलाया :- 'महलों में चलिए'। तो सतगुरू कहना है, फकीरों के लिये किसने छप्पर बनाए? जब राजा बहुत मिन्नतें की तो चोज़ी सतगुरू ने कहा, 'मैं पैदल नहीं जाता।' तब राजा शिवनाभ ने कहा, 'जी आपका दिया सब कुछ है, यदि आपकी आज्ञा हो तो घोड़े हाथी की सवारी कीजिए और सिंहासन पर बैठिए। तब गुरू बाबा ने कहा हे राजा! हम मनुष्य की सवारी करते हैं[१]। तब राजा ने कहा, 'जी मनुष्य भी बहुत हैं, चढ़ चलिए।' तब बाबे ने कहा, 'हे राजा! वह मनुष्य जो राजकुमार हो और नगर का राजा हो, उसकी पीठ पर चढ़ेंगे।' तब राजे ने कहा, 'पातशाह जी! आपका बनाया हुआ राजा मैं हूँ, चढ़ चलिए [२]।''

(पुरातन जन्मसाखी)

तब सतगुरू जी मुस्कराये और कहने लगे, ''नगर में धर्म स्थान बनवाइए, महलों में नहीं, पर धर्म स्थान पर आयेंगे।''[३] आज्ञा सुनकर प्रसन्नता हुई। राजा ने देश के बहुत से कारीगर लगाकर बहुत जल्दी ही एक सुन्दर धर्मस्थान बनवा दिया। जब बाग़ में अपने अदृष्ट प्रियतम और अब साक्षात प्रियतम को लेने के लिये गया तो वहाँ आपकी सुगन्धि रूप काया लोप थी।

नृप है बिकल गिरियो तिह थाऊँ,
सुध बुध रही न कछु तिह आन।
शीघ्र सेवकन करयो उठावन,
जलमुख पाइ कीन सवधान।
तबै सशोक कही मुख बानी,
कहाँ गए श्री गुरू सुखदान।।

(गुरू नानक सूर्योदय)

इस समय जो उसके हृदय को विरह हुआ, वह अकथनीय है। बेसुधी हो गई, मूर्छा आ गई। जब मूर्च्छता से कई उपायों से सुध आई तब व्याकुल होकर खोज करने लगा, कूकने चिल्लाने लगा, फिर खोज की और फिर विलाप किया :-

---

१. इस देश में छोटी-सी रिक्शा अब भी मनुष्य खींचते हैं ।

२. पुरातन जन्मसाखी ।

३. पैड़े मोखे वाली जन्मसाखी में लिखा है कि गुरू बाबा राजा के कहने पर भी उसके घर जाने को नहीं माने। जब उसने बार-बार कहा, तब गुरू जी ने कहा, धर्मस्थान बनवाओ, वहाँ पर चलेंगे। यही कुछ गुरू नानक प्रकाश, गुरू नानक सूर्योदय तथा अन्य पुस्तकों में लिखा है ।

आरत होइ पुकारत भारी।।
'प्राणनाथ! मिलियो इक बारी'।
दौर दौर सुध हेत मुकंदा।।
बूझति बिटप बिहंगन बिंदा।।१०।।
गिरवर सरवर है करि तीरा।।
तुम देखयो कित गुनी गहीरा?
बिकल बचन बालति बन माहीं।।
किह अस्थान बिलोके नाही।।११।।
स्वेद अंग पुन लोचन नीरा।।
सरब भीग गे चीर शरीरा।
गिरियो धरन पर है मुर्च्छाई।
तब प्रकटे श्री गुरू जग साईं।१२।। (गुरू नानक प्रकाश)

भागकर चरणों पर जा गिरा, फिर चरणों से लिपट गया, अदृष्ट प्रियतम का प्रेमी अब प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा है। मन में प्रेम तथा चाव है और अपने उद्धारकर्ता से न्यौछावर हो रहा है।

बड़े आदर सहित आपको धर्म स्थान पर ले आया। रानी चन्द्रकला तथा सारे परिवार ने प्रेम भर आपा न्यौछावर करने वाला दैवी तथा ईश्वरीय सत्कार किया। सीस झुकाना क्या था, एक बिजलीघर के साथ स्पर्श करना था। वह दैवी प्रवाह, वह दमकती हुई लहर, वह जीवित झन्नाहट सबके अन्दर छिड़ गई, जिसके बिना जीवित मनुष्य भी मृतक के समान है। जिस हृदय में इसका अभाव है, वह हृदय एक कल की भाँति काम करने वाली शक्ति है, वह जीवन कण वाली जाग्रत ज्योति नहीं।

अब लोग जो चकित हो रहे थे कि राजा किसी 'अदृष्ट प्रियतम के प्रेम में बावला हो रहा है' देखने के लिए आने लगे। सबसे पहले विदूषक जी पर प्रभाव पड़ रहा था, बिना चर्चा के और बिना पूछे इसने तो एक दिन कह ही दिया, ''हे दाता! तेरे अन्दर जो जीवित कर देने वाली शक्ति है, इस मसखरे, जगत के विदूषक को भी प्रदान कर''। सतगुरू ने कहा :- स्मरण कर :-

कह 'प्रभु है', कह!

मैं भरोसा और विश्वास लाता हूँ कि मेरा निर्माता अकाल पुरुष मेरे अंग-संग है। उस पर भरोसा ला और हरदम इसी स्मरण में रह। फिर अंदर परमेश्वर निवास करेगा, तू सुखी, प्रसन्न तथा मस्त होगा

विदूषक को उन्मनी[१] प्रवाह चढ़ गया।

---

१. हठयोगियों में उम्मनी एक मुद्रा है :- अर्धखुले नैन, नासका का अग्रभाग तथा दृष्टि, मन स्थिर, प्राण मन्द आदि । योग वशिष्ट ने नासकों के अग्रभाग १२ अंगुल के निर्मल आकाश में ज्ञान और दृष्टि लीन हो जाना कहा है। राजयोग में उन्मनी उस दशा का नाम है जिसे फारसी वाले 'बेखुदी का आलम' कहते हैं। गुरू के मत में उन्मन उस प्रवाह का नाम है कि जब स्मरण एक तार स्वाभाविक होकर चल पड़े, चित् प्रसन्न रहे, अपना आप उच्च, प्रसन्न, रसभरा, पर अहं से रहित चढ़ा रहे। बेखुदी; स्वाद, प्रसन्नता, मस्ती, आकर्षण, रस स्मृति, प्यार सभी का एक होकर अपने में लीन तथा लुभाए रचाने वाला रंग हो। इसका 'साधन' हरिनाम का स्मरण है और 'प्राप्ति' ईश्वर की अनुकंपा द्वारा होती है ।

दूसरा चक्कर मन्त्री को लगा जो पहले दिन से परीक्षा लेता रहा था। तीसरे श्रीमान पण्डित जी आए। आप प्रतिदिन चर्चा करने के लिए आते थे पर अब या तो चर्चा करने का साहस ही नहीं होता था या सतगुरू जी के तेज से चकाचौंध हुए जाते थे, एक दिन जब आया तो सतगुरू जी समाधिस्थित थे, सैदो ओर सीहां[१] गा रहे थे :-

बाबा मनु मतवारो नाम रसु पीवै सहज रंग रचि रहिआ।
अहिनिसि बनी प्रेम लिवलागी सबदु अनाहद गहिआ।। १ ।।

(आसा म: १)

पण्डित सुनकर मस्त सा हो गया, नैन मुँद गए और मन से कहता है :- जी पीऊँ करो? और मिले कहाँ से?

इस संकल्प के उठते ही उसे एक दिव्य मूर्ति दिखाई दी; उसने उत्तर दिया, 'संशयों को मेटो'। चौंककर पण्डित ने आँखे खोली कि मानो गुरू नानक जी ने उत्तर दिया है पर क्या देखता है कि आप मग्न बैठे हैं। अब यह संकल्प हुआ :- 'फिर मिटाओ, बताइए आप कौन हैं?' संकल्प करते ही झलक पड़ी, नैन मुँद गए तो पण्डित आकाशवाणी सुनता है :- ''सभ से बड़ा सतगुरू नानक है''।

पण्डित – तो क्या यह ईश्वर है?

आकाशवाणी – गुरू नानक का ईश्वर यह है:-

''१ ओअंकार सतिनामु करता पुरखु निरभऊ निरवैर,
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि।।जपु।।''
आदि सचु जुगादि सचु ।।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।१।।

पण्डित – फिर क्या तू योगी है?

आवाज़ – योगी जुड़े हुए को कहते हैं?

पण्डित – हाँ जी।

आवाज़ – किसके साथ?

पण्डित – हैं, मैंने नहीं समझा?

आवाज़ – तू योगी उसे कहता है जो अपने आप में एकाग्र हो गया, विरुध हो गया।

पण्डित – हाँ जी।

आवाज़ – जो आपे में जुड़ गया वह तो निरुध हो गया, कैवल्य हो गया, या वह पुरुष (आत्मा) हो गया। अभी वह वास्तविक योगी नहीं है। हाँ यदि वह शुद्ध हुआ पुरुष (अर्थात आत्मा) 'पुरुष विशेष' (ईश्वर) के चरणों से जा लगे, तो जिस तरह उस ईश्वर पर कभी माया नहीं पड़ी इस 'पुरुष' पर भी फिर कभी माया न पड़ सके, अन्यथा जैसे कभी पहले इसे अकारण पकड़कर बैठ गई थी, फिर आकर पकड़ेगी। पुरुष तथा प्रकृति (आत्मा तथा पदार्थ) कल्पांतर अथवा कभी कर्म करने के बिना जुड़े थे, पुरुष विशेष (ईश्वर) कभी भी माया में नहीं

---

१. इस यात्रा में सतगुरू जी के साथ सैदो जात घोहे और सीहां नामक सिक्ख थे। पंजाब में पश्चिम की ओर अब भी घेई जाति के लोग निवास करते हैं ।

फंसा था, यदि पुरुष अब (पुरुष विशेष) ईश्वर की शरण में जा समायेगा तो फिर कभी नहीं फँसेगा, तब वास्तविक योगी होगा। अन्यथा उसका कैवल्य होना भय से मुक्त होने वाली दशा नहीं, जैसे पहले कभी माया में पड़ गया था वैसे फिर भी पड़ सकता है, चाहे यहाँ उक्तियाँ-युक्तियाँ बना दीजिए, पर वे प्रयत्न मात्र हैं, क्यों पण्डित-

पण्डित – हैं जी! कैवल्यं से आगे भी कुछ होता है?

आवाज़ – सबके स्वामी से, प्रेम कर, आत्म प्रेम कर, उसकी भक्ति कर, उसके साथ एकाग्र हो, उसके चरणों की शरण में रह, उससे कभी पृथक् मत हो, फिर सदैव सुखी रह। क्लेश कर्म से मुक्त होकर केवल मुक्त ही मत रह। मुक्त होकर अर्थात माया से छुटकारा प्राप्त करके ईश्वर की शरण में मिल और सदैव आनन्दित रह, न बिछुड़ने वाले परमात्मा के साथ निवास कर। तू माया से मुक्त होने को योग कहता है, पर मुक्त हो चुके तो प्रभु के साथ लगाएँ तो उसे पूरा योगी कहा जाता है। तू क्लेश कर्म से मुक्त हो रहे को योगी कहता है, पर परमानन्द में प्राप्त ईश्वर की शरण में सदैव रसिक हो रहे, सदैव आनन्दित, सदैव लीन को योगी कहना चाहिए।

पण्डित – मान गया, ठीक है, सच्च है। यह गुरू नानक संसार में क्या करने के लिये आया है?

आवाज़ – १. इस बात की साक्षी भरने के लिए कि :-

ईश्वर है।

ईश्वर तुम्हारे अंगसंग है।

ईश्वर तुम्हें प्यार करता है।

२. उपदेश देने के लिए कि :-

तुम ईश्वर पर निश्चय धारण करो। उसके चरणों के साथ प्रीत धारण करो। उसे प्रतिक्षण अंदर बसाओ। आठों पहर उसके साथ एकाग्र रहो; एक क्षण भी मत भुलाओ। यों उसके साथ मिलकर सांसारिक यात्रा पूर्ण करो। उसके भय में खाओ, पीओ और उसके भय तथा श्रद्धा में चलो, उसके रंग में रातें होकर काम-काज करो। उसके प्रेम में अपने आपको पिरोकर इस संसार से उज्ज्वल मुख जाओ।

३. अपनी अनुग्रह से मनुष्यों को देवता बनाने के लिए आया है, देवता[१] बनाकर स्वरूप की प्राप्ति करवाने के लिए आया है। स्वरूप में टिक गए मनुष्यों को ब्रह्म तत्त्व के साथ मिलाकर सदैव मुक्त करने के लिए आया है।

पण्डित घबड़ाया, नैन खोले, नानक की छवि को देखकर नैन मोहित होकर फिर मुँद गए, और फिर मन से पूछता है: हे नानक! तू यह आप कह रहा है कि कोई और है? आवाज़ आई :-

ईश्वर के प्रदान किए हुए ज्ञान को कहता हूँ।

फिर घबड़ाकर आँख खुली, गुरू नानक के चेहरे से अदेश का सौंदर्य बरस रहा था। फिर पण्डित की पलकें गिर पड़ीं और आवाज़ आई 'नानक' सौंदर्य वाला है, नानक निरंजनी ज्योति

---

१. जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार ॥ (वार आसा म: १)

में से आया है, नानक जी कुछ कहता है, प्रभु की आज्ञा कहता है', अब फिर नैन खुले तो पण्डित को गुरू जी के चेहरे से एक पहले से अधिक जलाल दिखाई पड़ा, जलाल ने आकृष्ट किया, आकृष्ट हो रहे पर सतगुरू के तेज की झलक पड़ी। मोहित ओर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। जब उठा तो हृदय पर पड़ा हुआ परदा हट चुका था और नैन झड़ी लगा रहे थे; हृदय की तपन मिट रही थी, शीतलता प्रदान कर रही थी और कुछ कह रहा कुछ गा रहा था जो इस तरह का था–

''तू जगत गुरू है, तू त्राण दाता है, मुझ कठोर का भी उद्धार कर।''

तार हे बाबा नानक! मुझ कठोर, पत्थर की भाँति मोठ को भी तार । हे बाबा! मेरी चर्चावादी वृत्ति का नाश कर दे। हे बाबा नानक मुझे प्रभु के स्मरण का दान प्रदान कर। हे बाबा नानक! मुझे अपने चरणों का मान दे। हे बाबा नानक! मुझे जीवन प्रदान कर। हे बाबा नानक तुष्ट हो और मुझे आत्म दान प्रदान कर।

''तू ने श्रद्धा वालों को तार कर भौजल से पार किया है।''

मुझ एक निन्दक का भी उद्धार कर दे, जो तेरे द्वार पर आ गिरा है।''

करुणा सिंधुजी के नैन खुले, चरणों पर गिरे हुए को कृपा कटाक्ष से देखा, पीठ पर हाथ फेरा, कहा, निहाल, हे शिष्य! निहाल।''

जब अदेशी आज्ञानुसार बाबा ने ईश्वरीय प्रवाह और ईश्वरीय लहर उसके अन्दर फेर दी तो पण्डित निःश्वास लेकर इकट्ठा हो गया, लीन हो गया, एकाग्र हा गया, जुड़ गया। जब उठा तो उत्थान नहीं हुआ, लौ लग गई, लौ का दान प्राप्त कर दिया। एक जोहड़ जो स्रोत से बिछड़कर शुष्क हो रहा था और सड़ रहा था, देखिए उसके और स्रोत के बीच में नहर खुद गई है। जोहड़ की स्रोत के साथ लौ लग गई है, अब लगातार प्रवाह–जीवित प्रवाह–आता है, जोहड़ को ताजगी प्रदान कर रहा है, स्रोत तथा तरुवर एकरूप हो रहे हैं।

धन्य बाबा नानक, हे लोगो! बाबा नानक धन्य है।

बाबा नानक, यह कहने लगा बाबा नानक :–

''भइआ दिवाना साह का नानकु बऊराना'', जो कहता है ''मै ईश्वर नहीं, पर उसका दास हूं''। पर देखिए ईश्वर के साथ भेंट करा देता है। एक ओर ईश्वर के चरण पकड़ता है, दूसरी ओर मनुष्य का सीस पकड़ता है और मिला देता है। धन्य बाबा, तेरा दास बनता धन्य है। धन्य तेरा दास बसता है। कोई बात नहीं तू कुछ भी वह, तेरा यही मनुष्यत्व हमारे लिए ईश्वरवाद है। तू दास है? मैं कहता हूं, तेरी यह अहं से उदासी है जो मनुष्यों को ईश्वर से भेंट कर देती है। तू प्रभु के दरबार का बसीठ है। तू मित्र है विचोला है। तू धन्य है जो पहले भट्ठी में चढ़ाता है, धोता है, इकट्ठा करता है, फिर प्रभु का रंग चढ़ाकर भेंट कराता। हम दुर्बलों का यह काम करता चल तू धन्य है, तू धन्य है!!

पण्डित जी को आज स्वाद आ रहा है, कहता है, यह साधु नहीं है, यह मनुष्य नहीं है, यह अवश्य ही अवतार है। विदूषक का भ्रम ठीक था, यह नानक अवतार है, सृष्टि का भार हरने का आया है। पुराणों में जिसका पता दिया है, वह यही है। जैसे–जैसे पण्डित जी के अन्दर रस के हिलोर पड़ते वैसे–वैसे कहता यह अवतार सिरोमणि है। हाय! राजा सच्चा था जो कहता था कि यह बुद्धि मण्डल से उच्च रंग है। पर मैं किस भूल में पड़ा रहा, मैंने समझा

कोई सूखा, पिंजड़, बेसुध, मुर्दनी वाला, दुर्बल हो गया तथा योगी होगा और हम को दुर्बल कर दिया। यह तो बात ही और निकली, देखिए किस तरह मन एकाग्र है, संकल्प नहीं उठता। एक आकर्षण ऊपर को खींचे जा रहा है और रस मग्न किए जा रहा है। यह आरूढ़ अवस्था है। ठीक इस देन का दाता आप मनुष्य नहीं, वह किसी विशेषता वाला है और यह सौन्दर्य में से आया है।

बहुत पड़ा हुआ और बहुत हठी जब मान जाता है तो बहुत रस लेता है, तब उसके कान में विद्या चौधरानी कहती है, 'मैं नहीं थी, यही बात कह रही'?

'भागवान!' कह तो रही थी, पर साथ संशय भी तो तू ही डालती थी'।

पण्डित जी के बाद यह ईश्वरीय प्रवाह और इसकी ईश्वरीय देन का प्रकाश बढ़ा। लोग प्रभु के प्रेम में आने लगे, नाम का लंगर चल पड़ा, जो बाबा की शरण में आता, उसका उद्धार होता।

''चरणों से लगाया। राजा शिवनाभ का जन्म-मरण निवृत कर दिया। सैदो जट तथा घोहो जाति वाले ने आज्ञानुसार पाहुर दी। सम्पूर्ण द्वीप सिक्ख मत का अनुयायी हुआ, सभी गुरू गुरू जपने लगे। राजा शिवनाभ के पीछे सारे भूखण्ड पर अनुग्रह की।''

(पुरातन जन्मसाखी)

''इस तरह बाबा ने सभी लोगों का उद्धार किया। वहां बहुत बड़ी सत्संग सभा बन गई। प्रतिदिन सत्संग होता, सवेरे कीर्तन होता, सांयकाल को 'सोदर' नामक वाणी गायन की जाती। लोग कार्य धन्धा करते समय भी प्रभु के साथ लौ लगाए रखते। जब रात होती तो सभी धर्मस्थान पर आ एकत्र होते, रात को कोई एक सिक्ख भोजन का निमंत्रण दे जाता, सवेरे सभी इकट्ठे होकर भोजन उसके यहां करते।'

(पुरातन जन्मसाखी)

कुछ काल सतगुरू जी वहां पर रहे. सत्संग में शिवनाभ का प्रेम और प्रभु रस में चढ़ाव सर्वोच्च था, अत: सतगुरू जी ने सारे सत्संग मण्डल का मुखिया उसी को स्थापित किया, गद्दी प्रदान की ओर आज्ञा की कि तू प्राणी मात्र के उद्धार के लिए साधु बना। एक और राज्याधिकार निभाएगा; दूसरी ओर सहजपद में खेलेगा, तीसरी ओर प्रभु की सृष्टि का उद्धार तेरे हाथों होगा। इस तरह श्री गुरू जी परमेश्वर के प्यार का, सच्चे धर्म का, सच्चे मार्ग का एक मण्डल तैयार करके देश का उद्धार करने हेतु उपकारी बादल की भांति विदा हो गए। वियोग के समय राजा ने बड़ा वैराग किया। उसका चित् बिछड़ना नहीं चाहता था। सारे सत्संगी पुरुष रोने लगे, पर श्री बाबा जी ने कहा, 'चित् ओर प्रभ की आज्ञा है, उसी ओर जाना है'।

जब श्री गुरू जी विदा हुए तो आकाश में से एक आवाज आई 'रसिक' के नैन मुंद गए। यों प्रतीत हुआ कि कोई तीव्र वेग वाली शक्ति लिए जा रही है। ज़ब फिर नैन खोले तो रसिक उस आकाश के मध्य में खड़ा था, पर अम्मां 'तृप्ति प्रसन्नता' पास खड़ी थी। कहने लगी 'यह नाम क्या वस्तु है?' देख लिया है? कैसे राजा प्रेम मग्न हो गया है? लौ लगकर कैसे अविचल ज्योति के रस का निरन्तर रसिक हो गया है? 'कैसे' का उत्तर देखा है?'

रसिक-यह सारा कौतुक मेरे प्रश्न का उत्तर था, सवा चार सौ वर्ष पुरानी व्यतीत हो चुकी कथा प्रत्यक्ष रूप से मुझे दिखा दी और नाम का रंग चढ़ाकर दिया, धन्य हो।

अम्माँ – इस मार्ग पर विश्वास अमूल्य वस्तु है, एक-एक कण, परिश्रम के पश्चात उन्नति करता है। विश्वास जीवन है, संशय मृत्यु है, तूने पूछा था 'मैं तुझे प्यार' करती हूँ[१]? इसलिए मैंने तुझे प्रत्यक्ष दिखा दिया है कि स्मरण प्रेम है, प्रेम जीवन है।

पर अमूल्य वस्तु शनै:-शनै प्राप्त होती है और अनुग्रह द्वारा प्राप्त होती है, देखना सावधान रहना, विश्वास कोई मानना मात्र ही नहीं, विश्वास आत्म नेत्र है।

'है' इस पर दृढ़ विश्वास हो, यह आत्म अरूढ़ता का पहला चरण है। 'है' को निरंतर प्रतीत, वह आत्म पद अरूढ़ता है, जिसके अंदर विश्वास दृढ़ हो गया उसके पीछे-पीछे ब्रह्म ज्ञान है। अर्थात बुद्धि के शिखर से आगे विश्वास को घाटी है और उससे आगे परमपद सफल ज्ञान का शिखर है। विश्वास बुद्धिहीनता नहीं, पर साथ यह भी समझ ले कि 'संशम वृत्ति' बुद्धि नहीं है। बुद्धि में से संशय मिट गया है, 'है' का भाव आ गया, तो फिर लौ बढ़ती है और विश्वास प्रफुल्लित होता है, आगे परमपद है[२]।

रसिक – अम्माँ तेरी देन है।

अम्माँ – तुझे पता है कि तू कहां है?

रसिक – 'है' पर दृढ़ विश्वास जिसे पहला चरण कहा है, कैसे आता है।

अम्माँ – नाम से, नाम जपने से, नाम स्मरण से।

तब रसिक ने क्या देखा, कि प्यारे सिक्खों के सौदर्य भरे चेहरे वालों के जत्थे-के-जत्थे सुन्दर सफेद वस्त्रों से सजे, कीर्तन करते हुए आकाश से दूर-दूर के मण्डलों से आ रहे हैं और सभी नीचे, हमारी धरती की ओर चले जा रहे हैं।

रसिक – अम्माँ! इस तरह के सुन्दर लोग तप्त धरती पर क्यों जा रहे हैं?

अम्माँ – तेरी यह धरती राग-द्वेष से तप्त है। जो प्रभु के स्मरण से बाहर है, जिनमें परमेश्वर का प्रेम नहीं वे तप्त है। जो प्रेम वाले हैं उनके लिए धरती सुहावनी है, धरती फूलों की वाटिका है[३]।

रसिक – सचमुच धरती सुहावना स्थान है। पर अम्माँ जी! ये लोग क्यों नीचे जा रहे हैं।

अम्माँ – आज सतगुरू नानक देव जी के अवतार का दिन है, मातृभूमि के प्रेमी इसे यादगार मानकर गुरू नानक को धन्यवाद दे रहे हैं, प्रार्थनाएं कर रहे हैं, दान दे रहे हैं और मंगल मना रहे हैं। उनके प्रेम-भरे आह्लाद को देखने, उन्हें दैवी प्रसन्नता में रखने के लिए

---

१. स्मरण अथवा स्मरण पद का धातु है समृ । इस का अर्थ है स्मरण करना और प्यार करना । इसी से स्मर बनता है जिसके अर्थ हैं-प्यार ।

२. जैसा कि पंचम गुरू का वाक्य है :-
"जाकै रिदै विस्वास प्रभ आइआ ।।
ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटइआ ।। (गुऊड़ी सुखमनी)

३. पंचम गुरू का वाक्य है :-
नानक फुला संदी वाड़ि खिड़िआ हभु संसारि जिउ ।। (सारंग वार म: ५)
तथा :-धरणि सुवंनी खड़ रतन जड़ावी हरि प्रेम पुरखु मनि वुठा (ग: वार: म: ५)
धरति सुहावड़ी आकास सुहंदा जपंदिआ हरि नाउ ।। (सारंग वार म: ५)

वह गुप्त देश के सत्संगी लोग जा रहे हैं। तुझे राजा शिवनाभ का प्रेम दिखाकर गुरूपर्व मनाने का मनोरथ बताया है कि सतगुरू आज जिसका पर्व है, वह संसार में कैसे और क्या काम करता रहा है, तुम जो उसके शिष्य हो 'मनसुख' की भांति प्रेमरस के रसिक बनो और फिर इस रस का प्रचार करो, ईश्वरीय सौन्दर्य को बांटो, ईश्वरीय प्रवाह दान करो, जरूरतमंद लोगों को जीवनदान देकर प्रभु का रसिक बनाओ। जाओ बेटा! अब जाओ।

रसिक – मां! मुझे अब अपने पास ही रख लीजिये न?

अम्माँ – चुप बेटा! अभी आज्ञा नहीं।

अब रसिक के मिट्टी के नैन भी खुले। क्या देखता है कि वह अपने पलंग पर पड़ा है, नेत्र उसी आकाश में लगे हैं, तारामण्डल की सुन्दरता मोहित कर रही है। चन्द्रमा नीचे जा लगा है, तारे लटक गए हैं, ठण्ड करारी हो गई है पर है सुहावनी। शरीर हल्का फूल है, हृदय शान्ति तथा प्रसन्नता में है, अंग-अंग रस में है।

कोई निद्रा सौभाग्यवान होती है, उस निद्रा को दूर, नर, मुनि खोजते हैं, पर है यह सब उसकी देन।

१. सिंहल द्वीप की यात्रा के और समाचार

दूसरी यात्रा में श्री गुरू जी के साथी सैदो तथा सीहों लिखे हैं। राजा शिवनाभ के पास रहते समय सतगुरू जी ने 'प्राण संगली' उच्चारण की पर सैदो सीहों पर उसे साथ नहीं लाये और वहां पर ही छोड़कर आ गए और कह आये कि जब कोई लेने के लिए आये तो दे देना। राजा शिवनाभ को गद्दी देकर गुरू जी विदा हुए। पञ्चम गुरू (गुरू अर्जुन देव) जी ने भाई पैड़े को सिहलद्वीप भेजा। उसने वापस लौटकर मार्ग के समाचार सुनाये, जी भाई बन्नों ने अपने श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी के उत्तारे वाले ग्रन्थ में लिख लिए। इस तरह यह अब तक कायम है। इससे पता चलता है कि पंचम सतगुरू के समय तक शिवनाभ का पोता मौजूद था और सिक्ख मत कायम था। इस बात का भी पता चलता है कि उसका राज्य सिंहल द्वीप के उत्तर में जापा पट्टन के समीप था। वह बन्दरगाह अब भी है। दूसरे, हिन्द के दक्षिण में जो ठिकाने मार्ग में आये, वहां गुरू के शिष्य तथा गुरू के चमत्कारों के प्रसंग उस समय तक मौजूद थे, जिनका उल्लेख 'हकीकतराह मुकाम' में है। नवीन खोज के लिए 'हकीकतराम मुकाम' में अच्छा परिचय दिया है, इसलिए उसका पाठ यहां दिया जाता है कि यदि कोई खोजी यात्रा के समाचारों की खोज के लिए चले तो उसे अगुआई मिले। 'हकीकतराह मुकाम' से गुरू जी का सिंहल द्वीप में जाना, शिवनाभ का गुरू जी का सिक्ख बनना, सत्संगियों का वहां होना और तीसरी पीढ़ी मत का कायम होना और अत्यन्त संगत का जुड़वा सिद्ध हो जाता है।

२. हकीकतराह मुकाम

'नागापट्टन बिदर तिजावर सहरगाह तहां का राजा आइरापति नाइक है। तहां विलइत राम राजे की है। तहां से लोक जहाजि चढ़ता है। तिन दिन तिन राति विच जापा पटणि पारि का बदरु है। तहां जाइ उतरता है। तो सिंहल द्वीप है। चऊदहि सो गाऊ विच वसदा है। तहां सत राजे से गुरू बाबे के बचनि इकि राज हुआ है। शिवनाभ राजे की संतत सतावहि शहर

है तखतगाह, तहां अब राजा मइआदऊती राजा राइ सिंह का बेटा शिवनाभ का पोता है। तहिं गुरू जी की धर्मसाल है। संगत जुड़ती है। कीर्तन होता है। रसोई में बीस मन लूण प्रतिदिन लगता है। नोका पट्टन बीजा नगर में इकत्तीस कोस है। पर भाटड़ियां के बेगापुर के बीजापुर अस्सी कोस अरोगा पेट है। तहां संगत चंगे भाठड़े को है। तिसकी गिर्द निवाही (आसपास) सिक्ख संगत बहुत है और भाटड़िआ के घर से कजलीपन अस्सी कोस है। तिरिया राज है। तहां भी गुरू बाबा का देहुरा है। संगत भाटड़ियां के जुड़ती है। ओथै गुरू सिद्धां नाल गोसटि करकै पूजा खिच लीती हैसु।। तब सिद्ध गुरू का जोर अजमाइकै पैरी आदि पए हैन। इस थाऊँ का नाऊँ कजली बनु तिरिया राज है, तहां भी संगत है।

सूचना – आगामी प्रसंग में सिद्धों के सुधार का उल्लेख है, जिन सिद्धों का कथन 'हकीकतराह मुकाम' में आया है।

□ □

१. पद बीस मन नमक से लोग चकित होते हैं। मन का वजन भिन्न-भिन्न इलाकों में भिन्न-भिन्न होता है। स्वदेशी मन दो वजनों वाला है-पक्का मन ४० सेर का होता है और कच्चा मन हमारे देश में १६ सेर का गिनते हैं। अलाउद्दीन पठान के राज में १२ सेर का मन था। ईरानी मन एक सेर दस छटाँक का कहा जाता है जिसे 'वरजिंदी मन' कहते हैं। तबरेजी मन सवा तीन सेर का होता है। फारसी के कोशों में मन का अर्थ दो रत्तल अर्थात् एक सेर लिखा है। ज्ञानी भगवान सिंघ जी मन का अर्थ अढ़ाई सेर करते हैं, पर मुसलमानों का राज तथा व्यवहार होने के कारण, यहाँ मन का भाव सेर होगा। वहाँ पर बहुत लोग सिक्ख बने थे, इसमें संशय नहीं और यह नमक तो सारी रसोई (भोजन) के लिए है, न जाने दाल, कितनी तरकारी अथवा खिचड़ी आदि पकती होगी। फिर यह रसोई हर रोज की है। हर रोज कम-से-कम दो बार भोजन बनता होगा । 'हकीकतराह मुकाम' में '२० मन लोन लिखा' है और यदि एक मन को एक सेर मानें तो बीस मन के बीस सेर हुए और बीस सेर नमक एक छटाँक प्रति सेर के हिसाब से आठ मन दाल के लिए काफी हुआ, फिर आठ मन दाल कितने मनुष्य खा सकते हैं ? यदि ४०० मनुष्य एक मन दाल खाएँ तो ४००×८=३२०० लगभग दोनों समय खा सकते हैं। भाव, एक समय के लिए केवल १६०० मनुष्य आए। यह कोई बड़ी बात नहीं है।

२. यह अब मद्रास प्रान्त की बन्दरगाह का पता दिया है ।

६७ भरथरि योगी

: १ :

दक्षिण देश, कजली वन, योगियों का आश्रम । इसके निकट एक सघन छाया वाला वृक्ष है जिसके नीचे संसार के त्राणकर्ता जलते हुए जगत की रक्षा करने वाले साहब श्री गुरू नानक देव जी आ बैठे हैं ।

तखत नहीं बिछा हुआ, गद्दी नहीं लगी हुई। गलीचा-कालीन नहीं बिछा हुआ, दरी किसी ने नहीं बिछा रखी, धरती को पवित्र करने के लिए आये सच्चे शांहशाह जी बैठे हैं धरती पर, पृथ्वी पर, पर उस ईश्वरीय ज्योति के बैठने से उस धरती को सौन्दर्य लग गया है । हरि रस में रांते आपके नैन आकाश की ओर उठ-उठकर चारों ओर फिर-फिरकर हरि दर्शनों के आनन्द में भींगे और सुहावने नैन मस्त हो रहे हैं। चेतनता के स्वामी जी अपने प्रभु के निरन्तर मिलाप में रस रूप हो रहे हैं। अन्दर के रस रंग का प्रभाव चारों ओर छा रहा है । जैसे अग्नि के निकट कितनी दूरी तक उसकी गर्मी का प्रभाव होता है, वैसे ईश्वरीय तेज वाले का मीठा-मीठा प्रभाव चारों ओर अपना प्रभाव डाल रहा है ।

यों प्रतीत होता है कि मानों सौन्दर्य और जीवित सौन्दर्य यहाँ अपनी स्वादिष्ट किरणों की वर्षा कर रहा है। दूर से देखने से आकर्षण होता है, आगे बढ़ने की जी चाहता है, तनिक-सा और आगे बढ़ने से स्वाद आता है, रस झन्नाहट छिड़ती है, वहाँ बैठ जाने को जी चाहता है और बैठकर उठने को फिर जी नहीं चाहता। बैठने से फिर रंग लग जाता है और "अब कहाँ जाएँगे, यहाँ ही ठहर जाओ" का भाव वहाँ पर टिकाकर बैठा देता है और अपने स्पर्श में रंग कर कहता है : हाँ, यह है सुख, इस 'दुख रूप दृष्टमान' जगत में यह सुख है, सचमुच सुख !

ओस से भीगी हुई रात आ गई इस सुख का आनन्द प्राप्त करने के लिये । आकाश के तारे इस दर्शन के लिए चढ़ आए, दूर से देखने तथा प्रणाम करने के लिए चन्द्र निकल आया, इस आनन्द से गले लगकर सौभाग्यवान होने के लिए मीठा-मीठा पवन चल पड़ा। गृहस्थी निद्रा में अचेत पड़े हैं, आश्रम के योगी प्याले पीकर आपे से बेसुध मस्त पड़े हैं। वनों के पशु खाने-पीने के लाभ से भटक रहे हैं। कौन है ! जो आज इस समय निरंजनी ज्योति के सुगन्धित आत्म-नाफा की सुगंधि और खिले हुए दर्शनों का आनन्द प्राप्त करे ? प्रकृति के चमत्कार चन्द्र, तारे, पवन आदि रस प्राप्त कर रहे हैं और गुप्त संसार के दिव्य रूप वाले खिले हुए कमल के चारों ओर भंवरों की आत्म गुंजार में कीर्तन रूप हुए उमड़-उमड़कर आ रहे, रस रंग के प्रभाव में रंगे जा रहे और आनन्द से मस्त हो रहे हैं । हाँ, फूल यदि वनों में खिलें तो उनकी सुगंधि का आनन्द कौन प्राप्त करे ? पर आत्मदेश का स्वामी-कमलराज-जब वन सरोवरों में आ सुगंधि फैलाए तो संसार चाहे अचेत रहे पर सदैव जागृत गुप्त लोकों के निवासी,

आत्मरंगों के प्रेमी तथा ज्ञाता कब उस फैल रही सुगंधि के लाभ से अपने आपको वंचित रख सकते हैं ? मनुष्य शहरों उलझनों मे फँसे हुए चाहें वे बेपरवाह रहें, परन्तु खिले हुए गुलाब के फूलों पर बुलबुलें वनों में से उड़ानें लगाकर आ चहकती हैं और कमलों के उमड़े हुए यौवनों पर भँवरों के झुण्ड कोसों की दूरी से आ गुजर करते हैं। हाँ, रात व्यतीत होती गई, निरंजनी ज्योति जी नाम की लौ में नामी के रंग में राते एकाग्र हो रहे, आत्म प्रभाव की वर्षा होती रही तथा 'आत्म स्वरूप मोर' नृत्य करते रहे।

सवेर हो आई, पपीहों की पुकार उठ गई, सूर्य चढ़ आया, किरणें बिखर गईं, जगत को गर्म-गर्म तेज ने सचेत किया। रात को हृदयों में लेकर सोए जगत के धन्धों ने लोगों को झंझोड़कर जगाया । तृष्णा ने पाँवों में वेग डाल दिया, अपनी-अपनी लगन के पीछे प्रत्येक व्यक्ति उठ चला। अब योगी मठ - भरथरि आश्रम का द्वार भी खुला, नियम वाले लोग आश्रम की ओर आने लगे। पर आज एक और कौतुक घट रहा है। बाहर उस सुहावने वृक्ष के नीचे बैठी हुई मूर्ति के पास से गुज़रते समय हरेक के जी में आकर्षण-सा होता है, बेबस ही सीस झुकता है, कोई बैठ जाता है, कोई आश्रम में जाकर शीघ्रता से लौट आता है और आकर बैठ जाता है । यों कुछ लोग इर्द-गिर्द इकट्ठे होते जा रहे हैं कि 'मठ' का योगिराज 'भरथरि' बाहर निकला। वह भी उसी ओ आया, जहाँ भूमि सौभाग्यवान हो रही थी । जब दूर से देखा तो माथे को एक सुहावनी-सी झलक आकर लगी, जैसे गर्मियों में पिछली रात की ठण्ड के समय छोटी छोटी वायु माथे को सुखदाई होकर लगती है। चौंका, फिर देखा-हाँ, निरंजनी ज्योति को आँखों से देखा तो नैनों ने एक स्वाद का स्पर्श प्राप्त किया और नीचे उतरकर, अन्दर जाकर मन को उस स्वाद की एक चाशनी देकर वहाँ ही समा गया । योगसाधन तो किए थे, मदिरा पी-पीकर आठ पहर और सोलह पहर की समाधियाँ भी लगाई थीं, पर ऐसा मीठा-मीठा स्वाद कभी नहीं देखा था। आगे बढ़ा, नैन देखते हैं और झुकते हैं साथ ही माथा झुकता जा रहा है। हाँ, जिसके आगे सारे इलाके के झुकते थे और जो आप सिवाय एक के, किसी के आगे नहीं झुकता था, आज वह आप बेबस ही उसके आगे झुकता जा रहा है जिसकी जान-पहचान नहीं थी, न पहले कोई पता था। जिसके किसी ने आकर गुण नहीं गाए थे और जिसकी कीर्ति किसी ने नहीं की थी कि अमुक है और अमुक गुणों वाला है, यह सौन्दर्य का बुक्का सिर झुकता-झुकता सारा झुक गया, 'अदेस' मुँह से निकल गई, तनिक और समीप होकर सिर नीचे लग गया और 'अदेस' कहकर और माथा धरती पर रखकर बैठ गया। आश्रम की गद्दीदार, उसी नग्न धरती पर जहाँ जगत कर शाहंशाह, अवतारों का शिरोमणि भाग्य लगाकर बैठा था, बैठ गया, पर पास बैठे हुए अपने सेवकों का ध्यान भी रहा; उसी स्वाद-स्वाद में और स्वाद के विस्मय में बैठ गया और नैन दर्शनों के तार में बँध गए। जैसे प्यास के समय ओक अधरों के साथ और अधर ओक जलधारा के साथ लग जाते हैं और लगे हुए पिये जाते हैं, वैसे ही नैनों के कटोरे दर्शनों की अमृतधारा के साथ लग गए हैं, तृप्त होकर पीने के लिए। पीता है और आपा खो जा रहा है। योगी काफ़ी समय तक इसी तरह मगन बैठा रहा। रात के पिये हुए प्याले की मस्ती उतरकर टोट में ले गई थी, अंदर से टोट में निकले हुए को नाम की मस्ती मिल गई। नशे की टोट की औषधि नशा, वह धन्य, वह सौभाग्यशाली, वह शुभ कर्मों वाला,

जिसे घटिया मद की टोट के समय सच्चे मद कर एक घूँट मिल जाए। मदिरा का सेवन करने वाले पीते समय पृथ्वी पर गिरते हैं, यहाँ स्वच्छ मदिरा का दाता सारी रात से एक घूँट मात्र मिट्टी पर नहीं गिरा रहा था, बल्कि सच्चे मद की वर्षा कर रहा था। अमूल्य वर्षा की भाँति बरस रही देन योगी को प्राप्त हो गई, पर टोट अनजाने ही हट गई है, रस पड़ रहा है, मीठा-मीठा हल्केपन वाला हिलोर आता है और आपे को उठा लेने वानी झूम चढ़ती है। योगी मस्त नहीं हो रहा, यागी बेहोश नहीं हो रहा। मस्ती तथा बेसुधी आत्म जाग्रति की वस्तुएँ नहीं हैं। योगी सुखी हो रहा है, हल्का-हल्का सा हो रहा है, आपा खिल रहा है और किसी सुन्दर उच्चता की प्रतीति में आ रहा है और रसभरी मगनता छा रही है जो होश (चेतनता) की सरदार है। इस तरह की दशा में बैठ गया और बैठ रहा। हाँ, काफ़ी समय तक बैठा ही रहा ।

हे योगिराज ! समाधि यह है ! पर अभी हठ समाधि के साधक को इस समाधि का कोई पता नहीं था, वैसे अनजाने ही आश्चर्य में हैं। अब योगी को यह आश्चर्य अद्भूत हो रहा है और अद्भूत विस्मय लग रहा है। सोचने वाला अंतस सोचता बहुत ही कम है, क्योंकि वह सोचने वाला जो रसमग्न है, रस लेने वाली वृति सोच मण्डल की ओर से पीठ फेर रही है।

हाँ सौभाग्यवान योगी ! बैठा रह; यां जितना समय तेरी वृति इस रस में रस लेने वाली होकर बैठी रहे और सोचने से पीठ मोड़े रखे । सौभाग्यवान जी ! बैठा रहा; यह क्षण दुर्लभ हैं कि नाम का स्वामी, नाम का दाता, नाम का सौन्दर्य तेरे नैनों में आया है। तू सौभाग्यशाली है कि मिट्टी के नैनों से इस सौन्दर्य का दर्शन कर रहा है, मिट्टी के नैनों रूपी कटोरों से सौन्दर्य-भरा अमृत पी रहा है। यह सौन्दर्य का बुक्का कभी-कभी संसार पर मिट्टी के शरीरों को दिखाई देने वाले चमत्कार देता है, कभी-कभी, हाँ कभी-कभी, जब जगत में से प्रेम उड़कर ग्लानि-ग्लानि फैल जाए तो, पर अबकी बार देख रे योगी ! 'आप' ही आ गया है। हाँ, जलते हुए जगत की रक्षा करने के लिए 'गुरू-ज्योति' आप आकर प्रकट हुई है। इस द्वारा अनुग्रहीत गुरूमुख लोग फिर शताब्दियों पर्यन्त आते और जगत का उद्धार करते रहते हैं। उद्धार करने वाले विरद का तार नहीं टूटता, पर आप, हे सौभाग्यवान योगी ! अब ही आया है। वे नैन सौभाग्यवान हैं, भाग्यशील हैं, जिन्हें यह दर्शन प्राप्त होता है, मिट्टी की आँखों द्वारा इस सौन्दर्य के प्रकाश को तैने प्राप्त किया है, तू धन्य है।

योगीराज जी काफी समय बैठे रहे, पर फिर वृत्ति चिन्तन की ओर फिसल गई और किस सुन्दरता से फिसली। हाँ देखिए यह रस के देश में से कैसे सोच-मण्डल की ओर खिसकती है। चिन्तन उठता है :-यह टिकाव, शीतलता, सौन्दर्य, रस, फिर आत्म चेतनता, जागृति ! हैं, जागृत में कभी स्वाद नहीं देखा था ! न तो यह निद्रा का-सा है, न सुषुप्ति का-सा, न प्यारे के नशे जैसा है, न बेसुधी है, न तन्द्रा है, न ही दूसरे की त्राटक शक्ति के अधीन होने पर अर्ध बेहोशी है, यह क्या है? और फिर बिना साधन यह क्यों प्राप्त हुई है? हाँ दूसरा विचार आया कि यह इस सामने बैठी हुई दिव्य-मूर्ति का प्रभाव है। इससे इस तरह आ रहा है जैसे दिए की खिशा से प्रकाश, खिले हुए फूलों से सुगन्धि, जलराशि से शीतलता, बज रहे जन्त्र से स्वर, चल रही पवन से ताज़गी। आगे फिर यह विचार उठा कि 'यह कौन है?' सिद्धों अथवा नाथों में मैंने इस जैसा तथा इस अद्भूत प्रभाव वाला

कभी कोई नहीं देखा। समाधि में तो मैंने ध्यान लगा-लगाकर कई देव सिद्ध किए, पर इस तरह का प्रभाव किसी से झरता हुआ मुझे कभी प्रतीत नहीं हुआ था। हाँ मुझे विष्णु का पता नहीं, ईश्वर का कोई पता नहीं। न जाने, यह उनका प्रभाव हो? पर वे देह-रहित हैं, यह प्रत्यक्ष देहधारी है। यह कौन है ! ``` जब मैंने नारद की अराधना की थी, तब उसने कोई पता दिया था, पर उसमें तो अभी समय शेष है। हैं ? है कि नहीं ? ठीक मुझे याद नहीं रहा। हाँ उन्होंने कहा था कि वे पृथ्वी को चल दिये हैं, तो समय तो यही हुआ। भला पूछें, पता तो लगाएँ कि यह कौन है? तो क्या भय है? कोई निरादर तो नहीं। पूछ ही लिया जाता है, चलो पूछ ही लें।

इस समय फिर रस प्राप्त कर रही, वृत्ति में रस लेने का वेग आया और यह विचार उठा कि आमों की गणना मत कर, आमों का रस ले, पता करके क्या करना है ? रस ! यदि रस प्राप्त हो गया है तो उसका आनन्द ले। यों विचार में बाधा डालने वाले विचार ने फिर रस में डुबकी लगवाई, पहले की अपेक्षा गहरी, पर योगी फिर से उसी रस में मग्न हो गया। निर्विकल्प होने के प्रयत्न तो पहले कर चुका था, विचारों को दबाकर फिर एकाग्र हुआ । टिका रह योगी? तू अब भी धन्य है।

हाँ योगी एकाग्र हो गया, पर अब डुबकी पहले की अपेक्षा गहरी नहीं और लम्बी भी नहीं। कुछ समय के पश्वात् फिर विचार आया-न जाने वही हों और मैं मग्न टिका रहूँ और वे चले जाएं, फिर कहीं युगों के चक्कर न पड़ जाएँ। संशय को साथ लाकर चिन्तन ने फिर हिलाया। हे मन! पूछ पता निकाल, चिह्न चक्कर तो वैसे ही हैं, जैसे मुझे समाधि में बताए गए थे। हाँ इतना अलौकिक प्रभाव किसका हो सकता है? पूछ रे मन! बड़े-बड़े पूछते आए हैं। 'यम' से 'नचकेता' ने पूछा था कि ब्रह्म कौन है; तू भी पूछ ले कि महाराज आप कौन हैं? अथवा पास बैठे हुए बालकों (चेलों) मे से एक से कि 'आप कौन हैं?' पूछने लगा! पर रस के आवेश ने फिर आकर्षण डाला कि क्षण-भर के लिए सोच-विचार का त्याग करके यह रस ले ले। फिर कुछ क्षणों के लिए योगी रस में चला गया, पर अब इस भय ने, कि न जाने नैन मुंदन के क्षण में लोप हो जाएँ, सोच का पलड़ा भारी कर दिया और आप सावधान हो गये। फिर कुछ ठहरकर चौंककर देखा, धीरे से समीप होकर पूछने लगे : "स्वामी ! कौन देश, कौन नाम, कौन काम ?"

पास बैठा हुआ सेवक-आपका देश निरंकार है, आपका नाम निरंकार है, आपका काम निरंकार के साथ भेंट करा देना है। यदि शरीर की ओर से पूछें तो देश लाहौर है, नाम ....

धन्य ! धन्य !! धन्य !!! गुरू, श्री गुरू धन्य !!!! श्री गुरू नानक देव जी हैं! काम देशों को देखने का है, कोई अपने स्पर्श लगाने का, कोई अग्नि बुझाने का, कोई शीतलता प्रदान करने का, कोई जमे हुए मैल को हटाने का, कोई जाड़े के मारे हुओं को गर्मी पहुंचाने का, तुषार को पिघलाने का, फिर नदी द्वारा सागर में पहुँचाने का, कोई इस प्रकार का कौतुकी मात्र काम है।

नाम सुनकर योगी के नैन मँद गए, एक झन्नाहट उठी, एक कम्पन-सा रोमों मे से गुज़र

गया, फिर शरीर में एक गर्म-गर्म उल्लास की झन्नाहट फिर गई। फिर उल्लास ने जोर मारा, धन्य मेरे भाग्य ! चरणों पर सीस धरकर कहले लगा :- "मेरे धन्य भाग्य ! चिरंकाल से आपकी प्रतीक्षा कर रहा था, चिरंकाल से। हाँ आज अब मेरे साधनों को फल लगेगा, अब योग विचार का पता चलेगा, सभी सफल होंगे।"

तब सतगुरू दाता के नैनों तथा माथे पर मुस्कराहट की आभा फिरी, गुलाबों से भी कोमल और सुन्दर अधर खुले, एक मुस्कराहट आई और कहने लगे:- "कैसे योगि जी ! कैसे जानते हो और प्रतीक्षा में रहे हो?"

योगी (करबद्ध)-जी ! किसी समय मैं आपे को वर्जित कर-करके और प्राणों के उतार-चढ़ाव के कर्त्तव्य कर-करके, ध्यान लगा-लगाकर एकाग्र हुआ, तो समाधि हुई अथवा मुझे झलक पड़ी और मुनि जी दिखाई दिये, हाँ उन्होंने कहा -'योग साधना मत कीजिए -कठिन हठयोग, भक्ति की कमाई कीजिए।" जब मैंने कई प्रश्न किए, तो मुनि जी ने कहा "कलियुग है, इसके उद्धार के लिए धरती पर अवतार हुआ है, 'श्री आपका दर्शन कीजिए, प्रश्न कीजिए, सेवा कीजिए, तो फल प्राप्त करोगे।" तो मैंने नाम पूछा, मुनि जी ने कहा, नाम तो अ-नाम है; पर शरीर धारण करके दुखों की निवृति करने वाले दुःख हर्ताजी का नाम 'नानक' है। यों आपजी के आने का पता और नाम पता चला और प्रतीक्षा ने डेरा डाले रखा; श्रीमान् ! मुनि ने यह भी कहा था :-

प्रथम मिलहिंगे तुझ इस थाँई ।
वैसहु प्रेम हृदय लिवलाई ।।
पूछ लेहु जो है निज मन में ।
सर्व बताए देहिं इक छिन में ।।
तब की मैं रावरि सुध पाई ।।
बैठ रह्यो थिर है इसि थाई ।।

(गुरू नानक प्रकाश)

: २ :

आश्रम-योगियों के आश्रम-के मुखिया भरथरि योगी का गुरू जी के आगे झुक जाना नगर के लोगों ने आनी आँखों से देखा था। अतः सारे इलाके में बात फैल गई। लोग दर्शनों के लिए आने लगे। आश्रम में रहने वाले दूसरे योगी और साधक भी हैरान थे कि उनके 'मठ' के स्वामी भरथरि जी के क्या हो गया है कि परदेशी और अनजाने का, जो योगी भी नहीं, इतना सम्मान कर रहे हैं। कई बार अकेले-अकेले और कई बार जत्थे बनाकर वे सतगुरू जी के पास चर्चावाद के लिए आए। जितनी बार और जब-जब आए, हल्के होकर वापस लौटे। सत्संगियों के बीच में बैठते समय यह अखाड़े लगते, लोग योगियों को पराजित होते देखते, जैसे निचोड़े हुए नींबू का फांक होता है, वैसे साधनों तथा तपों से मदिरा से रस-प्रभाव से रिक्त होने वाले योगियों को देखकर लोग चकित होते। इधर जब प्रभावशाली सतगुरू जी के चेहरे की ओर देखते तो स्वाद की कोई बरसती हुई आभा दिखाई पड़ती, मीठी-मीठी फुहार

किसी 'अस्तित्व' की छिड़की जा रही प्रतीत होती। यों लोगों के विश्वास योगियों में से उठने लगे और आश्रम में आने के स्थान पर सभी लोग गुरू बाबा के चारों ओर झुरमुट डालने लगे, इतना कि मानो आश्रम उजड़ गया, योगियों से खाली नहीं, पर श्रद्धालुओं से खाली हो गया। अब योगी ज्यादा ईर्ष्या करने लगे। सिद्धियों के बल लगाने लगे, परन्तु जो कुछ भी उन्होंने किया हर बार उन्हें मुँह की उल्टी खानी पड़ी। अन्त में जब कुछ चारा न चला तो चरणों पर आ झुके। सिद्धों की इस पराजय का उल्लेख 'हकीकत राह मुकाम' में इस तरह आया है :-

और भाटड़िओं के घर से कजली वन अस्सी कोस की दूरी पर है। तिरिया राज्य है। वहाँ पर भी गुरू बाबा का देहुरा है। भाटड़ों की संगत एकत्र होती है। वहाँ गुरू जी ने सिद्धों के साथ गोष्ठी करके उनकी पूजा खींच ली थी। तब सिद्ध गुरू जी का बल परखकर चरणों पर आ झुके थे। उस स्थान का नाम कजली वन तिरिया राज्य है।[१]

यों जब सारा भरथरि आश्रम गुरू जी के अनुकूल हो गया तो एक दिन भरथरि ने गुरू बाबा से परमेश्वर जी के साथ प्यार और अपने योग मार्ग का व्योरा पूछा ।

भरथरि - आप योग मार्ग को बिल्कुल ही पसन्द नहीं करते ?

श्री गुरू जी- भरथरि योगी ! समय कलियुग का है, सत् तथा जत् से लोग गिर रहे हैं, शरीर भी पहले जैसे हृष्ट-पुष्ट नहीं रहे, हठ का स्वभाव भी कम हो गया है। अवगुणों ने प्रजा दुखी तथा रिक्त कर दी है। केवल शारीरिक त्याग से साधु प्रजा से दूर जा पड़े हैं, पर अब फिर निरंकार जी के दया से सुगमता आ गई है। इसलिए वह मार्ग ठीक नहीं कि केवल चार योगी जंगलों में समाधि लगाकर बैठे रहें, बल्कि चाहिए यह हरेक जीव योगी हो। यह ज्यादा सुखदाई बात है।

भरथरि - गृहस्थी भी, योगी भी ?

गुरू जी - हाँ[२] ! तुम्हारे योग अथवा हमारे योग में अन्तर हैं। पहले तो प्रायः तुम्हारे योगी बाहरी क्रियाओं पर ही वश किए बैठे हैं, दूसरे इन्द्रिय शिथिल करने पर ही रह गए हैं कि यह यूँ भागें न । फिर यदि राजयोग के आदर्श की ओर देखें, तो तुमने योग नाम रखा है आपे में एकाग्र हो जाने का। मन एकाग्र होता आपे में निरुध हो जाए, एकाग्र हो जाये। मन अथवा मन के वेग अथवा वृत्तियाँ रुक जाएँ, जो आपा एकाग्र होकर आपा में आकर कैवल्य निःकैवल्य हो गया है। इसी लिए तुम्हें अपने बल पर उठना पड़ता है और आपे को निःकेवल करने के लिए तुम्हें पहले शारीरिक साधन तथा हठयोग के यत्न करने पड़ते हैं, जिसे करने में तुम जगत से पृथक हो जाते हो, तुम पीछे हटते-हटते वनवासी हो जाते हो। फिर जब मन नहीं लगते, तो फिर कई तरह के घटिया नशों के आश्रय लेकर दिनकटी पर आ जाते हो। यदि भला कोई कभी आपे में निरुध अर्थात् एकाग्र हो भी गया मान लिया जाए तो वह आपे में अपने जीव तत्व में टिक गया; वह परमतत्व में नहीं टिका। अभी वह निम्न है, उसमें कमी बाकी है।

---

१. इस वन का पता 'हकीकत राह मुकाम' में बीजापुर के इलाके, दक्षिण में बताया है।

२. इंकि गिरही सेवक साधिका गुरमती लागे ।।
नामु दानु इसनानु दृढ़ हरि भगति सु जागे ।। (आसा काफी मः १)

भरथरि – हैं, निरूध पुरूष अभी निम्न है ?

गुरू जी – हाँ आपे में एकाग्र होना जीव तत्व में एकाग्र होना है।[१]

हमारा योग हो आत्म टिकाव से आगे चलकर परमतत्व में एकाग्र होना, इसीलिए हम आरम्भ से ही उसी लक्ष्य पर दुष्टि जमाकर चलते हैं।[२]

भरथरि – परमतत्व से आपका भाव ईश्वर निरंकार से है न, और हम भी ईश्वर को मानते हैं। सांख्य की भाँति हम अनेश्वरवादी नहीं हैं।

गुरू जी – मानते तो हो, पर तुम साधन हठ योग के करते हुए या तो सिद्धियों में ही रह जाते हो और यदि आगे चले भी जाओ तो आपे में एकाग्र होते हो। अत: श्रीमान! जो आपे में एकाग्र होना है वह तो शुद्ध होकर अपने जीवन तत्व को ही प्राप्त होना है।[३]

भरथरि – ठीक है, कैवल्य का भाव ठीक यही है, यही निर्बीज समाधि का फल है, ठीक ।

गुरू जी – हम कहते हैं कि जीव तत्व परमतत्व से यदि जुड़े तो योग सम्पूर्ण है।[४] यदि अन्त में हमको परमतत्व में प्राप्त नहीं होना तो परमतत्व (ईश्वर) को मानना कोई सफल मानना नहीं।

भरथरि – ठीक है, स्वामी जी ! हम तो हठ योग के साधन करते हैं, जिसमें विद्वान तथा अपढ़ सभी परचकर लगे रहते हैं और अन्त में शरीर को सोधकर मन माँजकर स्वस्थ तथा दीर्घ आयु वाले हो जाते हैं, पर हम में जा बुद्धिमान हैं, वे साधन करते हुए राजयोग में विशेष ध्यान देते हैं और एकाग्र होते हैं।

गुरू जी – तुम्हारे साधनों से साधक तो बहुत से ऋद्धियों, सिद्धियों के परिचय, निज पूजा तथा ऐश्वर्य में फँसकर सिद्धों में गिने जाते हैं। कोई बिरला निर्वास रहकर राजयोग की ओर चलता होगा ।

भरथरि – है तो ठीक ! हाँ श्रीमान ! आपके इस योग का क्या नाम है ?

गुरू जी – तुमने हमारे योग का नाम पूछा है, उसमें केवल हठ योग का कोई स्थान नहीं और न ही किसी तरह की बनावट बनाने का कोई ठिकाना है। वह तो सुख का स्थान है जो सुख निरंकार से मिलकर आता है। उसे हम सहज सुख कहते हैं, इस सुख को सहज समाधि[३] तथा योग को सहज योग भी कहते हैं। राजयोग पद भी हम लगाते हैं। तुम पातंजल के बताए हुए अष्टांग योग को राजयोग कहते हुए योग के लिए राज्य, गृहस्थ, घर आदि का त्याग करते हो। हम गृहस्थ में रहकर फिर अन्दर से निर्वाण रहकर प्रभु के साथ मिले रहने की अवस्था को राजयोग कहते हैं।[४] हमारा राजयोग ही परिपक्व होकर

---

१. इसी से (पातंजल के याग सो) केवल आत्म साक्षातकार होता है, ईश्वर प्राप्त होता है अथवा नहीं, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। पुन: इससे (पातंजल योग से) दु:ख की निवृति होती है पर अंनत सुख नहीं मिलता । (विश्वकोश १८ पृष्ठ ७१८ए ७१९)

२. 'आत्म चीनि परातमु चीनहु गुर संगति इहु निसतारा हे' ।। (मारू सोलहे म: १)

३. सहज समाधि सदा लिव हरि सिऊ जीवां हरि गुण गाई ।। (सिरी रागु असटपदीआ म: १)

४. थिर थिर चित थिर हां ।। वनु ग्रिह समसरि हां ।।
अंतरि एक पिर हां ।। बाहरि अनेक धरि हां ।। राजन जोगु करि हां ।।

सहज योग है[१]। जिससे हमारा भाव होता है कि मिले रहने की अवस्था निर्यत्न स्वभाविक यों चल रही है कि मानो प्रभु के साथ संयोग का हमारा स्वभाव ही हो गया है।

भरथरि – आप महाराज स्वामी जी ! प्राणायाम, आसण (समाधि) न्योली, नेती-धोती, आदि कर्म, अग्नि जल आदि तप कोई नहीं करवाते, घर-बार का त्याग नहीं करवाते ? आप अपना सहज योग कैसे सिखाते हैं?

गुरू जी – जैसे तुम चित की वृत्तियों को रोककर चाहते हो कि चित्त आपे में एकाग्र रहे और इसके लिए घरों से साधकों को तोड़ते हो, हम एक ब्रह्म परमेश्वर में सदैव निरन्तर अनाहत (अटूट) लौ लगाए रखनी चाहते हैं। जब एक परमात्मा में लौ लगी रहेगी तो और सभी प्रसार से मन अपने-आप उपराम रहेगा। उपराम रहने की यत्न अथवा चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी, स्वाभाविक ही मन का लगाव संसार से दूरी पर रखेगा, ऐसी दूरी कि हम कामकाज करते हुए अक्रिय होंगे। यह समह वैराग है।[२]

भरथरि – कैसे? कोई आसान सा दृष्टान्त देकर बताइए ।

गुरू जी – जैसे बिटिया का विवाह किया जाता है, उसका प्रेम पति में हो जाता है। उसका विवाह करते समय-पति में लौ लगाते समय-उसे माता-पिता से त्याग वैराग करवाने की आवश्यकता नहीं रहती, पति के साथ विवाह ही उसे माता-पिता से पृथक कर देता है। वैसे जब प्रभु में लौ लग गई तो, जो कुछ प्रभु नहीं, उससे पृथकता अपने आप ही गई। अतः प्रभु में लौ लगाई जाती है।[३]

भरथरि (निःश्वास लेकर) – ठीक ... । फिर श्रीमान ! परमेश्वर में लौ के लिए कोई साधन, कोई युक्ति ?

गुरू जी – अन्दर की प्रेम-भावना वाली लगातार लगन को लौ कहते हैं । प्रेम के लिए साधन कैसे? पर तब भी विचार करके देखिए, जिसके साथ हमारा प्रेम हो, वह सदैव स्मृति में रहता है। अतः स्मृति प्रेम का हमारे मन पर एक विदित-स्वरूप है, इसलिए उस प्रभु की-जिसके साथ निरन्तर लौ लगानी है-स्मृति को अन्दर बसाया जाता है और उसे प्रेम स्वरूप अपना प्यारा समझ कर याद किया जाता है। प्रभु की स्मृति, यदि अन्दर एकाएक जाग उठे और चल पड़े तो कार्य हो गया, यदि न चले तो उसकी स्मृति उसका नाम जपने से परिपक्व होती है। नाम, हम उसमें प्यार-भावना रखकर जपते हैं, नाम के जपने से नाम का स्मरण प्राप्त होता, नाम का स्मरण निरंकार के स्मरण का स्फुरण है। क्योंकि नाम निरंकार का याद करते हैं, स्मरण करने से वह स्मृति में निवास कर जाता है। निरंकार के स्मरण की स्फुरणता, निरंकार का प्रेमभाव बनकर निरन्तर लौ के रूप में अंतस की गहराईओं में टिक जाती है और निरंकार के साथ अपृथक तथा शाश्वत भेंट में रखती है[४]। इस सबको हम 'नाम' कहते हैं।

---

१. गुरि मनु मारिओ करि संजोगु ।। अहि निसि रावे भगति जोग ।।
गुरू संत सभा दुख मिटै रोगु ।। जन नानक हरि वरु सहज जोग ।। ४५ (बसन्त मः १)

२. गुरू कै सबदि रता बैरागी निज घरि ताड़ी लाई ।।

३. मोहनि मोहि लीआ मनु मेरा बड़े भाग लिवलागी ।। (सारंग असरपदीआ मः १)

४. नावै अंदरि हउ बसा नाऊ बसै मनि आइ ।। (सिरी राग मः १)
पुनः-हरि सिमरन महि आपि निरंकारा ।। (गउड़ी सुखमनी मः ५)

यों जीव-तत्व अपने-आप निर्मल हो जाता है और आप परमतत्व में जा एकाग्र होता है।

भरथरि – (सोच-सोचकर) ... ठीक, स्मरण ! हाँ संस्कृत पद स्मरण है 'स्मृ' धातु से, और इसी से स्मार भी बनता है। स्मरण = याद करना, समार+प्यार, ठीक श्रीमान ठीक। स्मृति तथा प्रेम एक ही धातु से बने हुए दो पद हैं। याद और प्यार। पर हाँ जी निर्मल कैसे होता है ? और फिर एकाग्र कैसे होता है ?

गुरू जी – जीवों की बुद्धि तथा मन मैल से, पापों के मैल से, दृष्टिमान के मोह के मैल से भरे पड़े हैं । इस मलिनता को नाम ही काटता है।[१] जब परम पवित्र निरंकार का नाम जपा जाता है तो मन का ख्याल उस वाहिगुरू के अस्तित्व पर और उसके पवित्र गुणों पर जाता है। पवित्र गुणों के ख्याल करने से मैल उतरता है।[२] जो पुरुष मन में अवगुणों का चिन्तन करता है, उसका मन मलिन हो जाता है। जो गुणों का चिन्तन करता है, उसका मन स्वच्छ हो जाता है।

भरथरि – हे कृपालु दाता जी ! कोई दृष्टान्त देकर बताइए न ?

गुरू जी – यदि कोई पुरूष रात को भूतों, प्रेतों, साँपों की बातें चार घड़ी सुनता करता रहे और सो जाये तो रात को भयानक सपने देखकर बड़बड़ाता है।

भरथरि – यों ठीक, समझ लिया श्रीमान !

गुरू जी – अत: परम पवित्र ज्योतिस्वरूप का 'नाम स्मरण' मन को उसके पवित्र आकार तथा पवित्र गुणों की ओर ध्यान दिलवाकर और स्पर्श लगाकर पवित्र करता जाता है। जब मन में पवित्र तथ प्रेमस्वरूप निरंकार की ओर ध्यान लगा-लगाकर चिन्तन कर-करके अन्दर गहराई में पवित्रता के संस्कार भर जाते हैं, तब जीव का मन तथा बुद्धि स्वस्थ तथा पवित्र हो जाते हैं, फिर वही रसदायक हो जाता है, उसी नाम में से स्वाद आने लगता है।[३]

भरथरि – कैसे ?

गुरू जी – इस तरह कि नाम स्मरण करते हुए मन निरंकार के 'अस्तित्व' में टिकने लगता है। उसके 'अस्तित्व' का भाव अन्दर में उदय हो जाता है। उसका 'सत्य' भाव, 'है' भाव अन्दर निरन्तर उदय हो-होकर टिक जाता है। इस 'अस्तित्व' की प्रतीत में प्रभु का अपना कोई स्पर्श लग जाता है कि उसे नाम स्मरण वाला एकरस प्रतीत करता है। यदि रस आ गया तो फिर इसी नाम को अमृत नाम कहा जाता है। 'निरंतर नाम स्मरण' 'निरंतर भेंट' में रखता है, उस रस दाता की न बिछड़ने वाली भेंट हमें रस से भरे रखती है।[४]

---

1. भरीऐ मति पापा कै संगि ।। ओहु धोपै नावै कै रंगि ।। (जपुजी)
   पुन: कटे पाप असंख नावै इक करणी ।। (मलार की वार म: १)
2. गुन गावत तेरी उतरसि मैलु ।। (गऊड़ी सुखमनी म: ५)
3. प्रभु कै सिमरनि मन की मलु जाइ ।। (गऊड़ी सुखमनी म: ५)
   नाम का यह पहला प्रभाव पंचम गुरू जी ने बताया है, दूसरा आपने यह बताया है:- अमितृ नामु रिद माहि समाइ ।। (गऊड़ी सुखमनी म: ५)
4. सुभर भरे नाही चितु डोलै मन ही ते मनु मानिआ ।। (सारंग म: १)

भरथरि – नाम कहाँ से प्राप्त किया जाता है ?

गुरू जी – गुरू से गुरू के उपदेश द्वारा। गुरू का उपदेश है निरंकार के ज्ञान से जो गुरू के पवित्र हृदय में प्रभु की ओर से आया है। गुरू से यह ज्ञान गुरुमुख लोगों में जाता है। गुरुमुख सज्जन यह ज्ञान का भण्डार जरूरतमन्दों में बाँटते हैं। गुरुमुख पुरूष वह है जात नाम का रसिक है, जिसका मन गुरू की सुमति प्राप्त करके चलता है, अपने मन की मति में नहीं चलता, जो वाहिगुरू के ज्ञान को अपना अगुआ बनाता है, जो कि उसे गुरू से प्राप्त हुआ है[१], और जिस पर प्रभु कृपालु है।

जब इस प्रकार के प्रेम मार्ग का समाचार सतगुरू जी ने बताया तो भरथरि योगी, जो विद्वान था, तपस्वी था, हठयोग की कमाई करने वाला भी था, अपने अन्दर विचार करता गया और सतगुरू जी के वाक्यों के पीछे उड़ता हुआ मग्न होता गया, परन्तु उसके चेले, जो अब सत्कार रहित नहीं थे, श्रद्धा में आ रहे थे, पर वे थे बाहरी साधनों और चिन्हों चक्करों में फँसे हुए, करबद्ध कुछ कहने लगे, पर देखते भरथरि की ओर थे। तब भरथरि ने उनके भावों का समझकर सतगुरू जी के आगे यों निवेदन किया, "आपके मत में मुँदरा, खिंथा, युक्ति, सिंगी, डंडा, विभूति आदि कोई चिन्ह चक्कर हैं भी कि नहीं?" तब श्री गुरू जी ने कहा, "हाँ जी! गुरू के उपदेश पर दृढ़ रहना 'हमारी मुँदरा' है; और हठयोग की मुँदरा हम धारण नहीं करते और न ही कान फाड़कर हम कोई और मुँदरा पहनते है। गुरू के उपदेश को धारण करना यही मुँरा है। संसार के साथ व्यवहार करते समय कठिनाईयाँ आती हैं हम क्षमा रूपी गुद्दड़ी बनाकर

---

१. दस गुरूओं के जगत में प्रत्यक्ष रहते समय तक नाम का उपदेश आप सतगुरू जी दिया करते थे और अनुग्रहीत सिक्ख गुरू के अधीन रहकर नाम बाँटते रहे। गुरू अवतार का आना–हां गोबिन्द रूप गुरू नानक तथा भगवन्त रूप गुरू गोबिन्द सिंह जी का (हमारी प्रत्यक्ष आँखों को दीखने वाला स्वरूप) अवतरण जब समाप्त होने लगा तो दशम गुरू जी ने 'अवतार तुल्य परमेश्वररूपता' से ही नाम प्राप्त होने के लिए यह ढंग प्रदान किया कि ईश्वरीय तथा गुरू के ज्ञान श्री गुरू ग्रन्थ साहब के अधीन पाँच गुरुमुख नाम के रसिक–खालसा–अमृत तैयार करके पान कराएँ और नाम प्रदान करें। 'एक सिक्ख, दो साधु संगत, पाँच में परमेश्वर का नियम गुरू के सिक्ख मत में आदि से चला आ रहा है। अतः पाँच गुरू के सिक्ख नाम के प्रेमी गुरुमुख सज्जन हों, फिर श्री गुरू ग्रन्थ साहब–वाहिगुरू के ज्ञान–के अधीन हों, जब जो संस्कार हो, वह गुरू अवतार से प्राप्त होने के तुल्य है।

सिक्ख मत में केवल व्यक्तिगत रूप से उपासना (परिश्रम और नाम की कमाई) का नियम भी है, पर सभा में उपासना का नियम भी है। जिस तरह जपुजी नामक वाणी का पाठ व्यक्तिगत रूप से उपासना है, रहरास नाम वाणी का पाठ शख्सी भी है और सभा में बैठकर सुनना 'समूहक उपासना' भी है। 'आसा दी वार' नामक वाणी का कीर्तन सभा लगाकर किया जाता है।

इस तरह नाम का संस्कार गुरुमुख मंडल में होता है। आगे चलकर नाम की कमाई करनी पड़ती है। इस कमाई के लिए सहायता की आवश्यकता होती है। उसके लिए नामी पुरुष की संगति का नियम है, जिसे सत्संग कहा जाता है। प्रतिदिन 'गुरुमुख से भेंट और साधु की संगति' की याचना की जाती है। अतः नाम में रांते हुए गुरुमुख सज्जन की सुसंगति से नाम की कमाई में सहायता प्राप्त करके लौ में पहुँचा जाता है, सत्संग की महमा तथा आवश्यकता सिक्ख मत में असीम बताई है, पर गुरू का पद, दस गुरू, गुरू ग्रन्थ साहब तथा गुरू पंथ को प्राप्त है। आगे गुरुमुख का सत्संग है, जो अत्यावश्यक है, फिर अभ्यास है नाम का, गुरुवाणी का पाठ करना तथा सुनना और कीर्तन करना । विस्तार के लिए देखिए 'सप्ताहिक पत्र, 'खालसा समाचार' ११ जून १९३१।

पहनते हैं। इससे हमें लोगों के गुस्से तथा नाराजगी के क्लेश नहीं आ लगते, जो कुछ घटता है, उसे हम प्रभु की ओर से घट रहा मानकर भला करके मानते हैं। यह उस प्रभु के आज्ञा का मानना हमारे सहजयोग की निधि है। तुम प्राणायाम करके शरीर को शुद्ध तथा उसे चिरंजीव करते हो, हम (नाम द्वारा प्राप्त हुए) ज्ञान रूपी रस को भोगते हैं। तुम सिंगी बजाकर नाद पूरते हो, पर हम रात दिन के स्मरण से अन्दर में रस रूप संगीत में अट्ट अनहत लौ लगाते हैं और सदैव सुखी रहते हैं । श्रद्धा वाले मन के ऊपर मति तथा मति के ऊपर ज्ञान का अंकुश रखते हैं (और ज्ञान में वाहिगुरू की हुज़ूरी स्वाभाविक ही है) यही हमारे पास 'डंडा' है। तूँबा हमारे पास 'विचार' का है जिसमें से शीतलता का तथा तृष्णा निवृत करने का जल पीते हैं और संसार के मोह को समझते हैं, कि इसका मूल्य क्षार है, यही हम विभूति लगाते है। और हमारा कर्म यह है कि वाहिगुरू का कीर्तन करते तथा गाते हैं। तुम्हारा मत अतीत (वैराग) का है हमारा मत गुरुमुख मत है। तुम में घरबार का त्याग है, हमारे में मनमति का त्याग है संसार में और जो अनेकता तथा नानात्यय है, इस नानात्यय तथा अनेकता में -रूप तथा नाम के अन्तर में एक ज्योति को समाया देखते हैं, यह हमारी समता है।

यह सुनकर भरथरि ने नैन भरकर चेलों की ओर देखा और फिर सतगुरू जी की ओर देखा। तो योगी का चेहरा देखकर गुरू बाबा ने वाक्य उच्चारण किया :-'क्यों भरथरि योगी ! सुना है उस ब्रह्म के साथ लौ लगानी का मार्ग-जो सहजयोग का है? तुम्हारे में से कोई सज्जन अपने योग का अन्तिम फल शिव जी की नगरी (शिवलोक) में मरकर प्राप्त होना समझते हैं पर हम इस तरह की कल्पनाओं का त्याग करके इस समय-इस क्षण में-शिव नगर में बैठते हैं, वह कैसे? कि तुरीय पद में खेलते हैं, व्यर्थ कल्पनाएँ जो मन में तरंग रूप होकर उठती हैं और सपने बनकर निद्रा में आती हैं, इन्हें तोड़ते हैं और वाहिगुरू जी की स्मृति में टिके रहते हैं, यह शिव नगरी (क़ल्याणरूप 'स्वस्थता' कल्याणरूप प्रभाव) को अन्दर में प्रतीक करते हैं हम मरकर शरीर से बाहर 'ठिकाने' की खोज नहीं करते, बल्कि अब तो अपने अन्दर ही प्राप्त किए बैठे हैं। यह तुम समझ लो कि जो जागृति आत्मा में आई है, जो रस रूप कल्याण रूप है वह शरीर का त्याग करने के बाद जाने नहीं लगी, वह तो आपा हो चुकी है, अत: हम मरकर भी कल्याण रूप रहेंगे।

तब भरथरि ने सीस झुकाया और चेलों ने भी प्रणाम किया ।

: ३ :

उपरोक्त शिक्षा तथा वचन जो सतगुरू जी ने भरथरि को कहे, वे संक्षिप्त रूप से सुन्दर दाता जी ने आसा राग के एक शब्द में उच्चारण किए और गाए। वह शब्द, श्री गुरू अर्जुन देव जी गुरू ग्रन्थ साहब में चढ़ाया और हमारे तक पहुँचा। वह मीठा उपदेश इस प्रकार है :-

आसा महला १

गुर का सबदु मनै महि मुँद्रा खिंथा खिमा हढावऊ ।।
जो किछु करै भला करि मानऊ सहज जोग निधि पावऊ ।।१।।
बाबा जुगता जीऊ जुगह जुग जोगी परम तन्त महि जोगं ।।
अंमितु नामु निरंजन पाइआ गिआन काइआ रस भोगं ।।१।।रहाऊ।।

सिव नगरी महि आसण बैसऊ कलप तिआगी बादं ।।
सिंङी सबदु सदा धुनि सोहै अहिनिसि पूरै नादं ।।२।।
पतु वीचारु गिआन मति डंडा वरतमान विभूतं ।।
हरि कीरति रहरासि हमारी गुरुमुखि पंथु अतीतं ।।३।।
सगली जोति हमारी संमिआ नाना वरन अनेकं ।।
कहु नानक सुणि भरथरि जोगी पारब्रह्म लिव एकं ।।४।।३।।

इस शब्द का अर्थ :-

सूचना – अर्थ 'रहाऊ' से आरम्भ होगा ।

हे जुड़ने, एकाग्र होने वाले बाबा जी ! अर्थात् हे भरथरि ! परम तत्व में जो योग करना है, अर्थात् वाहिगुरू मे जुड़ना है, यह युगों युग का योगी बनना है। भाव – वह 'नित्य योगी' है जो परमतत्व से जुड़ा है।[१] तात्पर्य यह कि जो आपे में जुड़ा है – निरुध हुआ है – वह अभी आपे में ही है, उसका आपा मायाचक्र में कब आया था, तजुर्बा करके कि माया का संयोग अच्छा नहीं, वे कैवल्य हुआ है, कि दोबारा माया में ही आयेगा। पर माया 'चित्र वचित्र विमोहित है, इसके दावों का चल जाना असम्भव नहीं, इसलिए चाहिए कि जीवतत्व अपने आपे के संयोग से आगे चले और परम तत्व 'पारब्रह्म परमेश्वर' में जुड़ें तो वह योगी नित्य मुक्त अवस्था में पहुँचेगा। क्योंकि परमतत्व नित्यमुक्त है, यह भी वहाँ जाकर नित्य जुड़ा रहेगा, उसे जैसे गुरू जी परमतत्व में जुड़ा कहते हैं, हम युगों युग का योगी – सदैव एकाग्र नित्य योगी (अपृथक भक्त) मानते हैं।

(इसकी प्राप्ति का साधन हठयोग नहीं) पर निरंजन (परमात्मा) का अमृत रूप नाम है। (हठयोग का फल) काया का चिरंजीवी होना है (पर इस नाम का फल) ज्ञान (सफल ज्ञान) का रस लेना है (अथवा तुम तो काया में खेचरी आदि मुद्रा से रस भोगते हो, हम ज्ञान का रस लेते हैं)।।१।। रहाऊ।।(यह नाम अमृत, कहाँ से प्राप्त होता है?) गुरू के उपदेश को मन में यों धारण करने से (जैसे योगी) मुँदरा (मानों में पहनते अथवा मुद्रा धारण करते हैं)।[२] यह तो अपने अंतस का कर्म हुआ। जगत के साथ जो व्यवहार पड़ता है उसमें हम) क्षमा रूपी गुद्दड़ी पहनते हैं। (तुम्हारे योग के स्थान पर हमारा) सहज योग है (जिसमें हमारी हउमैं समाप्त हो जाती है और हम देखते हैं कि जो कुछ घटता है (वह ईश्वर की ओर से) घटता है (और उसी का किया हुआ है, इसलिए उसे) भला करके मानते हैं, (अर्थात् आज्ञा में रहते हैं) यह हमारी विधि है ।।१।।

(हमारे मतानुसार योग के आसन लगाना यह है कि हम) व्यर्थ कल्पना का त्याग करते हैं (संकल्प विकल्प हटाते हैं) और कल्याण रूप नगर-तुरीयावस्था – में एकाग्र रहते हैं। (अर्थात् मरकर शिवपुरी को जाने के स्थान पर अब कल्याण रूप अवस्था में टिके हुए सुख भोगते हैं।) सिंगी बजाकर रात को दिन को नाद करना हमारे मतानुसार यह है कि (शब्द)

---

१. योग दर्शन ने भी ईश्वर को माना है कि वह कभी क्लेश कर्म में नहीं आता ।

२. खेचरी भूचरी आदि ।

नाम की लौ सदैव सुहावनी लग रही है।[१] (योगी सींग सा लेकर बजाते और उसमें से निकलने वाले शब्द को नाद कहते हैं, कई मुँदे हुए कानों की घूँ-घूँ की आवाज़ को ही नाद कहते हैं, पर गुरू जी बताते हैं कि शब्द का अभ्यास, अर्थात नाम के स्मरण की कमाई से उत्पन्न होकर अन्दर एक सदैव रस भरी संगीत अवस्था होती है, वह हमारा नाद है। सदैव अनुभव होने वाला नाद सिंगी का नाद नहीं हो सकता और शुष्क पदार्थों के सेवन से, उत्पन्न हुई कानों की साँय-साँय की आवाज़ भी नित्य वस्तु नहीं हो सकती), पात्र, खप्पर अथवा तूँबा) (हमने) विचार (का लिया है), (मन पर) मति (और मति पर वाहिगुरू के प्रदान किए हुए) ज्ञान (का भली भाँति ग्रहण करना, हमने यह) डंडा पकड़ा है। वर्तमान (संसार के मोह को राख की भाँति, मूल्य रहित जानना यह विभूति लगाई है। हमारी नित्य क्रिया (यदि पूछो तो) वाहिगुरू की कीर्ति (करना और गाना है)। (हमारा पंथ है) गुरुमुख पंथ और (तुम्हारा है) अतीतपंथ (अर्थात् हम मनमति से अतीत रहकर गुरमति के मार्ग पर चलते हैं, तुम गृहस्थ का त्याग करके अतीत होते हो)। अनेकों रंगों (में और[२]) नाना रूपों में (एक पारब्रह्म की) ज्योति सब ओर समाई (समझना यह) हमारी ज्योति है (अर्थात् हमारी ज्योति एक देशीय नहीं, सर्वव्यापक है) अथवा समता[३] है। गुरू नानक देव जी कहते हैं - हे भरथरि योगी ! एक पारब्रह्म के साथ लौ लग रही है (हमारा सहज योग तो यही है) ।

: ४ :

समय धीरे-धीरे व्यतीत होता गया, गुरू के शब्द यश का प्रचार बढ़ता गया, सत्संग का रंग लगता गया। एक दिन सायंकाल का समय था, आकाश पर सुन्दर तारागण दिखाई दिये, नीले-नीले रंग में चमकते हुए सफेद-सफेद तारे सौंदर्य के फव्वारे दमकते हुए मनों का मोहित करने लगे। मीठी-मीठी हवा रूमक रही थी और भीनी-भीनी ओस की छवि छा रही थी। श्री गुरू जी अपने प्रत्येक स्थान तथा प्रत्येक रंग में दीख पड़ने वाले प्यारे के प्रेम में अमृत रस ले रहे थे कि भरथरि योगी आ गया, नमस्कार करके बैठ गया और विनय की कि "कभी आप हमारे आश्रम में भी चरण रखिए; साधकों, सिद्धों तथा चेलों की यही इच्छा हो रही है।" श्री गुरू जी सुनकर मुस्कराये और कहने लगे "अच्छा योगी राज ! किसी दिन का आयेंगे !"

अतः एक दिन रात के समय आप अंदर गए, तो योगियों, सिद्धों, चेलों की सभा लग रही थी, सुराही और प्याला फिर रहा था, हरेक ने अपनी-अपनी इच्छानुसार पूरा भरकर, आधा भरकर, घूँट-दो-घूँट लेकर मदिरा पी । जब सुराही सारा चक्कर लगा चुकी, तो गुरू बाबा के आगे आई। आपने सुराही की ओर देखा; फिर सिद्धों, योगियों की ओर देखा, फिर भरथरि कि ओर देखा, फिर खिलखिल करके हँसे और बाँटने वाले चेले से पूछा, "यह क्या है ?" उसने उत्तर दिया, "सिद्धों का प्याला है, आप भी पीजिए और मस्त हो जाइए।"

---

१. अथवा सिंगी बजाकर सुन्दर ध्वनि निकालना हमारा यह है कि हम सदैव शब्दों की लौ में रहते हैं, (नाद) हमारा यह है (कि) दिन रात (सदा)(परमात्मा को) पूरण (जानते हैं)

२. अथवा अनेक से भिन्न-भिन्न जाति वरणों में ।

३. संस्कृत 'शम्या' पद का अर्थ है -
डंडा, पर डंडा पद पहले आ चुका है। योगियों के १२ और संन्यासियों के १० दल हैं, जिन्हे संज्ञा कहते हैं। 'शम्या' का अर्थ यह संज्ञा भी करते हैं।

तब गुरू जी ने नैनों में दया का एक रंग आया, भरथरि कि ओर देखा और निजानन्द की लहर में कहने लगे -

बाबा[१] ! मेरा यह मन नाम रस पीकर मग्न है, इसे और फोके रस की आवश्यकता नहीं है।

भरथरि – पीकर फिर आप नाम स्मरण में बैठकर तो देखिए, चार पहर तक तार नहीं टूटेगा ।

गुरू जी – जिस समय सवेर को तार टूटेगा, तो टोट के समय फिर क्या पिलाओगे ?

भरथरि – हीरे को हीरा बींधता है, नशे की टोट को नशा ही तोड़ता है।

गुरू जी – फिर जब सवेर की पी रखी को टोट पड़े तो ?

योगी – फिर एक-दो घूँट और ।

गुरू जी – तो फिर इसी छूँछे मद कि लिये ही हो रहे ।

योगी – यदि हो रहे, ता क्या डर है, जुड़े रहे, लगे रहे ।

गुरू जी – इस मद को पीकर नशा चढ़ता है, यह नशा बेहोश करता है, बेहोशी तमोगुण की अधिकता है; यह आत्मा अथवा परमात्मा में समाधि नहीं। मूर्च्छा, बेहोशी, तंद्रा आदि मूर्ख अवस्था आपे में एकाग्रता नहीं है, प्रकृति (पदार्थ) के नीचे लगने के रंग हैं।

भरथरि (घबराकर) – आपने जो नाम की महमा तथा उच्चता बताई थी इस नशे के बल से वह नाम, लौ का रूप धारण कर जाता है, हैं ... नहीं जी ?

गुरू जी (मुस्काराकर) – योगी जी ! नामरस अमृत है, मदिरा कर रस मद (नशा) है। अमृत जीवित करता है, मद्य बेहोश करता और यदि सीमा से बढ़ जाये तो मार भी देता है। नशे का आदि स्वाद है, मध्य रोग है और अंत मृत्यु है। नामरस का आदि कमाई है, मध्य रस है और अंत अचल जीवन है। तुम अमृत के व्यापारी होकर किस छूँछे मद्य में पड़ गए हो। जड़ता को जीवन समझने लगे हो !

भरथरि (तनिक लज्जा-सी प्रतीत करके) – दाता जी ! हम तो मुक्ति के लिए इसे प्रयुक्त करते हैं, कोई विकारों के लिये तो नहीं प्रयुक्त करते ।

गुरू जी – सच्च है पर तनिक बाहर फिरकर अपने योग आश्रमों की ओर देखो, इस 'बुराईयों के जनक नशे' के पीने की आदत ने योगी आश्रमों को विकारों से भर दिया है कि नहीं ?

भरथरि – सुनता हूँ। यह बात ठीक तो है। पर तनिक-सी, जितनी मैंने ली है, दो घूँट, इससे तो एक तार ही बँधता है, नशा नहीं, बेसुधी नहीं ।

गुरू जी – इस सारी सभा में हे भरथरि ! एक तुमने थोड़ी-सी पी है, शेष तो देख लो प्याले पर प्याला बज रहा है और वह देखो कैसे लेट रहे और दुर्गन्धि फैला रहे और वह परे देखो कलेजे मुट्ठी में ले रहे हैं।

आओ तुम्हारी कुटिया की ओर चलें ।

वहाँ से उठकर भरथरि और गुरू जी भरथरि की कुटी में जा बैठे।

---

१. भरथरि बड़ी आयु का योगी था, इसलिए गुरू जी उसे बाबा कहकर बुलाते थे। जैसे पाण्डेय को सम्बोधन करते समय "बाबा इहु लेखा लिखि जाणु" कहा था ।

भरथरि – फिर पातशाह ! थोड़ी-सी पीने की आज्ञा है ? स्वभाव पड़ चुका है, इससे कुछ मस्ती आने से लग पड़ते हैं।

गुरू जी – योगी जी ! साँप सपेरों के मटकों में ही ठीक हैं, वैसे ही यह मद्य का साँप वैद्यों के शीशों में बंद पड़ा ही ठीक है। यह विष है और अभ्यासियों के लिए तो विष भी है और दूसरा भुलावा भी है।

योगी – दूसरा भुलावा मैंने नहीं समझा ।

गुरू जी – एक भुलेवा देने वाली माया है न सारे जगत की । दूसरा भुलावा नशा है, जो चाहे तो मदिरा का हो, चाहे भंग अफीम का हो। अत: नशा अभ्यासी के लिए एक और माया हो गई। इसके प्रभाव के कारण अभ्यासी को पता नहीं चलता कि जिस रंग में वह है, वह आत्मा के उन्नत होने का रंग है, कि पट्ठों तथा मस्तिष्क में और ही दशा उत्पन्न हो गई है, जो मस्ती दे रही है, पर जड़ता की ओर लिए जा रही है। 'समाधि तथा मूर्च्छा' में विवेक न कर सकना यह भुलावा अभ्यासी को नशों का प्रयोग करवा देता है। दूसरा भुलावा यह है .... !

भरथरि – फिर जो मस्ती आती है, सरूर चढ़ता है, वह तो इसके बिना प्राप्त नहीं होता ।

गुरू जी – प्रकाश के निकट जाने से प्रकाश पड़ता है। आग के निकट जाने से गर्मी बढ़ती है। परमात्मा जो सर्वज्ञ प्रकाश स्वरूप है, उसके निकट जाने से – आत्म-प्रकाश पड़ना चाहिए, होश उज्ज्वल होनी चाहिए, न कि बेहोशी, तथा मृत्यु ।

भरथरि – आपने सत्य कहा है, पर रंग कैसे जमे ?

गुरू जी – आत्मा के जिज्ञासु को अमृत की आवश्यकता है, नशा विष है। आत्म-अभ्यासी को अमृत से प्राप्त होने वाले स्वाद की आवश्यकता है, जिससे कि आपा सारी माया से ऊँचा होकर साक्षी पद में स्थिर होता और आनन्द स्वरूप होता है। भरथरि जी ! यह बात सुनकर कि आत्म रस में आनन्द देता है, उस आनन्द को मद्य का-सा नशा समझना भूल है। अमृत के व्यापारी बनो, अमृत की खोज करो, छूँछे मद्य का भाव दूर करो । यह जो नशे से रंग चढ़ता है इसे निरख-परखकर देखो, यह 'सहज अथवा ज्ञान कर रंग' नहीं है। ज़ोर से, हठ से, नशे से जो दशा अत्पन्न होती है वह 'सहज' द्वारा नहीं है। नाम का रसिक सहज रंग में होता है, उसकी लौ का तार वाहिगुरू प्रेम से बँधता है।

भरथरि – और यह जो दस घूँट पीकर अनहत शब्द सुनाई देता है ?

गुरू जी – योगी जी ! वह अनहत कैसे ? कान दबाकर जो घूँ-घूँ तुम सुनते हो, उसे खुश्क पदार्थों का सेवन बढ़ाता है, वह मद्य के अधीन हैं। नीम पीओ, भांग पीओ, मदिरा पीओ, वह बढ़ती है। यह शारीरिक अथवा प्राकृतिक खेल है।

भरथरि – फिर (सिर धुनकर) फिर, हैं ।

गुरू जी – हठयोग के अनुसार ही देखो। अनहत चक्कर जो हृदय में हठयोगी मानते हैं, उस स्थान पर स्थित योगी को कोई संगीतक अनुभवता होती बताई है, नाद होता है, हठयोगी उसे अनहत कहते हैं। कानों में अंगुलियाँ देने, नशा पीने से सुनाई देने वाली शै, तो प्रत्येक पापी, विषयी 'मूर्ख' तथा अनाड़ी पुरूष भी सुन सकता है। अनहत का सुनना तो

अनहत चक्कर वाले योगी को होता है अथवा नाम जपने वाले के दशमद्वार में टिकाव में प्राप्त होता है[१]। अनहत का साधन भी नाम स्मरण है।

भरथरि – आप सोये हुए को जगा रहे हैं।

गुरू जी – फिर हे योगी राज ! प्रत्येक वस्तु के अपने लक्षण होते हैं। वास्तविक अनहत के अनुभव वाले में भ्रम तथा भय का निवास नहीं होता[२] और सर्वव्यापक का अनुभव प्राप्त होता है। यह तुम्हें, योगी होने के नाते, पता होगा कि भ्रम तथा भय से रोग उत्पन्न होते हैं[३]।

अत: इस वस्तु के अनुभव वाले का स्वस्थ होना चाहिए। अब तुम देखो तो कानों में अंगुलियाँ अथवा और रुकावट डालकर अथवा भंग मदिरा पीकर सुनने वाले, दुख, रोग, भय, भ्रम से ऊपर उठ गए दिखाई देते हैं कि नहीं ? फिर अनहत के अनुभव वाले का लक्षण है कि उसके पंच विकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहांकर अधिकार में हो जाते हैं।

तुम अभी, भरथरि जी ! अपने साधकों और चेलों में देखो कि यह लक्षण उत्पन्न हुए हैं अथवा नहीं ?

भरथरि – सभी प्याला पीकर कहते हैं 'सुनते हैं' पर पाँचों पर अधिकार नहीं है, चाहे वे साथ नेती, धोती, न्योली कर्म भी करते हैं और विकारों से बड़ा क्रोध तो हम में बहुत भरा रहता है। फिर जब त्यागी साधकों में वे लक्षण उत्पन्न नहीं होते, तो मलिन गृहस्थियों में, जो झूठ कहते हैं और विषयासक्त होते हैं, उन्होंने जो सुना है, वह सचमुच अनहत नहीं है; वास्तव में सुनने वाले का पाँचों पर अधिकार होगा और वह भ्रम तथा भय से ऊँचा होगा ।

हाँ, यह भी ठीक है, हमारे योग मार्ग में छ: चक्कर माने जाते हैं, चौथा अनहत चक्कर है, जिसका स्थान हृदय है। वहाँ १२ दल कमल है। पहले तीन चक्कर भेदकर योगी जब चौथे चक्कर में स्थिर हो जाता है तो उसे एक अनुभव होता है, वह उसे अनहत नाद कहते हैं। जो योगी छ: में से चार को सिद्ध कर ले, अर्थात् काम के दो भाग समाप्त कर ले, यह उसके अनुभव की वस्तु तो हमारे मत ने भी स्वीकार की है, हम अब हरेक से कहते हैं कि कानों में मुँदरा पहनकर बैठ जाओ, घूँ-घूँ सुनो और अनहत हो गए। आप ठीक कह रहे हैं, श्रीमान् ! अब मैं क्या करूँ ?

गुरू जी – भूल के मार्ग का त्याग कर दो। मदिरा पीकर समाधि ! यह मानो जुआ खेलकर धन पात्र होने के आशा है। जन्म-मनुष्य का जन्म-बहुत अमूल्य वस्तु है, इसे इस तरह मत खोओ। सच्च तो यह है कि :-

---

१. प्रभु कै सिमरनि अनहद झुनकार ।। (ग: सुखमनी म: ५)
पंचम गुरू जी बताते हैं कि अनहद प्राप्ति का मार्ग भी प्रभु के स्मरण का ही मार्ग है।

२. अनहदु बाजे भ्रम भऊ भाजै ।।
सकल बिआपि रहिआ प्रभु छाजै ।। (मास सोलहे म: १)

३. पंचम गुरू जी ने बताया है, "दूख रोग बिनसे भै भरम" ।
अर्थात भय, भ्रम बिनस जाने से दुख और रोग भी बिनस जाते हैं। क्योंकि भय तथा भ्रम दुख और रोग के जनक हैं।

४. तीसरे गुरू जी का वाक्य है :-
पंच दूत तुधु वसि कीते कालु कंटकु मारिआ ।।
कहै नानकु तह सुखु होआ तितु घरि अनहद वाजे ।। (रामकली आनंद)

शुभ कर्म करो, यत्न करो कि तुम से अशुभ कर्म हों ही नहीं, इससे आगे चलो और वाहिगुरू जी की स्तुति में लगो।[१] उसकी स्तुति में रांते तुम स्वाभाविक ही वैरागवान रहोगे। फिर नाम जपो, नाम का स्मरण करो, नाम तुम्हारे अशुभ कर्म को भी शुभ कर देगा, फिर रस भी देगा । नाम के रस-रंग में आओ, नाम अमृत पीओ। इस अमृत का आनन्द प्राप्त करो।

भरथरि – फिर क्या बैकुंठ तथा मुक्ति प्राप्त हो जायेगी ?

गुरू जी – यहाँ पर, ही तो सारा चक्कर है। बाबा जी ! ज़रा सोचो, तुम हठयोग क्यों करते हो, भक्त क्यों भक्ति करता है, और अभ्यास करने वाले क्यों अभ्यास में लगे हैं, लोग इसी बात को पहले समझकर नहीं चलते। यहाँ से ही भूल होती है। प्रयोजन तो अदेश के स्वामी प्रभु से भेंट का होना चाहिए। या यों कहो कि वाहिगुरू जी की प्राप्ति के लिए सभी यत्न प्रयत्न करने चाहिए। जो वाहिगुरू जी के प्रेम का भूखा है, उसे तो मिलाप की आवश्यकता है, उसको संसार के भोगों को क्या करना है और उसने वैकुंठ को क्या करना है, वैकुंठ सुखों के भोग का स्थान है। यदि वह वैकुंठ का इच्छुक है, तो सुखों के भोग का इच्छुक है, चाहे वे सुख शारीरिक हैं, चाहे मानसिक । यदि वह मुक्ति का इच्छुक हो गया है, तो दुखों के हाथों दुखी है और उनसे छुटकारा पाने के प्रयत्न कर रहा है, वह भी सुख का ही इच्छुक हुआ। ये निजी सुख के प्रयत्न ही उधर-उधर फँसा देते हैं और लक्ष्य से हटा देते हैं। एक निरंकार से मिलने कि इच्छा धारण करो, फिर जो प्रयत्न, यत्न, साधन करो उसमें दृष्टि अपने इस लक्ष्य से न हटे कि हमने वाहिगुरू से भेंट करनी है। जिस सौभाग्यवान के अन्दर यह लक्ष्य परिपक्व हो गया है, वह न तो वैकुंठ की याचना करता है, न मुक्ति माँगता है, न ही उसे वेष धारण करने की कोई इच्छा है और न ही हठयोग के कष्ट सहने की कोई चाह होती है। जिसकी प्राप्ति का मार्ग, निरंकार के नाम का जप, नाम का स्मरण है। मिलाप की इच्छा वाले नाम के प्रेमी में स्वभावकि ही वैराग आ निवास करता है।[२] उसके क्लेश स्वभाविक ही कट जाते हैं, सुख स्वाभाविक ही उसके पास आते हैं, पर वह बेपरवाह अपने लक्ष्य की सीध पर चलता है, वास्तविक अनहत (जो निरंतर और इन कानों द्वारा सुनने से अलक्ष्य है और अन्दर बाहर सब ओर रसरूप और परिपूर्ण है[३]) जिसे कहते हैं, उसे प्रभु से के द्वार पर अनुभव होंगे पर वह भेंट की ध्वनि में परिपक्व तथा अनन्य चलता जायेगा। प्रभु के मिलाप का प्रेमी अपनी ध्वनि में लगा हुया प्रभु के पास जाता है और प्रभु से उसकी भेंट होती है। कभी भी प्रभु पातशाह के मिलाप को भुलाकर किसी अन्य बात में लुभित होकर अटककर रूका नहीं रहता। भरथरि जी ! जब दर्शन के प्रेमी ने मुक्ति को भी

---

१. गुरुवाणी के पढ़ने, कीर्तन करने, सुनने, तथा विचार से आसानी से स्तुति में लगना प्राप्त हो जाता है।

२. नाम रते केवल वैरागी सोग बिजोग बिसरजित रोग । (गूजरी म: १)

३. सु सबंद कऊ निरन्तरि वासु अलखं जह देखा तह सोई । (सिद्ध गोसटी म: १)

बपुरी समझकर उसका भी त्याग करना है तो कौनसी ऐसी वस्तु है जो उसे भी लुभाती है।[१] एक वाहिगुरू मिलाप की चाह धारण करो और उसे निभाने के लिए उसकी स्मृति में लगो और स्मृति को परिपक्व करने के लिए नाम का आँचल पकड़ो और इसी एक बात पर दृढ़ हो जाओ। अपने-आप इसको सभी फल लगते हैं । एक नाम का प्रेम, एक वाहिगुरू से भेंट का चाव, बस।[२]

भरथरि – फिर क्या महाराज के दर्शन हो जाते हैं ?

गुरू जी – यह भूल भी न पड़े। दर्शन इन नैनों द्वारा नहीं होंगे। यह नैन दृष्टमान को देखने का यन्त्र हैं। दृष्टमान मिथ्या है, निरंकार सदैव सत्य है। यह नैन चाहे खुले हुए, चाहे बेसुधी में जो कुछ भी देखेंगे वह दृष्टमान में आ जायेगा। अत: निरंकार के दर्शन हमें दृष्टमान के उलट दृष्टा पक्ष में होंगे। हम प्रेम करते-करते दृष्टमान की दूसरी सीमा पर पहुँचेंगे। वाहिगुरू, जो सम्पूर्ण दृष्टा है, हमें वहाँ अपने में आकृष्ट करेगा, हम उसके मिलाप में, संयोग में, दर्शनों में अनुभव द्वारा दृष्टापद में पहुँच जायेंगे। फिर हमारे अन्दर तथा बाहर सभी ओर उस प्रियतम का अनुभव निरंतर हो जायेगा। हम दृष्टापद में जाकर उस संपूर्ण दृष्टा के मिलाप में पड़कर, अंतस में, आत्मा में प्रतीत-अनुभव में रहेंगे और अन्दर बाहर प्रत्येक स्थान पर उसे प्रतीत करेंगे – लख लेंगे-यह निरंतर दर्शन है।[३]

भरथरि (नि:श्वास लेकर) – सच्च है। आप ले चलिए। किस तरह साथ ले चलिए, हाय चुप मत कीजिए, किसी तरह सुनाते चलिए। यह अमृत वचनों को कटोरा कभी भी मेरे कानों रूपी अधरों से दूर मत होवे। अपने चरणों में शरण दीजिए।

गुरू जी – साथ रहने का अभी समय नहीं आया, नाम जपो, समय आ जायेगा ।

: ५ :

यह उपरोक्त सिद्धांतिक वार्तालाप जो योगीराज के साथ हुआ, न जाने कितना मधुर कितना गूढ़ और कितना स्फुट, किन अदेशी ध्वनि वाले शब्दों में उसी समय हुई, उसके भाव बताने का तनिक-सा यत्न उपरोक्त वार्तालाप में किया गया है, पर हम सौभाग्यवान हैं कि उस सुन्दर अनुग्रह द्वारा किए गए वचनों का सार सिद्धांत सतगुरू जी ने संक्षिप्त रूप से एक शब्द में रचा और 'राग आसा' में गाया और दयालु पंचम गुरू जी ने उसे गुरू गंन्थ साहब जी में सुरक्षित किया, कि हमारे तक, सुष्टि के रहने तक, सौभाग्यवान जिज्ञासुओं के भाग्यों में रहे और लाभ प्रदान करे। वह पवित्र शब्द जिसका भाव पीछे आ चुके वार्तालाप में आ गया है वह यों है :-

आसा महला १ ।।
गुड़ु करि गिआनु धिआनु करि धावै करि करणी कसु पाईऐ ।।
भाठी भवनु प्रेम का पोचा इतु रसि अमिऊ चुआईऐ ।।१।।
बाबा मनु मतवारो नाम रसु पीवै सहज रंग रचि रहिआ ।।

---

१. मुकति बपुड़ी भी गिआनी तिआगै । (मारू सो० म० ५)

२. गुरा इक देहि बुझाई । सभना जीआ का इकु दाता सो मैं बिसरि न जाई ।।
पुन: -इेतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस । (जपुजी)

३. अंतरि प्रेमु परापति दरसनु । गुरबाणी सिऊ प्रीति सुपरसनु ।। (म० सोलहे म: १)

अइनिसि बनी प्रेम लिवलागी सबदु अनाहद गहिआ ।।१।।रहाऊ।।
पूरा साचु पिआला सहजे तिसहि पीआए जाकऊ नदरि करे ।
अंम्रित का वापारी होवै किआ मदि छूछै भाऊ धरे ।।२।।
गुर की साखी अंम्रित बाणी पीवत ही परवाणु भइआ ।।
दर दरसन का प्रीतमु होवै मुकति बैकुंठ करै किआ ।।३।।
सिफती रता सद बैरागी जूऐ जनमु न हारै ।।
कहु नानक सुणि भरथरि जोगी खीवा अंम्रित धारै ।।४।। ४।।३८।।

अर्थ (रहाऊ से चलेगा)-हे बाबा ! (भरथरि योगी) (यों कर कि) मन नाम का रस पीए (और यों) मतवाला हो (कि) सहज के रंग में रचा रहे, (अर्थात् नशे की बेहोशी की असहज की दशा में मन न जाए और ऐसा मद न पीए), प्रेम से बनी हुई लौ दिन-रात लगी रहे (यह हमारा) अनहत शब्द[१] है। (भाव लौ नशे से न बने पर प्रेम के भाव में लगे, यह जो प्रेम भाव की लगत हो, इसमें संगीतक लहराव - एक रसयता, एकस्वरता होती है। केवल घूँ-घूँ भंग, मदिरा के नशे से, कानों में अगुंलियाँ देने से जो उत्पन्न होती है, वह योगियों के अनुसार भी ठीक नहीं। उनके अनुसार अनहत चक्कर तक पहले (तीसरे चक्करों के बींधने की आवश्यकता है, अब सहजयोग की प्राप्ति का ढंग बताते हैं :-

ज्ञान को गुड़ बनाकर ध्यान को धावे[२] के फूल बनाकर (शुभ कर्म रूपी) छिलका डालें। शरीर को (अथवा भावना को) भट्‌टी (मदिरा निकालने के लिए) बनाएँ और प्रेम का पुचारा दें,[३] यों अमृत रस चूता है।[४]

यह (पूरा) भरा हुआ प्याला सच्चे (नाम का) जिस पर (वाहिगुरू) दया करे, उसे (यह प्याला पिलाता है, जोर, भाव, हठ, कष्ट से नहीं पर) सहज[५] सहित। (जो प्रेमी इस) अमृत का व्यापारी[६] हो, वह छूँछे नशे से (कैसे) प्रेम कर सकता है। गुरू की शिक्षा द्वारा (यह नाम रूपी) अमृत वाणी (जिसने पी वह) पीते ही स्वीकार हो गया । अथवा गुरू ने आँखों देखी बात[७] बताई है कि जिसने यह नाम अमृत पीआ वह) पीते ही (वाहिगुरू के द्वार पर) प्रमाणीक हो गया। जो वाहिगुरू के द्वार तथा उसके दर्शन का प्रेमी है, वह मुक्ति तथा वैकुंठ को क्या करे,

---

१. गुरू जी योगियों के नशे तथा समाधि की हरेक वस्तु के मुकाबले पर अपने सहज योग के अंग बता रहे हैं, अनहत के स्थान, प्रेम से बनी लगातार लौ बता रहे हैं। लौ लगी में अनहद का अनुभव होता है। अनहद के अन्य अर्थ भी करते है:-
असीम निरंकार की प्राप्ति होती है, अथवा लगातार नाम को जिन्होंने पकड़ा है, अथवा जिसमें वास्तविक अनहत ग्रहण करे। देखिए पृष्ठ ५२ कालम २ का चिन्ह।

२. इस वृक्ष के फूल मदिरा में मसाले के रूप में पड़ते हैं।

३. जब कोई अरक अथवा मदिरा निकालते हैं तो 'देग' और 'नल' 'मटका' तीन वस्तुएँ लगाते हैं। 'देग' में से वाष्प बनकर उड़ती है, वह 'नल' द्वारा मटके में जाती है, उसे दोबारा ठण्डा करने के लिए नल से आगे दूसरे बरतन के इर्द-गिर्द पानी का पुचार देते रहते हैं, अथवा जल भर कर उसे ठण्डा करते रहते हैं।

४. एक बरतन में उबलते हुए पानी की वाष्प लेकर दूसरे बरतन में वाष्प को दोबारा पानी बना लेने का चुआना कहते हैं। अथवा अरक निकालना ।

५. 'सहज की अकथ कथा है निरारी' ।

६. वह आप पीता, दूसरों को पिलाता है, यह उसका व्यापार है। (इसका) जो ग्राहक हो।

७. वाणी -बात, वचन ।

भाव वह तो दर्शन को इच्छुक है, वह मुक्ति तथा वैकुंठ दोनों की आवश्यकता नहीं रखता, छूँछे मद्य के नशे के सुख की वह कब आवश्यकता रखता है। जो वाहिगुरू की स्तुति में रच गया है, वह सदैव वैरागी है, (भाव वह वैराग सबल धारण नहीं करता, न ही उसके कारणों की खोजकर करके वैराग लाता है, वाहिगुरू की स्तुति में लग गया वाहिगुरू अनुरागी है। एक का अनुरागी दूसरे से स्वाभाविक ही वैरागी होता है, अत: नाम का प्रेमी जगत से स्वाभाविक ही वैरागी होता है और नाम तो नित्य जारी रहना है इसलिए वैराग स्वाभाविक ही निरंतर हो जायेगा। इस तरह का वैरागी फिर छूँछे मद्य से प्राप्त बेहोशी आदि) जूए (समान व्यर्थ खेलों में) जन्म व्यतीत नहीं करता। गुरू नानक जी कहते हैं, हे भरथरि योगी ! सुन वह (प्रभु के द्वार के दर्शन का प्रियतम छूँछे नशें में नहीं, पर नाम) अमृत धारण करके[१] (पीकर) मस्त रहता है।

इस तरह के वार्तालाप के पश्चात् गुरू जी वहां से विदा हुए। परन्तु वहाँ प्रेमी इतने हो गए और इतना प्रेम बढ़ा कि गुरू द्वारा स्थापित हुआ और सत्संग का प्रवाह चल पड़ा। "हकीकत राह मुकाम" में लिखा है : 'तहाँ गुरू बाबे का देहुरा है'।[२]

सूचना - अनुमान है कि सिंहल द्वीप से वापिस जापा पट्टन से सवार होकर नागा पटटन, बीजापुर, बंगापुर तथा कजलीबन से होते हुए देशाटन करेते हुए फिर पश्चिम की ओर होकर बम्बई के इलाके से गुज़रकर कच्छ सिंध से होकर आए हैं। अनेकों लोगों का उद्धार हुआ और अनेकों स्थानों पर आपके चिन्ह विद्मान हैं।

पुरातन जन्मसाखी ने आगामी मखदूम वाली वार्ता कौडे राक्षस के बाद तथा सिंहल द्वीप से पहले लिखी है। मखदूम का स्थान दक्षिणी पंजाब तथा सिंध के समीप है। इसलिए यही अधिक रूप से सम्भव है कि गुरू जी सिंहल द्वीप से लौटकर वापिस पश्चिमी हिंद में यात्रा करते हुए सिंध प्रदेश में आ निकले और मखदूम वाली साखी कहीं सिंध नदी के किनारे अथवा समुद्र के किनारे घटी। अत: यहाँ रखी है।

□ □

१. अथवा नाम अमृत की धारा पीकर मस्त होता है।

२. अब खोज करनी चाहिए कि जो गुरूधाम पंचम गुरू के समय था, वह अब है कि नहीं।

६८ मरवदूम

: १ :

सिंधु अथवा समुद्र है, किनारा है, सुन्दर स्वच्छ रेत स्थल, मानो किसी ने धो-सँवारकर रेत का फर्श बिछाया है। ऊपर एक स्थान पर मुसल्ला (वह दरी या चटाई जिस पर नमाज़ पढ़ी जाती है) बिछा है जिस पर एक मुसलमान फकीर बैठा है, जो भर आयु का है। माथे पर कुछ रजोगुणी प्रसन्नता भी रखता है; आँखों से कुछ एकाग्र-सा हुआ भी लगता है। रेतस्थल पर खेल रहा है। खेल बालकों जैसे नहीं और न ही युवकों का-सा शारीरिक व्यायाम है, पर खेल चेटकी फकीरों के से हैं-मुसल्ले को रेत पर चलाए फिरना, समुद्र के ऊपर ले जाना, तैराते फिरना, जब अपनी इस प्राप्ति का कौतुक देखना, तो प्रसन्न होना, हँसना। ये खेल कुछ खेल थे, कुछ अभ्यास और दूसरे मानसिक शक्ति को बढ़ाने के प्रयत्न थे। एकाएक यहाँ श्री गुरू नानक देव जी आ प्रकट हुए। फकीर ने सिर उठाया, देखा और ससत्कार कहने लगा - "सलाम अलेक दरवेश।" आगे से श्री गुरू नानक जी ने कहा - "कुरैशी मरवदूम जी! सलाम अलेख।" तब फकीर ने नैन उठाकर देखा और आगे बढ़कर गुरू नानक का हाथ चूमा, फिर मुसल्ले पर बैठाया और कहने लगा- "आप फकीर हैं, फकीर भ्रमण से स्नेह रखते हैं, आइए, आपको समुद्र का भ्रमण कराएँ।" तब गुरू जी ने कहा - "मरवदूम ! किश्ती तथा बेड़ा कोई नहीं, समुद्र का भ्रमण कैसे करें?" तब फकीर ने कहा, यह मुसल्ला जल पर तैरेगा।"

गरूजी - अच्छा ! यों तैरते हुए कभी समुद्र में कुछ देखा भी है ?

फकीर - एक बार एक गोलाकार स्तम्भ देखा था।

गुरू जी - फिर जाओ, उसकी सैर कर आओ, हम यहाँ बैठे हैं, जब तुम वापिस लौटोगे तो वार्तालाप करेंगे ।

फकीर - सत्य वचन, मैं जाता हूँ, यह कहकर चल दिया ।

: २ :

देखिए, आज फिर श्री गुरू नानक देव जी उसी रेतस्थल पर बैठे हैं, सैदो और सीहों दो सेवक जो इस यात्रा के समय साथ थे, कुछ दूरी पर बैठे हैं। सैदो धीरे-धीरे मधुर धुनि से गुरुवाणी का पाठ कर रहा है। सुन्दर शीतलता तथा सुहाव पसर रहा है कि पीर मरवदूम दिखाई देने लगा। फिर आप नैन खोलकर देखा, गुरू नानक का दर्शन किया। कहने लगा, "सलाम !" पर गुरू बाबे ने पूछा- "हे फकीर ! समाचार बता ?"

फकीर - आप सब कुछ जानते हैं। आपके ही दासों की कृपा से अब की बार आपके पास पहुँचा हूँ, अन्यथा सारी शक्ति समाप्त हो गई थी।

गुरू जी ने कहा - कैसे ?

पीर – स्वामी जी ! जब मैं उस स्तम्भ वाले स्थान पर पहुँचा, सायंकाल का समय था, बीस पुरुष वहाँ थे, सभी भक्ति में लगे हुए थे, मैं भी प्रणाम करके बैठ गया। जब रात बढ़ी, तब खाने के इक्कीस बरतन उतरे, सभी ने, मेरे सहित खाना खा लिया। रात को मैंने क्या देखा कि सभी पुरुष ईश्वर की बंदगी करते रहे। दिन चढ़ने पर वे सारे चले गए और मैं शेष रह गया। कोई एक पहर दिन चढ़ने पर एक जहाज़ वहाँ से निकला और वह डूबने लगा। मैंने प्रभु के आगे प्रार्थना कि – 'कि यह न डूबे।' तब मेरी प्रार्थना पर वह न डूबा। फिर रात हुई तो वे प्रभु के प्रेमी बीस सज्ज़न वहां आ पहुँचे, पर आज रात खाना नहीं उतरा। हाँ, वे सारे वैंसे ही भक्ति करते रहे और सवेरे चले गए। मैं वहाँ ही रहा, क्या देखता हूँ कि स्तम्भ ही गिरने लगा है, फिर मैंने करबद्ध प्रार्थना की – "मेरे बैठे हुए स्तम्भ मत गिरे।" अतः मेरी प्रार्थना से स्तम्भ भी न गिरा। रात को फिर वे बीस प्रभु के प्यारे वहां आ गए, पर आज रात भी खाना नहीं उतरा । तब उनमें विचार हुआ कि 'हममें से किसी एक से प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध कोई बात हुई है, जिसके कारण दो दिन से भोजन नहीं आया । पर अच्छा, प्रभु अपनी आज्ञा को मीठी बनाकर मनवाये, हम उसके धन्यवाद में निवास करें।' तब मैंने उन्हें बताया कि "हे प्रभु के प्रेमियो ! मैंने दो शुभ कर्म किये हैं–एक डूबता जहाज़ बचाया है, एक यह स्तम्भ बचाया है।' तब उनमें से एक ने पूछा–"तेने बचाये हैं ?" मैंने कहा –'हाँ, मैंने बचाये हैं।' तब उन्होने पूछा–'तू कौन है ?' मैंने बताया–'मेरा नाम मखदूम बहावदी पीर है'; तब उन पुरुषों ने कहा –'अरे दरवेश ! यहां पीरों, पातशाहों का कोई स्थान नहीं; पीर तथा पातशाह संसार में शोभा देते हैं और प्रभु के मार्ग का द्वार नम्र है और पीरों पातशाहों का सिर ऊँचा है।'[१] तब मैं लज्जित होकर चल पड़ा, मुसल्ला चलाया, पर मुसल्ला समुद्र के बीच में अटक गया, डूबा नहीं, पर चले नहीं। मुझे जल पर बैठे कोई चार पहर व्यतीत हो गये। जब सूर्यास्त होने लगा तो वे बीस सज्जन फिर आये, मुझे देखकर कहने लगे–'हे ईश्वर के प्यारे ! तू क्यों जल पर बैठ रहा है, रात हो रही है।' तब मैंने कहा–'जी ! मैं क्या करूँ ? मेरा मुसल्ला चलता नहीं, यहाँ पर ही रह गया है ।' तब उन्होंने–जिसका मुझे अब पता चला कि आपके सिक्ख थे– कहा कि 'सतगुरू नानक का अराधन कर, जिससे तेरा मुसल्ला चले।' हे मधुर सतगुरू नानक ! फिर मैंने आपका आराधन किया, तो आपके पास आ पहुँचा ।

गुरू जी –फिर पीर जी ! तुमने कुछ देखा भी ।

पीर – जी ! आप सब कुछ जानते हैं, आपके दासों की कृपा से यहाँ फिर आपके पास आ पहुँचा हूँ।

गुरू जी ने फिर पीर की ओर एक दया दृष्टि डाली, और उच्चारण किया –

"सऊ ओलाहमे दिनै के राती मिलनि सहंस ।।
सिफति सलाहणु छडिकै करंगी लगा हंसु ।।"

(वार सूही म०२)

तब पीर ने चरण चूमे और कहा, "पातशाह ! यह क्या घटी ?"

---

१. पुरातन जन्मसाखी ।

गुरू जी – हे ईश्वर के प्यारे ! तू किंन कामों में लग पड़ा, परिश्रम किए, कष्ट सहन किए, मन को एकाग्र किया, पर किस पर एकाग्र किया? माया पर, जो संसार में ऋद्धियों – सिद्धियों वाला होकर बिचरे ? दृष्टि तो संसार के ऐश्वर्य में ही रही ? एकाग्र होना था तो प्रभु में और यदि आनन्द प्राप्त करना था तो वाहिगुरू की स्तुति तथा उसके कीर्तन का लेना था जिससे दृष्टि उच्च होकर संसार से उद्धार हो जाता; यदि मुसल्ले चल पड़े तो क्या प्राप्त हुआ ? यदि उपकार में लगा और जहाज़ बचाया तो प्रभु की दया देखी पर अन्दर हऊमैं "जहाज़ और स्तम्भ मैंने बचाया है" पलकर खड़ी हो गई। तूने रक्षा की तो तू ही हुआ, रक्षा करने वाला प्रभु कहाँ रहा ? देख फिर तेरा सारा बल व्यय हो गया, शक्ति रह गई, फिर मुसल्ला चलने से रह गया। यदि प्रभु के साथ एकाग्र होता, प्रभु का आज्ञा में अपनी इच्छा को मिला देता, फिर प्रभु की शक्ति सभी काम आप सँवारती, जो प्रभु आज्ञा पूरी होती। तू किन कामों में लग रहा है, जिसमें हऊमैं की मुर्दनी छा रही है। ऊँचा उठ ! जगत में वाह – वाह हो गई सिद्धों में गणना हो गई तो क्या मिला –

चंगा नाऊ रखवाइकै जसु कीरति जगि लेइ ।।
जे तिसु नदरि न आवई त बात न पुछै के ।।

फिर सोच, जगत तो सदैव है भी नहीं ।

करि सिदकु करणी खरचु बाधहु लागि रहु नामे ।।१।।

(सिरी राग म० १)

नहीं तो कौन है जो यहाँ टिका है ? सब चलते हैं।

तब ईश्वरीय कंठ खुला और परम वैराग में यह नाद हुआ :-

"मुकाम करि घरि बैसणा नित चलणै की धोख ।
मुकामु ता परु जाणीऐ जा रहै निहचलु लोक ।।१।।
दुनीआ कैसि मुकामे ।"

(सिरी राग म० १)

अब पीर पर वैराग छा गया, सिद्धियों की काई वाली हऊमैं गिरी, पर सच्च से आँख – देखते हुए भी – परोक्ष रही, न समझा कि यह ईश्वरीय ज्योति है, इससे निस्तार माँगू। कहने लगा – "मैं क्या करूँ, जिससे उच्च निर्मल जीवन जीऊँ ?" सतगुरू जी मुस्कराये और कहने लगे – "पीर (गुरू) धारण कर।" तब पीर ने पूछा – "जी किसे धारण करूँ ?" तब सतगुरू जी ने कहा, "जा शेख ब्रह्म (फरीद सानी) से पूछ, उसने किसे किया है।"

पीर सीस झुकाकर चला गया, पीछे सैदो ने पूछा – पातशाह ! यह फकीर शक्तिवान है, इसने बेड़े तथा स्तम्भ की रक्षा का उपकार किया था, इसकी शक्ति क्यों समाप्त हो गई? तब गुरू जी ने बताया कि यह तपस्वी मन को पदार्थों तथा उनकी प्राप्ति पर एकाग्र तो करता रहा है, पर ठिकाने से चूकता रहा है। जब मन एकाग्र हो जाए, तो बलवान हो जाता है। जिस वस्तु पर एकाग्र हो, वह प्राप्त होने लगती है। पर मन का निर्मल होकर आपे के रस तथा वाहिगुरू के रस में अमृत पान करने वाला रसिक हो जाना बहुत उच्च बात है और इस रस के रसिक सिद्धि तथा करामातों से स्नेह नहीं लगाते। पी अच्छा है परिश्रमी है, पर दृष्टि को

वैराग से धुलकर उच्च घर में उठने की आवश्यकता है। शक्ति यों रह गई कि स्तम्भ तथा बेड़े की रक्षा करने में जो बल लगा, वह इसकी सामर्थ्य की अपेक्षा अधिक काम था[१] और इसका बल तो सीमित था, वाहिगुरू का बल असीम है, उस सर्व समर्थ के साथ यह अंतस में एक स्वर नहीं हुआ था, उसकी आज्ञा के स्वर में इसकी इच्छा का स्वर एक स्वर नहीं हुआ था, जिससे इसका असीम बल इसमें आ सकता ।

: ३ :

अब पीर मुसल्ला फेंककर उदासी तथा प्रसन्नता में सिर धुनता हुआ शेख ब्रह्म के पास पहुँचा, जिसे लोग फरीद जी कहा करते थे, अपना सारा समाचार कहा। बताकर कहने लगा–हे ईश्वर के प्यारे ? मैं क्या करूँ, जिससे मुक्त होऊँ ? यह जगत तो रहने का स्थान नहीं, स्थान कोई और है। वहाँ के निवास के ढंग का पता नहीं चला। तप, हठ, भक्ति सभी कर चुका हूं, अंतस शक्ति आ गई है, पर जो कुछ उस स्तम्भ के पुरुषों को देखा और जो कुछ बाबे नानक ने बताया, उससे जी उपराम है कि मैं सचमुच किस ओर लग रहा हूँ। वह श्लोक जो बाबा ने कहा, कानों में गूँजता है :-

"करंगी लगा हंसु ।"

इस हिसाब से तो मैं मुर्दों को खाने वाला हुआ न ?

ब्रह्म – हे साईं जी ! गुरू जी ने तो तुझे हंस कहा है, मुर्दा खाने वाला गीध तो नहीं कहा। तू क्यों उदास है ? तू तो हंस है, पर तू करंक में लगा है। ऋद्धि-सिद्धि में लगना, माया में लगने के तुल्य है, माया मुर्दा है, अत: अपने-आप मुर्दार से लगना हो गया। हंस का काम है मानसरोवर पर रहना। मानसरोवर बहुत ऊँचे पर्वतों पर स्थित है, निर्मल है, रसदायक है। अत: गुरू जी ने तुझे हंस कहा है, जिधर तू लगा है उसे करंक कहा है ।

पीर – सच्च है, गुरू जी बहुत शक्तिवान हैं ।

शेख – शक्तिवान तो हैं, पर जो प्रेम की नदी के समान भर-भरकर बह रहे हैं, वे देखे हैं क्या ?

पीर – मैं तो उसकी शक्ति के आगे झुका हूँ। प्रयत्न पूछा तो उन्होंने तुम्हारा पता दिया ।

शेख – नैन भरकर –

"दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि ।।
इकि जागंदे ना लहंनि इकना सुतिआ देइ उठालि ।।१।।

(सिरी राग वार म० १)

पीर – वह कैसे ?

---

१. जैसे कि पंचम गुरू जी की वाणी में भी आया है –
जे कोऊ अपुनी ओट समारै ।।
जैसा बितु तैसा होइ बरतै अपुना बलु नहीं हारै ।।१।। (धनासरी म० ५)

शेख – में भी तो तपों, हठों में ही मर रहा था, मेरा अंधकार भी उन्होने ही काटा था। रस के देश में उन्होंने ही तो पहुँचाया था। तू प्रत्यक्ष देखकर उनके चरणों पर क्यों न झुका। जगत का गुरू तो वही था, और कौन-से गुरू की खोज करने चला है ? प्रभु के रंग ! तेने देखा, तेने जाना, शक्ति को पहचाना, झुका, चरण चूमे, पर यह न जाना कि यही गुरू है, पीरों-का-पीर है।

पीर (हौका लेकर) – मैंने देखकर भी न देखा, मैं जागकर सो गया, मैं जानकर फिर भूल गया ... हाँ, उन्होंने कहा था जिसे शेख ब्रह्म ने गुरू धारण किया है।

शेख – मुझे तो शीतलता उन्हीं से प्रांप्त हुई है, अत: तू भी उन्हीं के दर्शनों की चाह धारण कर, प्रेम में आकृष्ट होता रह और जो आज्ञा वे कर गए हैं, उसकी कमाई कर।

पीर – मुझे तो कुछ बताकर नहीं गए। यह सुनकर शेख के नयन भर आए कहने लगा :-

जो समाचार तुमने आप मुझे सुनाया है, उसमें बताया है कि उस 'रसरंगी सौन्दर्य' ने उच्चारण किया था :-

"करि सिंदकु करणी खरचु बाधहु लागि रहु नामे ।"

(सिरी राग म० १)

यह आज्ञा नहीं थी तो और क्या था ? इसकी कमाई कर। फिर मिलेंगे, उनका विरद है कि मिलेंगे, यदि मिलेंगे तो अनुग्रह होगी और ईश्वरीय रस पड़ेगा, आनन्द में मग्न होगा। इस रस में अनुग्रह द्वारा मग्न हुआ जाता है। अनुग्रह है, अनुग्रह है, गर्व नहीं, जोर नहीं, हठ नहीं, रस अनुग्रह है, आनन्द में प्रवेश अनुग्रह है।

पीर (नैन भरकर)-मैंने देखा, पर नहीं देखा; मैंने सुना पर न सुना । मुझमें क्या कमी थी कि द्वार पर पहुँचा पर यात्रा समाप्त न हुई। मैंने प्राप्त करके भी प्राप्त न किया; समझता तो रहा, पर समझ न खुली। हाँ, भाग्य ! हाँ भाग्य की दुर्लभता ।

शेख – यह शोक का समय नहीं, नैन सौभाग्यवान हो गए, जिन्होंने गुरू नानक को देखा, सफल हुए कान जिन्होंने उसे सुना। तेने देखे हैं, तेने प्राप्त किया है, सँभाल, चित्त के देश में गुरू नानक के पास बैठ प्रेम सहित एकाग्र हो, जो कुछ कह गए हैं, उसकी कमाई कर, फिर मिलेंगे ।

पीर यों गुरू नानक के सँवारे हुए शेख की शिक्षा तथा आशीर्वाद लेकर अपने डेरे पर चला गया और अब उच्च ध्यान और स्मरण में लग गया तब तक लगा रहा जब तक की साखी बताई जाती है कि गुरू जी मुलतान गए थे और मुलतान के पीरों ने दूध का कटोरा आगे लाकर रखा था। तब अचल से मुलतान को जाते हुए मार्ग में एक जंगल में ठहरे हुए थे कि मखदूम सुनकर धाकर आ पहुँचा और एकान्त में आ मिला । तब दया हुई तो फकीर, जो चिरकाल से नाम जपता था, वैराग के रस में था, अब नाम के उच्च रस में आया[१] और आनन्द में मग्नता

---

१. मखदूम जी कि अन्त के समय की गुरू नानक के पास प्रार्थना भेजनी और सतगुरू जी का उत्तर देखिए ग्रन्थ का ११वाँ भाग प्रसंग ५०, शीर्षक 'मखदूम बहावदीन'।

के देश की सूझ हो आई।[1]

□ □

१. मखदूम रूकनलदीन अब्बुलफतह सय्यद जलालसानी उच्च के पीरों में हुए हैं। पहला जलाल ६९० हिजरी में था। उसका छठा अथवा सातवाँ उत्तराधिकारी यह था, जिसका समय गुरू जी के साथ आ मिलता है।

पुरतन जन्मसाखी में यह साखी मखदूम बहावद्दीन कुरैशी के साथ हुई बताई है। फिर दूसरी बार मखदूम बहावदी का उल्लेख आया है तो उसकी मृत्यु के समय उसने गुरू जी को लिखा है कि जब आप संसार से चलेंगे, तब हम भी साथ चलेंगे, इक्ठे ही ईश्वर के पास पहुँचेंगे । तब गुरू बाबे ने उत्तर भेजा कि तुम चलो, हम चालीस दिन पश्चात् आयेंगे तो पीर रोया, कि चालीस दिन अन्धकार में रहना पड़ेगा। हे मित्रो ! मैं उन दिनों को रोता हूँ कि वे कैसे गुजरेंगे। यदि वे चलते तो सकुशल प्रकाश से जाते। यहाँ मखदूम बहावदीन को मुलतान का निवासी लिखा है। यदि पुरातन जन्मसाखी वाला मुलतानी मखदूम सतगुरू को मिला है तो सम्भव है वह बहावदीन मुलतानी का उत्तराधिकारी था। यदि उच्च का था तो यों है कि भाई संगत सिंघ जी को भाई लखमी चन्द, जो पच्चास वर्ष उच्च के पीरों के पास रहे हैं और उनके इतिहास के पाठक हैं, ने बताया कि जब गुरू नानक जी मक्के गए तब मखदूम रुकनदीन, बहावलहक्क का चेला बहावदीन, साहबजादा बालका जतीलाल और शेख ब्रह्म-ये चारों फकीर भी वहाँ थे और वहाँ गुरू जी के साथ गोष्ठी हुई थी। उसमें एक पीर बहावदीन हक्कानी हुए हैं। अत: ये बातें अधिक खोज के योग्य हैं।

पुरातन जन्मसाखी में गुरुमुखों वाली साखी समुद्र के किनारे तथा समुद्र में लिखी है, पर एक स्थान पर 'दरिया' पद का प्रयोग किया है। यदि कभी मखदूम जी कोई उच्च वाले पीरों में से थे तो वह नगर सिन्ध नदी के निकट है। आगे वे मुसल्ले पर चढ़कर समुद्र में जाते हैं, जहाँ गुरुमुखों के दर्शन होते हैं। आश्चर्य नहीं कि यह स्थान सक्खर के पास का नदी के बीच खड़ा, साधु बेले वाला स्थान हो, पर स्तम्भ का उल्लेख होने के कारण समुद्र लगता है और स्तम्भ से भाव समुद्र के प्रकाश स्तम्भ से है। पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि जब मखदूम गुरुमुख पुरुषों से वापिस लौटा तो उसका मुसल्ला समुद्र पर नहीं तैरता था। आगे लिखा है 'तब उन सिक्खों ने कहा, सतगुरू नानक का नाम लिख जिससे तेरा मुसल्ला चले। तब सतगुरू नानक लिखा, तब तखदूम बहावदी का मुसल्ला चला। तब बाबा के पास आया, प्रणाम करके बैठ गया । तब बाबा ने पूछा, मखदूम बहावदी क्या देखा? तब मखदूम बहावदी ने कहा, 'जी, तू सब-कुछ जानता है, तेरे दासों की कृपा से तेरे पास आ पहुँचा हूँ।' इससे सिद्ध होता है कि वे लोग, जिनके पास फकीर गया था गुरू नानक देव जी के सिक्ख थे और इससे अनुमान लगा जाता है कि किस उच्च स्तर के गुरुमुख गुरू जी ने पैदा कर दिये थे, जो करामाती फकीरों को भी सुमति देते थे ।

६९ झोंपड़ी ढाही[१]

दक्षिण देश से चलकर सतगुरू जी एक नगर में आए। वर्षा हो रही थी, शीतल वायु चल रही थी, सर्दी कंपा रही थी। इहलोक तथा परलोक के स्वामी को किसी ने आदर न दिया, किसी ने अन्न-जल न पूछा, न ही किसी ने आपका स्थान-ठिकाना पूछा। नगर के बाहर एक बाढ़ी एक झोंपड़ी में रहता था, उसने आपको देखकर सीस झुकाया 'स्वागतम्' कहा। उस झोंपड़ी मे गुरू जी को उसने डेरा करवा दिया, उसने टूटी हुई चारपाई पर एक चटाई बिछा दी। गर्म जल से मुँह-हाथ धुलवाया और फिर अपने हाथों से आपके चरण धोए, फिर उस प्रेमी ने चरणों को दबा-दबाकर नेत्रों में जल भरकर चरणों को पोंछा। फिर उसने अपने हाथों से मक्की की रोटी पकाई, शाक के साथ गुरू जी के आगे रखकर रो-रोकर विनय की :

"हे दाता ! यह आपके योग्य नहीं, पर मेरे पास तो यही है ।

हे गोसाईं ! यहीं स्वीकार कीजिए, मुझ गरीब से यही भेंट लीजिए ।"

अनाथों के नाथ, सतगुरू, नानक जी, जो नीचों पर तुष्ट होते हैं, वे जग के उलटे कर्म भी सीधे कर देते हैं। वह गुरू नानक प्यार करता है, चरणों से लगाता है, आशा-तृष्णा को दूर करता है।

वह प्यारा सदैव नीचों को मान देता है और चरणों से लगा लेता है।

उस गुरू नानक ने उसे प्यार देकर 'सत करतार' कहा। "धन्य दाता, धन्य दाता' कहकर आपने एक रोटी उठाई। प्रभु जी ने सैदो की ओर देखा और कहा, 'हे प्यारे ! तू ले । इसे प्रभु की देन समझ और हृदय में प्रभु का स्मरण कर।' दूसरी रोटी उठाकर सींहा को दे दी और कहा, "धन्यवाद करो, इसे प्रभु की देन समझकर, दाता का स्मरण करो, धन्यवाद करके, प्रभु की देन को प्यार-सहित खाओ, उस प्यारे के प्यार में, प्यार-सहित पकाई हुई रोटी खाकर उसका धन्यवाद करो।" सैदो के अश्रु भर आए और रोंगटे खड़े हो गए। गदगद होकर सतगुरू जी की ओर देखने लगा और मुँह से धन्यवाद करने लगा। कहने लगा, "आप हे गरीब नवाज़ ! आप धन्य हैं, अदेश से आए हैं, आपने आकर दीनों को अपने चरणों के साथ लगाया है और छोटों को बड़ाई दी है।" यह कहकर हृदय में धन्यवाद भर गया और दोनों ने सुख प्राप्त किया। वह अन्न प्यार-सहित खाया और उसमें से अमृत का स्वाद मिला । फिर सतगुरू जी ने वह प्यार वाला अन्न अपने मुँह में डाला फिर बाढ़ी ने सतगुरू का दिया हुआ अन्न धन्यवाद करके खाया। चारों ने मिलकर रात को वहीं उसी झोंपड़ी में विश्राम किया और अदेशी ज्योति ने टूटी हुई फूस की चारपाई पर आराम किया। जब दिन चढ़ा, सतगुरू जी उठे तो उन्होंने चारपाई तोड़कर फेंद दी और अपने हाथों से उसकी झोंपडी गिरा दी। यह कौतुक करके गुरू जी चल दिए। शनैःशनैः चलकर आ गए। मार्ग में एक-दो दिन व्यतीत हुए, फिर एक स्थान पर ठहर गए। फिर गुरू जी आगे को चल पड़े, सैदो अति घबड़ाया । सैदो करबद्ध हो गया और

---

१. यहाँ कवि की पंजाबी कविता का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

मुँह से यह वाक्य कहे, "हमें न तो किसी ने कोई जगह दी और न ही जल–पानी पूछा। वहाँ किसी ने भी आदर न दिया और जो भी हमें मिला वह झगड़ा करने वाला ही मिला । पर जिसने रात को विश्राम के लिए स्थान दिया, भोजन कराया, उसकी चारपाई भी तोड़ डाली और झोंपड़ी भी ढाह दी। उसकी नेकी के बदले में जो कुछ आपने किया है, वह मेरी समझ में नहीं आया । मैं अधीर हो रहा हूँ, हृदय मेरा पीड़ित होता है, न जाने आपने क्या कौतुक रचा है"? तब सैदो के हृदय की पीड़ा सुनकर जगन्नाथ जी मुस्कराये। जहाँ आप खड़े थे, वहीं पर आप पालती मारकर बैठ गए। कहने लगे, "सैदो तू उसी स्थान को वापिस लौटकर चला जा। कारण जानने की अपेक्षा तू आप ही जाकर उसे देखकर आ ।"

वहाँ से वापिस फिर सैदो उस स्थान पर आया, जहाँ खाट तोड़ी थी और झोंपड़ी गिराई थी। क्या देखता है कि वहाँ मज़दूरों की एक भारी भीड़ लगी हुई है। वहाँ एक सुन्दर भवन का निर्माण हो रहा है। खोज करके वह उस बाढ़ी से मिला, उसने भी सीस झुकाया। बड़ा चाव भरकर उसने आदर दिया; और बलिहारी होने लगा। सैदो ने कहा "भाई सज्जन बता ! यह क्या रंग बनाया है। झोंपड़ी के स्थान पर सुन्दर भवन का निर्माण कैसे करवा रहा है ?"

उसने करबद्ध उतर दिया, "हे सन्त जी ! यह सब गुरू नानक की माया है। जिसने गिराया था, तोड़ा–फोड़ा था, वही इस मन्दिर का निर्माण करवा रहा है। जब आप सारे मेरी झोंपड़ी को ढहाकर चले गए थे, तब मैं प्रसन्न हुआ, इसी आज्ञा में रहने से सुख है। जो गुरू ने किया है, वह शुभ है, गुरू को अभूल कहा जाता है। उसने मुझे आज्ञा का पालन करना ही सिखाया है, इसलिए मेरे लिए तो आज्ञा का पालन करना ही बनता है। फिर मैंने कसी लेकर, एक नया गढ्ढा खोदना चाहा। मेरी इच्छा हुई कि दोबारा लकड़ी के स्तम्भ गाढ़कर एक नई झोंपड़ी बनाऊँ। क्या देखता हूँ के खोदते समय धन माल से भरे हुए कुछ बरतन निकल आए। मैंने साहस बटोरकर उन्हें बाहर निकाला और मुझे गुप्त कोष प्राप्त हुए। उस धन को सम्भालकर मैं गुरू जी का यश गाया और सुख प्राप्त किया। मैंने निश्चय किया कि अब आपके नाम पर एक धर्म स्थान का निर्माण करवाऊँ। आने–जाने वाले पथिक यहाँ आकर सुख प्राप्त करें और सत्संग कर निर्माण हो जाए। यहाँ पर प्रभु का नाम जपा जाए और कीर्तन के रंग लगें ।

यह सुनकर सैदो वहाँ से भागकर आया और गुरू जी के पास आया। चरणों पर गिरकर सीस झुकाया और आँखों देखा समाचार कह सुनाया। सुनकर सीहां भी रोता हुआ, धन्यवाद करता हुआ, चरणों पर आ गिरा, "धन्य नानक ! तू सतगुरू नानक !!! आपके दर्शन करने से पाप दूर होते हैं।" ईश्वर तथा गुरू के कौतुक ऐसे हैं कि हमारी समझ में नहीं आ सकते, हमारे भरोसे रहित हृदय बेकार ही घबड़ाता है। गुरू जो कुछ करता है, वह सुहावना ही करता है, उसका फल मीठा होता है, हमने उसकी आज्ञा को नहीं समझा, उसकी आज्ञा का चिट्ठा हमने नही पढ़ा। हमें उसकी आज्ञा की कोई समझ नहीं, हम बेकार ही हौकें भरते हैं। उसकी आज्ञा के साथ हमारा प्रेम नहीं है, हम हृदय में क्रोध भरे रहते हैं। हमें प्रभु की आज्ञा में खेलना चाहिए, उसी में लौ लगानी चाहिए। वह जो कुछ कर रहा है, भला कर रहा है। हम यह प्रार्थना करें कि हे प्रभु ! हमारे पर अनुग्रह करके हमें यही दान दे कि हम सदैव तेरी आज्ञा में रहें।

जो तेरी आज्ञा है। उसे मीठा करके मानें जो तेरी ओर से घटे, उसे हम सुख समझें। जो हो रहा है होता चले, हम चोट न खाएँ। उसे तेरी आज्ञा मानकर डोलें मत और सदैव अचल रहें। फिर चाव सहित तेरे नाम रंग में रांते रहें। सदैव तेरी अनुकंपा, तेरा सहारा हो और सदैव तेरे ही कहलाएँ।

अदेशी दाता जी की तीसरी उदासी

सतगुरू नानक देव जी की स्तुति[१]

अनाथों का एक तू ही नाथ है, और हे नाथ ! सनाथों की भी तू ही टेक है।

निराश्रय का तू आश्रय है, निमानों को तू मान देता है, ग़रीबों का रक्षक है। जो पृथ्वी पर गिरे हुओं को कण्ठ से लगाता है। हे गुरू ! तू जब कभी किसी डूबते हुए को देखता है तो तू रक्षा करता है और तारकर पार पहुँचा देता है। तू बिगड़े हुओं को संवारता है और संवरे हुओं को श्रृंगारता है और श्रृंगारे हुओं को प्रभु के कण्ठ से मिला देता है।

हे प्रभु ! आप तुष्ट होवो ? हम पर कृपा कीजिए, हम दुखी हैं। हमारा उद्धार करो, हमारी रक्षा करो, अपने आँचल के साथ लगा लो। हे रक्षक मैं आप पर बलिहारी हूँ, आप शरण में आए हुओं को मान देते हैं। हम आपके द्वार पर आ गए हैं, हमारी रक्षा करो और गिरे हुओं का उद्धार कर लो ।

सूचना – इस तरह चलते-चलते फिर कर्तारपुर आ गए। पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि 'तब घरि आए। कोई दिन घरि रहे'। अब घर से तात्पर्य कर्तारपुर है जो इस जन्मसाखी के अनुसार पहले बसा गए हुए हैं। कुछ दिन कर्तारपुर में रहकर देश में दूर निकट थोड़ा थोड़ा फिरते रहे। फिर तीसरी उदासी उत्तर खण्ड की की। पिछली बार माता-पिता का उद्धार करके बाहर गए थे, अब सास-ससुर का उद्धार किया, जिसका कुछ समाचार आगामी प्रसंग में है।

□ □

१. यहाँ कविता का अनुवाद प्रस्तुत है।

७० अजिता रंधावा

माली ही फूल लगाता है, माली ही उनका पालन करता है; माली ही उन्हें शाखों से काटकर अलग करके दिखवाता है, उन्हें फूलदान में सजाता है; फिर आप ही फूलदान में से उन्हें हटा देता है। अरे बेसुध ! तू क्यों नहीं सोचता कि यहाँ सदा नहीं रहना। इस बाग में मस्ती से झूमना उचित नहीं है। सारी रात व्यतीत हो गई है, तारे लटकने लगे हैं, प्रातःकाल हो गया है, पर बेसुध ! तेरे नैन मुँद रहे हैं। उठ, जाग ! तैयारी कर, घड़ियाल घण्टे बज रहे हैं; पर तेरे पलंग, तेरी सेजा अब भी सजी हुई है। हे बेसुध ! यात्रा बड़ी लम्बी है ! अब समय है, तोशा बना ले। यदि यह समय भी सोकर व्यतीत कर दिया तो यात्रा बड़ी कठिन हो जायेगी। उठ जाग, उठकर बैठ ! अमृत की फुहार बरस रही है; हृदय रूपी कमल को सीधा कर, हे प्यारे भर-भर कर पी और पी-पीकर मस्त हो जा, मस्त होकर आपे की पींघ में चढ़कर आपको जानना, प्यारे का आनन्द प्राप्त करना।[१]

अमृत वेला में एक वैरागमय ध्वनि आ रही है, गली में कोई रमता साधु बड़ी मस्ती में कुछ गा रहा है। कभी अटक जाता है, कभी चल पड़ता है, कभी मूक हो जाता है, कभी फिर स्वर छेड़ देता है। अब आसा राग का स्वर छिड़ा है और बहुत मीठे प्रभाव तथा ठहराव भरी लै में यह शब्द गाया गया :-

आसा महला १

एकें न भरीआ गुण करि धोवा ।।
मेरा सहु जागै हऊ निसि भरि सोवा ।।१।।
इऊ किऊ कंत पिआरी होवा ।।
सहु जागै हऊ निस भरि सोवा ।।१।।रहाऊ।।
आस पिआसी सेजै आवा ।।
आगै सह भावा कि ना भावा ।।२।।
किआ जाना किआ होइगा री माई ।।
हरि दरसन बिनु रहनु न जाई ।।१। रहाऊ।।
प्रेमु न चाखिआ मेरी तिस न बुझानी ।।
गइआ सु जोबनु धन पछुतानी ।।३।।
अजै सु जागऊ आस पिआसी ।।
भई ले उदासी रहऊ निरासी ।।१।।रहाऊ।।
हऊमैं खोइ करे सीगरु ।।
तऊ कामणि सेजै रवै भतारु ।।४।।
तऊ नानक कंतै मनि भावै ।।
छोडि बडाई अपणे खसम ससावै।।१।।रहाऊ।।५।।

---
१. कवि की कविता का अनुवाद दिया है।

इस तरह गाता हुआ कई गलियों से फिर कर आया है। जिस घर के आगे यह रमता इस समय खड़ा गा रहा है, उसके अन्दर इस मधुर ध्वनि ने सोए हुओं को जगा दिया है। पति अपनी पत्नी से पूछता है, यह कौन है, जो इस समय गली में अपनी आप गा रहा है। नये विचार हैं नया रंग है, स्वर सुरीला मन को मोहित करने वाला है।

पत्नी – यह वही नाथ शिवनाथ है, जो अचल के स्थान पर रहता था और तप किया करता था, जिसके साथ तुमने योग की बातें करके कुछ दिन तप किया था। भला हुआ तो तुम शीघ्र लौट आए, अन्यथा आज न जाने तुम भी कहीं रमते होते ।

पति – यह तो बड़ी अक्कड़ वाला था, यह गलियों में कैसे घूम रहा है?

पत्नी – अब तो यह योगी रहा ही नहीं, तप नहीं तापता, इसे कोई मिला है, उसका रंग चढ़ गया है।

पति – कौन मिला है ?

पत्नी – हाँ, कहते है, कलियुग में तपस्वी तप ही करते हैं, प्रकट कोई नहीं होता। पर एक आश्चर्य घटा है, कोई नानक नामक तपा है, वह कलियुग में प्रगट हुआ है। यह योगी उसे मिला है, उसके रंग में रंगा गया है। भट्टी पोचे को त्याग कर बैठा है, धूईं बुझा दी है, दोपहर को दो रोटी ले जाता है, फिर न जाने दिन में कहाँ रहता है ? सवेर होते ही गलियों में चक्कर काटता है, सोए हुओं को उठाता है। यदि कोई इसे जा मिले तो सुमार्ग पर चला देता है। अब एक बात और बहुत अच्छी है कि किसी को घरबार से उजाड़ता नहीं। कहता है, 'गृहस्थ में ही रहो जैसे कमल जल में रहता है।' अब पहले की भाँति लोगों के घर नहीं उजाड़ता फिरता।

पति – तुझे इनती बातें कहाँ से पता चल गईं?

पत्नी – स्त्रियाँ योगियों के पते रखती हैं, योगी हुए जो घर उजाड़ने वाले।

पति – 'अमृत' क्या कह रहा है ?

पत्नी – पता नहीं, मैंने सुना है कि नए प्रकट हुए तपे ने सवेर का नाम 'अमृत वेला' रखा है और कहता है कि इस समय सोया मत करो, उसे यह योगी भजन तथा भक्ति कहता है, इस समय भक्ति करने से पाप कट जाते हैं और गृहस्थी भी योगियों के तुल्य हो जाता है। दिन में काम काज करो, अमृत वेला में प्रभु की भक्ति करो, फिर किसी कठोर हठ की आवश्यकता नहीं, तप, धूनी, राख आदि धारण करने तथा घर का त्याग करने की। एक और अलौकिक बात बताता है कि स्त्रियाँ भी भक्ति कर लें और अमृत वेला में जागें और चार घड़ी भजन करें, फिर सारा दिन घर का काम करते रहें कल्याण हो जायेगा। गाँव के ब्राह्मण तथा मठ के योगी बहुत खुनसते हैं; कहते हैं स्त्री का धर्म है केवल पति सेवा और गृहस्थी पुरुष का धर्म है योगी सेवा, योग धर्म अतीतों का है। पह यह कहता है, पुरुष, स्त्री दोनों का धर्म है–परमेश्वर के साथ भेंट करना गृहस्थी, अतीत सभी का धर्म है। परमेश्वर के साथ भेंट करना[१], यह मार्ग कल्याण का है।

---

१. जोग, सबदं गिआन सबदं बेद सबदं ब्राह्मणः ।।
खत्री सबदं सूर सबदं सूद्र सबदं पराकृतः ।।
सरब सबदं त एक सबदं जे को जानसि भेऊ ।।
नानक ताको दासु है सोई निरंजन देऊ ।।

पुरुष – तुझे बहुत पता है ।

पत्नी – मैंने आप योगी के साथ बातें की हैं और जब तुम्हें घर बार से उजाड़ता था, उस समय के गिले दिये हैं, किसी बात का गुस्सा नहीं किया और मुझे सारी बातचीत बड़े धैर्य से समझाई है। कहता था मेरे गुरू जी यहाँ आने वाले हैं, जिनका नाम 'गुरू नानक' बताता था ।

पुरुष – अच्छा, वही होगा, हमारे गाँव के शाह मूला का दामाद है। उसकी धूम पड़ रही है। कहते हैं कोई अवतार प्रकट हुआ है।

पत्नी – वही होगा ! भला, बेटे जीएँ स्वामी जी ! यदि यह तपा कहता है कि घरबार का त्याग मत करो, वनों को मत जाओ, गृहस्थ में ही रहो, तो आप क्यों घर बार का त्याग कर गया है? मूले की पत्नी बहुत रोती हैं। कैसे सुन्दर दो पुत्र हैं, चन्द्र की अपेक्षा सुन्दर पत्नी है मायके में बैठी हुई है, आप परदेशों में फिर रहा है। शिवनाथ कहता था, उसे जगत का उद्धार करना है, वह ईश्वर के पास से आया है। मैंने भी डरकर बात की है, कहीं मुझे पाप न लगे, पर इस खोटे मन को मूले की पत्नी की बातें सुनकर बुरी सोचें पड़ती हैं ।

पति – ठीक है, है तो बात कुछ अटपटी सी, आप साधु हो जाना, लोगों से कहना कि घर पर ही रहो और आप घर पर रहना ही न । पर यदि आप घर पर बैठे रहें तो जगत को यह नया सन्देश कौन दे; विचार तो कर, महमा तो सारा जगत कर रहा है, योगी, तपी, पीर फकीर उसके आगे झुकते सुने हैं, पर अब उसे कभी नए रंग में देखना हैं। तू पता रखना यदि कभी इधर आ जायें तो एक बार दर्शन तो करें। तपी, हठी तो देखे हैं, भेखी भी देखे हैं और पीर भी सोधे परखे हैं, पर प्रकट हुआ फकीर कभी नहीं देखा ।

पत्नी – अच्छा जी, आज जब नाथ दोपहर को गजा करने आयेगा, तो उसे खड़ा करके पूछूँगी। जब हमारी गली में फेरी लगाने के लिए आता है, तो हमारे द्वार पर अवश्य ही खड़ा होता है; यदि मैं रोटी दूँ, तो प्रसन्न होता है और कहता है : देनी हैं, अच्छा ।

इस तरह की बातों में अमृत वेला व्यतीत हो गया। चन्द्र लोप हो गया, तारे लोप हो गए, ठण्डी मीठी हवा चल गई, सूर्य चढ़ आया। पति उठा, पत्नी घर के काम धन्धे में लग गई, तो बाहर से आवाज आई –

चौधरी जी !

पति, पत्नी से – भगवान ! यह कौन है ? सवेरे ही चिल्लाने लगा है, अभी तो सूर्य अभी-अभी निकला है।

पत्नी – कोई ग़रज़मन्द होगा, और कौन सवेरे-सवेरे चौधरियों के यहाँ आता है ? हाँ ... ठहरिये न (आवाज सुनकर) यह तो लगता है – मूला। भई इसकी बड़ी आयु है, अभी अभी इसी की बात कर रहे थे।

पति – ठीक है, तू बहुत बुद्धिमान है, उसी की आवाज है ! चलो चलें, द्वार खोलकर मिलें ।

यह सलोक सहसकृति म: १ में और आसा की वार में म: २ में दिया है। 'वाराँ ते वधीक सलोकों में म: २ के श्लोक अलग नहीं, इसलिए सम्भव है म: १ में ही दे दिया है। पांठ में थोड़ा-थोड़ा अन्तर है।

पत्नी – दो घूँट लस्सी तो पीकर जाओ न !

पति – लौटकर पीता हूँ, शाहों और पटवारियों से डरना ही उचित है।

यह कहकर ड्योढ़ी में चला गया। द्वार खोला, (बाहर की ओर देखकर) आ भाई शाह ! सवेरे ही, कुशलता तो है?

मूला – हाँ चौधरी कुशलता है । वह हमारा पराहुना (दामाद) यहाँ आया है, जो फकीर बनकर फिर रहा है, तेरे कूए पर उसने डेरा डाला है। शुरू से बिगड़े हुए कभी संवरे नहीं पर मैंने सोचा कि कोई प्रयत्न लगाकर देख लें, कहीं कुछ बन जाए। ... (सिर हिलाकर) बेटियों के कष्ट बुरे ! चौधरी ! भगवान करे किसी के हाँ बेटी पैदा ही न हो। ... मैंने सोचा कि मैं अकेला न जाऊँ, तुझे चौधरी को साथ ले चलूँ। एक अकेला और दो ग्यारह, कहीं तेरा ही कहना मान ले, कष्ट तो तुझे होगा पर ...।

चौधरी – लो भला, मुझे कष्ट काहे का, मैं तो सिर के बल चलूँगा। यह देख कि आज सवेरे नाथ के गानों ने निद्रा खोल दी और मैं तथा चौधरन अब तक यहीं बातें करते रहे हैं। चौधरन को पता तो बड़ा था, पर तपा आ गया है और हमारे कूए पर ही उसने डेरा डाला है, इस बात का तो उसे भी अभी पता नहीं था और मैं तो बाहर से लौटकर आया ही रात को था। मैं पहले ही अपनी चौधरन से कह रहा था कि तेरा भला हो, कहीं तपा इधर आ निकले तो ध्यान रखना, मुझे भी एक बार दर्शन करना है, कि जिसकी धूम जग में पड़ रही है, वे कैसा है, कुछ है भी कि वैसे ही उसका यश चल रहा है। चिरकाल की बात है, विवाह के समय तो देखा था, उस समय तो बहुत सुन्दर था ।

मूला – चौधरी ! क्या जाने क्या है ? हमें तो अपनी पड़ी है। अपने परिवार को सँभाले, हमारे गले से फाँसी उतरे। यदि हमारे गले में फाँसी पड़ी रही तो चाहे वह ईश्वर ही क्यों न हो, हमें इससे क्या लाभ ? यदि हम न तृप्त हुए जगत तृप्त होता रहा, तो हमें क्या लाभ ?

चौधरी – तुमने सच कहा है, जिससे अपना रोग दूर हो वही वैद्य, चाहे वह लिलारी ही क्यों न हो। आ न शाह अन्दर आ जा, थोड़ी लस्सी पी ले, फिर चलते हैं ।

मूला – मैं तो कुछ पीकर आया हूँ चौधरी ! तू पी ले, मैं डयोढ़ी में बैठता हूँ ।

इस तरह बातचीत करके चौधरी अन्दर गया। पत्नी को सारी बात बताई। मक्खन और बासी रोटी लेकर खाई और लस्सी पी। जब चद्दर कन्धे पर रखकर चलने लगा तो पत्नी ने कहा – तुम्हारा भला हो, रिश्ते नाते की बात और होती है पर बेटियों के दुख से जले हुए हृदय और भी दुखी होते हैं। ज्यादा मूले के मगर मत लगना, न जाने वह पूर्ण पुरुष ही हो, रेख में मेख मारता हो और तू व्यर्थ शाह का पक्ष करके कुछ कह बैठे। हाँ तुम्हारा भला हो, तनिक सावधानी से, हम बच्चों वाले हैं।

चौधरी – चौधरन ! तू मुझे निपट अनजान बच्चा न बना दे। मैंने बड़े योगी, जंगम, पीर तथा शेख देख रखे हैं । मैं कोई लड़ाई मोल लेने तो नहीं चला। मेरे कूए पर जो डेरा डाला है तो मेरे पराहुने हुए, घर आने वालों के साथ कोई झगड़ता है ? और फिर न जाने मेरे उद्धार के लिए आए हों; मुझे भी प्रार्थना करते चिरकाल व्यतीत हो गया है।

यह कहकर चौधरी अजिता जो जाति का रंधावा जाट था, बाहर चला गया और शाह मूले चोणे खत्री के साथ अपने कुए को चल दिया ।

: २ :

जब वहाँ गए तो कानों में गाने की आवाज़ आई। अजिते ने अपने कूए पर बैठने के लिए एक कच्चा चबूतरा बनवा रखा था और दो तीन तखत भी बिछा रखे थे। कभी यहाँ पंचायत इकट्ठी हुआ करती थी। कभी कोई योगी रमता साधु आकर ठहरता था। अन्न-जल की सेवा भी इसके घर से ही हो जाती थी। अजिता ने दूर से दृष्टि जमाकर देखा कि एक तखत पर बैठकर कोई गा रहा है और दूसरे पर एक सुन्दर सूरत वाले एक साधु जी विराज रहे हैं । नैन मूँदे हैं, पर चेहरे की आभा असह्य है और एक आकर्षण मारने वाली लाली है जो अपने में टिकाव और शान्ति रंग लिए बैठी हैं । अजिते ने आगे बढ़कर सीस झुकाया पर मूला ने क्रोधित होकर देखा और तनिक सा सिर झुकाकर बैठ गया। कुछ समय के पश्चात कीर्तन बन्द हो गया और सुन्दर सूरत वाले के नैन खुले । धन्य कर्तार ! धन्य कर्तार !! मुँह से निकला। चारों ओर देखा, अजिता को देखकर मुस्कराये। फिर मूले को देखकर मुस्कराये। फिर कहने लगे, आ भाई, कुशलता है ? अजिता (जिसकी ओर दृष्टि थी) अभी नहीं बोला था कि मूला शीघ्रता से बोल उठा, कुशलता काहे की है ? जिनके द्वार पर बेटियाँ बैठ गई, वहाँ काहे की कुशलता ? अजिता की ओर देखकर कुछ क्रोध से कहने लगा, जिसे कवि संतोख सिंह जी ने यों बताया है -

श्री चन्द जैराम घर कीन आनन्द बिलास ।।
जब को तिन परलोक भा आयो मोर अवास ।।
सभकी मैं प्रतिपालन कीनी ।
नहीं आइ इन कबि सुध लीनी ।। (गुरू नानक प्रकाश)

इस तरह के और भी कठोर वाक्य जगत गुरू जी सुनते रहे पर उत्तर कुछ न दिया । अजिते ने भी यह वाक्य सुने, पर उसकी दृष्टि मूले की ओर नहीं गई, वह प्रकट हुए तपे की ओर जिसका समाचार अमृत वेला में सुनता रहा था, देखता रहा । उसने पहले कभी ऐसा प्रभाव प्रतीत नहीं किया था, चकित होकर बैठा रहा। जब मूले ने और कठोर से कठोर वाक्य कहे तो अजिता उसे कहने लगा : तुझे कठोर वाक्य नहीं कहने चाहिए। तनिक विचार तो कर कि यह जब घर का त्याग कर गए, पूर्वजों की सम्पति तो साथ नहीं लेकर गए थे। अच्छे खाते-पीते थे, कालू वेदी का यह इकलौता पुत्र था, यदि तू बेटी को और दोहतों को उनके दादा के घर में भेज देता, तो क्या एक पुत्र के दो हीरों का पालन मेहता कालू न करता ? और हमारी बहन को अपनी बहू जानकर न पालता? यह उसकी सम्पत्ति के अधिकारी थे। पर तैने इन्हें अपने पास रखा और उनके भेजने से इन्कार कर दिया और अब उलाहने देता है ? अपने ही साथी की ओर से इस तरह का सम्बोध के वाक्य सुनकर शाह को सुध आई और कुछ समय के पश्चात घर को चल दिया। कुछ समय बैठकर और दर्शन पाकर सुखी होकर अजिता भी उठा। अजिता ने श्री गुरू से अन्न-जल के लिए पूछा। आपने आकाश की ओर सैनत की, फिर पृथ्वी की ओर हाथ किए और कहा : धरती देग है (लंगर) भाग्य भण्डारी

है और देने वाला दाता है।[१] अजिता अब नमस्कार करके चल दिया, बाद में मूला सुन्दर भोजन और नए वस्त्र लेकर आ गया, भोजन आगे रखा, वस्त्र पास रखे और कहा –

भेख फकीरी तजहु अब पहरहु बसन जि चारु ।।
हमरे सोदर बँध जे तिन महिं नहिं कर ख्वार ।। (गुरू नानक प्रकाश)

पर श्री सतगुरू जी ने न भोजन किया, न वस्त्र पहने, न ही मुँह से कोई वाक्य कहा। इतने में श्री चन्द तथा लखमी दास आ गए । आकर चरणों पर सीस झुकाया और थोड़ी दूरी पर बैठ गए। इस तरह बैठकर कुछ समय के पश्चात मूला तथा दोनों बेटे उठकर चल दिए।

श्री सतगुरू जी के यहाँ पहुँचते ही समाचार फैल गए। प्रेमी दर्शनों के लिए आ रहे थे और प्रसन्न हो रहे थे :-

यथा :-

जे महमा जानहि गुर केरी ।।
सो आवहिं तहिं दरशन हेरी ।।
बन्दन करहिं जनम फल पावहिं ।।
रहहिं निकट पुन सदन सिधावहिं ।।
को आवहि को करहि पिआना ।।
भीर शुरू होई तिहँ थाना ।।
ले उपदेश सिक्ख को होवै ।।
सिमरहि नाम सकल अघ खोवै ।
इक ते दूसर महिमां सुनि कै ।।
आइ परहि चरनन गुनि–गुनि कै ।।
सति संगत होवन बहु लागी ।।
करहि कीरतन श्रद्धा पागी ।।
दरशन केर प्रताप बिसाला ।।
किऊँ न चलहिं नीकी नर चाला ।।३।। (गुरू नानक प्रकाश)

अजिते ने घर पर जाकर सारी बातचीत अपनी पत्नी से कही। योगी को भी, जो अब गुरू का सिक्ख था, बुला लिया। उससे सारा समाचार पूछा। दर्शन के कारण जो प्रभाव अजिता पर पड़ा था, वह परिपक्व होता गया। अमृत वेला में आने–जाने लग पड़ा। एक दिन अजिता अमृत वेला में गुरू के दर्शन करने के लिये फिर आया, कीर्तन के पश्चात चरणों पर सीस रखकर पड़ गया, ऐसा पड़ा कि फिर उठा नहीं। श्री गुरू जी समाधिस्थित थे, लगभग एक पहर आपके नैन नहीं खुले[२], अजिता भी तब तक नमस्कार में ही पड़ा रहा ।

---

१. धरती देग मिलै इक वेरा भागु तेरा भण्डारी । (बसंत हिंडोल म: १)
२. बाले वाली जन्मसाखी ।

नहीं अजिते सीस उठायो ।।
इस प्रकार इक जाम बितायो ।।

श्री गुरू जी ने अब बहुत कृपा से देखा और कहा :-

'अब उठीए कर्तार प्यारे ।।
अपन मनोरथ करहु उचारे' ।।

यह कहकर श्री गुरू जी ने अपने कर कमलों से सिर उठाकर बैठाया । 'भक्ति रत्नावलि' में लिखा है कि अजिते रंधावे ने प्रार्थना की, कि मैंने बहुत साधुओं संतों के दर्शन किए हैं, पर मेरे मन का संशय नहीं हटा । अब आपका दर्शन किया है, मेरा संशय दूर कीजिए। फिर गुरू जी ने हठयोग और भक्तियोग के दोनों मार्ग बताए। जिनके अन्त में अजिता ने प्रार्थना की : 'हे अनाथ रक्षक ! मुझे यह दान प्रदान कीजिए कि आपकी आज्ञा मीठी लगे,' आपने बचन किया : 'अजिता ! तेरे पीछे कईओं का उद्धार होगा।'[१]

श्री गुरू नानक प्रकाश में लिखा है :-

अजिते ने :-

हाथ जोर कै बिनती भारवी ।।
रावर हो सभ घट के सारवी ।।
तुम सभ जानहु अन्तरजामी ।।
किऊ बन है मम कहनो स्वामी ।।
जे नहिं जानहिं ताहि अगारी ।।
करों आपनी बिथा उचारी ।।
सर्वज्ञन ढिग तूशन नीकी ।।
करहिं भलेरी भावत जीकी ।। (गुरू नानक प्रकाश)

यह वाक्य सुनकर सतगुरू जी दयालु हुए, अन्दर बाहर से तुष्ठ होकर कहल लगे :- 'अजिता ! श्री कर्तार जी के आगे आपा बिछाक़र बन्दना कर, जिससे तेरी सारी कामना पूरी हो।' यह आज्ञा सुनकर अजिता अपनी सुध भुलाकर दण्डवत करने लगा और चरणों से लिपट गया ।

सुनिकै बहुर चरण लपटायो ।।
ततछिन ज्ञान हृदय हुए आयो ।।
शक्ति विसाल भई सभि भांती ।।
पाई एक बार जनु थाती ।। (गुरू नानक प्रकाश)

अजिता निहाल हो गया। उसका आपा प्रभु के चरणों के साथ घुलमिल गया। उसमें प्रभु का प्रवेश हुआ और आत्मशक्ति के कारण सुखी तथा सत्यवान हो गया। गुरू बाबा की अनुग्रह, उद्धार करने वाले के विरद ने उद्धार किया। उसीलिए भाई गुरुदास जी ने अजिते रंधावे का नाम एक मन होकर आराधना करने वाले गुरू के सिक्खों की सूची में गिना है।[२]

---

१. 'भगत रत्नावलि' ।

२. जिता रंधावा भला बूड़ा बुड्ढा इक मन धिआवै ।। (भाई गुरुदास)

अब जो सत्संग लग रहा था, उसमें अजिता मुख्य सेवक है, लंगर चलता है, अजिता उसमें सेवा करता है। प्रेमी आते हैं, अजिता सबकी सेवा में आगे है। अजिते का लगभग सारा समय कुए पर ही व्यतीत होता है और सेवा में तत्पर रहता है।

: ३ :

सत्संग का प्रवाह चल रहा है, 'आसा दी वार' की कीर्तन होता है, कीर्तन का आनन्द बँधता है, प्रेमी इकट्ठे होते हैं, लंगर चलता है । कोई लाता है, कोई पकाता है, कोई बाँटता है और सारे खाते हैं। उपदेश का लंगर श्री गुरू जी आप चलाते हैं। एक दिन की बात है कि श्री गुरू जी के सास और ससुर दोनों क्रोध में भरकर फिर आए और लगे ऊँची-नीची बातें करने। साथ माता सुलखनी जी भी आए। अजिता उस समय घर पर था। किसी प्रेमी ने जाकर खबर दी कि मूला सतगुरू जी के पास आया है और उसका व्यवहार निरादरी वाला है, तो अजिता भागकर आया। मूले को समझाने लगा कि क्यों दिमाग़ चाटता है ? तू अभागा है, जिसे रहस्य का पता नहीं चला। मूला शाह ! यहाँ तो आप कला धारण करके परमेश्वर की अपनी ज्योति आई है।[१] इनके सभी कर्तव्य प्रभु की आज्ञा में हैं, यदि तू इनकी आज्ञा का पालन करता तो सुखी हो जाता, पर भाग्य धुर से ही ऐसे हैं कि मोह माया द्वारा मिले सम्बन्धियों के नैन मुंदे रहते हैं। जगत् का उद्धार हो रहा है और तू व्याकुल हो रहा है। यह परमेश्वर की ज्योति है; ये तो स्वतन्त्र निर्द्वन्द महान ज्योति हैं । किसी वेष की कैद में नहीं है, किसी बन्धन में नहीं है, व्यर्थ अपना आप मत खो। न जाने कल क्या है और परसों क्या ? समझ, चरणों पर झुक, जन्म को जीत अन्यथा घर पर कुशलता सहित बैठ, न इन पर और न हम पर तेरे चिल्लाने का कोई प्रभाव नहीं, हमने इसे पहचान लिया है।

इस तरह समझाने पर मूले ने अपना दुख कह सुनाया कि मेरा जाति कुटुम्ब में अपमान है। मेरे सिर पर बेटी और दोहतों के खर्च का बोझ है। इस पर अजिते ने कहा :-'भला जी ! तुमने बिटिया को सुसराल में नहीं भेजा तो मैं सतगुरू का सिक्ख हूँ और तेरे गाँव का चौधरी हूँ, तेरे साथ भी भाईचारा है, मै देवी को अपनी बहन समझता हूँ, अत: तू अब खर्च से मत डर। मैं उनकी सेवा तेरी ओर से बहन समझकर और सत्संग की ओर से माता समझकर करूँगा'। मूले ने कहा,'चौधरी ! यों बात नहीं बनती। जगत् चौधरी जी ! किसी तरह भी टिकने नहीं देता'। इन बातों में फिर चन्दो रानी[२] कड़ककर कहने लगी और कुछ ढीठता के वाक्य भी कहे। चौधरी इसे भी समझाने लगा पर उसने अपना क्रोध फीके वाक्यों में ही निकाला। जब इसने थककर कुछ चुप की तो माता सुलखणी जी कहने लगीं । इन्हें अजिता ने कहा कि तुमको बोलने का कोई अधिकार नहीं, माता-पिता जो बोल रहे हैं। तब माता सुलखणी जी बोलीं "भैया जी ! तुम मेरे दुख की चिन्ता करो, मैं क्या करूँ, मायके वालों का ही आश्रय है, उन पर मेरा तथा दो बेटों का बोझ है। यदि वे ससत्कार हमें रखें तो हमारी दिनकटी हो जाए, यह मेरे सिर पर उपकार है। पर अब वे ऊब गए हैं, हर समय ताने देते हैं और स्पष्ट कहते हैं कि हमारे गले में बेटी का झंझट पड़ गया है। बेटी का वास कुल का

१. निरंकार नानक देऊ निरंकार आकार बनाइआ ।। (वारा भाई गुरूदास)

२. गुरू नानक देव जी की सास।

नाश, जा तू साधनी हो जा, बेटों को लेकर भिक्षा माँगती फिरती रह, अब हमारे से तेरा खर्च नहीं भरा जाता। अब भैया ! तुम ही सोचो, मैं कहाँ जाऊँ ? और क्या करूँ! वह ननद, उसका बैकुण्ठ में निवास हो, जब तक जीवित रही, मैंने तब तक इनका (पति) परदेश में जाना न बूझा, जब उसका (ननद) का देहान्त हुआ, मैं उसी दिन मायके में आ गई, मायके अब मुझे बोझ समझते हैं। तब सुसराल चली जाती तो सुखी रहती, वहाँ परमेश्वर का दिया सब कुछ था। अब वह समय भी हाथ नहीं लगता। पुत्र बड़े हो रहे हैं, वे भी ननसाल वालों के तानों का बड़ा दुख मनाते हैं, मैं परिवार के लिए कहाँ से लाऊँ, जिससे माता-पिता के गले से उतरूँ। उस तरह के हृदय को पिघला देने वाले वाक्य जब श्रीमती सुलखणी जी ने कहे और साथ रोई तो श्री गुरू जी ने कहा -

गृहस्थ में सुख तथा आराम की इच्छा यदि दूर हो सके, साधु संगत की सेवा में यदि मन लग सके, यदि भूख और दुख सहन किए जा सकें, रिश्तेदारी के मोह लालच वाले अधिकार यदि मिट सकें, तो कल्याण है। तानों तथा दुखों से घिरा हुआ घर यदि उमरामता और उदासी दे सकता है, तो उस घर को त्याग दो। कर्तार की शरण लो । यह प्रभु का लंगर चल रहा है, साधु लोग भोजन कर रहे हैं, तू भी पुत्रों सहित आ जा, सेवा कर, भोजन खा, कर्तार भली करेगा ।

मोह माया में अब तक चल रही माता जी पर यह वाक्य माया के मोह का ढीला कर देने वाला प्रभाव डाल गए, सप्रसन्न कहने लगी, कहीं अपने निकट बसा दीजिए, दुख भूख सहन करके सुख प्राप्त करूँगी, रिश्तेदारी के सभी अधिकारों का त्याग करके केवल सेवा को सिर पर रखकर टहल करूँगी; पर कहीं निकट बसा दीजिए। तब किसी बन्धन में न पड़ने वाले सदैव खुले तथा स्वतन्त्र दाता जी, दूसरों की पीड़ा पर पसीजने वाले सतगुरू जी कहले लगे -'अच्छा फिर कर्तार भली करे, दरिद्रता का दुख, भूख का दुख, त्याग तथा सेवा का भाव लेकर वाहिगुरू के लंगर की सेवा का भाव उठा लो। सेवा सभी सुखों का मूल है। यह वाक्य सुनकर माता सुलखणी तत्क्षण गई, बेटों को साथ लेकर साधु संगत में लंगर की सेवा का चाव लेकर आ गई। जब ही उन्होंने पकड़ के मार्ग का त्याग किया, दुख भूख तथा सेवा का भाव लेकर सिर पर जगत् की सेवा उठा ली, तब वे सत्संगतियों में पूज्य माता ही हो गई, प्रत्येक सिक्ख ने आपका सम्मान किया। मूलचन्द तथा चन्दो रानी दोनों ससुर-सास यह देखकर और भी दुखी हुए। वे चाहते थे कि गुरू जी दोबारा गृहस्थी बनकर उन्हीं जैसे हो जाएँ; घटना यह घटी कि अपनी बेटी तथा दोहते घर का त्याग करके, त्यागी बनकर सेवा में जा जुटे। उनके लिए दामाद गृहस्थी न बना, बल्कि बेटी फकीरनी हो गई । यों उदास हुए दोनों पश्चाताप करने लगे। इधर सत्संग लगता है, जगत का उद्धार हो रहा है, माता जी अब उस काम में लग पड़ी हैं, जिसमें गुरू जी की प्रसन्नता है। अजिता श्रद्धा प्रेम से सेवा कर रहा है, कौतुकी सतगुरू जी ने अभी यहाँ पर और कार्य करना है, जो ससुराल में अजिते के कुएँ पर रंग लगाए बैठे हैं।

घर जाकर अब मूला को रात दिन बरादरी का भय खाने लगा कि लोग कहेंगे लो भई मूला ने रोटी के पीछे बेटी को घर से निकाल दिया है। साथ यह सोच भी आती कि मैं ही पगला हूँ कि सारा जगत पगला है। प्रत्येक व्यक्ति कहता है, 'नानक ईश्वर का स्वरूप है,

मैं कहता हूँ, 'नहीं, घर से भागा हुआ फकीर है' । फिर प्रत्येक व्यक्ति, आम लोग ही नहीं, भले अच्छे विद्वान इसे अवतार मानते हैं। योगी इसके आगे झुकते हैं और शिवनाथ जैसे धूनी का त्याग करके सैकड़ों चेले अपने पीछे से हटाकर इसके चेले आकर बने हैं। मुसलमानों के बड़े-बड़े अच्छे पीर शरण ले रहे हैं। मुसलमानों का हिन्दू के सामने झुकना और भेख वालों का नित्य भेख बदलने वाले के आगे झुकना किसी कण तथा शक्ति के बिना तो हो ही नहीं सकता, कहीं मैं ही न भूल रहा हूँ। इन सोचों विचारों में मूले ने एक रात को एक स्वप्न में देखा कि गुरू नानक तो ईश्वरीय ज्योति है, उसके इर्द-गिर्द करोड़ों प्रकाश हैं और जगत के गुप्त तथा प्रकट महापुरुष नमस्कार कर रहे तथा आरती उत्तार रहे है। जागकर यह ख्याल आया कि चौधरी बड़ा बुद्धिमान था, इसने कई साधु देखे तथा परखे हैं, यह कभी कहीं भी झुका नहीं था, पर यहाँ पर ऐसा झुका है कि सिर ही नहीं उठाता। इस तरह सोचकर मूला ने जाकर अजिता के साथ विचार किया। यों धीरे-धीरे मूले जैसे कठोर चित् वाले और प्रतिदिन अपमान करने वाले के मन से माया की छाया घटी। छाया अपने आप तो क्या घटनी थी, कौतुकी जो द्वार पर आया बैठा है, कोई दया ही करने के लिए आया है। जगत् का जो उद्धार कर रहा है, समय तथा संयोग पहचानता है, समय पर अपनो का उद्धार करना भी उसका विरद है।

अब मूले को एक दिन अपनी मृत्यु का ख्याल आया-अन्त में चलना है, जो बना है उसे टूटना अवश्य ही है, जिसका निर्माण हुआ है उसे नष्ट होना है, सदैव किसको रहना है ? मैं उसे चिपट रहा हूँ, जिसका त्याग करना है और जिसको साथ नहीं चलना। मैंने इस लच्छोबाई, अर्थात् माया को ऐसा ग्रहण किया है कि बेटी तथा दोहतों को भी अपरिचित जाना है। मैं उन पर व्यय होने वाले धन को भी व्यर्थ व्यय होता समझा, वह धन तो सफल हो रहा था ।

वास्तव में उसके मन ने पहले चोट यहाँ से खाई थी। जब तक गुरू जी की ओर से मूक था, उसका मन हठ तथा क्रोध में था । जब ही कि बेटी तथा दोहते घर से चल दिए तो उसके मन की हठ वाली जकड़ ढीली होने लग पड़ी। जब मन ने तनिक ढील ली तो अन्य भाव के विचारों को अपना काम करने का अवसर मिल गया। धीरे-धीरे मूले को होश आ गई तब उसकी दृष्टि गुरू नानक के गुणों की ओर पड़ने लगी। कौन है जो घर के सुख, सरकारी मान प्रतिष्ठा वाली नौकरी, पुत्र, पत्नी, देवी, बहन तथा माता-पिता परिवार का त्याग करके जगत में फकीरी धारण करके कष्ट, भूख, क्लेश सिर पर लेकर प्रभु के नाम की दुहाई देता हुआ जगत के निस्तार के लिए फिरता है, अवश्य ही नानक उच्च है और दुख हरने वाला है। इस तरह के विचार और प्रत्यक्ष सामने दर्शन सत्संग गुरू जी का व्यवहार तथा प्रभाव देख देखकर आकर एक दिन मूला भी मन हृदय से टूटकर चरणों पर झुका और विनती करने लगा-'हे दाता ! तू महापुरुष है, तू ईश्वरीय ज्योति है, तू जगत का निस्तार करने के लिए आया है, मुझ मूर्ख को इस बात का ज्ञान न हुआ, रात दिन आपकी निन्दा करता रहा हूँ, एक दिन नहीं वर्षों तक गुणों के दाता में अवगुण आरोपता रहा हूँ । तू जो स्तुति के योग्य है, मैंने तेरी निन्दा की है। अब तेरी शरण में आया हूँ, मैं तो कठोर दण्ड के योग्य हूँ, पर दया कीजिए, अपने विरद का पालन कीजिए और मेरा भी निस्तार कीजिए ।

इस तरह द्रवित देखकर कोमलता वाले दाता का हृदय पसीजा । गुण करने पर तो हरेक भलाई करता है पर अवगुणों के बदले में सज्जनता करने वाला एक गुरू नानक ही है, हाँ गुरू नानक पसीजा और वरदान दिया –

सिमरहु सतिनामु गति दाई ।
सतसंगति महिं मिलि सुख पाई ।।
करि बंदन करतार अगारी ।
पावहुगे अपवरग सुखारी ।। (श्री नानक प्रकाश)

वरदान हो गया, दान मिल गया। मूले के मोह के परदे हट गए, हऊमैं के परदे कटे गए। ध्यान स्मरण मे सुख तथा सहज सहित लग गया। जब आत्मा में स्मरण के रंग ने सुख का रंग लगा दिया, वृति तथा मन अनुकूल हो गए और प्रभु के रंग में रांते गए तो मूले का रंग देख देखकर चन्दो भी बदल गई और अन्त में उसकी मोह माया की काई तथा छाया कम हुई। अपने दामाद में उसकी संत भावना हो आई, रिश्तेदारी वाली पकड़ नष्ट हुई और सत्संग के नए रिश्ते जोड़ने का चाव आया। पर अब वैसे अपने कहे हुए कठोर बचनों के कारण लज्जा आती कि कौन-सा मुँह लेकर शरण लूँ। जब पति को रंग तथा रस में मग्न देखती तो धैर्य आ जाता कि वह स्थान तो क्षमा प्रदान करने वाला है, वहाँ मेरे वाक्य तो जब चुभते और अपना प्रभाव रखते यदि वहाँ खुश्की होती, वहाँ तो चिकनाई ही चिकनाई है, मेरे वाक्य तो चुभे ही नहीं, प्रभाव रहित होकर फिसल-फिसलकर गए लगते हैं। पति के सत्संग तथा समझाने ने साहस बँधवाया और चन्दो रानी ने भी आकर शरण ली। दयालु जी ने उसके अज्ञान के परदे भी दूर किये और सतनाम में लौ लगा दी । अब जब कलेजा शीतल हुआ, अपना मैल हटा और आत्मसुख प्राप्त हुआ तो दिखाई दिया कि गुरू तो ईश्वरीय ज्योति है और उसका जगत में फिरना, जगत को सुख बाँटने के लिए था जिससे कि हमें दोहतों को पास रखने का अवसर प्राप्त हुआ था जिसे हमने ठीक ढंग से नहीं निभाया, पर धन्य है दाता जिसने हमारे अवगुणों को नहीं देखा और अपनी अनुकम्पा से हमें निहाल किया है। यों चन्दो को गुरू नानक की बड़ाई, उसके उच्च आशय और उसकी उच्च गति अब स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रहे हैं। धन्यवाद आता है, वैराग छूटता है, अपने-आप प्रार्थना निकलती है। फिर स्मरण का प्रवाह रस रंग वाला होकर बँधता है और कदर होती है कि इस दाता के पास क्या वस्तु थी जो हमें अब मिली है और हम पहले इससे वंचित थे। अब बेटी फकीरनी हो गई नहीं दीखती पर सुख के घर पहुँच गई जगत माता दिखाई देती है।

गुरू जी ने यहाँ कितना समय विश्राम किया और बहुत जीवों का उद्धार हुआ। अजिता एक शक्तिशाली पुरुष बन गया और सास ससुर का उद्धार हो गया। गुरू जी कर्तारपुर आ गए और अजिते ने माता जी तथा परिवार को कर्तारपुर पहुँचा दिया ।

सूचना :- कुछ दिनों के पश्चात् गुरू जी फिर कर्तारपुर से चल पड़े। पुरातन जन्मसाखी में पहले काश्मीर और फिर सुमेर (मानसरोवर) जाना लिखा है।[१] अत: आगामी लेख में काश्मीर जाने का कुछ प्रसंग है।

□ □

१. तवारीख खालसा में पहले सुमेर फिर काश्मीर है ।

७१ अदेशी सौन्दर्य

: १ :

सुन्दर -सुन्दर प्यारा-प्यारा पवन चल रहा है, सूर्यास्त हो रहा है एक साफ स्वच्छ जल का प्रवाह चल रहा है इस प्रकार मानो हौल दिली हो रही हो। इसके किनारे छोटा सा बगीचा है, बीच में एक कुटिया है। आगे तख्त बिछा है। इसके ऊपर एक वृद्ध पुरुष पालती मारकर बैठा है। सफेद लम्बी दाढ़ी है, चेहरे पर लाली है। मानो इस पर वृद्धावस्था का रंग अपना यौवन दिखा रहा है।

सूर्यास्त हो गया है। वृद्ध ने नेत्र खोले और हौका लेकर फ़ारसी का टप्पा गाया, जिसका भाव कुछ इस तरह का था :-

"हे रूप रेख से न्यारे ईश्वर ! मैंने सभी रूप रेख से आँखे हटाकर केवल तेरे ध्यान में लगाई हैं, पर हाय ! तेरे वजूद ने झलक न दिखाई और तेरा रूप दिखाई न दिया ।

अब तू ही रूप रेख धारण करके आ जिससे यह दुर्बल आँखें तुझे-किसी तरह देख तो लें। उससे पूर्व कि ये मुँद जायें, तेरा दर्शन, तेरी झलक एक बार तो इनमें आ पड़े। मेरा कलेजा तड़प-तड़पकर रह गया, मेर हृदय धड़क-धड़क कर रह गया, मेरी छाती उमग-उमग कर रह गई, तेरी, पर तेरे, हे अरूप, अरेख, मेरे ईश्वर जी ! तेरी फेरी न लगी । तेरे अंगमिलन की शीतलता मेरे हृदय में न पड़ी। आ, आ मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ, आ, आ, मेरी मृत्यु प्रतीक्षा कर रही है, हे अज्ञात ! हे अरूप ! आ ! आ कि मेरें नष्ट-भ्रष्ट होने से पूर्व मैं तेरा दर्शन तो प्राप्त कर लूँ।"

यह कहकर वृद्ध रोया, छमाछम नैन बरसे, अस्त होते हुए सूर्य की लाली की ओर देखा और इस चित्र में अपने जीवन के सूर्यास्त होने का चित्र देखकर रोया, मौत की याद में रोया; अपनी सारी उम्र न पूरी होने वाली आशा में रोया ।

सन्ध्या वेला में सूर्यास्त के पश्चात् प्रकाश भी चला गया, अँधेरा छा गया, और नीले आकाश में सफेद-सफेद तारे चमकने लगे, वृद्ध अब बढ़ती हुई सर्दी को देखकर कुटिया में जाना चाहता था कि ऊँटनी के गले में बँधी घण्टियों की आवाज कानों में आई और जैसे लैली (एक प्रेमिका) के ऊँट की घण्टी की टनटन मजनू (लैला का प्रेमी) के हृदय में आशा की झन्नाहट छेड़ा करती थी इसी तरह इस वृद्ध के मन में आशा ने चक्कर लगाया और अपने आप ही बोल उठा :-

"आ भाई हमारे पुराने मित्र ! यार तू ही अच्छा रहा । तैने अपने प्रेमी को सदैव हृदय के साथ लगाए रखा और सदैव देखा। चाहे कुछ था पर मेरी तरह सारी आयु प्रेमी की प्रतीक्षा में, लालसा में ही तो नहीं व्यतीत हुई । तैने जो कुछ मन में इच्छा की, उसे प्राप्त किया, हमने जो कुछ इच्छा की वह :- आशा करते-करते आशा ही समाप्त हो गईं जिसकी आशा की वह निराश ही बना गई आयु व्यतीत हो गई और जीवन समाप्त हो गया; कभी भी झोली में तेरे दर्शनों की भिक्षा नहीं पड़ी।

आ भाई ब्रह्मदास ! आ मित्र ! आज तो हम तेरे ही शिष्य बने तो अच्छा है। इस पारसाई मेमिनाई को तिलांजलि ही दें और बुतखाने की सैर करें ।

इस तरह मन में बातें कर ही रहे थे कि वृद्ध जी के सामने सुन्दर, भरे हुए पूर्ण आयु की पण्डित-ब्रह्मदास जी आ गए। गले में लम्बा कुर्ता है, सिर पर पीले रंग की दुपट्टा बाँधा हुआ है और छाती पर ठाकुर की पत्थर की मूर्ति लटक रही है, पीछे से दो ऊँट आ रहे हैं, जिन पर १८ पुरान तथा और पुस्तकें लदी हुई हैं।

बाग में एक और तखत खाली पड़ा था, इसके ऊपर गलीचा बिछा था, यह सदैव इस ब्राह्मण देवता के लिये बिछा रहता था। अत: आप आकर इस पर बैठ गए और अपने मित्र जी को जो पहले बैठे थे और जिनका नाम कमाल था, आशीर्वाद दिया । उन्होंने भी सलाम कहा। कुशलता के बातें हो चुकने के पश्चात कमाल जी ने कहा :-

'ले भाई ! वही बात हुई । काबों में भी कोई आश्रय न मिला । चल भाई बुतखाने को ही चलें, चलो चलकर काफिर को प्रणाम करें ।

ब्रह्मदास - सज्जन ! आज यह क्या आवाज़ है। हम तो चिरकाल से कहते थे कि निर्गुण के झगड़े में से क्या निकलता है, सगुण की उपासना करो तो कुछ प्राप्त हो सकता है ।

कमाल - मित्र ! तेरा जन्म हिन्दू के घर का है, तू जन्म से ही मूर्ति पूजक है, मेरा जन्म मुसलमानों के घर में हुआ है, जन्म से ही मूर्तियों को तोड़ने वाला हूँ, पर हमारी मित्रता तो मुल्ला के पास पढ़ते समय बाल्यकाल में ही हो गई थी । तेरा भी धर्म की ओर झुकाव हुआ, हमारा भी हुआ । तुझे तो घर में से ही पत्थर को प्रेमी मिल गया, हमने रूप रेख से न्यारे किसी जीवित की खोज की, अत: आयु व्यतीत हो गई । उसकी एक झलक भी कभी नहीं पाई। अब मृत्यु सामने दीख रही है और प्रियतम की प्राप्ति नहीं हुई। मित्र ! कुछ बता यदि तुझे शीतलता मिली है तो मैं भी तेरे मार्ग पर चलूँ, देख मेरी दशा, घर बार संसार से मुँह मोड़ा, तप हठ किये, उपवास किए, पर अभी :-

"फरीदा डुखा सेती दिहु गइआ सूलाँ सेती राति ।।
खड़ा पुकारे पातणी बेड़ा कपर वाति ।।"

आज उपवास रखे को तीसरा दिन है, पहले इस समय जाते हुए जुमा चरवैहा आवाज़ लगाता था, यदि भूख होती थी तो दो घूँट भेड़ों का दूध ले लेता था, तीन दिनों से वह भी नहीं आया ।

ब्रह्मदास - सज्जन ! मेरी क्या पूछता है; मेरा प्रियतम तो मेरा ठाकुर है, जिसकी यह मूर्ति मेरे गले में लटक रही है। दोनों समय मैं इसकी पूजा कर लेता हूँ, शास्त्र पुरान तथा अन्य पुस्तकें ऊँटों पर लादकर मैं अपने साथ ही रखता हूँ, कभी विश्वास नहीं करता । व्रत, तप, हठ भी करता हूँ, दोनों समय की पूजा में तथा कुछ पढ़ने पढ़ाने में समय व्यतीत हो गया है, हो जायेगा, पर देखा दिखाया हमने भी कुछ नहीं, तुम सहर्ष सगुण की उपासना धारण करो, समय अच्छी तरह व्यतीत हो जायेगा । निर्गुण के विचार में जो सिर दर्द होता है, वह नहीं होगा, पर बाकी की रकम तो वैसी की वैसी ही है। तुम मुसलमान मत के हो, मैं ब्रह्मचारी आचार्य हूँ, पर जो कुछ भगवान अथवा अल्ला की प्राप्ति है उसका तो मेरी समझ में सत्य यह है कि - हमें दोनों को पता नहीं लगा ।

कमाल (निःश्वास लेकर)- अच्छी कमर तोड़ी है, मैं तो आज पूजा अर्चा आरम्भ कर देने का निश्चय किए बैठा था और तुमने अपने ढंग की भी वही दशा बताई। अच्छा हमारे भाग्य :-

"किशती शिकस्तगानेम ऐ बादे शुरत बरखेज ;
बाशद कि बाज़ बीनम ऑं यारे आशना रा ।"

(हम टूटी हुई नौका वाले हैं, अरी रुख की वायु तू चलने लग; न जाने पर वह प्रियतम हृदय की जानने वाला दोबारा अपनी झलक दिखा दे ।)

ब्रह्मदास – यह बातें रहीं, पहले कुछ खा लो । यह कहकर पण्डित ने सारवान को भोजन लाने के लिये भेज दिया ।

कमाल – उस चरवैहा को क्या हो गया ?

ब्रह्मदास – तुम्हें पता नहीं ? यह कौतुक हो रहा है, जिसके लिए मैं सलाह करने के लिए आया हूँ। वह यह है कि एक तपा आया है जो १४ दिन से जंगल मे बैठा हुआ है। कहते हैं कि पवन आहारी है अथवा वन के फल फूल अथवा पत्ते आहार करता है। पाँवों में चमड़े का जूता है और सारी देह पर भी चमड़ा लपेटा है[१], माथे पर केशर का टीका है, दो चेले साथ है, एक छीपा है और दुसरा लुहार।[२]

सुना है कि एक दिन जुम्मा चरवैहा ने जाकर उन्हें छेड़ा तो क्या देखता है कि उसकी सभी भेड़ें मर गई हैं, जब जाकर तपे के चरणों पर झुका और क्षमा माँगी । उसने कहा जा, जाकर भेड़ों के कान में कह दे "वाहिगुरू"। बस ज्यों ही उसने वाणी कही, सभी भेड़ें जीवित हो गईं। अत: यह कौतुक देखकर जुम्माँ भेड़ों के झुंड का त्याग करके उनकी शरण में चला गया और लौटकर घर नहीं आया।[३]

दूसरे तीसरे दिन झुण्ड का स्वामी गया, तो क्या देखता है कि भेड़ें खुली फिर रही हैं और जुम्माँ तपे की सेवा में निमग्न बैठा है।

पूछने पर जब, सारा हाल मालूम हुआ तो वह भी तपे की शरण में आ गया। सारे शहर में चर्चा फैल गई और लोग दर्शन करने के लिए आने लगे। अत: घर-घर में महिमा हो रही है । मेरा संकल्प भी जाने का था, पर यह लज्जा आती है कि मैं धरती पर बहुत प्रसिद्ध हूँ, चलकर कैसे जाऊँ ? और मन का बड़प्पन कैसे खोऊँ ? अभी यह भी पता नहीं कि कौन हैं ? कैसे हैं, कहीं मेरे ऐसे ब्रह्मदास ही तो नहीं । अब मैं तुमसे बातचीत करने के लिए आया हूँ कि हम बाल मित्र है, परमार्थ का दुख-सुख मिलकर ही बाँटते रहे हैं, इस समय क्या करना चाहिए ?

---

१. इससे अभिप्राय पोस्तीन, खाल के बने हुए कोट से है जो कि काश्मीर तथा उससे आगे वाले पर्वतों के लिए ठीक पहरावा है, यह पहरावा "पुरातन जन्मसाखी" में इस समय का दिया है।

२. इस यात्रा में हस्सु लुहार और सीहों छीपा साथ थे ।

३. तिह स्थान दुंबे तजि बृंदा। बैठयो आन निकट सुखकंदा ।।
कहै कि अब मैं कहूँ न जावों। तुमरे पग की सेव कमावें ।। (श्री गुरू नानक प्रकाश)

कमाल (नि:श्वास लेकर) – हमारे झोपड़े कोठे सभी जल गए हैं अब कोई बाढ़ आए और उनकी राख को बहाकर ले जाये और नाम-निशान मिटा दे। हमारे बाग उजड़ गए हैं, कोई आँधी आये और जो कुछ शेष बच रहा है उसे उड़ाकर ले जाये और साफ मैदान बना दे ।

ब्रह्मदास ! मित्र क्या देखता है ? छलांग लगा और मिल और हमें भी मिला दे । मित्र ! काहे का मान और काहे का भय, आयु व्यतीत हो गई, मृत्यु सामने है, अब तो पत्ता-पत्ता मौत की आवाज़ लगा रहा है । हाँ, अब ही सही, न जाने कहीं से अल्ला बोल पड़े ।

इस प्रकार की बातें करते-करते भोजन[१] आ गया; उदास कमाल ने कुछ खाया, एक घूँट पानी का पिया और कहा, "अलहमदुलिल्ल, धन्यवाद, तेरा धन्यवाद, अरे ! तू जो परदे से कभी बाहर नहीं आया"।

दोनों पुराने साथी, परन्तु भिन्न-भिन्न मतों तथा विचारों वाले, जैसे अग्नि जल का मेल होता है, काफी समय तक अपने दर्दों, दुखों के गुब्बार निकालते रहे और फिर अपने-अपने ठिकाने पर चले गए। यह निर्णय हुआ कि नए आए हुए तपे से अवश्य ही मिलना चाहिए ।

: २ :

रात व्यतीत हो रही है, आज्ञानुसार तारे चन्द्र चले जा रहे हैं, पर ये मनुष्य आज्ञा में न चलकर अपनी जिद के पीछे लगकर ठोकरें खा रहे हैं। कमाल का माथा तप रहा है, नींद नहीं आ रही, जलन उठती है, कहता है, अल्ला ! मैं क्यों प्रतीक्षा करूँ कि ब्रह्मदास क्या खबर लाता है। उसके सैकड़ों चेले हैं, न जाने चेलों की लज्जा उसे कितने दिनों तक रोके रखेगी। मेरा मन तड़प रहा है, बर्बाद हुई आयु के लिए नि:श्वास ले रहा है ? काहे की लज्जा और काहे का सोच, काहे का दीन और काहे का धर्म, यदि शीतलता नहीं मिली तो क्या ? दर्शन नहीं हुए तो क्या ? ... चलो हे मन ! चलें। अभी एक पहर रात बाकी थी कि कमाल उठकर चल दिया, पता-ठिकाना तो ब्रह्मदास बता ही गया था, उस ठिकाने पर जा पहुँचा। बन में धूनी जल रही है, लट-लट आग जल रही है, इसका प्रकाश सभी ओर फैल रहा है। बड़े सुन्दर चेहरे वाले दो युवक बैठे हैं, एक ओर आग जल रही है, दूसरी ओर दोनों के चेहरे दमक रहे हैं । सूरत के दर्शन करके कमाल को शान्ति प्राप्त हुई, आगे बढ़कर प्रणाम किया ।

सीहां – आइए महापुरुष; सवेरे ही आ गए ?

कमाल – सवेरे कहाँ, समय खोकर, आयु व्यर्थ खोकर आया हूँ ।

सीहां – जो आ ही गया, उसका समय कैसे व्यर्थ खो गया ।

कमाल – क्या तपा जी आप हैं ?

सीहां – मैं दास हूँ ।

कमाल – आप कहाँ हैं ?

---

१. काश्मीरियों का भोजन रोटी, चावल, कड़म का शाक और कभी कोई मछली मांस होता है। कभी नान कुलचा भी होता है।

सीहाँ – चश्में के किनारे सैर कर रहे हैं।

कमाल – मैं उतावला हूँ, प्रतीक्षा करूँ कि बेअदबी करूँ और वहाँ चला जाऊँ ?

सीहाँ – सहर्ष जाओ ! अमृत ने कभी भी किसी से नाक नहीं चढ़ाया, प्रेम ने कभी घृणा नहीं की ।

कमाल इन सुन्दर वाक्यों को सुनकर तपा जी के निकट आया जो टहल रहे थे, तो नैन बाँवले हो गए। चन्द्र का प्रकाश ऊपर पड़ रहा था; दूर से अग्नि कि किरण आ रही थी, उसमें सुन्दरता की कोई ऐसी झलक पड़ी जो कि पहले कभी नहीं देखी थी । बेबस तथा विह्वल होकर कमाल सतगुरू के चरणों पर गिर पड़ा और इस तरह लिपटा कि मानो देह साथ ही नहीं है, बल्कि मन के साथ ऐसा कि मन को मन की सुधि नहीं रही, होश को होश नहीं रहा, संकल्पों पर निःसंकल्प छा गए, सुध मस्त हो गई चेतनता पर मग्नता छा गई ।

काफी समय के पश्चात् कमाल जी को सुध आई तो क्या देखते हैं कि सिर किसी की गोद में पड़ा है, कोई प्यार वाला हाथ सिर पर फिर रहा है और किसी ओर से मीठी-मीठी ध्वनि आ रही है :-

सिध समाधि करहि नित झगरा दुहु लोचन किआ हेरै ।।
अंतरि जोति सबदु धुनि जागै सतगुरू झगरू निबेरै ।।

(राग गुजरी म० १ चऊपदे १)

कमाल को अब पूछताछ करने की आवश्यता नहीं, उसके अन्दर इस दाता के स्पर्श से एकस्वरता छा रही है, एक रस आ रहा है। इस रस ने सारी आयु का झगड़ा समाप्त कर दिया है। रस आ गया है, मानो रसदाता अंदर निवास कर गया है। समझ बता रही है कि जिसे मैं आँखें मूँदकर मुँदी हुई आँखों का विषय बनाता था, वह मेरी देखने वाली आँखों का विषय कैसे बन सकता था ? बात तो यह थी जो मुझे अब मिली है कि रस रूप होकर मैं मगन हूँ । कमाल जी के रोम-रोम में वाहिगुरू की मस्त झन्नाहट उठ रही है, नैनों में सुख समा रहा है। पृथ्वी, आकाश, तारे, जिधर दृष्टि उठती है, किसी सुन्दर पर अदृष्ट गुलज़ार से ईश्वरीय छवि की वर्षा हो रही सी प्रतीत होती है, जब नैन मूँदता है तो अन्दर रस-ही-रस, आनन्द-ही-आनन्द, सुख-ही-सुख छा रहा प्रतीत होता है । विस्मय हो रहा है और उसमें परमानन्द प्राप्त कर रहा है। इसी रंग में दिन चढ़ आया, सतगुरू जी ने कहा, "कमाल कामल (संपूर्ण) हो गया, जा, इसी विस्मय की दशा में सदैव जीवित रह । यह स्वास-स्वास का दर्शन है। 'सरस स्मरण' में निवास कर । निहाल ।"

कमाल में उत्तर देने, कुछ और पूछने तथा बोलने की चाह नहीं, तप्त जलन जो थी, वह सारी शांत हो गईं शीतलता मिल रही है, अपने-आप स्मरण हो रहा है, अपने-आप रस भर रहा है, अपने आप एकाग्र हो रहा है और सुख प्राप्त कर रहा है।

मन महि जोति जोति महि मनूआ पंच मिले गुर भाई ।
नानक तिनकै सद बलिहारी जिन एक सबदि लिवलाई ।।४।।९।।

(रामकली म० १)

वाले वाक्य के अनुसार, जिस सुख का सतगुरू जी ने पता दिया है उस में मग्न हुआ आज्ञा पाकर धीरे-धीरे ठिकाने की ओर मग्नता भरी चाल से कमाल चल पड़ा ।

: ३ :

दो – तीन दिन बीत गए। ब्रह्मदास रोज प्रयत्न करते हैं कि तपा जी के दर्शन करें पर संसार की शर्म लोक – लाज रोकती है कि स्वयं महान पूज्य तथा परोपकारी होकर किसी के पास संशय निवारण कि लिए जाय तो लोग क्या कहेंगे ? पर फिर आकर्षण – सा होता है । घर से चलता है, मार्ग में आकर खड़ा हो जाता है पर माया की इस उलझन को तोड़ नहीं सकता। फिर उसके नैनों के आगे कमाल जी का उस दिन का विलखना, बीतती उम्र, अतृप्त लालसा और अपूर्ण आशा की व्याकुलता के चित्र नहीं हटते । यह ही नहीं बड़ी आयु तथा आने वाली मृत्यु सामने दिखाई देती और किसी समय ब्रह्मदास के मुँह पर –जो फारसी में भी निपुण था और सूफी फकीरों के साथ भी मेलजोल रखता था – बार-बार यह शेर आ जाता और बड़े दुख के साथ गाता :-

"बलबम रसीदह जानम बिआ ताकि जिंदा मानम ।
पस अज़ मरग खाही आमद, बचिह कार खाही आमद ।।

अर्थ – प्राण अधरों पर आ गए हैं, आ ! आ ! कि मैं जीवित हो उठूँ, यदि मृत्यु के पश्चात् आयेगा तो तेरा आना व्यर्थ होगा ।"

इस तरह की निराशा लेकर चल पड़ता, पर फिर माया का अन्दर का अदृष्ट जाल पैरों को बाँधकर बैठा देता ।

तीन दिन इस तरह व्यतीत हुए, चौथे दिन मन ने फिर तरंग ली और कहने लगा : "बबांगे चंग बागोइम हिकाइतहा, कि अज़ निहुफतने ओ देगे सीनह में ज़द जोश"

अन्दर बातें नहीं रहतीं अब तो ढोल बजा बजाकर कहता है। हृदय की देग उबाल खा रही है, उच्छल रही है, इसे कैसे दबा – दबाकर रखूँ।

उठे, चले, चल पड़े, उस ठिकाने को चल दिए जहाँ तपा जी बैठे सुने थे। चलते हैं और गाते हैं :-

"उठ फरीदा गऊन कर दुनीआ देखन जाहु ।
मत कोई बखसिआ मिल पवी तू भी बखसिआ जाहु ।" (लोक प्रसिद्ध)

पर गले में ठाकुर लटक रहा है, पीछे, पुस्तकों से लदे हुए दो ऊँट हैं, हृदय में एक ऊँट के बच्चे की सी लोक – लज्जा भी लटक रही है। झिजकता रुकता आया ।

'राम – राम' करके बैठ गया, तब भेख देखकर चकित हुआ, केशर का टीका पोस्तीन तथा रस्से का कमरबंद। कहने लगा : तुमने साधु होकर चमड़ा क्यों पहना है और रस्से क्यों बाँधे हैं ? और फिर केशर का तिलक लगाया है। तुम्हारा कौन मत है ?

जब तपा जी ने यह वचन सुने, तो उनके नैन मुंद गए, ईश्वरीय कण्ठ से आवाज़ आई :-

हेको पाधरू हेकु दरू गुर पउड़ी निज थानु ।
रूड़उ ठाकुर नानका सभि सुख साचऊ नामु ।।२।। (वार मलार म० १)

यह वाक्य दाता ने किसी ऐसे स्वर से गाया कि इसको सुनते ही ब्रह्मदास के नैन मुँद गए, जब खुले तो क्या देखता है कि तपा जी नहीं है, पर भाई हस्सू बैठा है। उसकी ओर मुँह करके ब्रह्मदास ने कहा :-

हे तपा जी के चेले ! मैं संस्कृत, फारसी पढ़ा हुआ हूँ, पर मैं इस भाषा बोली का मीठा शब्द सुनकर इसके आशय तक नहीं पहुँच सका । क्या आप कृपा करके कुछ समझायेंगे ?

हस्सू - भाई ! यह तो सीधी-सी बात है कि तुम इन आँखों द्वारा वाहिगुरू जी को तो देख नहीं सके और गले में एक पत्थर का ईश्वर बनाकर लटका लिया है कि नैनों को संतोष मिले, कि ईश्वर का दर्शन हो रहा है, पर वह ईश्वर इन नैनों का विषय नहीं है ।

वह सुन्दर ठाकुर तो एक है, उसका स्थान एक ही है, मार्ग एक ही है, उस स्थान का मार्ग सतगुरू है और प्राप्ति का रंग नाम से ही लगता है, हाँ, वह अन्दर से प्रतीत तो हो आता है, पर मन की चिन्ता से नहीं, नाम तथा अनुकंपा से वह अदृष्ट प्रतीत होने लगता है।

पण्डित इस बात को समझने का यत्न कर रहा था कि उसे फिर तपा जी बैठे हुए दिखाई दिए तो सिर झुकाकर कहने लगा, "श्री मान् ! जब यह वस्तु नहीं थी, तो परमेश्वर कहा था ?"[१]

तब मारू की ध्वनि उठी और यह शब्द हुआ :-

अरबद नरबद धुंधूकारा ।। धरणि न गगना हुकमु अपारा ।।
ना दिनु रैनि न चंदु न सूरजु सुन समाधि लगाइदा ।।१।।
... .

ताका अंतु न जाणै कोई ।
पूरे गुर ते सोझी होई ।।
नानक साचि रते बिसमादी
बिसम भए गुण गाइदा[२] ।।१६।।३।।१५।।

(मारू सोलहे म०१)

ब्रह्मदास चुपचाप, बड़े ध्यान सहित सुनता रहा । जब शब्द समाप्त हुआ तो चरणों पर झुका । गले में से पत्थर उतार फेंका। आज्ञा हुई कि नाम जपा कर और सेवा किया कर ।

ब्रह्मदास सेवा करने लगा, पर मन में सोचने लगा कि सेवा मैं पहले भी करता था, अब भी करता हूँ, हूँ भी उसी जैसा, कुछ अन्तर नहीं पड़ा, पर आकर्षण जाने नहीं देता ।

वास्तव में ब्रह्मदास बड़ा पण्डित था। पहले वेदांती था, फिर ठाकुर पूजक हुआ। फिर इसे एक नेपाली साधु मिले थे, जिन्होंने जगत के सेवा का ढंग बताया था कि :-जिसे तैने पहले ब्रह्म और फिर ठाकुर कहा है वह सुष्टि में है, सृष्टि सेवा ब्रह्म तथा ठाकुर की सेवा है। अत: ब्रह्मदास शास्त्र भी पढ़ता था, ठाकुर की पूजा भी करता था और कुछ परोपकार भी करता था। अब उसे फिर सेवा करने का उपदेश हुआ था। एक दिन कहने लगा, जी मेरा न तो पहले कुछ बना और न अब कुछ बना, मैं क्या करूँ ? तब आज्ञा हुई :-

---

१. पुरातन जन्मसाखी ।
२. आदि तथा अंत के दो पद्यांश ।

"जा, जाकर गुरू कर"

तब पण्डित ने कहा :-

"जी किसे गुरू करूँ ?" (पुरातन जन्मसाखी)

आज्ञा हुई, "जा, उजाड़ में एक कोठा है, वहाँ चार फकीर बैठे हैं, वे तुझे बताएँगे" ब्रह्मदास सीस झुकाकर उजाड़ को चल दिया, वहाँ चार सिक्ख बैठे थे, उन्हें कहने लगा कि हे फकीरो !

"मेरा गुरू कौन है ?"

उन्होंने एक घड़ी ठहरकर उत्तर दिया कि आगे चला जा, तेरा गुरू उस मन्दिर में है।[१]

तब ब्रह्मदास आगे गया, पण्डित को सामने एक मन्दिर खड़ा दिखाई दिया, आगे बढ़ा तो क्या देखता है :-

'ता महिं सोहति सुन्दर नारी ।।
चंद मुखी तन सूही सारी ।।
....

जब बंदन हित ग्रीव निवाई ।।
तिन पनही सिर दीन टिकाई ।। (गुरू नानक सूर्योदय)

अर्थात उस मन्दिर में पण्डित को एक सुन्दर नारी दिखाई दी। इसे अपना गुरू जानकर पण्डित ने सीस झुकाया तब उसने सिर में एक जूता मारा। अत्यन्त दुखी होकर पण्डित लौट आया । आगे वे चारों सिक्ख बैठे हुए थे। जब पण्डित ने अपना दुख सुनाया तो उनमें से एक ने कहा, हे ब्रह्मदास ! तेरा गुरू तो वही था, तैंने अपने गुरू को नहीं पहचाना ?

ब्रह्मदास - नहीं जी ! वह तो कोई कुटिल स्त्री थी ।

सिक्ख - नहीं पण्डित जी ! वह तो माया थी, जिसका तू चेला है।

ब्रह्मदास - माया मेरा गुरू है, यह कैसे ?

सिक्ख - गुरू वह है जिसे सबसे अधिक प्यार किया जाता है, रात-दिन तेरी लौ माया में लगी है, माया ही तुझे सबसे प्यारी है, अत: वह ही तेरा गुरू है।

ब्रह्मदास - मैंने सारी उम्र ठाकुर पूजा की और सृष्टि की सेवा की, क्या मैंने माया की सेवा की है ?

सिक्ख - अपने अन्दर झाँक न, अपनी वासनाओं को देख न, आठों पहर तेरे अन्दर 'संकल्पों' का राज्य है, संकल्पों विकल्पों का मीना बाज़ार सज रहा है। ख्यालों, सोचों, उधेड़बुनों, मन-तरंगों की घुड़ दौड़ लग रही है ! जो तू सृष्टि की सेवा करता है, यह समझकर

---

१. संभव है इसका संकेत मारतंडु के टूटे हुए मन्दिर की ओर हो । जो मटन साहब चशमें से कुछ दूर ऊपर को जाकर टीले के ऊपर है ।

२. पुरातन जन्मसाखी ।

करता है कि यह जरूरतमन्द हैं, मैं इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला हूँ; ये भिखारी है, मैं दाता हूँ। तेरा मन उनसे रगड़ खाता है, सेवा में अपनी बड़ाई तेरा मुख्य: मंतव्य है, बड़ाई की लालसा भी तृष्णा है; यह अहं है, माया है। जो तू सेवा करता है बड़ा बन-बनकर अन्दर ऐंठ-ऐंठकर, सो यह सेवा या तो ज़रूरतमंदों का ध्यान तुझ में बसाती है। यह वह तेरी अहँ का पोषण करती है, कि मैं सेवा करता हूँ। हे पण्डित ! समझ ले जब तू "मैं उपकार करता हूँ" या धारणा करके सेवा करता है तो तू "अहं" की सेवा करता है, तेरे मन की रगड़ उन ज़रूरतमंदों की बुद्धि के साथ रगढ़ खाती है[१] और उनके मन में जो संशय है, उसका प्रभाव ग्रहण करके तेरा मन मलिन होता है। मन की मलिनता ही माया है। अत: तैने जो सेवा की अहं की, वह माया की सेवा की। तुझे उस दृष्टि का अभी तक पता नहीं जिसके साथ ईश्वर की आज्ञा का पालन करने के लिए सेवा की जाती है। फिर सेवा करके उस प्रभु के अर्पण की जाती है। न तो अहं धारण किया जाता है कि मैं परोपकारी सेवक हूँ और न ही जिनकी सेवा की जाती है उनके साथ अपनी सुरत को फंसाना चाहिए, उस सेवा से मन निर्मल होता है। फिर जब अनुकंपा होती है, नाम में लौ लगती है, सहज प्राप्त होता है और प्रभु के साथ भेंट होती है ।

तैने प्रसिद्ध भक्त होने के लिए ठाकुर की सेवा की है, गले में ठाकुर इसलिए लटकाया है कि लोग कहें कि 'यह भक्त है' पुस्तकों के दो ऊँट साथ में इसलिए लाद रखे हैं कि लोग कहें कि 'बड़ा पण्डित है'। तैने जान-बूझकर कपट नहीं किया, पर जो पूजा-पाठ तैने किया है वह 'मैं भला हूँ' के लिए किया, यह अहं है, माया है, अत: बता तेरा गुरू माया है अथवा नहीं ? फिर देख माया का एक धर्म है; वह यह कि जो उसकी सेवा करता है, वह उलटकर उसको फिर खाती है ।

सो तुझे तेरे गुरू ने वह प्रसाद दिया जो उसके पास है। माया के पास तो दुख ही है।

ब्रह्मदास ने विश्वासपूर्वक अपनी त्रुटियाँ सुनीं लज्जित होकर पसीने से भीग गया। जमीन उसे जगह नहीं देती, पर हाय ! सच्च है, कडुवा है, पर है सच्च ! कडुवी औषधि पी गया। ब्रह्मदास अब रोया और कहने लगा 'सच्च'। पर हे प्रभु के संवारे हुए ! मुझे इस बात की आवश्यकता तो नहीं थी कि मुझे मेरा अबका गुरू प्राप्त हो, मुझे तो उस गुरू की आवश्यकता थी, जो मेरी कर्म फॉस को काटे। तुमको मुझे उस गुरू का पता बताना चाहिए था, जिसे मैं गुरू धारण करके मुक्त हो सकूँ।

सिक्ख-ब्रह्मदास ! तू जानता है कि साक्षी किसे कहते हैं; जो अपनी आँखों द्वारा किसी बात को देखे। तू इससे पहले माया का रूप होकर माया में फिरता था। तैने एक ओर होकर माया को अपने से भिन्न नहीं देखा था, न ही प्रतीत किया था, आज तैने माया को नैनों से देखा है, अत: भाई ! पहले माया दीख पड़े, इसका हमारे साथ दुर्व्यवहार दीख पड़े, इससे वैराग हो तो फिर साक्षतकार हो, वह जो माया नहीं, आप है। गुरू कल्याण करने वाला अदेश से आया गुरू, जो गुरू परमेश्वर रूप है और जो ब्रह्मांड का गुरू है, वह तुझे मिला, तैने तपा-तपा कहकर उसके साथ राम-राम की और प्रश्नोतर किए; पर उसका दर्शन तुझे न हुआ, तू देखता

---

१. अर्थात् तेरा मन तथा उनके मन आपस से रगड़ खाते हैं।

हुआ भी उसे न देख सका। क्योंकि माया तेरी सुरत के साथ अभेद थी और तैने उसे अपने से पृथक करके कभी नहीं देखा था अर्थात तैने कभी माया को अपने-आप से भिन्न करके नहीं देखा था, इसलिए तुझे प्रत्यक्ष गुरू 'गुरू होकर' प्रतीत न हुआ, और तैने अन्य गुरू को देखा और तैने गुरू से पूछा कि मेरा गुरू कौन है ? अत: हे पण्डित ! यदि तू माया तो देखने वाला होता और माया से पृथक होता, तो तेरे नैन उस जगत गुरू की पहचानकर ले तो। समुद्र से तू समुद्र का मार्ग न पूछता। पर समुद्र को तो तब देखता, जब तेरे नैनों के आगे से माया के मोतियाबिंद के परदे कट जाते। अत: हे पण्डित ! नाराज़ मत होना, तैने अब अपना वर्तमान गुरू भी देख लिया है और उद्धारकर्ता गुरू का भी तुझे पता चल गया है। अब विचार कर ले कि तुझे क्या करना है ?

ब्रह्मदास को आज पता चला कि यह तो उसके मन रूप तकली को बल पड़ा हुआ था, तंती कहाँ से निकलती ? मैं अनिर्वचनीय माया[१] के जाल में रहा, मैंनें उसे समझा ही नहीं, यह अदृष्ट माया कैसे छिप-छिपकर मेरे मन को उल्टे चक्कर दे रही है, पर हे माया ! तेरा भी भला हो, खूब जूता मारकर मेरा बल निकाला है? माया ने बल काहे का निकाला, यह तो उन सिक्खों की अनुकंपा है जिन्होंने बल निकालकर सीधा तीर की भाँति कर दिया है। ब्रह्मदास की यह बात थी :-

पथिक - अरी युवती ! तेरा तार टूट-टूट पड़ता है।

युवती - रूई धुनने वाले ने रूई अच्छी नहीं धुनी ।

पथिक - अरी ! रूई में तो काई दोष नहीं दिखाई पड़ता ।

युवती - अरे ! तू ही कोई तुक्का तीर लगा ।

पथिक - अरी ! तेरी ही तकली में बल दिखाई पड़ता है। तू इसी को भली-भाँति कूट-पीटकर सीधा कर। इसके सिर पर दो-तीन हथौड़े लगा। जब तकली सीधी हो जाये, तब तंती भी सुन्दर निकलती है। अरी युवती ! तेरी तकली को बल पड़ा हुआ है। बल निकाल दे, तब तेरी तंती चलेगी ।

अत: माया उन सिक्खों ने रूपधारी करके आँखों से दिखा दी, उसने तकले का बल निकाल दिया। अब जब ज्ञान मिला तो माया एक ओर जाकर खड़ी हो गई, ब्रह्मदास अन्दर से शुद्ध हो गया ।

अब ब्रह्मदास जी ने चित्त में प्यार की झन्नाहट छिड़ी कलेजे में आकर्षण हुआ, वह रूप, जिसे तपा जी कहकर पुकारता था, चित को प्यारा लगा । हृदय में पश्चाताप हुआ कि इनते उच्च स्वच्छ, सुन्दर प्यारे अदेशी सौन्दर्य को मैं तपा-तपा करके साधारण साधु समझता रहा। शोक ! इस माया के लुप्त प्रभाव ने मेरे मन के ही नैन मुँद दिये। अच्छा ! जो व्यतीत हुई सो तो हो ही गई, अब ही किसी तरह सुपात्र बनूँ। इस तरह सोचता सिक्खों को नमस्कार करता हुआ पीछे को चला और सतगुरू जी के चरणों पर झुका ।

ब्रह्मदास आज जिस समय आकर चरणों पर झुके तो आरती और सोहला नामक वाणी का पाठ हो रहा था, श्री सतगुरू जी अचल टिकाव में बैठे थे, सतगुरू जी ने अपना प्यार वाला हाथ, जो जल रहे संसार को शीतलता प्रदान के लिए आया है, जो टूटे हुए मनों को प्रभु

---

१. सत्य असत्य से विलक्षण ।

के साथ जोड़ने के लिए आया है, इस पण्डित के सिर पर रख दिया। हाँ अब इस साकट (टूटे हुए) हृदय को यही शुभ हाथ प्रभु के साथ जोड़ रहा है। सिर पर हाथ फिर रहा है अथवा आत्मा को परमात्मा के चरण कमल मकरंद रस का दाना डाल रहा है, पण्डित के पत्थराए मन को पिघला-पिघलाकर कभी न छिड़ी ईश्वरीय झन्नाहट छेड़ रहा है; अपूर्व उल्लास उछाल रहा है, सोये हुए मन को जगा रहा है, मृतक मन को जीवित कर रहा है और ब्रह्मदास को ब्रह्मजी का प्यारा बना रहा है। हाँ सारी उम्र भूल में रहने वाले व्यक्ति को प्रभु की लौ में लगा रहा है ।

कुछ समय के पश्चात् सिर उठाया, सतगुरू जी ने उठाया, ब्रह्मजी क्या देखते हैं कि अन्दर आत्मा में एक सुख का प्रवाह जारी है, शीतलता और शान्ति फैल रही है। किसी भारी 'अस्तित्व' की शरण अपना 'अस्तित्व' समा रहा है; अकथनीय रस प्राप्त कर रही है।

'नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि' ।। (जपुजी)

जैसे नदिया सागर में पड़ती हैं, पर वे सागर का अन्त, पारावार कुछ भी नहीं जानती, वे शरण लेती हैं और उसके सुख में सुखी हो जाती हैं, उसका अन्त लेने के पीछे नहीं भागते। वैसे ही प्रेमी आत्मा वाहिगुरू की शरण में सभाते हैं, सुखस्वरूप हो जाते हैं और उसका पारावार लेने के लिए नहीं दौड़ते। सागर से स्पर्श करते ही किसी रस स्पर्श में लीन हो जाते हैं। अत: ब्रह्मदास को जीवनदान प्राप्त हुआ, लौ लग गई ।

(४)

दोपहर का समय है, पर देश ठण्डा है और ऋतु सुहावनी है। झरने के निकट उस बगीचे में कमाल जी बैठे हैं। वाहिगुरू की ध्वनि मीठी-मीठी रसभीनी स्वर निकाल रही है, कि ब्रह्मदास जी आ पहुँचे ।

कमाल - आओ भाई जी ! मेरे सहोदर जी ! जीवित हो उठे हो, धन्य भाग्य ! बधाई !

पर ब्रह्मदास की जिह्वा रुक गई, आँखों ने मोतियों की जैसी दो बूँदें भेंट रखकर उत्तर दिया। कमाल जी उठे, दोनों जो हिन्दू मूसलमान थे और मित्रता होते हुए भी जो दूरी पर रहते थे, आज गले लगकर मिले, जाति अभिमान की दूरी सीमा भी समाप्त हो गई। हिन्दू, मुसलमान सिक्ख धर्म की कुठाली में ढ़लकर शुद्ध स्वर्ण हो गए। बड़े प्यार सहित गले मिले, "भाई-भाई, प्यारे भाई, मेरे भाई" के प्यार भरे शब्द निकले ।

इस तरह मिल चुकने के पश्चात् बैठ गए, अभी थोड़ा समय ही व्यतीत हुआ था कि भाई हस्सू जी आ गए, बड़े आदर सहित दोनों ने पास बैठाया, वाहिगुरू का यश तथा गुरू नानक की अनुकम्पा की कीर्ति हुई, फिर सत्संग की बातचीत होते-होते, बातचीत इस ढंग पर आ गई ।

कमाल - मुझे ईश्वर क्यों न दिखाई दिया ?

हस्सू - वह हमारी इन आँखों का विषय नहीं था। वह सबको देखने वाला है पर वह किसी को दीखने वाला नहीं; यह असम्भव है कि वह हमारी आँखों का दृश्य बने। नदियाँ समुद्र से जाकर मिलती हैं, समुद्र उन्हें गोद में ले लेता है, नदियाँ समुद्र का अन्त नहीं पा सकतीं, शरण मे समाकर सुख प्राप्त करती हैं।

कमाल – मुझे वह शरण क्यों न प्राप्त हुई ?

हस्सू – तुम अनन्त का अन्त लेने में लग गए थे, तुम्हे लौ प्राप्त नहीं हुई थी। आँखों को जगत की ओर से हटाकर मन तथा बुद्धि में आने वाले एक अपने 'ख्याल के घोड़े अरेख, अरूप आकार' को अपनी आँखों के सामने लाते थे और वह तुम्हारा अपना मन ही था। जैसे सपने में मन अपने ख्याल के मसाले से ही निर्माण कर लेता है जैसे तुम काल्पनिक ईश्वर का निर्माण करते थे। अत: तुम्हारे मन के आगे मन ही खड़ा था, अनन्त के साथ कोई संयोग नहीं हुआ था। यह अजोड़ दशा साकट (टूटी हुई) दशा है, मन प्रभु के साथ नहीं जुड़ा, उससे दूरी पर है। ब्रह्मदास जी किसी की कल्पना से बनाया हुआ पत्थर गले में डाले फिरते थे, तुम अपनी कल्पना के खुदा का निर्माण करके मन के गले में लटकाए फिरते थे। ठाकुर तथा प्रभु से दोनों दूरी पर रहे थे। जब तुम्हें सतगुरू नानक देव जी मिले, उन्होंने तुम्हारे अंतस को अंतस के आश्रय वाहिगुरू की शरण मिला दी, लौ लगा दी। लौ का अर्थ है वाहिगुरू की शरण के साथ निरन्तर मेल हो जाना। जो कुछ तुम अब आठों पहर; स्वासं स्वास अंतस में प्रतीत कर रहे हो, यह लौ है।

कमाल – मुझ पर तो 'अनुकम्पा' हुई है । पर क्या कोई साधन भी है?

हस्सू – अनुकम्पा की साधन है। वाहिगुरू के अनुग्रह का अनुग्रह ही सब कुछ है।[१]

साधन अनुग्रह है, अनुग्रह नाम है, नाम साधन है, नाम अनुकम्पा है। निहाल करने वाला गुरू का शब्द प्रभु का नाम है, इस तरह अंतस कमल की भांति खिलता है और हर समय सच्चे रंग-वाहिगुरू की शरण की प्राप्ति के सुख से अंतस रंगा रहता है, वह रस शारीरिक रसों की भांति तीव्र तथा शीघ्रता से उतरने वाला रंग नहीं होता।

ब्रह्मदास – कृपा करके तनिक लौ वाले लौधारी का रूप तो बताएं, उसका मन कैसे होता है?

हस्सू-लौ वाले मन में तृष्णा तथा तृष्णा से उठले वाले तरंगों का वेग नहीं होता, संकल्पवश में होते हैं और चेता में – ध्यान में, उठते बैठते, चलते, फिरते, हर दशा में, प्रत्येक समय वाहिगुरू की चरण-शरण प्राप्ति का रस तथा अनुभव बना रहता है। जिस तरह माँ की गोदी में पड़े हुए बालक को गोदवास का सुख (माता की गोद के स्पर्श का रस) मस्त किए रखता है, वैसे ही वह मन निरन्तर शरण में निवास करने के सुख में होता है। सोच, चिन्ता, विचार, संकल्पों के जंजाल में नहीं बहता रहता। प्रभु के स्मरण का एक तार लौ बांधे रखता है। 'सहज आनन्द' की प्राप्ति अन्दर चलती रहती है।

ब्रह्मदास (नि:श्वास लेकर) – सतगुरू के अनुग्रह ने लौ प्रदान करके मुझे जीवित कर दिया है। मैं देखता हूँ कि मैंने जो अनुभव सतगुरू जी से प्राप्त किया है वही तुम कह रहे हो, यह लौ होगा अथवा लौ बन जाएगा। पर यह बताइए कि यह तो अंतस की अवस्था हुई, लौ वाले की दृष्टि क्या होगी?

हस्सू – उसकी दृष्टि सतगुरू जी ने बताई है-

'ताका अन्तु न जाणै कोई।

---

१. जाकऊ मिहर मिहर मिहरवाना ।। सोई मरद मरदु मरदाना ।। (मारू सोलहे महला १)

पूरे गुर ते सोझी होई ।।
नानक सचि रते विसमादी ।
बिमस भए गुण गांइदा ।।१६।।३।।१५।।

(मारू सोलहे म० १)

अर्थात् जिन्हें सतगुरू जी से ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह विस्मय में रांते हैं। वे विस्मय में रंगे हुए गुण गाते हैं। तात्पर्य यह कि उनकी दृष्टि विस्मय में रहती है।

ब्रह्मदास – जरा इसे सविस्तार कहना।

हस्सू – लौधारी की आँखें पदार्थों तथा वस्तुओं को देखकर इनके बाहरी रूप में ही नहीं रहतीं, उसे प्रत्येक वस्तु में 'हरि रूप' दिखाई देता है, जैसे तृषावन्त की आँखें लटकते हुए सन्तरे को देखकर उसमें तृषा बुझाने तथा हृदय को प्रसन्न कर देने वाले स्वादिष्ट रस को अनुभव करती हैं, पर एक बालक जिसने संतरा कभी चखा ही नहीं, संतरे के रंग, रूप गोलाई तथा अपने खेल के सामान एक गेंद रूप देखता है, उसे 'स्वाद तथा हृदय की प्रसन्नता' वाले संतरे के रूप की झलक नहीं पड़ती। इस तरह लौधारी को प्रत्येक वस्तु में एक सहज आनन्द वाली झलक पड़ती है, यह झलक उसकी दृष्टि को विस्मय में रखती है। विस्मय से उत्पन्न हुई दृष्टि वह है जो सहज आनन्द के रंग में माती हुई प्रत्येक वस्तु में अमृत का प्रभाव प्रतीत करती है और प्रत्येक वस्तु में से वह अमृत खींचती है। अर्थात् स्तुति का रस लेती है और सोच मण्डल से ऊँची रहती है। जैसे कि हमारे गुरू बाबा जी प्रत्येक वस्तु में विस्मय देखते हैं; एक दिन श्री सतगुरू जी ने हमें अपनी विस्मय दृष्टि का समाचार यों बताया था–

"विसमादु नाद विसमादु वेद ।।
विसमादु जीऊ विसमादु भेद ।।
विसमादु रूप विसमादु रंग ।।
विसमादु नागे फिरहि जंत ।।
विसमादु पऊणु विसमादु पाणी ।।
विसमादु अगनी खेडहि विडाणी ।।
विसमादु धरती विसमादु खाणी ।।
विसमादु सादि लगहि पराणी ।।
विसमादु संजोगु विसमादु विजोगु ।।
विसमादु भुख विसमादु भोगु ।।
विसमादु सिफति विसमादु सालाह ।।
विसमादु ऊझड़ विसमादु राह ।।
विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि ।।
विसमादु देखै हाजरा हजूरि ।।
वेखि विडाणु रहिआ विसमादु ।।
नानक बुझणु पूरै भागि ।।१।।

(आसा दी वार महला १)

ब्रह्मदास–जब अन्दर में लौ है और दृष्टि में विस्मय है, फिर सेवा क्या हुई ? मुझे पहले सेवा की आज्ञा हुई थी।

हस्सू – देखो न भाई जी ! हम विशुद्ध मन ही तो नहीं हैं, शरीर भी हैं। हम केवल विचार ही नहीं, कर्म भी हैं, हम विशुद्ध बुद्धि ही नहीं, तरंग भी हैं, हम केवल एक तत्व मात्र ही नहीं; व्यक्तित्व भी हैं। हमारी उच्चता सभी ओर की गिनी–मिनी उच्चता है।

१. लौ अंतस की अवस्था है। अपने कर्तार, स्वामी, पालन करने वाले के साथ जुड़े रहना, लगे रहना।

२. यों अंतस आपे में एक रसभरी उच्चता की प्रतीत में रहता है।

३. इस उन्मन (उच्च मन वाले) की दृष्टि जब विस्मय की झलक में होती है, तो जिधर दृष्टि जाती है, सुन्दरता का रंग देखती है। इस दृष्टि में स्तुति का रंग भरा होता है, जिधर यह दृष्टि जाती है, सारे दृष्टमान में से रस तथा अमृत खींचती है।

४. कभी–कभी एक विस्मय की–सी झलक स्वाभाविक ही किसी को पड़ जाती है। अलौकिक सुन्दरता की झलक कभी विस्मय में ले जाती है, उस समय यदि मन तृष्णा के भाव में चला जाए, तो विस्मय का रंग उड़ जाता है अथवा फीका पड़ जाता है।

५. उपरोक्त सारा खेल अन्दर की उच्चता का है। यह खेल उन वृत्तियों से–जो हमारी पशुओं से साझी हैं, ऊँची अवस्था है।

६. हम शरीरधारी हैं। हमारे शरीर का निर्माण तथा रूचियाँ पशुओं से मिलती–जुलती हैं। इन्हें कठोर तपों, हठों, धक्कों घोड़ों से मारने तथा वध करने से शरीर तथा मन स्वस्थ नहीं रहते। गुरू बाबा की मन्त्रणा से इन्हें उन्नत किया जाता है। यह मार्ग केवल इस दाता गुरू ने बताया है। पाँचों का वध मत करो, सौगात बनाओ, उन्नत करो।[1] उन्नत करने के साधन प्राकृतिक निर्दोष सुन्दरता का रसिक होना तथा वाणी, कीर्तन नाम में चाव–सहित लगना, पशुपन की वृत्तियों को अपने वश में करना है। वश में करने का प्रयत्न किसी सुन्दर ढंग का हो। वह प्रयत्न सेवा है। हमारे मन का स्वभाव है कि यह लेकर, ग्रहण करके, धक्का करके, ऐंठ कर प्रसन्न होता है। अब यदि कठोर तपहठ से इन बातों के उलट चलेगा तो उदास तथा दुखी–सा हो जाएगा। यदि चाव में भरकर देने का स्वभाव बनायेगा, देखकर प्रसन्न होगा, भला करेगा तो पशु–वृत्ति 'देव वृत्ति' में उन्नत होगी। पशु लेता है, टक्कर मारकर छीनता है, मनुष्य का हृदय भी यही कुछ कता है, पर जो देकर उपकार करके दूसरे का बिगड़ा हुआ संवारकर प्रसन्न होता है, वह पशु–स्वभाव से उलट चल रहा है और वह सहजे ही अपने–आप पर नियन्त्रण कर लेता है।

७. फिर जिसको देवता बनाना है उसके लिए सतगुरू जी गुरू तथा गुरुमुख पुरुषों की सेवा बताते हैं। यह सेवा करता हुआ मन गुरू तथा गुरुमुखों के गुणों को लेता है, यह सेवा मन को मानरहित करती है और इससे मन का मैल धुलता है और दूसरी ओर से सत्संग की प्रसन्नता उसका मैल काटती है, जिसका फल यह होता है कि मन नाम के निवास के लिए तैयार हो जाता है, सर्वसेवा की फल मन में 'नाम निवास' है और द्वैत भावना से की हुई सेवा

---

१. जैसे पंचम गुरू जी का वाक्य है:–
'पंजे बधे महाबली करि सचा ढोआ' ।। (बसन्त की वार म० ५)

जो केवल दिखावे के लिए की जाती है, वह ठीक नहीं है, सेवा 'मन की शुद्धि' 'कर्म' की शुद्धि के लिए है और मन कर्म की सफाई नाम में स्थित करने के लिए है।

सेवा सतगुरू जी 'आज्ञा' में करवाते हैं, जो सेवा को आज्ञा समझकर नहीं करता उसका मन स्वच्छ नहीं होता, क्योंकि वह 'सेवा' मन की मन्त्रणा से करता है, 'मन की मन्त्रणा' अहं में है, अहं से किए काम 'झूठ की दीवार' में फँसाए रखते हैं, उनका फल मन की स्वच्छता नहीं होता।

हमारे कर्म बुरे हैं, हम मन के पीछे चलते हैं, हमारे अन्दर तृष्णा है। उससे हमारे कर्म हमें अतृप्त माया में फँसाते हैं।

इस माया की फाँसी से छुटकारा देने के लिए सतगुरू जी हमारे कर्मों को गुरू तथा साधु संगत की सेवा में लगाते हैं और सेवा करना 'आज्ञा' द्वारा समझाते हैं। आज्ञा समझकर जो सेवा की जाती है, उसमें अहं की पकड़ कम होती जाती है, तृष्णा निम्न होती जाती है और अन्त में मन स्वच्छ होकर निखरता है।

ब्रह्मदास – तब सेवा का फल मन की स्वच्छता है और सेवा 'आज्ञा' में करनी है, अपनी बड़ाई, गुण, दया, 'मैं दयालु स्वभाव का हूँ' ऐसे-ऐसे मन के संकल्पों से नहीं, पर केवल इसलिए कि यह सेवा मन को शुद्ध कर देगी और यह सेवा करना एक 'आज्ञा' है। ... दूसरी सेवा?

हस्सू – जब लौ लग गई है, दृष्टि विस्मय हो गई है, "वेखि विडाणु रहिआ विसमादु" वाली पूर्ण भाग्य की दृष्टि प्राप्त हो गई है, फिर भी सतगुरू जी कहते हैं कि जगत में निवास करना है और व्यवहार करना है; तब भी जो व्यवहार होगा, वह सेवा है, पर वह सेवा, विस्मय दृष्टि में है और स्वाभाविक ही है। इसलिए मैंने फिर विनय करनी है कि पशु वृत्ति क्या है? पहले कही हुई बात फिर से दुहराता हूँ।

(क) पशु वृत्ति यह है कि मैं सुखी होऊँ और कोई चाहे सुखी हो अथवा न हो। जिस मनुष्यों में यह वृत्ति काम करती है वे मनुष्य पशु के समान ही हैं।

(ख) पशु में मन है पर मनुष्य जैसी बुद्धि नहीं, मनुष्य में यदि बुद्धि है, उससे मनुष्य विचार कर लेता है, जैसे अपने सुख के लिए दूसरे के सुख की परवाह नहीं करता, इस तरह दूसरे लोग अपने सुख के लिए मेरे सुख की परवाह नहीं करते और फल यह है कि इस 'धक्कमधक्के' के साथ मैं भी दुख भोगता हूँ और लोग भी। तब मनुष्य यह विचार करता है कि दूसरा मेरे साथ इस तरह का व्यवहार करे तो मैं सुखी होता हूँ और इसकी औषधि यह है कि मैं दूसरे के साथ इस तरह के व्यवहार करूँ के जैसे मैं चाहता हूँ कि दूसरा मेरे साथ करे। जब यह विचार आकर मनुष्यों में उचित अनुचित की पहचान होकर व्यवहार शुरू हो जाता है तब एक दूसरे का सुख बढ़ जाता है और दुख कम हो जाता है।

(ग) फिर मनुष्य देखता है कि मैंने तो दूसरे के साथ इस तरह का व्यवहार किया, जिस तरह का मैं चाहता हूँ कि वह मेरे साथ करे, पर वह ऐसा नहीं करता, तब वह सीखता है कि कोई बात नहीं, वह कुछ भी करता रहे, मैंने जो कुछ उचित समझा है, मैं वही करूंगा। जब इस तरह की वृत्ति हो गई तो देवता का जीवन आरम्भ हो गया। पहले विचार के साथ जीवन में 'धर्म' कायम हुआ था, भाई एक-दूसरे के अधिकार की पहचान करना, न्याय करना,

धक्का नहीं करना, अब उसमें 'दया' आई कि कोई बात नहीं; यदि दूसरे ने भूल की है तो मैं क्षमा कर दूँ और मैं वही व्यवहार करूँ जो मुझे उचित लगता है। सतगुरू जी कहते हैं कि "जगत का सूत" इस तरह कायम होता है। अर्थात् इस धर्म ने, जिसे यदि दया का पुत्र बना दिया जाए और जिसमें सन्तोष का निवास कर दिया जाए-जगत में सूत कायम करना है।

'धौलु धरम दइआ का पूतु ॥
संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति ॥

जब सन्तोष धारण करके, दया वृत्ति धारण करके धर्म पर चला जाता है तो हमारा व्यवहार इस सेवा का स्तर रखता है, इसमें यदि दूसरे से दुख प्राप्त हो, तो उस दुख से अपने व्यवहार को नहीं बदलना।

पर यदि ऐसा जीव नाम जपता है और आज्ञा की पहचान करने का यत्न करता है, तो वह इसमें भावना भी नहीं रखेगा कि मैं बलिदान दे रहा हूँ। वह अपने रंग में लगा रहेगा और उसका स्वभाविक व्यवहार ही ऐसा हो जाएगा जो धर्म, दया तथा सन्तोष वाला होगा।

जगत पर इस तरह के मनुष्यों का अभाव है, पर सतगुरू नानक देव जी ने आकर उन मनुष्यों की अधिकता कर दी है जिनके मन में वाहिगुरू के साथ लौ लगी है, और बाहरी व्यवहार प्यार तथा दया वाला बना है।

जिनकी दृष्टि में विस्मय का निवास हुआ है: उनकी फिर उच्च दृष्टि यह हो जाती है कि प्रत्येक स्थान पर अनन्त की झलक दिखाई पड़ती है। जैसे मैंने कहा था कि अनजान बच्चे को संतरा खिलौना रूप दिखाई पड़ता है, पर जानने वाले तृषावंत की दृष्टि को शीतलता प्रदान करने वाला, हृदय को प्रसन्न करने वाला, अमृत रस दीखता है। इसी तरह विस्मय आँखों को प्रत्येक स्थान पर 'हरि रूप' दिखाई देता है। उन जाग्रत हो चुके सज्जनों का व्यवहार इस हरि रूप से होता है । सतगुरू जी ने बताया है कि उनसे जो व्यवहार किसी दूसरे से होता है वह उसमें उसकी रूपता, कुरूपता, दूसरे का आश्रय, दीनता, उचित तथा अनुचित, आदि विचारों से ऊँचे हो जाते हैं, उनकी दृष्टि हरेक में समाये हुए ईश्वरीय सौंदर्य पर पड़ती है और वे जो कुछ व्यवहार किसी के साथ करते हैं, वह अनन्त स्वामी के साथ करते हैं। इनके मन अपने ईश्वर के हरेक समय के आगमन में चाव से भरे रहते हैं। इस उच्च स्वच्छ सुन्दर रंग में वे जो व्यवहार किसी सज्जन, शत्रु, अपने पराए, मनुष्य, पशु, पक्षी किसी के साथ भी करते हैं, लौ वाले हृदय तथा विस्मय भरे नैनों से दृष्टमान ईश्वरीय जलवे से करते हैं और उनसे यह सब कुछ स्वभाविक ही होता है। उनका मन, जिनकी वे सेवा करते हैं, उनके मनों के साथ रगड़ नहीं खाता, उनका मन अनन्त के साथ रगड़ खाता है[१] अत: सतगुरू जी बताते हैं।

सभ महि जोति जोति है सोइ ॥
तिसदै चानणि सभमहि चानणु होइ ॥

(सोहिला राग गऊड़ी दीपकी म: १)

जिस तरह धरती के ऊपर पूर्णिमा के चन्द्र का प्रकाश फैल रहा है, दर्जी उस प्रकाश की

---

१. अर्थात् तद्रूपता में जाता है।

गुद्दड़ी की सिलाई कर रहा है। उसकी वृत्ति, सूईं, धागे, गुद्दड़ी, मज़दूरी के पैसे के सुख में तथा परिश्रम की थकान तथा उकसाहट में है, पर बैठा प्रकाश में ही है। परन्तु चकोर को देखिए, चन्द्र की ओर टक बाँध रखी है, यदि ऊपर को देखता है तो चन्द्र, अन्दर देखता है तो चन्द्र, आँखों में प्रकाश का जलवा, चारों ओर प्रकाश देखता है, सारे जगत को देखता है, पर क्या देखता है चन्द्र का प्रकाश सबके चारों ओर लिपट रहा है, सबके सिर पर खेल रहा है। चकोर का हृदय, चकोर की दृष्टि, चकोर के कर्म, कुहकना, खेलना, प्रसन्न होना, किसी को सुख देना, सब उसी चन्द्र से भेंट, उसके रसभरे दर्शनों, उसके चाव तथा उल्लास भरी उमंग में है। यदि दर्ज़ी की सूई गिर जाए तो चाव भरे उल्लास में चोंच के साथ दर्ज़ी को सूई पकड़ाकर, चकोर दर्ज़ी की सेवा की भूल में पड़ता, अहंकार न करता कि मैंने उपकार किया है, वह दर्ज़ी के इर्द-गिर्द, प्रकाश-ही-प्रकाश देखता और उसी प्रकाश से कौतुक कर रहा है, उसी प्रकाश के प्रयोजन की सफलता की सेवा कर रहा है।

ब्रह्मदास – भला श्रीमान! यदि कभी आँखों में से विस्मय दृष्टि हटे, अन्दर से लौ का तार ढीला हो, तब फिर मनुष्य क्या करता है ?

हस्सू (मुस्कराकर) – यदि विस्मय का रंग घटे तो अन्तस के ज्ञान में 'आज्ञा' पर आधार जो बना होता है।

'दृष्टि आज्ञा पर से कभी न हटे, यदि उधर से उखड़ जाए तो 'दया' पर आकर टिक जाये। दृष्टि दया से कभी मत उखड़े, यदि उखड़े तो 'धर्म' पर टिक जाये। दृष्टि धर्म से कभी मत उखड़े, यदि उखड़े तो पशु की भाँति हो गया।'

ब्रह्म – फिर क्या करें ?

हस्सू – सतगुरू नानक की शरण ले, प्रार्थना करे, सत्संग करे, सेवा करे।

ब्रह्म – कुछ और भी ?

हस्सू – (हँसकर) – महामन्त्र पढ़े ।

ब्रह्म – वह क्या ?

हस्सू – **'भरीऐ मति पापां कै संगि ।।**
ओहु धोपै नावै कै रंगि ।।

नाम जपना और सतगुरू जी की वाणी का कीर्तन तथा पाठ विचार करना, यह हमारा सिक्खों का सर्वोच्च महामन्त्र है; जो पशु से मनुष्य बना देता है, मनुष्य से देवता बना देता है। वाणी का पाठ करे, नाम जपे।

हस्सू के नैन मुँद गए; गुरू नानक के प्यार की अदेशी आज्ञा याद आई :-

बलिहारी गुरू आपणे दिऊहाड़ी सदवार ।।
जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार ।। १ ।।

अब सतगुरू जी श्रीनगर को गए। आप श्रीनगर पहुँचकर शहर में नहीं गए, १४ दिनों तक वन में ही रहे और वन के ही मेहमान बने रहे। लोग उमड़-उमड़कर आने लगे; जो कोई

भी आता वह लाभ प्राप्त करके जाता और नाम धारण करके नाम में ही टिक जाता। इस तरह कीर्ति फैलनी शुरू हुई और लोगों का उद्धार होने लगा, इस तरह, जिस तरह सुगन्धि फैलती है। फिर :-

नाम दान इशनान द्रिढ़ायो ।
सिक्खी मग तिस देश चलायो ।
महमा पुरि महिं बधी अपारा ।
लिखहि शबद गुर करहिं उचारा ।
पढ़हिं प्रीत सिऊ कीरत करिहीं ।
श्री नानक महिं श्रद्धा धरिहीं ।।

(नानक प्रकाश)

यह प्रताप, यह तेज सतगुरू जी का ऐसा फैला कि दूर-दूर से धर्मी लोग आ-आकर ठिकाना करने लगे। रात-दिन कीर्तन की ध्वनि होती। इस तरह काश्मीर में चिरंकाल तक ईश्वरीय गुलज़ार खिली रही। ब्रह्मदास पूरण सिक्ख हो गया, स्मरण सरस करने वाला, सतगुरू का प्यारा सिक्ख-पूरा सिक्ख- हो गया। सतगुरू जी ने उसे मंजी प्रदान की :-

नाम दान सच धरम द्रिढ़ाइओ ।
धरमसाल मैं तिसै बिठाइओ ।
सिक्ख भए तिह देश घनेरे ।
सिमरहिं सतिनाम तिह बेरे ।
कितक काल तहिं कीन निवासा ।
पुन आगै गमने सुखरासा ।।

(गुरू नानक सूर्योदय)

सतगुरू नानक देव जी काश्मीर से आगे चल पड़े, ब्रह्मदास जी को धर्म स्थान में बैठने की आज्ञा हुई, आप नाम का स्मरण करना और दूसरों को कराने की आज्ञा हुई। अत: आज्ञाकारी दास आज्ञा में बैठ गया, पर कमाल गुरू बाबा जी के साथ - उनकी आज्ञा पाकर चल पड़ा ।

कमाल जी सतगुरू जी के साथ कुछ समय तक यात्रा में रहे, फिर आज्ञा हुई कि कुरम के इलाके में निवास करो और सतनाम का यश सुनाकर मृतक हृदयों को जीवित करो।

सूचना :- लगता है कि श्री गुरू जी जम्मू के रास्ते से होकर काश्मीर देश में पहुँचकर अनन्तनाग से होते हुए, जो स्थान आपको बहुत पसंद आया था, वह मारतंड का चश्मा (स्त्रोत) था। जहाँ आपको कमाल तथा ब्रह्मदास मिले थे। चरवैहा वाली कथा भी इसी इलाके में घटी बताई जाती है। यहां से फिर आप श्रीनगर को गए हैं और वहाँ बहुत प्रचार हुआ। 'कोई दिन आथे बी रहिआ लोक बहुत नाम धरीक होए' (पुरातन जन्मसाखी)। श्रीनगर नदी के पार जहाँ अब श्रीचन्द का चनार वाला स्थान है, यही स्थान बाबा जी का ठिकाना था। तब यह स्थान श्रीनगर से बाहर था, अब नई अंग्रेजी ढंग से बनी हुई आबादी में आ गया है और बिल्कुल सड़क के किनारे पर है। यहाँ श्री गुरू ग्रन्थ साहब की स्थापना भी होती थी। बहुत-सी भूमि

भी इसके साथ लगी हुई बताई जाती थी। श्री गुरू ग्रन्थ साहब की स्थापना थोड़े समय से अकाली आंदोलन के समय बन्द कर दी गई है। श्रीनगर प्रचार करके तथा और देश में भ्रमण करके गुरू जी फिर से मट्टन साहब आये लगते हैं और वहाँ से फिर कैलाश की ओर गए हैं।

पुरातन जन्मसाखी में काश्मीर पद्य खुला पड़ा है और देश से तात्पर्य है। गुरू नानक प्रकाश तथा बाले वाली जन्मसाखी से संशय हो जाता है कि काश्मीर से तात्पर्य श्रीनगर ही है। पर काश्मीर में जाकर जो कुछ खोज हो सकी थी, उससे पता चला था कि गुरू जी जम्मू के रास्ते से जाकर पहले मट्टन पर ही ठहरे थे, जिसे आपके ठहरने के कारण तक से ही 'मट्टन साहब' कहते हैं। यहाँ से ही अमरनाथ को रास्ता जाता है, मेलों पर पहुँचकर सतनाम का प्रचार ही श्री गुरू जी का व्यवहार रहा है। इस ओर प्रचार करके श्रीनगर को गए हैं।

काश्मीर में खोज करते समय यह भी पता चला था कि ब्रह्मदास बीज बिहाड़े का निवासी था, जो मारतंड के चश्में पर सतगुरू जी को मिला था। चश्में के तालाब के बीच में एक चबूतरा था, जहाँ सतगुरू जी के साथ चर्चा हुई थी। चबूतरा गिरा हुआ अब भी पानी में दिखाई देता है। चश्में के किनारे सात धर्मस्थान थे और महाराजा रणजीत सिंह के समय सात श्री गुरू ग्रन्थ साहब की स्थापना होती थी। बीस पचीस वर्ष पहले एक धर्मस्थान चश्में के ऊपर कायम था, जिन्होंने उसे देखा है, वे बताते हैं कि वहाँ पर श्री गुरू ग्रन्थ साहब की स्थापना होती थी। हमने स्वयं एक की दहलीज़ देखी है। अब किनारे से परे एक छोटे से स्थान पर धर्मस्थान बना हुआ है। गुरू ग्रन्थ की स्थापना है। जिस मन्दिर में ब्रह्मदास को माया मिली थी, उसका संकेत टीले के ऊपर मारतंड के मन्दिर के खण्डहर की ओर ही है जो चश्में के पीछे इस ओर टीले पर है। मन्दिर की कोई ८० फुट की एक महराब अब भी खड़ी है, शेष के बारे में कहा जाता है कि एक मूर्ति तोड़ मुसलमानों ने मन्दिर गिरवाया था अत: खंडहर और पत्थर पड़े हुए हैं। चरवैहा की कथा इस चश्में के नीचे पहाड़ी पर हुई लगती है, पर इससे तनिक आगे जाकर 'ऐश मुकाम' से कोई दो मील की दूरी पर गणेशपुर बंगले के समीप अनुमान है कि शायद चरवैहा की साखी यहाँ हुई हो। अब वहाँ पर अधिकतर पंजाबी गवाले ही रहते हैं।

□ □

१. काश्मीर में उच्चारण की गई वाणी

पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि मलार राग की वार गुरू नानक देव जी ने यहाँ उच्चारण की थी और उसकी २७ पऊड़ियाँ थीं। यह भी पता चलता है कि 'सहंस्त्रदान' वाला श्लोक महला १ तथा 'मारू सोलहा, अरबद नरबद' भी यहाँ पर ही उच्चारण किए गए हैं। इसका भाव यह प्रतीत होता है कि काश्मीर में सतगुरू जी के जो वचन हुए उनका सार इन वाणियों में है।

श्री गुरू ग्रन्थ साहब में जिन वारों (वाणियों) पर महला लिखा होता है, उसका यह अर्थ है कि उस वाणी की पऊड़ियाँ उसी महले (गुरू) की हैं। इसीलिए पुरातन जन्मसाखी में, 'पऊड़ी राग मलार में तित महले वार हुई' लिखा है। फिर वहाँ २७ पऊड़ियों का पता दिया

है। यह बात श्री गुरू ग्रन्थ जी में से सिद्ध हो जाती है, वहाँ मलार राग वार की २८ पऊड़ियाँ हैं पर सताईसवीं पऊरी पर लिखा है। 'पऊड़ी नंवी महला' ५।' जिस पर श्री गुरू अर्जुन देव जी ने पता दिया है कि यह पऊड़ी उन्होंने सम्मिलित की है, यह गुरू नानक देव जी की उच्चारण की हुई नहीं। इससे पहले २७ पऊड़ियाँ 'महले-पहले' (गुरू नानक) की सिद्ध हुईं

यह भी लिखा है कि काश्मीर में सतगुरू जी की उच्चारण की हुई वाणी हस्सू लोहार और सींहा छीपा ने लिखी थीं।

□ □

केशर कियारी

काश्मीर में आश्विन कार्तिक में केशर की गुलज़ार खिलती है, चांदनी रात में केशर का खिलना अद्भुत आनन्द प्रदान करता है: खूब सुगन्धि होती है। ऊदे रंग के फूल, लाल-पीली पंखड़ियाँ महकती हैं। निम्नलिखित गीत (यहाँ अनुवाद) में ब्रह्मदास की प्रसन्नता तथा प्रार्थना और हृदय के प्यार के उस चित्र को खींचने का प्रयत्न है, जो किसी रात सतगुरू नानक देव जी के केशर के कियारों में बैठने से प्रेमी के अन्दर हिलोर देता था। केशर के यह खेत 'पामपुर' में हैं जो श्रीनगर से आठ-दस मील की दूरी पर है।

(केशर कियारी)

केशर कियारी में मेरा सतगुरू बैठा है, तो चन्द्र-दर्शन को आया। मेरी केशर की बाड़ी लहरा रही है, गुरू जी ने उसे सौभाग्यवान कर दिया है। मेरी केशर की क्यारी ने महक लगा रखी है, उस महक का आनन्द लेने के लिए सतगुरू आए हैं।

लपट की हिलोर मेरी व्यर्थ जा रही थी, प्यारे सतगुरू जी ने उसे सफल कर दिया है। केशर की क्यारी में चन्दर की चौकी पर अनुपम दर्शन सुहावना लग रहा है। पवन केशर की सारी सुगन्धि लेकर, चँवर झुलाने के लिए आया है। ओस जो गुरू के दर्शन के लिए चली थी, उसने आकर गुरू जी के चरणों को चूमा है। चांदनी परिक्रमा कर रही थी, गुरू पर न्योछावर हो रही थी।

केशर की क्यारी में चन्दन की चौकी पर गुरू नानक देव सुशोभित हो रहे हैं। सोए हुए भंवरों को होश गया है, उन्होंने आकर चक्कर लगाया है।

'केशर पपीहा' को जब सुगंधि आई, तो चकोर कूकता हुआ आ गया। झुण्डों-के-झुण्डों ने सीस झुकाया, चारों ओर घेरा डाल लिया। शिकारियों को भी आज रास्ते भूल गए हैं प्रभु का अनुग्रह हो गया है।

केशर की क्यारी में अनुपम रौनक है, प्रभु आप तमाशा देखने के लिए आया है। अपने बनाए हुए पर आप मोहित होकर आप ही दर्शन के लिए आया है। अनुकम्पा के द्वार वाले गुरू नानक ने सौदा लगा दिया है।

अमूल्य व्यापार का व्यापारी बैठा है, उसने अमूल्य भण्डार खोल दिया है। अमूल्य देन, बिना किसी मूल्य से बाँट रहा है, उसने मीना बाज़ार लगा रखा है। मेरा प्यारा गुरू नानक, अदेश को

पृथ्वी पर ले आया है।

केशर की क्यारी में अमूल्य व्यापारी आ गए हैं, उन्होंने अदेशी केशर आकर लुटा दिया है। लोग उस केशर की झोली भर-भरकर लाए हैं, वे मालदार बन गए हैं, आनन्द लग गया है।

मैं क्या करूँ? मेरे पास तो कोई झोली नहीं, हे गुरू तू ही दया कर; तू दान भी प्रदान कर और झोली भी दे और उसे उठाने का बल भी प्रदान कर। हमारा उद्धार करने आज आया है, आज ही आया है, इस जगत में आज आया है। जिस स्थान पर प्यारा चरण रखता है, वह स्थान सुगन्धि से महक उठता है।

सूचना :– भरथरि की पहले भी गुरू जी से भेंट हुई थी, वह प्रसंग दूसरी यात्रा में है। देखिए इसी पुस्तक का पृष्ठ २३३।

□ □

७२ भरथरि निस्तार

अपनी तीसरी यात्रा में श्री सतगुरू नानक देव जी काश्मीर आदि उत्तरी देशों में से होते हुए कैलाश पहुँचे, जिसे सुमेर भी कहा जाता है, यहाँ ही मानसरोवर है। शिमले के पर्वतों से मानसरोवर तक और दूसरे मार्गों की ओर बड़े कठिन पर्वत हैं, पर आबादी दूर तक है, गुरू बाबा के जाने के चिह्न स्थान-स्थान पर मिलते हैं। श्री गुरू जी अभी इधर ही थे कि सिद्ध मण्डली, जो मानसरोवर पर पहुँची हुई थी, उनके आगमन का समाचार पाकर घबड़ा गई। इधर आगे-आगे आकर ही सिद्ध गुरू जी से भेट करने तथा चर्चा करने लगे।

योग साधना साधने वाले संसार का त्याग करके एकान्त, दूर वनों और ऊँचे पर्वतों पर, समय व्यतीत करने वाले महात्माजन देशों विदेशों का त्याग करके इस तरह अकेले आयु व्यतीत करने वाले थे। आज श्री सतगरू नानक देव जी को इतनी ऊँचाई पर आया देखकर चकित हो रहे थे। हाँ, एक ऐसे पुरुष को देख कर जो सिद्धों के भेष का नहीं था, सिद्ध चकित हो गए और पूछने लगे, हे पुरुष! कौन सी शक्ति तुझे यहाँ लाई है? सिद्धों में तेरी गणना नहीं और शक्ति सिद्धों से बाहर कहीं है ही नहीं।

गुरू नानक देव जी – शक्ति का मूल 'सर्व शक्तिमान' है, मैं शक्तियों के पीछे नहीं, शक्तियों के मूल की मैंने प्रेम-भक्ति की है, सभी शक्तियाँ उसकी हैं और मैं उसका दास हूँ।

सिद्ध – आप कृपा करके अपना नाम तो बताइए ?

गुरू जी – मेरा नाम नानक है, जिसने वाहिगुरू का स्मरण करके गति प्राप्त की है।

सिद्ध (नाक चढ़ाकर) – तो सिद्ध नहीं, साधु नहीं, गृहस्थी है कोई।

गुरू – यदि नीच कहलाएँ तो ही तो उच्च घर में वाहिगुरू के स्वरूप की प्राप्ति होती है, क्योंकि ऊँचे रहने से मन अहं में रहता है, प्रभु की शरण में अहं का कोई स्थान नहीं।

यह सुनकर सिद्ध कुछ लज्जित-से हो गए। आपस में संकेत्त करते-कराते रहे, फिर कुछ प्रश्नोत्तर किये, जिससे घबड़ाहट हुई कि यह कोई साधारण पुरुष नहीं, फिर कुछ नर्म हाकर वार्तालाप चलाई कि हे नानक जी! मर्त्यलोक का समाचार सुनाइए?

अब वह समय आया जिस मंतव्य के लिए सतगुरू जी वहां गए थे। आपने कहा-

[1]नाथ जी! सच्च चन्द्रमा है, झूठ अन्धकार है! मर्त्यलोक में झूठ की काली रात छा रही है और सच्च के चन्द्रमा का पता नहीं चलता, मैं फिरकर खोज कर रहा हूँ कि कहीं सच्च का चन्द्रमा है? धरती पर से धर्म उठ गया लगता है और पाप फैल गया है।

सिद्ध – क्या कोई थामने वाला नहीं?

गुरू जी – जो लोग अपने आपको सिद्ध कहलाते हैं, या यों कहें कि विचारवान हैं, वे तो यह आदर्श बनाते हैं कि चलो पर्वतों पर चलें और सुख प्राप्त करें, जैसे तुम सिद्ध लोग यहां आकर छिपकर बैठ गए हो। जगत का विस्तार कौन करे?

---

१. वार भाई गुरुदास १, पऊड़ी २९-३० का खुला अनुवाद चला है।

सिद्ध – हमारे योगी घर–घर में अलख जगाते फिरते हैं ?

गुरू जी – तुम्हारे वे योगी ज्ञान से रिक्त हो गए हैं, वे केवल राख लगाना तथा भिक्षा मांगकर खाना ही जानते हैं। जगत को मार्ग बताने वाला, सुमार्ग पर चलाने की क्षमता रखने वाला कोई रहा ही नहीं।

सत्य असत्य का विचार उड़ गया है, नियम धर्म पर तो कोई खड़ा ही नहीं। पशुओं की भांति हरेक व्यक्ति तृष्णालु होकर फिर रहा है।

सिद्ध – क्या राजा, प्रजा के आचरण तथा सत्य पर चलाने का कोई प्रबन्ध नहीं करता ?

गुरू जी – पातशाह प्रजा का पालन करने की अपेक्षा प्रजा को खा रहे हैं। राजा तेज रहित हैं।

सिद्ध – प्रजा एकत्र होकर क्यों नहीं अच्छा राजा बना लेती ?

गुरू जी – प्रजा विद्या रहित है, ज्ञान रहित है, दासता, अत्याचार, अविद्या के नीचे दुर्बल तथा असत्य के प्रेमी वाली हो गई है। भय के नीचे दबकर मनुष्य झूठा तथा दुर्बल हो जाता है।

सिद्ध – भक्त लोग ?

गुरू जी – वह तो नृत्य का रंग ही रह गया है, चेले जन्त्र बजाते तथा गुरू नाचते हैं, लीला तथा रासों के नाटक करते हैं, रस रंग तथा माया का अखाड़ा लगता है, शिक्षा देनी, धर्म सिखाना, उनमें भी नहीं रहा।

सिद्ध – एक–एक विद्वान् के अधिकार में दो–चार सौ घर होता था, जिसमें वह रहता था और प्रत्येक प्रकार की शुभ मन्त्रणा उन्हें देता था; क्या वे वृद्ध भी काम नहीं करते ?

गुरू जी – वे भिखारी हो गए हैं। चेले दाता बनकर घरों में कार्यों, व्यवहारों में रहते हैं और गुरू वर्ष के पश्चात उनके घरों में से धन लेने के लिए जाते हैं। अनाज, रुपये लेते, भोजन करते और उन्हें धागे तावीज़ देकर चले आते हैं।

सिद्ध – मुसलमानों का राज्य है, क्या उनके काज़ी धर्म न्याय नहीं चलाते ?

गुरू जी – काज़ी घूस खाने वाले हो गए हैं, घूस लेकर न्याय नहीं करते ।

सिद्ध – गृहस्थी भी अच्छे–अच्छे होते हैं, क्यों उन्हें भी कुछ हो गया है ?

गुरू जी – गृहस्थ का तो नाता ही टूट गया है। गृहस्थ है पत्नी–पति का सम्बन्ध और वह सम्बन्ध है सच्चे तथा स्वच्छ प्यार का, वहां पर अंधेर वर्त गया है कि स्त्री–पुरुष का प्यार पैसे का प्यार रह गया है। कोई कहीं फिरे, धर्म, अधर्म, प्यार, शील किसी बात को कोई पूछता नहीं।

यह सुनकर सिद्धों ने विचार की कि क्या किया जाये ? सोच–सोचकर यही बात मन में आई कि यदि यह नानक ही उनका चेला बन जाये तो उनके मत को दोबारा प्रसिद्ध करे और जो गोरख मत का बल कम हो रहा है, वह दोबारा प्रबल हो जाए। यह विचारकर उन्होंने गुरू जी से कहा कि तालाब में से जल भरकर लाओ। सतगुरू जी मुस्कराकर गए, आगे तालाब में जल के स्थान पर रत्न, जवाहर दिखाई दिए, जिन्हें सिद्धों ने इसलिए वहां भुलावा रचकर दिखाए थे कि गुरू जी इनकी शक्ति को मान जाएं और माया का प्रभाव पड़ जाये। पर माया

रूपी बिजली वाहिगुरू जी के सच्चे तथा वास्तविक प्रकाश वाले मन पर प्रभाव नहीं डाल सकती थी। गुरू जी ने रत्नों को छूआ तक न, वापिस लौट आये और आकर कहा, उस तालाब में तो भुलावे के पत्थर हैं, जल कहां है?[१] जिससे सिद्ध जान गए कि माया और सिद्धियाँ इन पर प्रभाव नहीं डाल सकतीं। अब दिमागी मुकाबला छेड़ बैठे।

महादेव – नानक तू गृहस्थी है कि उदासी ?

गुरू नानक – गृहस्थी तथा उदासी के लक्षण कहिए !

महादेव – जो माया में फँसे, घरबारी हो, वह गृहस्थी, जो इससे विरक्त हो जाये और उदास रहे वह उदासी ।

गुरू जी – गृहस्थी माया से विरक्त रह सकता है अथवा नहीं ?

महादेव – तीन काल ही नहीं।

गुरू जी – हो सकता है, पर तुम्हारे गृहस्थी तथा उदासी के लक्षण ठीक नहीं।

महादेव – तो तुम अपने लक्षण कहो।

गुरू जी –

सो गिरही जो निगृहु करै ।।
जपु तपु संजमु भीखिया करे ।।
पुंन दान का करे सरीरु ।।
सो गिरही गंगा का नीरु ।।

(रा: वा: स: महला १)

महादेव – इस ब्रह्माण्ड का जो परम तत्व (ब्रह्म) है, उसमें रूप तथा रेख नहीं। यह गृहस्थी रूप तथा रेख वाला है, यह कैसे लीन होगा ?

गुरू जी –

इकि गिरही सेवक साधिका गुरमती लागे ।।
नामु दानु इसनानु द्रिड़ हरि भगति सुजागे ।।

(आसा म: १)

महादेव – गृहस्थी जाग तो उठा पर माया से उदास कैसे, कोई दृष्टान्त ?

---

१. पिछली सारी वार्तालाप भाई गुरुदास जी के वचनों की गद्य टीका है। ३१ पऊड़ी यों है :-

'सिंधी मनै बिचारिआ किवें दरसन इह लेवै वाला ।।
अैसा जोगी कली मांहि हमरे पंथ करे उजिआला ।।
खप्पर दिता नाथ जी पाणी भर लैवण उठ चाला ।।
बाबा आया पाणीअै डिठे रतन जवाहर लाला ।।
सतगुरू अगद अगाध पुरख केहड़ा झले गुर दी झाला ।।
फिर आया गुर नाथ जी पाणीं ठउड़ नहीं उस ताला ।।
शबद जिती सिद्ध मंडली कीतो सु अपणा पंथ निराला ।।
कलिजुग नानक नाम सुखाला ।।३१।।

(वार भाई गुरुदास १, पौड़ी ३१)

गुरू जी –

"जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरागाई नैसाणे" ।।

(रामकली महला १ सिद्ध गोसटि)

महादेव – (सोचकर) उदासी के लक्षण बताइए ?

गुरू जी –

"हरि की भगति रते बैरागी चूके मोह पिआसा ।
नानक हऊमै मारि पतीणे विरले दास उदासा" ।।४।।३।।

(आसा छंत महला १)

महादेव-यों लगता है कि आप उदासी तथा गृहस्थी को पृथक् नहीं कर रहे, आप भी तो उदासी ही लगते हैं ?

गुरू जी –

"गुर बचनी बाहरि घरि एको नानकु भंइआ उदासी" ।।

(मारू म: १)

महादेव – तू हमें समझ नहीं रहा। क्या गृहस्थी तथा उदासी एक ही समय में एक व्यक्ति हो सकता है ?

गुरू जी – तुम हृदय के भावों को शरीर की सीमाओं से भिन्न कर रहे हो।

"सो गिरही सो दासु उदासी जिनि गुरुमुखि आपु पछानिआ ।।
नानकु कहै अवरु नहीं दूजा साच सबदि मनु मानिआ ।।५।।१७।।

(प्रभाती म: १)

मछिंद्र नाथ तमक खाकर कहने लगा :- फिर क्या सभी शास्त्र झूठे हैं और क्या सभी योगी भूल में हैं ?

गुरू जी – झूठा अपना मन होता है अथवा पुरुष का व्यवहार झूठा हो सकता है। प्रयोजन तो पांचों को अधिकार में लाने का है।

'सुणि माछिंद्रा नानकु बोलै ।।
वसगति पंच करे नह डोलै ।।

(रामकली म: १)

गोरख नाथ कहने लगा :- फिर तो आप विरक्तता को मानते ही नहीं ?

गुरू जी – अतीत वह है :-

"मन महि मनूआ चित महि चीता ।।
अैसे हरि के लोग अतीता ।।

(बसन्त म: १ असटपदी)

इस प्रकार बड़ी चर्चा हुई जो श्री गुरू नानक प्रकाश में लिखी है। जब सभी सिद्ध हरेक

तरह हार चुके तो मंगल नाथ तथा भरथरि जी ने गोरख को शुभ मन्त्रणा दी; क्योंकि इस समय भरथरि योगी भी सिद्ध मण्डली में पहुँचा हुआ था, सतगुरू जी के सारे उपदेश से उसका हृदय पलट चुका था और वह अन्तस के सुख तथा मानसिक त्याग को समझने वाला हो चुका था, पर अभी अपने ही मत में था। श्री गुरू जी का आगमन सुनकर उसने गोरख – अपने मार्ग के गुरू को बताया कि मैं गुरू नानक देव जी से भेंट कर चुका हूँ, वे अवतार हैं- गुरू अवतार जब मैंने समाधि में मुनि जी के दर्शन किये थे, तो उन्होंने मुझे नाम तथा लक्षण बताए और यह रहस्य बताया था। फिर जब मुझे गुरू जी आश्रम में आकर मिले हैं तो दर्शन करके, सत्संग करके परख लिया था कि मुनि वाक्य सत्य है। वे अवतार हैं और एक नाम का ही उपदेश करते हैं, वचन तो सारे करते हैं और बनावटों से निकालते हैं और तत्व ज्ञान प्रदान करते हैं। मैंने मिलकर अति सुख प्राप्त किया है, अच्छा हो कि उनके साथ वाद-विवाद तथा विरोध न किया जाये और मेल रखा जाये।

गोरख-पर दो गुरू कैसे इकट्ठे रह सकते हैं ? वह भी गुरू और मैं भी गुरू। यदि वह मेरा चेला बन जाये तो सौभाग्य की बात बन सकती है।

भरथरि-उनके लिये चेला बनना तो असम्भव-सी बात है, क्योंकि वे अवतार हैं, पर श्री राम, कृष्ण अवतारों ने देही में आकर गुरू धारण किए थे, इसलिए सम्भवत: वह भी गुरू धारण करें केवल मर्यादा की पूर्ति के लिए। यह विचारकर तुम प्रयत्न करके देखो, यदि तुम्हें देखना ही है तो ।

इस तरह का विचार होकर सिद्धों ने मिल मिलकर बल लगाया। गुरू जी के डेरे पर गए और सिद्धियों का लालच दिया और चर्चावाद किया। जब बड़े-बड़े मानी सिद्ध हार गए तो गोरख ने कहा कि भरथरि तेरा पुराना मेल है, तू जाकर सत्कार सहित उन्हें लेकर आ जो अब उनके सार सिद्धान्त को सबक बीच में बैठकर सुनें, भरथरि चला गया। बहुत सत्कार तथा श्रद्धा प्रेम सहित मिला और सतगुरू जी को गोरख का सन्देश दिया। श्री गुरू जी अब वहाँ पहुँचे, जहाँ गोरख नाथ आदि योगी बैठे हुए थे। फिर वार्तालाप हुआ और सिद्धों का बल लगा पर अन्त में श्री गुरू जी ने सभी पर विजय प्राप्त की।

भरथरि ने एक दिन योगियों की सभा में विनय की कि 'गुरू जी! आपके साथ चर्चा करके वाक्य सुने हैं, पर कुछ भुलावा है अत: आप कृपा करके बताइए कि आप किस निश्चय में हैं, जिससे सबको लाभ प्राप्त हो। जो प्रश्न सिद्धों के अन्दर अभी रड़कते रहे हैं, उन पर भी विचार बीच में ही आ जाये। तब श्री गुरू जी ने कहा : भरथरि योगी! तू जो कुछ चाहता है कि जिससे सिद्धों के विचार शुद्ध करें उन्हें कह दे, फिर हम अपना ज्ञान तथा तुम्हारी कठिनाइयों पर विचार साथ ही साथ बताते चले जायेंगे ।

जो ज्ञान हमारे अन्दर निवास करता है वह तो यह है कि दृष्टमान नाना रंगों के जगत में एक ज्योति-स्वरूप निरंकार भरपूर है और वह अक्रिय शक्ति मात्र नहीं पर इस सारे को धारण कर रहा, सारे की सम्भाल कर रहा तथा चला रहा वही कर्तार प्रभु है। उसकी प्राप्ति का मार्ग सत्संग को प्राप्त होना है। सत्संग में उस हरि के गुणों का गायन (कीर्तन) होता है, जिससे उसके साथ प्रेम लगता और मेल होता है। सत्संग तथा कीर्तन में से 'नाम' की सूझ

होती है। नाम प्रेम है, नाम ही जीवन का आधार है।

भरथरि-सिद्ध पूछना चाहते हैं कि सांसारिक बन्धन तथा कामादि विकारों से छुटकारा कैसे होता है? हम तो नेती धोती द्वारा मलिनता दूर करते हैं, जगत से नाता तोड़कर बन्धनों से मुक्त होते हैं, आपके मार्ग में कैसे मुक्ति प्राप्त होती है?

गुरू जी – एक तो गुरू का उपदेश अर्थात गुरू की दी हुई मन्त्रणा, इनसे कुमन्त्रणा को छुड़ाती है, दूसरा 'सत्संग की बाड़' विकारों से रक्षा करती है, और जो मैल पहले लग रहा है, वह भी सत्संग के सरोवर में धुलता है। क्योंकि वहाँ हरि के गुण गायन होते हैं, गुणों के गायन करने से मैल उतरता है। अतः पहले से लगा रखी मलिनता तथा 'यत्न करने पर भी ऊपर से प्रतिदिन और पड़ जाती है,' उसे सत्संग रूपी सरोवर धोता है। सत्संग का सरोवर कभी मलिन नहीं होता, इसलिए मलिनता को धोने के प्रतिदिन समर्थ रहता है।

भरथरि – योगी पूछते हैं कि त्यागी को तो बोलने की आवश्यकता नहीं होती और तुम्हारा तो मत है स्मरण तथा जप, वह जिह्वा का ही काम है फिर क्या तुम मूक करके जगत को स्मरण में लगाते हो अथवा किसी अन्य रीति से ?

गुरू जी – हम स्मरण के प्रेमी से कहते हैं कि भाई व्यर्थ बातों गप्पों में समय मत खोवो, बोलो पर आवश्यकता के अनुसार और शेष सारा समय हरिगुण गायन करो। यों नाम भी जपा जाता है और संसार का व्यवहार भी चलता रहता है। फिर आगे चलकर स्मरण जब अपने-आप चल पड़ता है तब उसका अपना स्वाद ही प्रेमी को बहुत बोलने से रोक लेता है।

भरथरि – योगी कहते हैं कि हम अपने मन में चलते हुए, दशम द्वार में टिककर शून्य में समा जाते हैं। तुम धन्धों में बैठे हुओं से साधन करवाते हो, यों शून्य में समाधि कैसे करवाते हो ?

गुरू जी-जिस शून्य में तुम समाते हो उसे तुम शून्य मानते हो, अस्तित्व तुल्य कोई दशा। हम जिसे शून्य कहते हैं, वह शून्यता नहीं है वह है 'अस्तित्व' और वह अस्तित्व सर्वव्यापक है। जिस तरह कि प्रकाश है, उसका प्रतिबिम्ब जल पर पड़कर जल को प्रकाशमान करता है। इस तरह वह हमारा शून्य जो है वह 'अस्तित्व' है, फिर प्रकाशस्वरूप है। हरि कीर्तन से निर्मल हो चुके हृदयों में वह प्रकाश की भाँति समाता है। हम शून्य में समाकर अस्तित्व-रहित नहीं हो जाते; शून्य हमारे में व्यापक होकर विचरता है। अर्थात वह शून्य निरंकार है जो निर्मल हृदयों-हृदयों पर प्रतिबिम्बित होता है। शून्य से तात्पर्य अस्तित्व रहित होना नहीं पर 'आकार रहित वाला व्यापक अस्तित्व, माया छाया से निरंजन' जो ज्ञान स्वरूप है।

भरथरि-हम जब हठ योग करके बैठते हैं तो एक धारा टपकती है, वह अमृतधारा तुम्हारे मतानुसार कैसे पड़ती है?

गुरू जी – अन्दर जो कोई अमृत की गूढ़ धारा है, वह एकाग्रता हो जाने पर अपने आप टपकेगी। पर हम जानते हैं कि शरीर के पाँच सुप्रसिद्ध रस हैं और दो अन्दर के रस – मन तथा बुद्धि के हैं, इनमें प्रतिबिम्ब तो हमारे निरंकार के आत्म रस का ही पड़ता है न। इन रसों में जो भुलावा है उसे हम दूर करते हैं, शारीरिक भाग को बीच में से पृथक करके रखते हैं,

फिर जो इसका शुद्ध अंश है, से अलग कर लेते हैं, यों हम शारीरिक रसों में से आत्म रस पृथक अनुभव करके उस महारस में सदैव आनन्द मगन रहते हैं।

भरथरि – उसका साधन क्या है?

गुरू जी – नाम ।

भरथरि – योगी साधन करके, काया को माँजकर सैकड़ों वर्षों पर्यन्त जीवित रहते हैं। तुम्हारे अनुयायी काल को कैसे जीतते हैं।

गुरू जी – हमारे मार्ग पर चलने वाले जब नाम का स्मरण करते हैं तो सच्च का व्रत धारण करते हैं। नाम सभी मलिनताओं को धोता है। सच्च पहली स्वच्छता है जो नाम द्वारा अन्दर जाग्रत होती है। अत: नाम के प्रेमी एक तो व्रत धारण करते हैं यह सोचकर कि वे सच्च पर स्थित होंगे, दूसरे नाम झूठ को काटता है। यों अन्दर का सच्च प्रकट हो आता है। इस तरह जो सच्च की प्राप्ति है, वह काल पर विजय है। सच्च का अनुभव करने वाला अब के क्षण में 'अस्तित्व की प्रतीत' पर टिकता है, उसे भूतकाल तथा भविष्य की चिन्ता नहीं होती, क्योंकि जो प्रवाह निरन्तर अन्दर चल रहा है; वह प्रतिक्षण स्मरण में रख रहा होता है। समय तीन हैं : भूत (व्यतीत हो चुका) वर्तमान (अब का), भविष्य (आने वाला)। भूत वर्तमान में और वर्तमान भविष्य में पिरोया हुआ है। अत: नाम जपने वाला पुरुष 'अब' के क्षण में नाम जप रहा है, उसका यह क्षण जब भूतकाल बनेगा, वह नाम में भरा होगा और उसका अब का क्षण नाम से भरा पड़ा है अत: उसका वर्तमान नाम से सम्पूर्ण है फिर उसके भविष्य काल के प्रत्येक क्षण को वर्तमान बनना है जिसमें उसने नाम जपना है। तीनों कालों में एक नाम में रहने के कारण नाम जपने वाला पुरुष तीनों कालों की दूरी को मिटा लेता है। अत: वह 'अबके क्षण' को भूल में न लाने के कारण तीनों कालों में अमर हो गया है। शेष रहा शरीर, यह चोला है, कभी पहन लिया, कभी उतार दिया। 'गुरुमुखि आवै जाइ निसंगु।' तुम जो आयु को लम्बा करते हो और प्राणों को चढ़ाकर बैठते हो, इसका क्या लाभ है? शून्य में बैठे रहने से मन शारीरिक रस तो ले नहीं रहा और आत्म रस के लिए शून्य हो गया, फिर उसका लाभ ही क्या? बेहोशी के जीवन तथा मृत्यु में कोई बड़ा अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। काल को जीतना एक तो यह है कि काल के तीनों खण्डों की सन्धि को मिलाकर चित निरन्तरता में चला जाये। दूसरे काल को जीतना है-जन्म मरन से रहित होकर चरण शरण में निवास करना – वह भी नाम का ही फल है।

एक और योगी, जो तनिक क्रोध वाला था अधीर होकर कहने लगा :- भरथरि जी! इनसे यह पूछिए कि इनके मत में क्रोध को जलाने का भी कोई ढंग है?

गुरू जी – जब हमारी इच्छा के विरुद्ध कोई बात होती है और हमारे इच्छा करने तथा कहने मात्र से कोई भी हमारे अनुकूल नहीं होता तो क्रोध आता है। दूसरा जिस बात में हम पूरण रूप से चतुर नहीं होते और पीछे लगने वाला भूल करता है तो हम क्रोध करके डाँटते हैं। यों चेलों पर क्रोध आता है। या यों समझिए कि हमारे अहंकार के सामने जब बाधा पड़ती है तब हमारा अहंकार क्रियामान होता है, उसी को क्रोध कहते हैं। इसे अधिकार में लाने का हमारे मत में ढंग यह है कि मन की मन्त्रणा का त्याग करने का नियम बनाते हैं, क्योंकि मन

ही तो अहं का यन्त्र है। मन की मन्त्रणा ही अहंकार पर बाधा पड़ते समय इसे जोश देकर क्रियामान करने वाली है। अत: हम गुरू की मन्त्रणा पर चलने का नियम धारण करते हैं, सतगुरू के उपदेश का चिंतन करते हैं, वह यह है कि दूसरों के साथ क्षमा का व्यवहार धारण करो। अपने में ज्ञान की कमी को अपना अवगुण समझकर दूसरे पर क्रोध मत करो। दूसरे की भूल को दूसरे की दुर्बलता समझकर सहन करो। यदि कोई तुम्हारे अहंकार के आगे बाधा डालता है और मूर्ख है, तो उसे ऊँची बुद्धि द्वारा जीता जाये, अर्थात् क्रोध के आगे क्षमा धारण करके बुद्धि द्वारा काम करो। दुर्बल मत बनो पर पशु भी मत बनो। बुद्धि का प्रयोग करो। सतगुरू की मन्त्रणा यह है कि क्षमा महान व्रत है[१], क्रोध अग्नि है, जलाता है। अग्नि जलने योग्य पदार्थों को जलाती है, जहां क्षमा का व्रत है वहां जलने वाला पदार्थ ही कोई नहीं। फिर प्रतिदिन का व्यवहार जिज्ञासु को बतायेगा कि कई बार नाम का रस क्रोध से ढीला पड़ जाता है, फिर व्यवहार ही बताता है कि सतगुरू की मन्त्रणा पर चलने से रस कायम रहता है, पर मन की मन्त्रणा से किए हुए क्रोध का रस टूटता है। सतगुरू का मन्त्रणा क्षमा है, मन की मन्त्रणा क्रोध है। यह मत समझ कि क्षमा कमज़ोरों का काम है, नहीं, क्षमा वाले का मन शक्तिशाली तथा उच्च होता है। नाम के अभ्यास से मन जो उच्चता प्राप्त करता है उस उच्चता की विशाल दृष्टि में क्षमा का निवास है, जो गुरू की प्रदान की हुई बुद्धि से स्वतत्व को क्रोध की अग्नि से जलने नहीं देती।

भरथरि – योगी लोग जो समाधि लगाते हैं, क्या आप भी कोई वैसी समाधि लगाते हैं?

गुरू जी – नाम के स्मरण से चित में उच्चता की प्राप्ति उत्पन्न होती है। इस समय को, जिसे तुम दशम द्वार कहते हो, ध्यान तो वहां ही रहता है। इस उच्च प्रतीति को जो अहंकार नहीं होती, उनमन भी कहते हैं और गगन निवास भी कहते हैं। प्रत्येक समय स्मरण का प्रवाह जब अंदर से उतर जाता है, अथवा यों कहें कि नाम सुरत को दशम द्वार में ले जाता है, या यों कहें कि हमारे मन के नीचे जो अज्ञात 'ज्ञान' है, प्रभु का नाम उसमें संचित होता हुआ अपने रस के संस्कारों से उसे भर देता है, तब जो लगातार प्रवाह इस प्रतीति का जारी हो जाता है वह हमारी लौ है। क्योंकि वह सहजावस्था है, रस आवस्था है, उसमें 'ज़ोर, आलिस्य, तंद्रा' नहीं, वह रजो तमो नहीं है, इस्र लिए समझ लीजिए कि लौ एक निरंतर समाधि है। अन्य समाधियाँ बैठने के काल तक ही होती हैं, जिनमें बैठने से मन लगता है और उत्थान काल में मन समाधि में नहीं रहता। यह गगन निवास निरंतर समाधि है। हम इसे 'सहज समाधि' कहते हैं। यह समाधि वाला काम कार्य त्यागकर नहीं बैठता और न ही जढ़ अक्रिय हो जाता है।

भरथरि – फिर समाधि से आगे परमपद बताया जाता है, तुम्हारा वह कैसे है ?

गुरू जी – तुम्हारा परमपद तो सिद्धियों तक है अथवा इससे बागे बढ़ने वाले को

---

१. खिमा गही ब्रतु सील संतोखं । (गऊड़ी म० १)

असंप्रज्ञात समाधि अथवा कैवल्य है। अर्थात् आपे में एकाग्र हो जाना अथवा टिक जाना[१]। हमारा परमपद है वाहिगुरू जी के अस्तित्व के साथ निरंतर स्पर्श में चले जाना। यह स्पर्श परमपद की प्राप्ति यों कहलाती है कि जैसे धातु, ताँबा, लोहा यत्न करके पारस स्पर्श कर ले तो वह स्पर्श, उसे स्वर्ण कर देता है। इस तरह हमारा जीव तत्व जब किसी तरह परम तत्व के स्वर्श में चला जाये तो वह स्पर्श ऐसा है कि जीव तत्व को अपने जैसा कर लेता है[२]। जब शरीर में रहते हुए नाम का रसिक अपने कर्मों का कर्ता आप नहीं रहता, उसमें वह परमतत्व कर्ता होकर काम करता है, फिर जो कर्तार करे वही होता है। या यों समझो कि नाम का प्रेमी अपनी इच्छा को उसकी आज्ञा में स्वर किए रखता है इस स्वर को बेसुरा नहीं होने देता। फिर जो आज्ञा का तार बोलता है, वही इच्छा की तरब बोलती है। अब तुम शायद पूछोगे कि तृष्णा की अथवा माया की अग्नि कैसे बुझती है? जिसके बुझे बिना कि जीव तत्व निर्मल नहीं जो सकता, अत: हम यह जानते हैं कि गुरू रूप हिमालय से मिलने से यह अग्नि अपने आप बुझ जाती है, क्योंकि गुरू की मति माया-मोह को ही तो निवारती ही है।

एक और अधीर योगी – भरथरि जी! पूछिए तो सही जब कोई आरम्भ से इनके मार्ग पर चले तो उसका अहं किस तरह मारते हैं। नम्रता कैसे सिखवाते हैं? हम तो जगत की ओर पीठ करते ही सिर में तथा शरीर पर राख डाल लेते हैं कि हम बुरे दिखाई दें और हमारा मन आपे को नम्र तथा कुरुप समझकर नम्रता में रहे ?

गुरू जी – हम सेवा का भाव सिक्ख की सुरत को सिखवाते हैं कि जब उसने परमार्थ का आरम्भ किया है तो शरीर के साथ गुरुमुख की सेवा कर। जीभ से जप, मन से स्मरण कर, इस तरह वाहिगुरू की सेवा कर, दूसरे का भला कर, यह सृष्टि की सेवा है पर वैसे सृष्टि में व्यापक की यह सेवा है। इस सेवा का भाव हमारे में विभूति का काम देता है, अहं को दूर करता है और इस भाव से जिज्ञासु सफल होता है।

दूसरे की सेवा में नम्रता आती है, गुरुमुख की सेवा से आर्शिवाद मिलता है और मन को नाम का रंग लगता है, वाहिगुरू की सेवा से कल्याण होता है।

एक नया चेला (भरथरि की ओर देखकर) – हम सिंगी बजाकर नाद करते हैं, उस नाद के पीछे मन एकाग्र होता है, ये कैसे करते हैं?

गुरू जी – सिंगी बजाने से मन एकाग्र होता होगा! पर दिन अथवा रात सवेरे तथा सायंकाल को घर-घर में बजाकर फिरना तो भिक्षा मिलने में सहायक होता है। हमारे सिक्ख

---

१. "इस (अर्थात् कैवल्य) में दु:ख की निवृत्ति होती है, पर अनंत सुख नहीं मिलता" पुन: "पातंजल के मत में जीव और ईश्वर भिन्न हैं। योग की जो चर्मावस्था निर्जीव समाधि है, उससे केवल आत्म साक्षात्कार होता है, ईश्वर प्राप्ति होती है व नहीं, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है" । पुन- 'पातंजल के मत में ईश्वर प्रणिधान अष्टांग योग के बाहरंग पाँच प्रकार के नियमों में से एक है। अतएव पातंजल दर्शन में ईश्वर का स्थान कौन है, क्योंकि ईश्वर प्रणिधान योग सिद्धि के नाना उपायों में से एक उपाय है"। पुन: "पातंजल के मत में "आत्म साक्षात्कार लाभ होता है ईश्वर साक्षात्कार नहीं होते"। (विश्वकोश १८, पृष्ठ ७१८, १९२०)

२. जैसिऊ राता तैसो होवै । (आसा म० १)
गुरू रामदास जी का भी वाक्य है - नानक हरि जन गुर इके होए हरि जपि हरि सेती रलिआ । (वडहंस म० ४)

कृत्य करते हैं और आज्ञा को देखते हैं, भिक्षा की आवश्यकता नहीं होती और नाद के पीछे मन जाये इसलिए हरि कीर्तन हमारा मुख्य साधन है। हम वाहिगुरू के यश वाली निर्मल वाणी का राग - संगीत में कीर्तन - करना रूपी नाद बजाते हैं।

भरथरि – दर्शन कैसे लेते हो ?

गुरू जी – सहज के रंग में आ जाना, यही हमारा दर्शन लेना है।

भरथरि – क्या आप तीरथ परसते हैं ?

गुरू जी – गुरू के दीए हुए विचार से मन में आए हुए अज्ञान तथा कुमन्त्रणा को धोते रहते हैं, यह हमारा तीरथ स्थान है।

अन्य योगी (भरथरि को) – हम शिवादि मूर्तियों की पूजा करते हैं। इनका पूजन क्या है ?

गुरू जी – हमारे अन्दर वाहिगुरू का स्थान है। वहाँ उसकी पूजा करते हैं। वह अन्दर बैठा हुआ देव 'ज्योति-स्वरूप' है, पाहन और मृतका नहीं। हमारी पूजा पर प्रसन्न होकर वह ज्योति-स्वरूप हमारी ज्योति को अपने में मिलाने में स्मर्थ है। उसके प्रेम में रसी हुई हमारी बुद्धि, वृत्ति, सारी अंतस की शक्ति रस रूप हो जाती है। यों हरि रस में मग्न उस तखत निवासी हरि मूर्ति के नाम का प्रेमी मग्न हो जाता है। वह इस प्रेम के कार्य को प्रभु की आज्ञा समझकर करता है, अन्यथा वह सर्व गति से परे स्वामी को मन तथा बुद्धि करके कौन लख सकता है, आक्षा में चलकर ही उसकी अन्दर आत्मा में भेंट रूपी लखता होती है।

भरथरि – गृहस्थ में रहकर कैसे उदास रहा जा सकता है ?

गुरू जी – जैसे कमल जल से उत्पन्न होता है और जल में ही रहता है, फिर जल से दूर भी रहता अर्थात निर्लेप रहता है। जैसे सूर्य का प्रतिबिंब अपनी ज्योति करके जल में भरपूर है, पर देखिए सूर्य आकाश में दूरी पर है, पर जल में देखिए तो आभास करके पूरण दीख रहा है, वैस नाम-प्रेमी माया में रचा दीखता है, पर होता दूर है।

हे भरथरि योगी ! वाहिगुरू सारे परिपूरण है जो उसे अच्छा लगता, वही होता है, मैं उसकी आज्ञा सिर पर रखता हुआ चलता हूँ, उसे हाज़र हुज़ूर समझकर उसके गुण गाता हूँ और निर्मल नाम के आश्रय पर फिरता हूँ।

भरथरि – निर्मल नाम कोई और वस्तु है जो नाम से भिन्न है ?

गुरू जी – नहीं भरथरि जी ! निरंकार का नाम जो उसकी प्राप्ति की निरोल भावना धारण करके जपा जाता है, वह निर्मल नाम है, अर्थात् जिसके जपने से प्रेमी सिवाय वाहिगुरू की प्राप्ति के और कोई वासना नहीं रखता ।

-: o :-

उपरोक्त वार्तालाप जो भरथरि योगी के साथ कैलाश (सुमेर) पर हुई, वह दयालु दाता श्री गुरू ने संक्षिप्त करके और सबके लिए उपदेश रूप करके आसा राग में रची और गायन की और कृपालु मूर्ति श्री गुरू अर्जुन देव जी ने श्री गुरू गँथ साहब में चढ़ाई। उसका पाठ तथा अक्षरी अर्थ इस प्रकार है :-

राग आसा महला १ असटपदी आ घरु २ १ ओअंकार सतिगुर प्रसादि ।

उतरि अवघटि सरवर नावै ।
बकै न बोलै हरि गुण गावै ।

जलु आकासी सुनि समावै ।।
रसु सतु झोलि महारसु पावै ।।१।।
ऐसा गिआनु सुनहु अभ मोरे ।
भरि पुरि धारि रहिआ सभ ठऊरे ।।१।। रहाऊ।।

अर्थ - (रहाऊ से चलेगा) ऐसा ज्ञान जो मेरे हृदय का है (अर्थात हृदय में है) वह सुनो ! (निरंकार) प्रत्येक स्थान पर भरपूर हो रहा है। (और सर्व ठउर को) धारण कर रहा है। (उसकी प्राप्ति परम प्रयोजन है, जिसका मार्ग यह है :-)

सचु व्रत नेमु न कालु संतावै ।।
सतिगुर सबदि करोधु जलावै ।।
गगनि निवासि समाधि लगावै ।।
पारसु परसि परम पदुपावै ।।२।।

मठिन[१] मार्गों से होकर (सत्संग अथवा आत्मा) सरोवर में स्नान करे। बोले पर व्यर्थ न बोले[२], परमेश्वर के गुण गायन करे। (जल=) समुद्र से लेकर आकाश तक (व्यापक हो रहे) परमात्मा में समाये। अथवा जल में प्रकाश की भांति जो परमात्मा समा रहा है[३]) । (नाम मथन से) उसके सच्चे रस को निथार कर पीए (अथवा, उस रस को जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध का है और मनो रस[४] तथा बुद्धि रस जो मनोराज तथा विद्या आदि के भासते हैं, उन्हें झोले (=वितरण करके परे करे और उनके नीचे छिपे हुए) महारस (आत्म रस) को पीए। (फिर नाम का जिज्ञासु) नियम सहित सच का व्रत धारण करे (उसे फिर) काल संताप नहीं देगा। सतगुरू के आदेश द्वारा (अर्थात् मन की मन्त्रणा का त्याग करके गुरू की मन्त्रणा के अनुसार चले तो) क्रोध का नाश कर लेगा। आकाश में (नाम से प्राप्त नामी के साथ भेंट से उच्च प्रतीति जो अंदर हो जाती है, उस अवस्था में निरंतर) निवास द्वारा समाधि लगाए । वह परमपद की प्राप्ति (नाम रूपी) पारस के स्पर्श से प्राप्त कर लेगा ।२।।

'सच मन कारणि ततु बिलोवै ।।
सुभर सरवरि मैलु न धोवै।।
जैसिऊ राता तैसो होवै ।।
आपे करता करे सु होवै ।।३।।
गुर हिव सीतलु अगनि बुझावै ।।
सेवा सुरति बिभूत चड़ावै ।।

---

१. लोक-लज्जा तथा विषय विकार आदि सत्संग के मार्ग पर बाधाएँ हैं, उन्हें पार करके सत्संग में जाना दुर्गम मार्गों से गुज़रने के समान है। उधर योगियों ने कहा कि कठिन पर्वतों को लाँघकर मानसरोवर में पहुँचकर स्नान करने से कल्याण है।

२. बकै न व्यर्थ मत बोले ।

३. आकाशी = जो सब ओर प्रकाश कर रहा है। जल में जैसे सब ओर प्रकाशमान हो रहा है, उस तरह शून्य अर्थात् परमात्मा सभी घटों में समा रहा है।

४. मनोराज के समय 'मनरस' का पता चलता है और विद्या विचार आदि के समय बुद्धि का पता चलता है।

दरसनु आपि सहज घरि आवै ।।
निरमल बाणी नादु वजावै ।।४।।

अर्थ - प्रश्न - (तत्व कैसे प्राप्त हो ?)

उत्तर-तत्व (की प्राप्ति) के लिए सच को मन में बिलोए । (विचार रहित जो मलिनता अन्दर दिखाई दे, वह मलिनता सत्संग रूपी) सुन्दर सरोवर में धोए (जो सरोवर कभी) मलिन नहीं (होता) । (फिर वह नाम का प्रेमी) जिस (निरंकार) के साथ रच रहा है उसी जैसा हो जायेगा (क्योंकि उसमें फिर) कर्तार जो आप करेगा वही बरतेगा ।।३।। गरू बरफ़ (की भाँति) शीतल है; (उसकी) संगति से (तृष्णा) अग्नि बुझा ले। सुरत को सेवा (भाव में रखकर मानो) विभूति चढ़ाए । सहजावस्था में आप आये (अर्थात् उसमें स्थित हो) यह दर्शन है। (योगियों के नाद बजाने के स्थान पर) निर्मल वाणी का कीर्तन करे ।।४।।

"अंतरि गिआनु महा रसु सारा ।।
तीरथ मजनु गुर वीचारा ।।
अंतरि पूजा थानु मुरारा ।।
जोती जोति मिलावणहारा ।।५।।"

अर्थ - (गुरू के विचार द्वारा) जिसके अंदर ज्ञान आया है (उसे इस) महारस (का) पता चला है। (तुम तीरथ पर स्नान पाप की निवर्ति के लिए करते हो), गुरू का विचार ही (हमारा) तीरथ पर स्नान है (जिससे सारा मैल धुलता है)। अंदर ही मुरारी (निरंकार) की पूजा का स्थान है। (जहाँ) ज्योति रूप (जीव तत्व को अपनी) ज्योति मिलाने वाली है ।।५।।

"रसि रसिआ मति एकै भाइ ।।
तखत निवासो पंच समाइ ।।
कार कमाई खसम रजाइ ।।
अविगत नाथु न लखिआ जाइ ।।६।।
जल महि ऊपजै जल ते दूरि ।।
जल महि जोति रहिआ भरपूरि ।।
किसु नेड़ै किसु आखा दूरि ।।
निधि गुण गावा देखि हदूरि ।।७।।"

अर्थ- (जिसकी) बुद्धि एक प्रेम रस में रसाल हुई है, वह स्वरूप की स्थिति वाला हुआ है, उसी के पाँच (विकार) दूर हुए हैं। (उस रसिक ने इस प्रेम का) कार्य (परमेश्वर की) आज्ञा मानकर किया है (क्योंकि आज्ञा के बिना) अवगत स्वामी लखा नहीं जाता ।।६।। (वह नाम का प्रेमी) जल में उत्पन्न (कमल की भांति - जल में निवास करता हुआ) जल से दूर रहता है (फिर) जल में (कमल अपनी) ज्योति (प्रतिबिंब शोभा) से भरपूर है। (अर्थात् नाम प्रेमी, माया में उत्पन्न होकर, माया में रहकर माया से अलिप्त है और गृहस्थ आश्रम की शोभा भी वही है जो अपना प्रभाव चारों ओर डालकर मायावी जीवों का उद्धार कर रहा है) किस तरह उसे निकट कहें, किस तरह उसे दूर कहें, गुणों की विधि को प्रत्यक्ष देखकर गुण गाने चाहिये। अथवा (दूसरा अर्थ) - वह अवगत नाथ इदं करके लखा नहीं जा सकता, (परन्तु

इस तरह सूर्य के प्रतिबिंब करके) जल में से चढ़ता हुआ दिखाई देता है (है, पर आकाश की ओर देखें तो वह) जल से दूर है, फिर ज्योति करके (प्रतिबिंब अथवा प्रकाश को देखें तो) जल में (सब ओर) भरपूर हो रहा है (अब बताइए) सूर्य की ज्योति को निकट कहें अथवा दूर ? (मेरा सिद्धान्त तो यह है कि) गुण निधि (निरंकार को) हाज़र हुजूर समझूं और गुण गाता रहूँ ।।७।।

"अंतरि बाहरि अवरु न कोइ ।।
जो तिसु भावै सो फुनि होइ ।।
सुणि भरथरि नानकु कहै वीचारु ।।
निमल नामु मेरा आधारु ।।८।।१।।

अर्थ- (क्योंकि मेरे) अंदर तथा बाहर (वही है) और कोई नहीं है। (जो कुछ हो रहा है वह वही कुछ) हो रहा है कि जो उसे अच्छा लगता है। हे भरथरि ! मेरा विचार सुन, मेरा आधार तो (एक) निर्मल नाम है! (अर्थात् नाम से ही नामी का स्पर्श प्राप्त होता है, इसलिए सभी सोचों का त्याग करके मैं एक नाम के आधार पर आधारित हो रहा हूँ।) ।।८।।

भरथरि प्रति एक और वाक्य जो गुरू साहब जी का (कैलाश) सुमेर पर्वत पर प्राप्त हुआ था वह यों है :-

महला १

सो बैरागी जि उलटे ब्रहमु ।।
गगन मंडल महिरोपै थंमु ।।
अहि निसि अंतरि रहै धिआनि ।।
ते बैरागी सति समानि ।।
बोलै भरथरि सति सरूपु ।।
परम तंत महि रेख न रूप[१] ।।६।।

(रामकली वार म: ३)

भरथरि योगियों में से अच्छा योगी था वह 'भरथरि आश्रम' में सतगुरू जी के दर्शन कर चुका था उपदेश सुन चुका था । उसकी आत्मा में परिवर्तन भी हो चुका था। वह इस नियम को अब समझ गया था कि अपने-आपको 'कैवल्य' करना ही काफी नहीं, आपे को, अर्थात् जीव तत्व को, परम तत्व में प्राप्त कराना वास्तविक 'कैवल्य' है। परन्तु भेख की लज्जा उसे छलांग नहीं लगाने देती थी। इसलिए वह गोरख आदि की मण्डली में कैलाश (सुमेर) पर आया हुआ सम्मिलित था, पर गुरू जी का बहुत सत्कार करता था और सिद्धों को समझाता था कि यह अवतार है, इसकी शरण प्राप्त करो और बहस मत करो। पर साथियों की मजबूरी उसे थोड़ा बहुत बुलवाती थी। भरथरि ने, ईश्वर, गोरख, गोपीचन्द आदि की भांति ही यह प्रश्न किया है जिसका उत्तर वैसे ही गुरू जी ने दिया है। भरथरि को जो उत्तर गुरू जी ने दिया है, वह वैराग के आदर्श का सूचक है। भरथरि ने वैराग के लक्षण अपने आशय के अनुसार बताए होंगे कि

१. इसका अर्थ आगे आयेगा ।

जो तीन लोक के पदार्थों से उदास हो जाये और बिल्कुल ही तृष्णा के साथ स्नेह मन रखे, वह जब योग साधन करे तो उसका उद्धार हो। कुछ कटाक्ष यह भी लगता है कि योगी होकर वैराग पूछता है, उसके अपने अंदर तो अब भेख में भी वैराग हो रहा है और गुरू नानक देव जी के साथ रहने का आकर्षण हो रहा है। उधर भेख की लज्जा को माया समझ रहा है, उसे पकड़ समझ रहा है, इधर गुरू जी का आकर्षण उसे वैराग के उलट नज़र आ रहा है। इसलिए वैरागी के लक्षण पूछता है। गुरू जी का उत्तर अपने उसी नियम का प्रतिपादन करने वाला है, जो उन्होने भरथरि आश्रम में उसे बताया था, 'परमतंत महि जोग'। उस नियम को वैरागी के लक्षणों में गुरू जी ने दुहराया है कि :-

[1]गुरू नानक देव जी कहते हैं कि हे भरथरि ? वह जो सत्य स्वरूप परमतत्व (पारब्रह्म परमेश्वर) है, उसका न कोई रूप है और न ही कोई रेखा, (उस) ब्रह्म में जो अपने मन को (बाहर जाने वाले स्वभाव से) उलटाकर लगाये और दिन-रात अन्दर इसी ध्यान में रहे (कि मैं प्रभु के साथ लग रहा हूँ) और (ऐसा लगे कि) हृदय मण्डल में मानो इस भाव को स्तम्भ लगा दिये हैं कि कभी डोलता नहीं, वह वैरागी है, और वह वैरागी उस सत्य स्वरूप परमात्मा के तुल्य ही अमर, अजर (सदैव मुक्त) है।

श्री गुरू ग्रन्थ साहब में एक और तुक आई है जिसमें भरथरि का नाम आता है, वह तुक सवैये महले पहले में है और इस प्रकार है :-

'भरथरि गुण उचरै सदा गुर संगि रहंतौ'

इससे लग रहा है कि भरथरि योगी, अन्त में अपने सम्प्रदाय को छोड़कर गुरू जी के पास आ गया और अपने अन्तिम समय तक सदैव गुरू जी के पास ही रहा[2]। कैलाश (सुमेरु) से विदा होते समय गुरू जी इसे साथ नहीं लाये, परन्तु अचल बटाले में, जो सिद्धों के साथ चर्चा हुई और जिसमें सतगुरू की विजय ऐसी हुई कि पंजाब में से कनफटे योगियों का बल बिलकुल टूट गया, उस चर्चा के पश्चात भरथरि योगी फिर सतगुरू के साथ कर्तारपुर ही आकर रहने लगा। इस चर्चा का सार सतगुरू ने सिद्धगोष्ट नामक वाणी में आप सारा दिया है। उसके अन्त में अनेकों सिद्धों तथा साधकों और इनमें से बहुत से गुरू तथा चेले दोनों पदों वालों का गुरू की शरण में आना आप लिखा है।

यथा :-

साधिक सिद्ध गुरू बहु चेले खोजत फिरहि फुरमाणै ।
मागहि नामु पाइ इह भिखिआ तेरे दरसन कऊ कुरबाणै ।।

अर्थात्- (गोष्ठी के अन्त में) बहुत साधना करने वाले तथा सिद्ध, कई गुरू, (कई) चेले (कहलाने वाले; हे वाहिगुरू) तेरी आज्ञा की खोज (मुझ से) आगे-आगे, (तेरा) नाम मांगते

---

१. यहाँ से पिछले वाक्य "सो बैरागी जि उलटे ब्रहम" का अर्थ चलता है।

२. कई ख्याल करते हैं कि तीन शतकों का कर्ता 'भरथरि' सही योगी था। पर वह कवि छटी सातवीं शताब्दि में हुआ ख्याल किया जाता है। यह भरथरि गुरू जी से मिला है। अतः यह और भरथरि योगी है, पर आयु बढ़ा लेने के ख्याल से कई इसे वही आयु बढ़ाने वाला भरथरि ख्याल कर लेते हैं।

हैं, (कहते हैं कि हमें यह) भिक्षा दे, तेरे (दर्शन) धर्म मार्ग पर से हम बलिहारी हैं।

यह गुरू जी ने अपने नि:अहंकारता के निराले ढंग से, जो उन्होंने सारी गुरुवाणी में प्रयुक्त किया है सिद्ध गोष्ट के अन्त में अपनी विजय तथा सिद्धों की पराजय का और उनमें से बहुत से सिद्धों का शरण में आने का समाचार बताया है। सवैयों की तुक से पता चलता है कि भरथरि भी शरण में आया और फिर सदैव कर्तारपुर में सतगुरू के साथ रहा और भोजन से नाम के स्मरण द्वारा ऊँचा होकर वाहिगुरू जी के साथ परम तत्व अथवा ब्रह्म तत्व से अपृथक मेल को प्राप्त हुआ।

सूचना :- सभी लेखकों ने भाई गुरुदास जी से लेकर पुरातन जन्मसाखी, अन्य साखियाँ तथा श्री गुरू नानक प्रकाश सभी ने इस इलाके का नाम सुमेरु लिखा है। सुमेरु का ठीक ठिकाना खोज करने पर इस तरह पता चलता है :-

सुमेरू हिन्दू पौराणिक अख्यायिकों का एक पर्वत है। जो जंबू द्वीप का केन्द्र माना गया है। ग्रह इसके चारों ओर घूमते माने जाते हैं। इसकी ऊँचाई ८४००० योजन है, जिस में से १६००० योजन पृथ्वी के अन्दर है। इसका रूप वर्गाकार, अंडाकार तथा गाजर की भांति माना गया है। इसके चार मुँह हैं पूरब का सफेद, दक्षिण का पीला, उत्तर का लाल, पश्चिम का काला। आकाश पर से एक गंगा इसके ऊपर आकर उतरती है जो चार धारा होकर चारों ओर जगत में बहती है। चार दिशाओं के दिशापाल चारों ओर रहते हैं। यह पर्वत सुवर्ण तथा रत्नों का है। इसकी शिखा पर ब्रह्मा का निवास है, जहाँ पृथ्वी के तपस्वी लोग तथा आकाश के गंर्धव तथा स्वर्ग के देवता आकर इकट्ठे होते हैं।

यदि हिन्दुओं की नवीन खोज को अथवा आर्य्य पूर्वज पहले जो उत्तरी ध्रुव को सुमेरु कहते थे और उसे ठीक स्वीकर कर लें तो लगता है कि शायद वे उत्तरी ध्रुव को सुमेरु कहते हों, क्योंकि भूगोल विद्या वाले उत्तरी ध्रुव को सुमेरु तथा दक्षिणी ध्रुव को कुमेरु, अब तक भी कहते हैं। उत्तरी ध्रुव पर पहुँचना लगभग असंभव होता था, उसके बारे में पौराणिकों ने सुन्दर ढंग से रचना रच ली लगती है, केन्द्र एक तरह तो वहां है और जंबू द्वीप से तात्पर्य न जाने 'उत्तरी सीतकटबन्ध' ही हो, जहां के वे पहले निवासी थे। जब यह लोग उन बरफानी धरतियों से नीचे आये तब न जानें यूराल पर्वत को सुमेरु कहने लग पड़े हों, सवर्ण उसमें से भी निकलता है। जब यह पूर्वज हिन्द में आ बसे, फले-फूले, तब लगता है कि हिमालय की कैलाश गुरला मानणता तथा इन पर्वतों के समीप की उच्च धरती सुमेरू बन गई। सोना इस धरती के पास से भी निकलता है। सतलुज, सिंध, ब्रह्मपुत्र आदि नदियां दूर निकट इसी इलाके मे से निकलती हैं।

जिस इलाके का नाम जन्मसाखियों में सुमेरु करके आया है, वह नि:संदेह यही इलाका है जो कैलाश के पास है। मानसरोवर की झील भी यहां ही है। कवि संतोख सिंघ जी गुरू नानक प्रकाश अध्याय ६० अंक १३ में पता देते हैं कि हिमालय का यह घर है, बरफ पड़कर जम रही है। फिर भाई बाले वाली साखी में २७३ पृष्ठ पर भी कैलाश का नाम दिया है कि सुमेरु से ऊपर जाकर कैलाश पर्वत आया। हिमालय से गुजरना कैलाश का पता देना और फिर ताल का उल्लेख आना- कि गोरख ने गुरू जी से तालाब में से जल लाने को कहा - बताता है कि यह तालाब ही मानसरोवर है और यह धरती सुमेरु कहलाती है।

यदि पुरातल जन्मसाखी की ओर आएँ तो भी यही स्थान सिद्ध होता है। काश्मीर की यात्रा के पश्चात् लिखा है कि 'सवा लाख पर्वत लाँघकर आगे सुमेरु पर्वत पर जा चढ़ा, जहाँ महादेव का स्थान था।' काश्मीर से लद्दाख में जाकर आगे मानसरोवर को जाया जाता है, पर काश्मीर से शिमले आदि के पर्वतों के रास्ते से भी मानसरोवर जा सकते हैं। जंमू के साथ-साथ शिवालिक पर्वतों में से गुज़रकर, अन्दरले हिमालय पर चढ़कर भी कैलाश पर जाया जा सकता है। सवा लाख जा अर्थ बहुत से पर्वत भी बन सकता है पर शिवालक पद्य जो कि आजकल हिमालय के बाहर के पर्वतों तथा शाखाओं के लिए प्रयुक्त होता है, उसकी एक व्युत्पत्ति 'सवालाख' पर्वत भी है। सवा लाख से शिवालक बन गया लगता है और कैलाश महादेव (शिवजी) का पर्वत एक सुप्रसिद्ध बात है। फिर यह भी लिखा है कि सिद्धों ने जल भर लाने के लिए एक बरतन दिया। जो वहां जल की झील के पास होने का सूचक है।

इस जन्मसाखी से भी पुरानी लिखित भाई गुरुदास की है। वे भी गुरू जी का सुमेरु पर जाना लिखते हैं और पानी भर लाने की बात बताते हैं, पर कोई और पता नहीं चलता । पर भाई साहब जी, 'सबद' जिती सिध मंडली कीतोसु अपणा पंथ निराला' लिखकर इस दिग्विजय का पता अवश्य ही देते हैं।

तवारीख खालसा में लिखा है कि बदरीनाथ से आठ-दास कोस पर पूरब की ओर १७ हज़ार छ: सो बहत्र फुट की ऊँचाई वाला सप्त श्रृंग पर्वत लांघकर अनेकों साधु-ऋषियों के साथ चर्चा करते हुए हिमालय पर जा चढ़े, आगे चलकर सिरधार पर्वत पर जा चढ़े, फिर गोरख आदि से भेंट हुई। अलमोड़े से भी गढ़तोक से आगे मानसरोवर को रास्ता जाता है। सबसे अंतिम वस्तु मैकालिफ का लेख है। वह लिखता है कि गुरू जी श्रीनगर से चलकर ऊँचे ऊँचे पर्वतों से गुज़रकर सुमेरु पर पहुँचे और सिद्धों से चर्चा हुई। यह भी हिमालय का ही पता है।

आजकल कोई यात्री हिमालय के तिब्बत की ओर से इस सुमेरु पर से होकर आये हैं, परन्तु हमें वहाँ से होकर आये एक सज्जन (भाई काश्मीरा सिंह जी) ने बताया है कि मानसरोवर के चारों ओर गुफाओं के मन्दिर हैं, जिनमें बुद्धधर्म के अन्य महापुरुषों की पुस्तकें तथा मूर्तियां हैं, इनमें गुरू नानक देव जी की मूर्ति भी है। यहाँ कोई खास मेले आदि नहीं लगते, सर्दियों में यहां रहना कठिन है, गर्मियों के चार महीने यात्रा खुली रहती है। तिब्बत के निवासी इन्हें पवित्र तीर्थ मानते हैं; कई हिन्दू साधु भी जाते हैं । इधर के लोगों का कनफटे योगियों के साथ विशेष बैर है। यह बात हमारे सज्जन को वहाँ किसी ने विशेष रूप से बताई थी। इससे लगता है कि गुरू जी के समय योगी इधर के पर्वतों 'गढ़तोक' आदि इलाकों में प्रसिद्धि प्राप्त करते होंगे और यहां निवास करते होंगे और गर्मियों में मानसरोवर पर जा बैठते होंगे अथवा मानसरोवर के गुफा मन्दिर इन्होंने सिद्धियों करामातों तथा भय के बल पर बौद्धों से छीन लिए होंगे। गुरू जी की चर्चा के समय उल्लेख आया है कि योगी मदिरा पान करते थे, जो पहले चाहे सर्दी की अधिकता के कारण आरम्भ हुई हो, पर फिर तपस्या के सथान पर यही रह गई हो अथवा तपस्या के साथ मदिरा एक अंग बन गई हो।

भाई दीदार सिंह जी, जो शिमले तथा तिब्बत की सीमा पर पर्वतों में रहकर आये हैं, बताते हैं कि सीमा प्रांत तिब्बत तथा गढ़तोक के इलाके में गुरू नानक जी के उधर जाने, उपदेश

करने, जीवनदान प्रदान करने के पूरे-पूरे चिह्न अब तक कायम हैं।

तिब्बत में दो प्रकार के लोग निवास करते हैं।

(१) एक महात्मा बुद्ध के अनुयायी, इनका जाप है :-

'ओं मनी पदमिहुँ'

यह लोग जिस समय इस मन्त्र का जितनी बार जाप करना होता है कर लें तो अंतिम बार इसके पीछे 'शी' अक्षर बढ़ा देते हैं। इनके मन्दिरों में बुद्ध की समाधि की युवास्था की मूर्तियाँ होती हैं। इनका सिर मुँडा हुआ होता है।

(२) दूसरे वे लोग जो इस मन्त्र का जाप करते हैं :-

'ओं आहुं भद्दरा गुरू, परमा सिद्धि हूँ'

'बहदरा' अथवा 'भद्दरा गुरू' के अर्थ हैं 'बड़ा गुरू', 'श्रेष्ठ गुरू'। इन लोगों के सिर पर केश होते हैं, हाथ में सीप का कड़ा पहनते हैं और प्राय: छोटी-सी कृपाण भी अपने पास रखते हैं, जिसे यह 'कारूद्र' कहते हैं।

इन लोगों के मन्दिरों में गुरू नानक साहब जी की मूर्ति भी रखी होती है। लिपा, कानम, पूहा आदि स्थानों की सड़कों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर सड़क के दोनों ओर गढ़तोक तक दो-दो स्तम्भ खड़े करके सड़क पर छत डाला गया है और इस छत में गुरू नानक साहब जी की मूर्ति बनी हुई है। इस तरह की मूर्तियां शिमले में तिब्बत को जाने वाली सड़क पर शिमले से एक सौ साठवें मील से शुरू हो जाती हैं।

लिपा शहर का 'देवीराम' नामक लामा अपने समय में बड़ा विद्वान् तथा तजस्वी हुआ है। एक बार 'कानम' का 'तवारकी' नामक लामा[१] तथा कुछ ओर लामे आये। यह सारे एकत्र हुए थे कि इस पर प्रश्न किया गया कि 'भद्दरा गुरू कौन है, जिसकी तुम पूजा करते हो?' उन्होंने देवीराम की ओर देखा और उत्तर देने के लिए कहा। देवीराम ने उत्तर में बताया कि भद्दरा गुरू पंजाब में हुआ है। देवीराम से पूछा गया कि उसका नाम क्या है? तब उसने कहा कि गुरू पति है और हम उसकी दासियाँ हैं, पंजाब में कोई पत्नी अपने पति का नाम नहीं लेती, अत: हम कैसे अपने गुरू का नाम ले सकते हैं? फिर पूछा गया कि कुछ पता तो चले कि तुम्हारा गुरू कौन है? तब देवीराम लामा ने कहा कि हमारा भद्दरा गुरू वह है, जिसने मक्का को फिराया था, जसने रीठे मीठे किये, जिसने सिद्धों के साथ गोष्ठी करके उन पर विजय प्राप्त की, जिसने दस शरीर धारण किये, श्री अमृतसर में हरिमन्दिर की स्थापना की, श्री गुरू ग्रन्थ साहब बनाया, छठे शरीर में युद्ध किये और दशम रूप में सिंध सजाये। देवीराम लामा से पूछा गया कि क्या तुमने भद्दरा गुरू का दस शरीर धारण करने का समाचार सिक्खों के इतिहास से पढ़ा है? उत्तर में देवीराम ने कहा कि तिब्बत की भाषा में इसी देश की लिपि में भोज पत्तरों पर लिखा हुआ प्राचीन इतिहास हमारे देश में एक गुफा में से प्राप्त हुआ है, मैंने ये समाचार उसमें से पढ़े हैं।

इन लोगों की श्री अमृतसर तथा खासकर नामक तीरथों में बड़ी श्रद्धा है, जहाँ यह श्रद्धा सहित आते हैं और साष्टांग दण्डवत प्रणाम करते हुए परिक्रमा करते हैं। यह दृश्य हरिमंदर

---

१. तिब्बत में लामा धार्मिक नेता को कहते हैं (तिब्बी)।

साहब (अमृतसर) में लोगों ने कई बार देखा है और प्रतिवर्ष देखा जाता है।

लिपा के मन्दिर में तमाकू पीने वाला एक व्यक्ति घुस गया, जब लामा को इस बात का पता चला तो ४८ घण्टों पर्यंत उस मन्दिर की प्रत्येक नुक्कड़ को धोते रहे और सैकड़ों आदमी 'ओं आहु बहदरा गुरू परमां सिद्धि हूँ' का जाप करते रहे। इन लोगों की तिब्बत में अधिक आबादी है। बुद्ध के मन्दिरों की यह पूजा नहीं करते, किन्तु बौद्ध इनके मन्दिरों की पूजा अपने इष्ट की भांति करते हैं।

इस श्लोक में रामचन्द्र आदि देवताओं की पूजी भी होती है और प्रत्येक गांव का लगभग देवता अलग होता है। देवीराम से पूछने पर उसने बताया कि रामचन्द्र आदि देव-मण्डल के देव हैं, महात्मा बुद्ध मुक्त हैं, इसलिए इनमें से महात्मा बुद्ध उच्च हैं, परन्तु भद्दरा गुरू मुक्ति का दाता है, बुद्ध मुक्ति प्राप्त करने वाला, इसलिये वह बुद्ध की अपेक्षा उच्च है।

यह बात भी बताई जाती है कि कनफटे योगियों से यह लोग घृणा करते हैं। अनुमान है कि उनके हाथों, श्री गुरू जी के समय यह लोग विकल थे और सतगुरू जी के इन पर विजई होने पर उनका सत्कार तथा भय इनके मनों में से टूट गया। उनके मदिरा आदि पान करने के कुकर्मों से घृणा हो गई; वे लोग गुरू जी के उपासक हो गये और सिद्ध वहां से नीचे उतर आये। श्री गुरू नानक प्रकाश उत्तरार्द्ध में कई स्थानों पर गोरख आदि वही सिद्ध फिर-फिर हिन्द के मैदानों में गुरू जी से मिले बताये गए हैं।

अत: सारी खोज पड़ताल से पता चलता है कि गुरू जी ने हिमालय तथा तिब्बत के दुर्गम स्थानों में फिर-फिरकर सतनाम का छत्तर झुलाया। शोक है कि उनकी सम्प्रदाय ने सारे इलाके अपने प्रचार के अभाव से समय की भेंट कर दिए हैं, जो प्रतिदिन बिगड़ते जा रहे हैं।

सूचना :- तीसरी यात्रा समाप्त करके फिर कर्तारपुर में आकर टिके। यहाँ बैठकर घर में आने वालों का उद्धार किया। कई कौतुक हुए, कई साखियाँ हुईं। एक प्रसंग वीरां मल्हार का है जो इस समय हुआ लगता है।

|| ||

७३ वीरां मलहार

मरदाना – सीहों ! देखो गुरू जी ने सुन्दर प्रभु के रंग में रोते हुए नैन खोले और माथे पर उपकार कर रंग है, आज किसी का उद्धार करने का संकल्प दिखाई पड़ता है।

सीहों – लगता तो ऐसे ही है, दाता जी दूर-दूर आ जाते हैं; मानो आप किसी की खोज करते हैं।

मरदाना – हां, दाता गुरू के कई रंग हैं। एक तो गुरू जी नाम का खुला छटा देकर जगत का उद्धार करते हैं, पर बीच-बीच लगे हुओं को खोज-खोजकर तारते हैं, कभी-कभी उच्चकोटि के फकीरों का उद्धार करते हैं, जो अपने आपको शिखर पर पहुँच चुके समझते हैं, पर वे तो किसी एकाध अटक में होते हैं; उनकी अटकी हुई गाँठ खोलकर उनका उद्धार करते हैं। कभी-कभी बड़े-बड़े गद्दीदारों का उद्धार करते हैं, जो किसी हठाग्रह तथा कट्टरता

का कोई अंग लेकर ईश्वर की सृजन की हुई को एक दृष्टि से नहीं देखते। (हंसकर) गुरू जी बड़े कौतुकी हैं। कई बार ठगों, बटमारों, मानवों को खाने वालों, दुराचारियों को जाकर शुद्ध करते हैं और ईश्वर के मार्ग पर चला देते हैं। या तो ईश्वर कर्तार है, जिसकी आक्षा के प्रवाह का कोई पता नहीं, या गुरू बाबा है, जिसका पता नहीं चलता कि आज वह क्या कौतुक करेगा। देखो, आज तड़के से ही मग्न बैठे हैं, अब नैन खोले हैं, पर चेहरे पर उपकार तथा सुमार्ग पर चलाने के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। इतने में गुरू जी कहने लगे – चलो भाई चलें, तैयारी करो।

मरदाना – पातशाह ! किधर को?

गुरू जी – चलो भाई चलें, यात्रा में तो हैं ही। निकट ही एक गाँव है, वहाँ एक लग्न वाला मनुष्य है, पर है वह संशय में। यदि संशय को हटा दें, तो अटकी हुई नदी, बाँध के टूट जाने से ठाठें मारती हुई आगे को चल पड़े ।

यह आज्ञा पाकर थोड़े समय में ही चल पड़े। जब वहाँ पहुँचे, जहाँ जाना था तो किसी से पूछा, भाई! वीरां माली की बाड़ी कहाँ है? किसी ने कहा, थोड़ी दूरी पर आगे चलकर इसी ओर दाईं ओर है। अतः वहाँ पहुँचे, किवाड़ खोलकर बाड़ी के अंदर चले गए। आगे वीरां मल्हार किसी काम में संलग्न बैठा था। देखकर उठ खड़ा हुआ और दोनो हाथ जोड़कर, सीस झुकाकर कहने लगा – सलाम अलैक । तब गुरू बाबा ने कहा – तुम्हारा भला हो। फिर शीघ्रता से खाट बिछाकर ऊपर अपनी चद्दर बिछा दी और कहने लगा – आइए, स्वागतम् बैठिए ! गुरू बाबा जी बैठ गए और सामने बिछी हुई चटाई के ऊपर मल्हार तथा गुरू के सिक्ख बैठ गए।

श्री गुरू जी – वीरां, कह तेरी भक्ति तथा भरोसे का क्या हाल है?

वीरां मल्हार – मुझ ग़रीब अराईं[१] को प्रभु का क्या पता ?

मरदाना – भाई ! हृदय की दो-चार बता और हृदय के स्वामी की कोई एक आध शुभ बात सुन, जो तेज़ तीर की तरह तुझे लग जाये।

वीरां – प्रभु के प्यारे ··· (हौका लेकर) ··· (धीरे से) आप कौन ?

मरदाना – नानक निरंकारी ।

वीरां (सुख का लम्बा-सा श्वास लेकर) – सौभाग्य की बात है। स्वामी जी ने घर पर आकर दर्शन दिए। धन्यवाद, धन्यवाद ! कृपा करने वाला कृपालु ! (फिर प्रणाम की) हे दाता ! सुना है कि तू हिन्दू तथा मुसलमान को एक दृष्टि से तौलता है, मैं एक अटक में रहता हूँ । जब घर में बैठकर भक्ति करता हूँ, तो उस एक स्वामी की भक्ति करता हूँ। जब कभी मस्जिद में जाता हूँ, तो सुनता हूँ कि प्रभु के द्वार पर हिन्दू स्वीकार नहीं होता और मुसलमान स्वीकार है और उस प्रभु के द्वार पर एक मुहम्मद मित्र है, और किसी की पहुँच नहीं, रामकृष्ण कोई नहीं, यदि वे कोई होंगे तो वे स्वीकार हो चुके महापुरुषों में नहीं हैं। तो मैं सोचता हूँ कि यदि हिन्दू तथा हिन्दू अवतार स्वीकार नहीं तो ईश्वर इनकी रचना ही क्यों कर देता है। काज़ी मुल्ला जब कहते हैं कि काफिर है, नर्क में पड़कर जलेंगे तो मेरा मन कहता

१. बाले वाली जन्मसाखी।

है कि नर्क की अग्नि प्रभु क्यों उत्पन्न करता है। उसे कोई चाव है कि जलते हुए नर्क को देखकर प्रसन्न होता है। यदि मैं कभी किसी पाण्डेय पण्डित से पूछता हूँ तो कहते हैं सारे मुसलमान म्लेच्छ हैं, इनकी मुक्ति नहीं होगी। ये अवतारों, वेदों तथा शास्त्रों की निन्दा करते हैं, आगे जाकर तो अवतारों ने ही उद्धार करना है। फिर मैं प्रार्थना करता हूँ कि हे प्रभु! बता मैं किस किश्ती पर सवार होऊँ, हिन्दू की अथवा मुसलमान की? किसको तैरना है और किसको डूबना है। पार किसने ले जाना है। अतः दाता जी! भक्ति के मार्ग पर मैं इस कलेजे में चुभे हुए कांटे के दुःख के कारण एकाग्र नहीं होता।[1] मैंने सुना है कि आपने भारी तपस्या की है और आप प्रकट हुए हैं, प्रभु के द्वार से होकर आये हैं, आप ही बताइए कौन स्वीकार है और कौन अस्वीकार ? ईश्वर के लिए सच्च बताइए ।

श्री गुरू जी – भाई वास्तव में बात तो यह है कि जैसा कोई बोएगा वैसा ही फल उसे प्राप्त होगा पर सुख ईश्वर की आज्ञा से मिलेगा और नाम से कल्याण होगा। नाम के बिना सभी मन के अंधकार में बँधे पड़े हैं।[2]

वीरां – पर जी आप तो प्रभु के द्वार पर स्वीकार हो चुके हैं, कृपा द्वार मिले हैं, कलेजे में चुभा हुआ काँटा निकाल दो, जो शरह (कट्टरता) वालों ने चोभा है और शास्त्रों वालों ने निकाला नहीं, आप निकालकर उसे दूर कीजिए, बताइए कौन प्रभु के द्वार पर स्वीकर हुआ है?

श्री गुरू जी – दोनों मानते हैं कि संसार उसी एक कर्तार ने बनाया है। बनाने वाला पिता हुआ और बने हुए पुत्र। कौन प्रिय और कौन अप्रिय, बता तो तुझे अपने पुत्रों में से कौन प्यारा है और कौन तुझे प्यारा नहीं ?

वीरां – पुत्र तो सभी प्यारे हैं, पर जो भला है, नेकी करता है, वह ज्यादा प्यारा है।

श्री गुरू जी – ईश्वर कैसे है ? हम उस द्वारा निर्मित उसका अंत नहीं जान सकते, पर मोटी बात तो पहचानते हैं कि वह निर्माता हमारा पिता है और उसके लिए सभी तुल्य हैं, जैसे हमारे लिए हमारे पुत्र हैं। ज्यादा अच्छा कौन है ? जो नेक है । अतः तू आप ही सोच ले, कौन स्वीकार है ? जिसके कर्म अच्छे हैं।

वीरां – आपने सच्च कहा है; ठीक है, हे दाता! मुझे परलोक का भी ज्ञान कराओ कि वहाँ रसूल (मुसलमानी पैग़म्बर) स्वीकर होगा अथवा कृष्ण अथवा त्रिशूल वाला शिव या बाण वाला राम?

श्री गुरू जी – प्रभु का दरबार, जो दरबार सारी सृष्टि में सर्वव्यापक है, यदि वहाँ पर देखें तो वहाँ एक ही एक, एक तो वही अकेला है, शेष उसे द्वार पर खड़े हैं और वे अनेक हैं। लाखों ब्रह्मा हैं, लाखों कृष्ण हैं लाखों शिव और लाखों ही मुहम्मद हैं और लाखों ही राम हैं, लाखों ही जिनके मार्ग हैं और लाखों ही वेष हैं। फिर लाखों यति, लाखों सति, लाखों संन्यासी, लाखों नाथ और नाथों के पूज्य लाखों गारख, लाखों गुरू, लाखों चेले, लाखों देवी, लाखों देव,

---

१. भाई बन्नों के ग्रन्थ के इस श्लोक का यह खुला अनुवाद है :-
वीर सलामां लेखु बुरा खुदाई सच चऊ ।।
दरगह कितु बिसेख जेहा बीजै सो लुणै ।।

२. हुकमी मिलै सुखाइ ।। नानक सचे नामु बिनु बधा दुख सहाइ ।।2।।

लाखों दानव हैं। लाखों ही बड़े-छोटे पीर हैं, लाखों ही पैग़म्बर हैं, लाखों वली हैं, काज़ी, मुल्ला और शेख भी लाखों ही हैं। हे भाई शान्ति केवल उन्हें प्राप्त होती है, जिन्होंने पूरे गुरू के उपदेश की कमाई की है। मुख्य बात तो गुरू के उपदेश की कमाई है। यदि तू करेगा तो स्वीकार होगा, यदि नहीं करेगा स्वीकार नहीं होगा। ऊपर वालों में से, जिन्होंने गुरू के उपदेश की कमाई की है, वे मानो स्वीकार हुए हैं, जिन्होंने नहीं की वे स्वीकार नहीं हुए, यह समझ ले। अत: साधना करने वाले तथा सिद्धि के साधक अगणित है, पर यह भी तो स्वीकार है, पर तब जब यह सतगुरू द्वारा दृढ़ कराए शब्द ज्ञान की प्राप्ति वाले हैं। बिना शब्द की कमाई तथा ज्ञान की प्राप्ति के सभी को अपवित्र समझ ले। शेष रही एक की बात, अत: वह एक कौन है? एक तो भाई एक ही है, एक ही है।[१] दूसरा न कोई हुआ है, न होगा, न ही है। वह केवल एक है । सारे अवतारों, पैग़म्बरों आदि नाथों का शिरामणि नाथ वह एक ही है। पर यदि तुम उसका अंत लेना चाहो, उसका अनुमान लगाने की लालसा करो, उसके अपने ज्ञान को यों प्राप्त कर सको; जैसे अपनी खेती की उपज को ले आते हो तो भूल होगी, किया हुआ कर्ता की पहचान नहीं कर सकता, सीमा वाला असीम को अपने ज्ञान का विषय नहीं बना सकता। वह बेअंत है, अगणित है[२] उसकी भक्ति करनी चाहिए। उसे प्यार करना चाहिए, उसके निकट रहने से सुख की प्राप्ति होती है। सदैव उसकी हुज़ूरी में उपस्थित रहें, इसी से कल्याण है; शेष जो पुरुष परमेश्वर के मार्ग पर नहीं चलते, जो भक्ति भजन नहीं करते, वे माया के मोह में हैं, चार दिन के जीवन के सुखों से लिप्त है, आत्मा के सुख को नहीं जानते, उनके ज्ञान, ध्यान, उनकी विद्या तथा कारीगरी तथा विज्ञान सब-कुछ हठ में ही है। क्या पढ़े हुए और क्या अपढ़, क्या धर्मी और क्या नास्तिक सभी द्वेष, ईर्ष्या में हैं। मनुष्य की हृदय-पीड़ा और मनुष्य की शारीरिक पीड़ा को बढ़ाते हैं। वह विद्या का अर्थ है, जिसका फल जगत के दुख को कम करने की अपेक्षा बढ़ाना हो?

और भाई यदि तू 'प्रभू के द्वार' की खबर पूछनी चाहता है और तर्क-वितर्क से दूर ले जाकर शीतलता वाले सुख का पता जानने का इच्छुक है, तो सुन। यह कहकर सतगुरू जी

---

१. सहिबु मेरा एको है ।। एको है भाई एको है।। (आसा म: १)

२. वह वार्तालाप उस शब्द का खुला अनुवाद है जो भाई बन्नों वाले ग्रन्थ में इस प्रकार है:-

सलोक म: १

जितु दरि लख महंमदा लख ब्रहमे विसनु महेस ।।
लख लख राम बडीरीअहि लख राही लख वेस ।।
लख लख आये जती है सतीअह ते संनिआस ।।
लख लख आये गोरखा लख लख नाथा नाथ ।।
लख लख ओथै आसना गुर चेले रहिरास ।।
लख लख देवी देवते दानूं लख निवास ।।
लख पीर पैकांबर आऊलीए लख काज़ी मुलां सेख ।।
किसै सांति न आईआ बिन सतिगुरू के उपदेसु ।।
साधक सिध अगनत हैं केते लख अपार ।।
एतड़िआ अपवित्र है बिन सतिगुरू के सबदि वीचार ।।
सिर नाथा कै एक नाथ सतिनाम करतारु ।।
नानक ताकी कीमति ना पवै बेअंत बेसुमारु ।।१।।

ने मरदाना की ओर देखा और उसने रबाब की सुन्दर अँकार के साथ स्वर निकाला :-

रागु आसा महला १ घरु १ सादरु ।।

सो दरू तेरा केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले ।।
बाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावणहारे ।।
केते तेरे राग परी सिउ कहीअहि केते तेरे गावणहारे ।।
गावनि तुधनो पउणु पाणी बैसंतर गावै राजा धरम दुआरे ।।
गावनि तुधनो चितु गुपतु लिखि जाणनि लिखि लिखि धरमु बीचारे ।।
गावनि तुधनो ईसरु ब्रहमा देवी सोहनि तेरे सदा सवारे ।।
गावनि तुधनो इंद्र इंद्रासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ।।
गावनि तुधनो सिध समाधी अन्दरि गावनि तुधनो साध बीचारे ।।
गावनि तुधनो जती सती संतोखी गावनि तुधनो वीर करारे ।।
गावनि तुधनो पंडित पड़े रखीसुर जुगु जुगु बेदा वाले ।।
गावनि तुधनो मोहणीआ मनु मोहनि सुरगु मछु पइआले ।।
गावनि तुधनो रतन उपाए तेरे जेते अठसठि तीरथ नाले ।।
गावनि तुधनो जोध महा बल सूरा गावनि तुधनो खाणी चारे ।।
गावनि तुधनो खंड मंडल ब्रहमंडा करि करि रखे तेरे धारे ।।
सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ।।
होरि केते तुधनो गावनि से मैं चिति न आवनि नानकु किआ बीचारे ।।
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ।।
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई।
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ।।
करि करि देखै कीता आपणा जिउ तिसदी वडिआई ।।
जो तिसु भावै सोई करसी फिरि हुकमु न करणा जाई ।।
सो पातिसाहु साहा पतिसाहिबु नानक रहणु रजाई ।।१।।

इस शब्द के गाये जाने वाले हृदय को आकृष्ट करने वाले संगीत ने तथा प्रार्थना से भरे हुए भाव ने वीरां मल्हार की समाधि लगा दी। उसका मन विशाल हो होकर वाहिगुरू की कीर्ति तथा यश के भाव से शीतल होता, हल्का होता, निर्मल होता, एकाग्र होता गया और सुख में लीन हो गया। जब शब्द की समाप्ति हुई तो काफी समय तक मग्न बैठा रहा। फिर उसके मन की जब मग्नता कम हुई तो संकल्प ने काम किया, कि यह जो आज मेरे घर में आया है, यही तो सतगुरू है। इसी के पास तो नाम का पदार्थ है और यही सभी बखेड़ों से ऊँचा प्रभु की भांति एक है। इसे प्रभु के द्वार का ज्ञान है, जिसके नैनों तथा मनों में एक ही निवास कर रहा है। यही है जिसने कभी किसी को बुरा नहीं कहा, यही प्रभु के द्वार पर स्वीकार हुआ है, आज, जो उस प्रभु के द्वार पर स्वीकार हुआ, आकर मिला है[१]। यह विचारकर, प्यार में

१. जनु नानकु भगतु दरि तुल ब्रहम समसरि एक जीह किआ बखानै ।।
(स्वयं श्री मुखवाक म: ५)

उमड़कर, नैन खोलकर दर्शन किए और चरणों में गिर पड़ा– 'दाता! रक्षा कर, हे प्रभु के ज्ञान वाले! मुझे अपना बना ले। तैने मेरे अंदर चुभे हुए कांटे को निकाल दिया है। अब कृपा का मरहम लगा दे, तेरा दाता तेरा भला करेगा। लगे हुए पर अटके हुए को पार कर दे।'

श्री गुरू जी – प्यारे वीर मल्हार ! सुन ! प्रभू के द्वार पर कौन पहुँचते हैं ? पंच । जिन्होंने पाँचों को अपने अधिकार में करके आश्रय बनाया है, जिन्होंने पंचों का सत्संग किया है, जिन्होंने पंचों के साथ बैठकर अपने–आपको पंच बना लिया है, वे प्रभु के द्वार पर स्वीकृत हुए हैं, वहीं यहां पर स्वीकार हुए है और प्रधान हैं, वही इहलोक तथा परलोक में स्वीकार हुए हैं, प्रभु के द्वारा पर उन्हीं को मान प्राप्त होता है। पर पंच कैसे बनते हैं ? सदैव वाहिगुरू में ध्यान लगाए रखने से।[१] प्रभु में ध्यान कैसे लगता है? उसके नाम का स्मरण करके । नाम का स्मरण कैसे किया जाता है? नाम जपकर । नाम के जाप में कैसे लगा जाता है? सतगुरू जी से सत्संग प्राप्त होकर । यह मार्ग है और सभी बातें झगड़े तथा विवाद की हैं।[२]

वीरां – हे दाता! फिर लिख दे पट्टी जिसको पढ़कर पंच बनने का ढंग सीख जाऊँ।

तब गुरू ने कृपा की, वीरां को सुमार्ग पर चलाया, वह निःशंक होकर नाम में लग पड़ा ओर सुख वाला बोझा लादने लग पड़ा। गुरू बाबा ने उस जिज्ञासु का कल्याण किया, जो रहस्य की अटक में अटक रहा था। धन्य गुरू नानक !

ऐतिहासिक पक्ष

वीरां मल्हार की कथा सम्प्रदाय ज्ञानियों को याद है। बाले वाली जन्मसाखी में भी यह कथा लिखी है। भाई बन्नों के ग्रन्थ की विषय सूची में "जितु दरि लख महंमदा" वाले शब्द का पृष्ठ बताने वाले स्थान पर लिखा है "सलोक तथा गोसट मल्हार नाल होई" और 'बाइ बातस' वाले शब्द में 'वीर सलामालेखु' वाला श्लोक दिया है, अत: यह नाम, गोष्ठी तथा श्लोक संवत् १६६१ से पहले का है, और लिखित में वार्ता के रूप में जन्मसाखी में प्रसंग आया है और रीति अनुसार कुछ कम अधिक ज्ञानी लोगों को याद है; जैसे कि ऊपर बताया है।

□ □

१. पंच परवाण पंच परधान ।। पंचे पावहि दरगहि मानु ।।
पंचे सोहहि दरि राजानु ।। पंचा का गुरू एकु धिआनु ।। (जपुजी)

२. नानकु आखै राहु एहु होरि गलां सैतानु ।। (सारंग वार म: १)